नारद पञ्चरात्र

रामकुमार राय

प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी

तन्त्र ग्रन्थमाला ३

नारद पञ्चरात्र

नारद पञ्चरात्र

[illegible]ग्रन्थमालायां

अं० ६

[illegible]

[illegible]

तन्त्र ग्रन्थमाला नं० ९

नारद पंचरात्र

सम्पादक-अनुवादक

राम कुमार राय

प्राच्य प्रकाशन

जगतगंज, वाराणसी-२२१ ००२

प्रथम बार १९८५

प्रकाशक :

प्राच्य प्रकाशन

७४-ए, जगतगंज

वाराणसी - २२१००२ (भारत)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य १००.०० रुपये

मुद्रक :

अनूप प्रिन्टिंग वर्क्स, जगतगंज, वाराणसी

TANTRA GRANTHAMALA No. 9

Narada Pancharatra

Text with Hindi Translation by

RAM KUMAR RAI

Prachya Prakashan

Varanasi-221002

1985

First Edition : 1985

PRACHYA PRAKASHAN
74-A, Jagatganj
VARANASI—221002 (INDIA)
Phone : 53252

All Rights Reserved

No part of this book may be translated or reproduced in any form, by print, photoprint, microfilm or any other means without written permission from the publishers.

Price Rs. 100.00

Printed by P. K. Rai at the Anoop Printing Works, Varanasi, and Published by Rakesh Rai for Prachya Prakashan, Varanasi.

भूमिका

सर्वप्रथम एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा १८६५ ई० में प्रकाशित श्रीनारदपञ्चरात्र वैष्णव साहित्य के सम्भवतः प्राचीनतम ग्रन्थों में से एक है। कुछ विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत को ही इससे अधिक प्राचीन कहा जा सकता है। इस पञ्चरात्र में श्रीकृष्ण, श्रीगोपाल और श्रीराधा की प्रशस्ति, इनके पूजन की विधियाँ, इनके मन्त्र, सहस्रनाम तथा कवच आदि का वर्णन मिलता है। इसमें सर्वाधिक प्रमुखता के साथ दास्य भक्ति, तथा इसके द्वारा भवबन्धन से मुक्ति और गोलोक की प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादन किया गया है। इसके अनुसार श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के बाद भक्त को सब कुछ प्राप्त हो जाता है। वैराग्य और संन्यास की इसमें विशेष चर्चा नहीं है। प्रायः सभी उपदेश भगवान शिव से नारद को दिलवाये गये हैं। अन्त के दो अध्यायों में यद्यपि योगकथन, प्राणायाम, षट्चक्र और कुण्डलीजागरण की भी चर्चा की गई है, तथापि यह विवरण बहुत पूर्ण नहीं है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में बालकृष्ण की महिमा का अधिक विस्तार से वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण के माहात्म्य और उनकी पूजा के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के लिये इच्छुक नारद एक भविष्यवाणी से प्रेरित होकर कैलास पर्वत पर जाकर शिव से उपदेश ग्रहण करते हैं। कैलास पर्वत पर शिव के सात द्वारों से युक्त सदन में प्रवेश करने पर नारद को श्रीकृष्ण के जीवन, विशेषकर बाल्यजीवन से सम्बद्ध अनेक चित्र दिखाई पड़ते हैं जिससे पाठकों पर यह प्रभाव पड़ता है कि शिव भी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। बाद में नारद को दिये गये उपदेशों में स्वयं शिव भी इस बात को बार-बार स्वीकार करते हैं कि उनके आराध्यदेव वास्तव में श्रीकृष्ण ही हैं।

ग्रन्थ में राधिका को स्त्रीदेवताओं में उच्चतम स्थान दिया गया है। भगवान शिव राधा के सहस्रनाम के माहात्म्य की चर्चा करते हुये इस विद्या को अपने प्राणों के समान बताते हैं और कहते हैं कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति और भक्ति से इसका निरन्तर पाठ करते हैं।

इतना ही नहीं, राधा-कृष्ण के भक्त वैष्णवों को भी शिव अपने प्राण के समान मानते हुये इस प्रकार कहते हैं : 'मैं उनकी रक्षा के लिये त्रिशूल धारण करता हूँ। जो हरि भक्तों से द्वेष रखते हैं उन्हीं को दण्ड देने के लिये मैं शूल धारण करता हूँ।'

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ वैष्णव धर्म के तथा उसके आदिदेव श्रीकृष्ण और राधा के माहात्म्य-वर्णन से ओत-प्रोत है। फिर भी अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुये इसमें अन्य धर्मों या मतों पर एकाध स्थानों को छोड़ कर कहीं अपमानजनक प्रहार नहीं किया गया है। इसमें स्वयं शिव के ही उपदेशक होने से ऐसी क्षुद्र बातों की सम्भावना भी नहीं हो सकती थी।

ग्रन्थ की प्राचीनता, महत्व और आधी शताब्दी से अधिक समय से इसकी अनुपलब्धता के कारण मैंने मूल रूप में ही इसके प्रकाशन का परामर्श अपने प्रकाशक को दिया था, परन्तु उन्होंने हिन्दी अनुवाद सहित इसके प्रकाशन का प्रस्ताव रक्खा। मैं इस ग्रन्थ की अत्यन्त क्लिष्टता, तथा किसी प्राचीन टीका की अनुपलब्धता से परिचित था अतः पहले तो साहस नहीं हुआ। मैंने कुछ अन्य विद्वानों से इसके अनुवाद का आग्रह भी किया परन्तु किसी के सामने न आने पर सर्वथा अयोग्य होते हुये भी मैंने इस कार्य को सम्पन्न किया। मैं अपनी सीमाओं से परिचित हूँ और जानता हूँ कि अनुवाद के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर सका हूं। कहीं-कहीं तो ग्रन्थ इतना क्लिष्ट है कि मैं हताश हो गया परन्तु न जाने किस प्रेरणा से काम आगे बढ़ता गया और अन्ततः ग्रन्थ पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

विद्वान् पाठकों से मेरा अनुरोध है कि जहाँ मेरे अनुवाद में त्रुटि दिखाई पड़े वे मेरा मार्गदर्शन करते हुये उचित प्रसंग लिख भेजें। मैं भावी संस्करण में ऐसे परामर्शदाता विद्वानों का नाम देते हुये उनके परामर्शों को ग्रन्थ में यथास्थान प्रकाशित करने का प्रयास करूँगा।

मुद्रण की भी यत्र-तत्र साधारण अशुद्धियां हैं जिनके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

राम कुमार राय

विषय-सूची

प्रथम रात्र

अध्याय	पृष्ठ
प्रथमोऽध्याय : व्यास और शुकदेव का संवाद	१
द्वितीयोऽध्याय : श्रीकृष्ण-नैवेद्य का माहात्म्य	१४
तृतीयोऽध्याय : श्रीकृष्ण माहात्म्य	२७
चतुर्थोऽध्याय : ब्रह्म-नारद संवाद	४०
पञ्चमोऽध्याय : शिव-नारद संवाद	५४
षष्ठोऽध्याय : लोमश-नारद संवाद	६०
सप्तमोऽध्याय : नारद का कैलासागमन और गणेश स्तुति	७१
अष्टमोऽध्याय : नारद का कैलास वास	८५
नवमोऽध्याय : नारद को कृष्ण-मन्त्र की दीक्षा	९१
दशमोऽध्याय : श्रीकृष्ण मखोत्सव	९८
एकादशोऽध्याय : श्रीकृष्ण महोत्सव	११२
द्वादशोऽध्याय : गन्धर्व कृत स्तोत्र	११८
त्रयोदशोऽध्याय : गन्धर्व देह से नारद की मुक्ति	१३१
चतुर्दशोऽध्याय : गणिकाओं आदि की उत्पत्ति	१३७
पञ्चदशोऽध्याय : ज्ञानोपदेश।	१५५

द्वितीय रात्र

प्रथमोऽध्याय : ज्ञानामृत	१६०
द्वितीयोऽध्याय : भक्तिज्ञान	१६८
तृतीयोऽध्याय : भक्तिज्ञान और मन्त्र	१८३
चतुर्थोऽध्याय : हरिभक्ति के प्रसंग में राधा माहात्म्य	२००

अध्याय	पृष्ठ
पञ्चमोऽध्याय : राधा कवच	२१०
षष्ठोऽध्याय : राधा माहात्म्य	२२१
सप्तमोऽध्याय : मुक्ति	२२७
अष्टमोऽध्याय : योगकथन ।	२३६

तृतीय रात्र

प्रथमोऽध्याय : स्नानादि, पूजा और मन्त्रक्रिया	२४३
द्वितीयोऽध्याय : भुवनमय शक्तियाँ	२५०
तृतीयोऽध्याय : महामन्त्र	२६१
चतुर्थोऽध्याय : न्यासादि	२६८
पञ्चमोऽध्याय : वृन्दावन-स्मरण और मन्त्र पूजा	२७७
षष्ठोऽध्याय : सामीप्य मुक्ति	२८७
सप्तमोऽध्याय : सर्वश्रेष्ठ दो मन्त्रों की विवेचना	२९२
अष्टमोऽध्याय : पूजा विधि	३००
नवमोऽध्याय : होम	३०५
दशमोऽध्याय : श्रीकृष्ण सेवा	३१०
एकादशोऽध्याय : श्रीकृष्ण की सेवा का फल	३१६
द्वादशोऽध्याय : रात्रिकालीन श्रीकृष्ण सेवा	३२२
त्रयोदशोऽध्याय : श्रीकृष्ण की पूजा का फल	३२६
चतुर्दशोऽध्याय : उपरोक्त दो मन्त्रों के प्रयोग	३३२
पञ्चदशोऽध्याय : विभिन्न विषय ।	३४६

चतुर्थ रात्र

प्रथमोऽध्याय : उमा-महेश्वर संवाद	३५८
द्वितीयोऽध्याय : पार्वती-शिव संवाद	३६४
तृतीयोऽध्याय : विष्णु सहस्रनाम	३७०

अध्याय	पृष्ठ
चतुर्थोऽध्याय : बिणु स्तोत्र और कवच	३९३
पञ्चमोऽध्याय : त्रैलोक्यमङ्गल कवच	३९६
षष्ठोऽध्याय : गोपाल स्तोत्र	४०१
सप्तमोऽध्याय : गोपाल कवच	४०३
अष्टमोऽध्याय : गोपाल सहस्रनाम	४०६
नवमोऽध्याय : पूजा के उपकरण	४२३
दशमोऽध्याय : चतुर्धा पूजा	४२६
एकादशोऽध्याय : द्वादश शुद्धि ।	४३०

पञ्चम रात्र

प्रथमोऽध्याय : श्रीकृष्ण मन्त्र	४३५
द्वितीयोऽध्याय : मुद्राकथन	४५१
तृतीयोऽध्याय : सप्तधा पूजा	४६२
चतुर्थोऽध्याय : पूजा माहात्म्य	४७०
पञ्चमोऽध्याय : राधा सहस्रनाम	४७७
षष्ठोऽध्याय : राधा सहस्रनाम-माहात्म्य	४९३
सप्तमोऽध्याय : राधा कवच	४९७
अष्टमोऽध्याय : नाममन्त्र कथन	५०१
नवमोऽध्याय : राधा मन्त्र	५०६
दशमोऽध्याय : योग-धारणा	५१०
एकादशोऽध्याय : योगकथन (शारदा तिलक से)।	५१८

नारद
पंचरात्र

नारदपञ्चरात्रम्

प्रथमैक रात्रे प्रथमोऽध्यायः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ मङ्गलाचरणम् ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

गणेशशेषब्रह्मेशदिनेशप्रमुखाः सुराः ।
कुमाराद्याश्च मुनयः सिद्धाश्च कपिलादयः ॥१॥
लक्ष्मीःसरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका परा ।
भक्त्या नमन्ति यं शश्वत्तं नमामि परात्परम् ॥२॥

गणेश जी, शेषभगवान्, ब्रह्मा जी, शिवजी, सूर्यप्रमुख देव, कुमार आदि और कपिल आदि मुनि तथा अन्य सिद्ध, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री तथा परा शक्ति राधिका आदि जिन परम श्रेष्ठ सनातन ब्रह्म को भक्तिभाव से सदा प्रणाम करते हैं, उन्हें ही मैं भी नमस्कार करता हूं ॥ १-२ ॥

ध्यायन्ते सन्ततं सन्तो योगिनो वैष्णवाः तथा ।
ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुलं श्यामसुन्दरम् ॥३॥
ध्याये तं परमं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ।
निरीहमतिनिर्लिप्तं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥४॥
सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वकारणकारणम् ।
सत्यं नित्यं च पुरुषं पुराणं परमाव्ययम् ॥५॥

मङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलालयम् ।
स्वेच्छामयं पर धाम भगवन्तं सनातनम् ॥६॥

योगिजन तथा वैष्णव सदा अपने हृदयान्तराल में जिन अतुल ज्योतिस्वरूप श्यामसुन्दर का निरन्तर ध्यान करते हैं, उन परब्रह्म, परमात्मास्वरूप, परमेश्वर, निरीह, निर्लिप्त, निर्गुण, परमप्रकृति, सर्वेश्वर, सर्वरूप, समस्त कारणों के कारण, सत्य, नित्य, पुरुष, पुराण, अव्यय, मंगलमय, मंगलार्ह, मंगलनिधान, मंगलस्वरूप, स्वेच्छामय, परमधाम तथा सनातन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३-६ ॥

स्तुवन्ति वेदा यं शश्वन्नान्तं जानन्ति यस्य ते ।
तं स्तौमि परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥७॥
भक्तप्रियं च भक्तेशं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।
श्रीदं श्रीशं श्रीनिवासं श्रीकृष्णं राधिकेश्वरम् ॥८॥

चारों वेद जिनकी स्तुति करते हैं तो भी उनका अन्त नहीं जान पाते, उन आनन्दस्वरूप नन्दनन्दन परमानन्द, भक्तप्रिय, भक्तेश, भक्तों पर दया करने के लिए शरीर धारण करने वाले, लक्ष्मी के दाता, लक्ष्मी के स्वामी, श्रीनिवास तथा राधिकेश्वर श्रीकृष्ण की मैं स्तुति करता हूं ॥ ७-८ ॥

ज्ञानामृतं ज्ञानसिन्धोः संप्राप्य शंकराद्गुरोः ।
परावराच्च परमाद्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरोः ॥९॥
वेदेभ्यो दधिसिन्धुभ्यश्चतुर्भ्यः सुमनोहरम् ।
तज्ज्ञानमन्थदण्डेन संनिर्मथ्य नवं नवम् ॥१०॥
नवनीतं समुद्धृत्य नत्वा शम्भोः पदाम्बुजम् ।
विधिपुत्रो नारदोऽहं पञ्चरात्रं समारभे ॥११॥

योगीन्द्रों के परम गुरुओं के भी आदि गुरु, ज्ञान के महासागर भगवान् शंकर से ज्ञानामृत पाकर, दधि-समुद्ररूप चारों वेदों को उस ज्ञानरूपी मथानी से अच्छी तरह मथ कर नया-नया मक्खन निकाल कर और शिव जी के चरणकमलों का अभिवादन करके मैं ब्रह्मा-पुत्र नारद पञ्चरात्र का प्रारम्भ कर रहा हूं ॥ ९-११ ॥

ॐ

नारायणाश्रमे पुण्ये पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
सिद्धे नारायणक्षेत्रे वटमूले सुपुण्यदे ॥१२॥
कृष्णांशं कृष्णभक्तं च परं कृष्णपरायणम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसम् ॥१३॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ।
सुखासने सुखासीनं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥१४॥
पप्रच्छ शुकदेवश्च सर्वज्ञं पितरं मुनिः ।
कारणं च पुराणानां पुराणं परमव्ययम् ॥१५॥

ॐ

पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष के सिद्ध नारायणक्षेत्र में स्थित नारायणाश्रम में पुण्यदायी वटवृक्ष के नीचे कृष्ण जी के अंशस्वरूप, कृष्णभक्त, निरन्तरकृष्णपरायण, श्रीकृष्ण भगवान् के चरणकमलों में एकमात्र ध्यान लगाये हुए, परमब्रह्म 'कृष्ण' इन दो अक्षरों का जप करते हुए, सुखासन पर सुखपूर्वक बैठे हुए पुराणों के पुराण परम अविनश्वर कारणस्वरूप और सर्वज्ञ अपने पिता श्रीकृष्ण द्वैपायन जी से मुनिवर शुकदेव जी ने पूछा ॥ १२-१५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥

भगवन् सर्वतत्त्वज्ञ वेदवेदाङ्गपारग ।
यद्यत्प्रकारं ज्ञानं च निगूढं श्रुतिसंमतम् ॥१६॥
तेषु यत् सारभूतं चाप्यज्ञानान्धप्रदीपकम् ।
तत्तत् सर्वं समालोच्य मां बोधयितुमर्हसि ॥१७॥

श्री शुकदेव जी बोले : हे वेदवेदाङ्गपारग ! सर्वतत्वज्ञ भगवन् ! वेदसम्मत जो-जो अत्यन्त रहस्यमय ज्ञान हैं, उनमें जो सरभूत तथा अज्ञानान्धकार के लिए प्रदीप के समान है, उसे अच्छी तरह विचार कर आप ही मुझे बताने योग्य हैं ॥ १६-१७ ॥

अथ कृष्णभक्ति प्रशंसा ।

स पिता ज्ञानदाता यो ज्ञानं तत् कृष्णभक्तिदम् ।

सा भक्तिः परमा शुद्धा कृष्णदास्यप्रदा च या ॥१८॥
तदेव दास्यं शस्तं यत् साक्षाच्चरणसेवनम् ।
नित्यं गोलोकवासं च पुरतः स्तवनं हरेः ॥१९॥
शश्वन्निमेषरहितं तत्पादपद्मदर्शनम् ।
शश्वत्तत्सार्धमालापसेवाकर्मनियोजनम् ॥२०॥
तेन सार्धमविच्छेदस्थानं परमशोभनम् ।
भक्तानां वाञ्छितं वस्तु सारभूतं श्रुतौ श्रुतम् ॥२१॥

कृष्णभक्ति प्रशंसा

पिता वह है जो ज्ञान देवे। ज्ञान वह है जो कृष्ण भगवान् की भक्ति देवे। भक्ति वह है जो कृष्ण भगवान् की शुद्ध सेवा प्रदान करने वाली हो। वही सेवा प्रशंसनीय है जिसमें साक्षात् चरणसेवन है। श्रीकृष्ण भगवान् के सम्मुख उनकी स्तुति करना ही नित्य गोलोकवास है। निर्निमेश उनके चरणकमलों का दर्शन करना, सदैव उनके सम्बन्ध में वार्तालाप करना, अपने को उनकी सेवा में समर्पित करना तथा निरन्तर उनके साथ रहना अत्यन्त आनन्ददायक और भक्तों की वाञ्छित वस्तु है—वेदों में सारभूत तत्व ऐसा ही सुना जाता है ॥ १८-२१ ॥

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा व्यासदेवो जहास सः ।
विज्ञाय ज्ञानिनं पुत्रं परमाह्लादमाप ह ॥२२॥
पुत्रं शुभाशिषं कृत्वा सर्वज्ञः सर्वभावनः ।
यथाप्राप्तं गुरुमुखात् प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२३॥

पुत्र के इस वचन को सुन कर व्यास देव हंस पड़े। अपने पुत्र को ज्ञानवान् जान कर वह अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए। पुत्र को शुभाशीर्वाद देकर सर्वज्ञ और सर्वत्र भगवान् की भावना रखने वाले वेद व्यास जी ने अपने गुरुमुख से यथाप्राप्त ज्ञान को बताना प्रारम्भ किया ॥ २२-२३ ॥

श्रीव्यास उवाच ॥

शुक धन्योऽसि मान्योऽसि पुण्यरूपोऽसि भारते ।

पुत्रेण भवताऽस्माकं कुलं मुक्तं च पावनम् ॥२४॥
स पुत्रः कृष्णभक्तो यो भारते सुयशस्करः ।
पुनाति पुंसां शतकं जन्ममात्रेण लीलया ॥२५॥
मातामहानां शतकं मातरं मातृमातरम् ।
सोदरान् बान्धवांश्चैव भृत्यान् पत्नीं सहात्मजाम् ॥२६॥
यत्कन्यां प्रतिगृह्णाति तदादिपुरुषत्रयम् ।
कन्याप्रदाता श्वशुरो जीवन्मुक्तः सभार्यकः ॥२७॥

श्री व्यास जी बोले : हे शुकदेव ! भारत में तुम धन्य हो, मान्य हो, पुण्यरूप हो । हे पुत्र ! पुत्ररूप में तुम्हारे जन्म लेने से हमारा पावन कुल अनायास ही मुक्त हो गया । वही पुत्र है जो कृष्णभक्त और यशस्वी हो । ऐसा पुत्र जन्ममात्र से अनायास ही सौ पीढ़ियों को पवित्र कर देता है । नानाओं, नानियों, माताओं, शताधिक अन्य लोगों, और बन्धु-बान्धवों को, बहनों को, पत्नी को, तथा कन्यादाता की तीन पीढ़ियों को ऐसा पुत्र पवित्र कर देता है । कन्याप्रदाता श्वसुर अपनी पत्नी सहित जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ २४-२७ ॥

स्वयं विधाता भगवान् परं कृष्णपरायणः ।
कृष्णभक्तो वसिष्ठस्तु तत्सुतो वैष्णवः स्वयम् ॥२८॥
वैष्णवस्तत्सुतः शक्तिः कृष्णध्यानैकमानसः ।
पराशरश्च तत्पुत्रः कृष्णपादाब्जसेवया ॥२९॥
जीवन्मुक्तो महाज्ञानी योगीन्द्राणं गुरोर्गुरुः ।
अहं वेदविभक्ता च श्रीकृष्णपादसेवया ॥३०॥
गुरुर्मे भगवान् साक्षाद्योगीन्द्रो नारदो मुनिः ।
गुरोर्गुरुर्मे शंभुश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥३१॥
तेषां पुण्येन पुत्रस्त्वं पुण्यराशिश्च मूर्त्तिमान् ।
पद्मानां मम पुंसां च प्रकाशो भास्करः स्वयम् ॥३२॥

स्वयं भगवान् ब्रह्मा जो कृष्णभक्तिपरायण थे । उनके पुत्र वैष्णव वसिष्ठजी स्वयं कृष्णभक्त थे । उनके पुत्र वैष्णव शक्ति एकमात्र कृष्ण के

ध्यान में मन लगाने वाले थे। उनके पुत्र पराशर हुए, जो श्रीकृष्ण के चरणकमलों की सेवा से महाज्ञानी, योगिराजों के गुरुओं के भी गुरु तथा जीवन्मुक्त हुए। साक्षात् योगीन्द्र भगवान् नारद मुनि मेरे गुरु हुए। मेरे गुरु के गुरु योगिराजों के गुरु के गुरु शिव जी हुए। उन लोगों के पुण्य से पुण्यराशि के समान मूर्तिमान तुम मेरे पुत्र हुए हो। जैसे कमलों के लिये सूर्य है वैसे ही हमारे लिये तुम प्रकाशित हुये हो ॥ २८-३२ ॥

श्रीकृष्णचरणाम्भोजं पादाब्जं नारदेशयोः ।
सरस्वतीं नमस्कृत्य ज्ञानं वक्ष्ये सनातनम् ॥३३॥
श्रूयतां पञ्चरात्रं च वेदसारमभीप्सितम् ।
पञ्चसंवादमिष्टं च भक्तानामभिवाञ्छितम् ॥३४॥
प्राणाधिकं प्रियं शुद्धं परं ज्ञानामृतं शुभम् ।

श्रीकृष्ण जी के चरणकमल को, श्री नारद जी तथा शिव जी के चरणकमलों को, एवं सरस्वती जी को प्रणाम करके सनातन ज्ञान को मैं कहूंगा। अभीष्ट वेदसार, भक्तों का अभिवाञ्छित, प्राणों से भी अधिक प्रिय, परम शुद्ध ज्ञानामृत मधुर पाँच संवादरूप पञ्चरात्र को सुनो ॥ ३३-३४॥ ॥

अथ षट्संवादाः ।

पुरा कृष्णो हि गोलोके शतश्रृङ्गे च पर्वते ॥३५॥
सुपुण्ये विरजातीरे वटमूले मनोहरे ।
पुरतो राधिकायाश्च ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥३६॥
तमुवाच महाभक्तं स्तुवन्तं प्रणतं सुत ।
पञ्चरात्रमिदं पुण्यं श्रुत्वा च जगतां विधिः ॥३७॥
प्रणम्य राधिकां कृष्णं प्रययौ शिवमन्दिरम् ।

षट् संवाद

प्राचीन काल में गोलोक के शतश्रृङ्ग पर्वत पर परमपुण्य विरजा नदी के तट पर मनोहर वट के नीचे श्रीकृष्ण भगवान् ने राधिका के सामने प्रणाम एवं स्तुति करते हुए महाभक्त कमलोद्भव ब्रह्मा जी को 'हे सुत' यह सम्बोधन करके इस पुण्यदायक पञ्चरात्र को कहा। संसार

के बनाने वाले ब्रह्मा जी इसे सुन कर श्रीराधिका तथा श्रीकृष्ण को प्रणाम करके शिव मन्दिर की ओर चल पड़े।

भक्त्या तं पूजयामास शंकरः परमादरम् ॥३८॥
सुखासने समासीनं स्वस्थं भक्तं च पूजितम्।
पप्रच्छ वार्त्तां विनयी विनयेन सुखावहाम् ॥३९॥
सर्वं तं कथयामास पञ्चरात्रादिकं शुभम्।

श्री शङ्कर जी ने परम आदर और भक्ति के साथ उनकी पूजा की। सुखासन पर सुखपूर्वक बैठे स्वस्थ तथा सत्कृत भक्त से सुखदायी बातें पूछीं। विनयी ब्रह्मा जी ने विनयपूर्वक पञ्चरात्र आदि की शुभ बातें बताया।

वसन्तं वटमूले च स्वर्गे मन्दाकिनीतटे ॥४०॥
योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रैर्मुनीन्द्रैश्च स्तुतं प्रभुम्।
ज्ञानामृतं तमुक्त्वा स ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥४१॥

स्वर्ग में मन्दाकिनी के तट पर वट के नीचे निवास करते हुए योगीन्द्रों, सिद्धों, इन्द्रों तथा मुनीन्द्रों द्वारा स्तुत उन प्रभु शिव जी को ज्ञानामृत का ज्ञान कराकर वह ब्रह्मा जी ब्रह्मलोक की ओर चले गये ॥ ३५-४१ ॥

शंभुश्च कथयामास स्वशिष्यं नारदं मुनिम्।
नारदः कथयामास पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥४२॥
मां भक्तमनुरक्तं च पुण्याहे मुनिसंसदि।
पञ्चरात्रमिदं शुद्धं भ्रमान्धध्वंसदीपकम् ॥४३॥

शम्भु भगवान् ने अपने शिष्य नारद जी को इस पञ्चरात्र का ज्ञान दिया। नारद जी ने सूर्यग्रहण पर पुष्कर में मुनियों की सभा के मध्य पुण्याह में मुझ अनुरक्त भक्त को भ्रम के अंधकार को दूर करने वाले दीपकस्वरूप इस पञ्चरात्र को बतलाया ॥ ४२-४३ ॥

अथ पञ्चरात्रपदव्याख्या।

रात्रं च ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।
तेनेदं पञ्चरात्रं च प्रवदन्ति मनीषिणः ॥४४॥

ज्ञानं परमतत्त्वं च जन्ममृत्युजरापहम् ।
ततो मृत्युञ्जयः शम्भुः संप्राप कृष्णवक्त्रतः ॥४५॥
ज्ञानं द्वितीयं परमं मुमुक्षूणां च वाञ्छितम् ।
परं मुक्तिप्रदं शुद्धं यतो लीनं हरेः पदे ॥४६॥
ज्ञानं शुद्धं तृतीयं च मङ्गलं कृष्णभक्तिदम् ।
तद्दास्यदमभीष्टं च यतो दास्यं लभेद्धरेः ॥४७॥
चतुर्थं यौगिकं ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदं परम् ।
सर्वस्वं योगिनां पुत्र सिद्धानां च सुखप्रदम् ॥४८॥
अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च तथाकामावसायिता ॥४९॥
सावज्ञं दूरश्रवणं परकायप्रवेशनम् ।
कायव्यूहं जीवदानं परजीवहरं परम् ॥५०॥
सर्गकर्तृत्वशिल्पं च सर्गसंहारकारणम् ।
सिद्धं च षोडशविधं ज्ञानिनां च यतो भवेत् ॥५१॥

पञ्चरात्र पदव्याख्या

'रात्र' शब्द 'ज्ञान' का वाची है। यह ज्ञान पाँच प्रकार का होता है, इसीलिए विद्वज्जन इसे 'पञ्चरात्र' कहते हैं। पहला ज्ञान जन्म, वृद्धावस्था तथा मृत्यु का नाश करने वाला परम तत्व का ज्ञान है। इसे श्री शिव जी ने श्रीकृष्ण जी के मुख से प्राप्त किया था। दूसरा ज्ञान मोक्षार्थियों के लिए अभीष्ट है। यह मुक्ति देने वाला परम पवित्र ज्ञान है, और श्रीकृष्ण के चरण में लीन करनेवाला है। तीसरा शुद्ध एवं मङ्गलमय वह ज्ञान है जो श्रीकृष्ण जी की भक्ति देने वाला है। यह दास्य ज्ञान भी अभीष्ट है जिससे मनुष्य श्रीकृष्ण जी के दास्य को प्राप्त करता है। हे पुत्र ! चौथा समस्त सिद्धियों का देने वाला परम यौगिक ज्ञान है, जो योगियों का सर्वस्व तथा सिद्धों के लिए सुखप्रद है। यौगिक ज्ञान की सिद्धियाँ निम्नलिखित हैं—अणिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, इशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता—ये कुल आठ

हैं। इनके अतिरिक्त सर्वज्ञता, दूरश्रवण, परकायप्रवेश, कायव्यूहन, जीवदान, परजीवहरण, सृष्टिकर्तृत्वशिल्प तथा सृष्टिसंहारकारणत्व—ये आठ और सिद्धियाँ हैं। जिस यौगिक ज्ञान से ज्ञानियों को ये सोलह प्रकार की सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं उसे 'यौगिक ज्ञान' कहा जाता है ॥ ४४-५१ ॥

ज्ञानं च परमं प्रोक्तं तद्वै वैषयिकं नृणाम् ।
यदिष्टदेवी माया सा परं संमोहकारणम् ॥५२॥
विषये बद्धचित्तं च सर्वमिन्द्रियसेवनम् ।
पोषणं स्वकुटुम्बानां स्वात्मनश्च निरन्तरम् ॥५३॥

यह जो पाँचवाँ परम ज्ञान कहा गया है वह मनुष्यों का वैषयिक ज्ञान है। जो इष्टदेवी 'माया' है वही मनुष्यों के परम मोह का कारण है। इस ज्ञान से मनुष्य इन्द्रियों के विषयभोग में लिप्त होकर इन्द्रियों का सेवन करता है और अपने कुटुम्बियों का तथा अपना निरन्तर पालन-पोषण करता है ॥ ५२-५३ ॥

प्रथमं सात्त्विकं ज्ञानं द्वितीयं च तदेव च ।
नैर्गुण्यं च तृतीयं च ज्ञानं च सर्वतः परम् ॥५४॥
चतुर्थं च राजसिकं भक्तस्तन्नाभिवाञ्छति ।
पञ्चमं तामसं ज्ञानं विद्वांस्तन्नाभिवाञ्छति ॥५५॥

अब सात्विक, राजस तथा तामस इन ज्ञानों का वर्णन करते हैं: पहला रात्र (ज्ञान) तथा दूसरा रात्र (ज्ञान) सात्विक कहलाता है। तीसरा रात्र (ज्ञान) सबसे परे अर्थात् त्रिगुणातीत निर्गुण है। चौथा रात्र (ज्ञान) राजसिक है—भक्त उसे नहीं चाहता। पांचवाँ रात्र (ज्ञान) तामसिक है—विद्वान् उसे नहीं चाहता ॥ ५४-५५ ॥

ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं पञ्चरात्रं विदुर्बुधाः ।
पञ्चरात्रं सप्तविधं ज्ञानिनां ज्ञानदं परम् ॥५६॥
ब्राह्मं शैवं च कौमारं वासिष्ठं कापिलं परम् ।
गौतमीयं नारदीयमिदं सप्तविधं स्मृतम् ॥५७॥

इस प्रकार ज्ञान पांच प्रकार का होता है। विद्वानों ने इसे पञ्चरात्र

कहा है। पञ्चरात्र सात प्रकार का होता है। यह ज्ञानियों के लिए परम ज्ञानप्रद है। ब्राह्म, शैव, कौमार, वासिष्ठ, कापिल, गौतमीय तथा नारदीय ये सात प्रकार के पञ्चरात्र कहे गये हैं ॥ ५६-५७ ॥

अथ ग्रन्थप्रशंसा।

षट् पञ्चरात्रं वेदांश्च पुराणानि च सर्वशः।
इतिहासं धर्मशास्त्रं शास्त्रं च सिद्धियोगजम् ॥५८॥
दृष्ट्वा सर्वं समालोक्य ज्ञानं संप्राप्य शंकरात्।
ज्ञानामृतं पञ्चरात्रं चकार नारदो मुनिः ॥५९॥

ग्रन्थ प्रशंसा

हे सुत! छहों पञ्चरात्र वेदों, सभी पुराणों, इतिहास, धर्मशास्त्र, शास्त्र तथा सिद्धियोगज ज्ञान इन सबको देख कर तथा इनका परिशीलन करके एवं श्री शङ्कर भगवान् से ज्ञान प्राप्त करके नारद मुनि ने ज्ञानामृत पञ्चरात्र की रचना की ॥ ५७-५८ ॥

पुण्यं च पापविघ्नघ्नं भक्तिदास्यप्रदं हरेः।
सर्वस्वं वैष्णवानां च प्रियं प्राणाधिकं सुत ॥६०॥
सारभूतं च सर्वेषां वेदानां परमाद्भुतम्।
नारदीयं पञ्चरात्रं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥६१॥
सर्वान्तरात्मा भगवान् ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
परिपूर्णतमः श्रीमान् यथा कृष्णः सुरेषु च ॥६२॥
यथा देवीषु पूज्या सा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
वैष्णवानां च सिद्धानां ज्ञानिनां योगिनां शिवः ॥६३॥
विश्वस्तानामिन्द्रियाणां मनश्च शीघ्रगामिनाम्।
ब्रह्मा च वेदविदुषां पूज्यानां च गणेश्वरः ॥६४॥
सनत्कुमारो भगवान् मुनीनां प्रवरो यथा।
बृहस्पतिबुद्धिमतां सिद्धानां कपिलो यथा ॥६५॥
योगीन्द्राणां सतां शुद्ध ऋषिर्नारायणो यथा।
कवीनां च यथा शुक्रः पण्डितानां बृहस्पतिः ॥६६॥

सरितां च यथा गङ्गा समुद्राणां जलार्णवः ।
वृन्दावनं वनानां च वर्षानां भारतं यथा ॥६७॥
पुष्करं तत्र तीर्थानां पूज्यानां वैष्णवो यथा ।
आत्माकाशो यथात्मानां यथा काशी पुरीषु च ॥६८॥
वृक्षाणां कल्पवृक्षश्च सुरभी कामधेनेषु ।
पुष्पाणां पारिजातश्च पत्राणां तुलसी यथा ॥६९॥
मन्त्राणां कृष्णमन्त्रश्च यथा विद्या धनेष्वपि ।
यथा तेजस्विनां सूर्यो मिष्टानाममृतं यथा ॥७०॥
आधाराणां च स्थूलानां महाविष्णुर्यथा सुत ।
सूक्ष्माणां परमाणुश्च गुरूणां मन्त्रतन्त्रदः ॥७१॥
पुत्रश्च स्नेहपात्राणां नक्षत्राणां यथा शशी ।
यथा घृतं च गव्यानां शस्यानां धान्यमीप्सितम् ॥७२॥
शास्त्राणां च यथा वेदाः साश्रमाणां यथा द्विजः ।
तैजसानां यथा रत्नं मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥७३॥
यथा छन्दसि गायत्री दुर्गा शक्तिमतीष्वपि ।
पतिव्रतासु लक्ष्मीश्च क्षमाशीलासु मेदिनी ॥७४॥
सौभाग्यासु सुन्दरीषु राधा कृष्णप्रियासु च ।
हनुमान् वानराणां च पक्षिणां गरुडो यथा ॥७५॥
वाहनानां बलवतां शंकरस्य यथा वृषः ।
शालग्रामश्च यन्त्राणां पूजासु कृष्णपूजनम् ॥७६॥
एकादशी व्रतानां च तपःस्वनशनं यथा ।
यज्ञानां जपयज्ञश्च सत्यं धर्मेषु पुत्रक ॥७७॥
सुशीलं च गुणानां च पुण्येषु कृष्णकीर्त्तनम् ।
शोभासु सुखदृश्येषु प्रभा तेजःसु सर्वतः ॥७८॥
पोष्टीणामुपकर्त्तॄणां मित्राणां जननी यथा ।

लोकानामपि लोकेशः शेषो नागेषु पूजितः ॥७९॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां विश्वकर्मा च शिल्पिनाम् ।
धर्मिष्ठेषु दयावत्सु देवर्षिषु महत्सु च ॥८०॥
विष्णुभक्तेषु विज्ञेषु यथैव नारदो मुनिः ।
एवं च सर्वशास्त्रेषु पञ्चरात्रं च पूजितम् ॥८१॥

यह पञ्चरात्र पुण्यरूप, पाप और विघ्नों का नाश करने वाला, भगवान् कृष्ण की दास्यभक्ति प्रदान करने वाला, वैष्णवों का सर्वस्व तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय, समस्त वेदों का सारभूत, परम अद्भुत नारदीय पञ्चरात्र सभी पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे सर्वान्तरात्मा, ब्रह्मज्योति, सर्वत्रपरिपूर्ण तथा सनातन श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण सभी देवताओं में श्रेष्ठ हैं; जैसे सभी देवियों में मूलप्रकृति ईश्वरी पूज्य हैं तथा वैष्णवों, सिद्धों, ज्ञानियों और योगियों के लिए भगवान् शिव पूज्य हैं; जैसे विश्वस्त एवं शीघ्रगामी इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ है, ब्रह्मा जी वेद जानने वालों में श्रेष्ठ हैं, पूजनीयों में गणेश जो श्रेष्ठ हैं; जैसे कि मुनियों में भगवान् सनत्कुमार श्रेष्ठ हैं; बुद्धिमानों में जैसे वृहस्पति, सिद्धों में जैसे कपिल, योगीन्द्रों में जैसे शुद्ध ऋषि नारायण, कवियों में जैसे शुक्र, पण्डितों में जैसे वृहस्पति, नदियों में जैसे गङ्गा, समुद्रों में जैसे जलार्णव, वनों में जैसे वृन्दावन, वर्षों में जैसे भारत, तीर्थों में जैसे पुष्कर, पूज्यों में जैसे वैष्णव, आप्तों में जैसे आत्माकाश अर्थात् आत्मज्ञानी, पुरियों में जैसे काशी, वृक्षों में जैसे कल्प वृक्ष, कामधेनुओं में जैसे सुरभि, पुष्पों में जैसे पारिजात, पत्रों में जैसे तुलसी, मन्त्रों में जैसे कृष्णमन्त्र, धनों में जैसे विद्या, तेजस्वियों में जैसे सूर्य, मधुरों में जैसे अमृत, स्थूल आधारों में जैसे महाविष्णु, सूक्ष्मपदार्थों में जैसे परमाणु, गुरुओं में जैसे मन्त्रतन्त्रदाता, स्नेहपात्रों में जैसे पुत्र, नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा, गव्यपदार्थों में जैसे घी, शस्यों में जैसे धान्य अभीष्ट होता है; शास्त्रों में जैसे वेद, आश्रमियों में जैसे द्विज, तैजस पदार्थों में जैसे रत्न, मुक्ता, माणिक्य तथा हीरक; छन्दों में जैसे गायत्री, शक्तिमतियों में जैसे दुर्गा, पतिव्रताओं में जैसे लक्ष्मी, क्षमाशीलों में जैसे पृथिवी, कृष्णप्रिया सौभाग्यवती सुन्दरियों में जैसे राधिका, वानरों में जैसे हनुमान, पक्षियों में जैसे गरुड़, बलवान् वाहनों

में जैसे शङ्कर जी का वृषभ, यन्त्रों में जैसे शालग्राम यन्त्र, पूजा में जैसे कृष्णपूजा, व्रतों में जैसे एकादशी, तपस्याओं में जैसे अनशन हे पुत्र! यज्ञों में जैसे जपयज्ञ, धर्मों में जैसे सत्य, गुणों में जैसे सुशीलता, पुण्यों में जैसे कृष्णकीर्तन, सुख एवं शोभामय तेजों में जैसे सर्वत्र विस्तीर्ण प्रभा, पोषण करने वालों और उपकारकों तथा मित्रों में जैसे माता, नागों में जैसे लोकेश शेषनाग पूजित होता है; शस्त्रों में जैसे सुदर्शन, शिल्पियों में जैसे विश्वकर्मा, और धर्मिष्ठों दयावानों महान् देवर्षियों, और विज्ञ विष्णु भक्तों में जैसे नारदमुनि पूजित हैं वैसे ही समस्त शास्त्रों में पञ्चरात्र पूजित है।

यथा निपीय पीयूषं न स्पृहा चान्यवस्तुषु।
पञ्चरात्रमभिज्ञाय नान्येषु च स्पृहा सताम् ॥८२॥
सर्वार्थज्ञानबीजं चाप्यज्ञानान्धप्रदीपम्।
वेदसारोद्धृतं तत्त्वं सर्वेषां समभीप्सितम् ॥८३॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ग्रन्थप्रशंसनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥

जैसे अमृत का पान कर लेने पर सत्पुरुषों को अन्य वस्तुओं में स्पृहा नहीं रहती वैसे ही पञ्चरात्र का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर अन्य शास्त्रों में स्पृहा नहीं होती। यह समस्त अर्थों के ज्ञान का मूल कारण, अज्ञानरूपी अंधकार के लिए दीपक तथा वेदों का सारतत्व है। यह सभी के लिए अभीष्ट है ॥ ५९-८३ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र में ग्रन्थप्रशंसा नामक
प्रथम अध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे द्वितीयोऽध्यायः

शुक उवाच ।

कुत्र वा पञ्चरात्रं च नारदाय च धीमते ।
प्रदत्तं शम्भुना तात तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

शुकदेव जी बोले : हे पिता जी, भगवान् शिव जी ने बुद्धिमान् नारद जी को यह पञ्चरात्र का ज्ञान कहाँ पर दिया ? इसे आप मुझे बतलाने की कृपा करें ॥ १ ॥

अथ नारदस्य तपोवर्णनम् ।

व्यास उवाच ।

अधीत्य सर्वान् वेदांश्च वेदाङ्गान् पितुरन्तिके ।
जगाम तीर्थं केदारं सुप्रशस्तं च भारते ॥२॥
हिमालयस्य पूर्वे च गङ्गातीरे मनोहरे ।
सिद्धे नारायणक्षेत्रे सर्वेषामभिवाञ्छिते ॥३॥
तपश्चकार स मुनिर्दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।
पित्रोक्तेनैव विधिना सततं संयतः शुचिः ॥४॥
शुश्रावाकाशवाणीं च तपसोऽन्ते महामुनिः ।
स्वल्पाक्षरां च बह्वर्थां परिणामसुखावहाम् ॥५॥

नारद जी के तप का वर्णन

व्यास जी बोले : पिता जी से समस्त वेदों तथा वेदाङ्गों का अध्ययन कर श्री नारद जी केदार तीर्थ को गये जो भारतवर्ष में अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ है। हिमालय के पूर्व मनोहर गङ्गा जी के तट पर सब के अभीष्ट सिद्धनारायणक्षेत्र में नारद जी ने पीता द्वारा बतायी गयी विधि से संयत और पवित्र होकर निरन्तर एक हजार वर्ष तक दिव्य तपस्या की। तपस्या के अन्त में महामुनि नारद ने

स्वल्प अक्षरों और बहुत अर्थवाली तथा परिणाम में सुख देनेवाली आकाशवाणी को सुना ॥ २-५ ॥

अथ नारदं प्रति देववाणी ।

अशरीरिण्युवाच ।

आधारितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ।
अन्तर्वहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्
नान्तर्वहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम् ॥६॥
विरम विरम ब्रह्मन् किं तपस्यासु वत्स
व्रज व्रज द्विज शीघ्रं शंकरं ज्ञानसिन्धुम् ।
लभ लभ हरिभक्तिं वैष्णवोक्तां सुपक्वाम् ।
भवनिगडनिबन्धच्छेदिनीं कर्त्तनीं च ॥७॥

नारद के प्रति देववाणी

दिव्य आकाशवाणी बोली : यदि कृष्ण जी की आराधना कर ली गयी है तो तप से क्या लाभ ? यदि कृष्ण भगवान् की उपासना नहीं की गयी तो तप से क्या लाभ ? बाहर भीतर यदि कृष्ण भगवान् की सत्ता का अनुभव हो गया है तो तप से क्या लाभ ? बाहर भीतर यदि कृष्ण भगवान् की सत्ता का अनुभव नहीं हुआ है तो तप से क्या लाभ ? हे वत्स ! हे ब्रह्मन् ! रुको, रुको । तपस्याओं में क्या धरा है ? जाओ, जाओ, शीघ्र ही ज्ञानसिन्धु शङ्कर भगवान् की शरण में जाओ तथा संसार के बन्धनों की हथकड़ी-बेड़ियों को काटने वाली कर्त्तनी रूपी वैष्णवोक्त परिपक्व हरिभक्ति को प्राप्त करो, प्राप्त करो ॥ ६-७ ॥

इति श्रुत्वा च स मुनिर्विमनाः स्वर्णदीतटे ।
चकारार्थानुसन्धानं न प्रसन्नं च तन्मनः ॥८॥
रुरोद स्वर्णदीतीरे स्मारं स्मारं हरेः पदम् ।
ददर्श पुरतस्तातं ब्रह्माणं सकुमारकम् ॥९॥
ननाम सहसा मूर्ध्ना पितरं तं सहोदरम् ।
पाद्यमर्घ्यं च प्रददौ जवेन सादरं मुनिः ॥१०॥

श्लोकद्वयार्थं प्रपच्छ कुमारं जगतां विधिम् ।
सुखासीनं सुस्थिरं च सस्मितं च गतश्रमम् ॥११॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम् ।
साश्रुनेत्रः पुलकितो भक्त्या प्रणतकन्धरः ॥१२॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तं कातरं विधिः ।
पुत्रेण सार्द्धमालोच्य व्याख्यां कर्त्तुं समारभे ॥१३॥

यह सुन नारद मुनि खिन्न होकर स्वर्ण नदी के तट पर इस वाणी के अर्थ का अनुसंधान करने लगे किन्तु उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ। कृष्ण भगवान् के चरणों का स्मरण करके वह वहीं रोने लगे। उसके बाद उन्होंने सहसा अपने सामने सनत्कुमारसहित अपने पिता ब्रह्मा को उपस्थित देखा। तब उन्होंने पिता तथा अपने भाई को नमस्कार किया और आदरपूर्वक उन्हें शीघ्रता से पाद्य तथा अर्घ्य दिया। जब वे सुस्थिर हो गतश्रम और सस्मित सुखासीन हुये तब उन स्वात्माराम, पूर्णकाम, ज्ञानियों के गुरुओं के गुरु सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी से साश्रुनेत्र, पुलकित, भक्ति से झुके कन्धेवाले नारद मुनि ने दोनों श्लोकों का अर्थ पूछा। नारद की उस कातर वाणी को सुन कर ब्रह्मा जी ने पुत्र के साथ वार्तालाप करते हुये व्याख्या करना प्रारम्भ किया ॥ ८-१३ ॥

अथ दैववाण्यर्थः ।

ब्रह्मोवाच ।

हेवत्स पूर्वश्लोकार्थं निगूढं श्रुतिसम्मतम् ।
वेदार्थं द्विविधं शुद्धं व्याख्यां कुर्वन्ति वैदिकाः ॥१४॥
आराधितो यदि हरिर्येन पुंसा स्वभक्तितः ।
किं तस्य तपसा व्यर्थं तीर्थपूतस्य नारद ॥१५॥
कृष्णमन्त्रोपासकस्य जीवन्मुक्तस्य भारते ।
तपश्चोपहासबीजं तथा चर्वितचर्वणम् ॥१६॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण पुरुषाणां शतं सुत ।
पुनाति स्वस्वभक्तं च बान्धवांश्चावलीलया ॥१७॥

दैवी वाणी का अर्थ

ब्रह्मा जी बोले : हे वत्स ! पूर्व श्लोक का अर्थ निगूढ़ वेदसम्मत है। वैदिक विद्वान् इस शुद्ध वेदार्थ की व्याख्या दो प्रकार से करते हैं। हे नारद ! जिस पुरुष ने अपनी भक्ति से भगवान् कृष्ण की आराधना कर ली है, उस तीर्थपूत पुरुष के तप से क्या लाभ ? वह तो व्यर्थ ही है। भारतवर्ष में कृष्णमन्त्र का उपासक जीवन्मुक्त होता है अतः उसकी तपस्या उसी प्रकार उपहास का कारण है जिस प्रकार चर्वित वस्तु का पुनः चर्वण। हे पुत्र ! मन्त्र के ग्रहणमात्र से ही कृष्ण का भक्त सैकड़ों व्यक्तियों को, अपने भक्त को तथा बन्धु-बान्धवों को अनायास ही पवित्र कर देता है ॥ १४-१७ ॥

नहि धर्म्मो नहि तपः श्रीकृष्णसेवनात् परम् ।
परिश्रमं च विफलं तपसा वैष्णवस्य च ॥१८॥
कृष्णमन्त्रोपासकस्य तीर्थपूतस्य पुत्रक ।
तीर्थस्नानमनशनं वेदेषु च विडम्बनम् ॥१९॥
पूर्वकर्मानुरोधेन यत्पापं वैष्णवस्य च ।
मन्त्रग्रहणमात्रेण नष्टं वह्नौ यथा तृणम् ॥२०॥
पवित्रः परमो वह्निः पवित्रं चामलं जलम् ।
पवित्रं भारतं वर्षं तीर्थं यत्तुलसीदलम् ॥ २१ ॥
पुनाति लीलयैतानि शुद्धः कृष्णपरायणः ।
उपस्पर्शं च भक्तस्याप्येते वाञ्छन्ति सादरम् ॥ २२ ॥
भक्तस्य पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा ।
नहि पूतस्त्रिभुवने श्रीकृष्णसेवकात् परः ॥ २३ ॥
शालग्रामशिलाचक्रे करोति कृष्णपूजनम् ।
तत्पादोदकनैवेद्यं नित्यं भुंक्ते च यः पुमान् ॥ २४ ॥
स वैष्णवो महापूतस्तन्मन्त्रोपासकः शुचिः ।
पुनाति पुंसां शतकं जन्ममात्रात् सबान्धवम् ॥ २५ ॥

वत्स श्लोकस्यैकपादं व्याख्यातं च यथागमम् ।
व्याख्यां करोम्यन्यपादं यथाज्ञानं निशामय ॥ २६ ॥

श्रीकृष्ण की सेवा से बढ़ कर न कोई श्रेष्ठ धर्म है न तप। वैष्णव के लिए तप का परिश्रम व्यर्थ होता है। हे पुत्र ! कृष्णमन्त्रोपासक तीर्थपूत है। उसका तीर्थों में स्नान करना, उपवास करना, वेदाध्ययन में तप करना यह सब विडम्बनामात्र है। पूर्वकर्म के कारण वैष्णव का जो पाप है, वह तो कृष्णमन्त्र के ग्रहणमात्र से वैसे ही नष्ट हो जाता है, जैसे अग्नि में तृण। अग्नि परम पवित्र है, शुद्ध जल परम पवित्र है, भारतवर्ष परम पवित्र है तथा तुलसीदल परम पवित्र तीर्थ है। परन्तु शुद्ध कृष्ण-परायण इन सब को भी अनायास ही पवित्र कर देता है। ये सब आदर-पूर्वक भक्त के स्पर्श की इच्छा करते हैं। भक्त के चरणरज से पृथिवी तत्काल पवित्र हो जाती है। श्रीकृष्ण के सेवक से बढ़ कर तीनों लोकों में कोई श्रेष्ठ नहीं है। जो शालग्राम शिलाचक्र पर कृष्ण की पूजा करता है, उसके पादोदक को जो मनुष्य नित्य नैवेद्य मान कर सेवन करता है, वह वैष्णव अत्यन्त पवित्र होता है। उससे मन्त्र लेने वाला भी पवित्र होता है। हे वत्स ! जन्ममात्र से ही वह बन्धु-बान्धव सहित सैकड़ों व्यक्तियों को पवित्र कर देता है। हे वत्स ! आगम के अनुसार श्लोक के एक चरण की व्याख्या मैंने कर दी। अपने ज्ञान के अनुसार मैं अब दूसरे चरण की व्याख्या कर रहा हूं उसे सुनो ॥ १८-२६ ॥

नाराधितो यदि हरिर्येन पुंसाधमेन च ।
किं तस्य तपसा व्यर्थं निष्फलं तत्परिश्रमः ॥ २७ ॥
व्रतान्येव हि दानानि तपांस्यनशनानि च ।
वेदोपयुक्ता यज्ञाश्च कर्माणि च शुभानि च ॥
न निष्पुनात्यभक्तं च सुराकुम्भमिवापगा ॥ २८ ॥
अभक्तस्पर्शमात्रेण तीर्थानि कम्पितानि च ।
अभक्तभारदुःखेन कम्पिता सा वसुन्धरा ॥ २९ ॥
श्लोकार्धं कथितं वत्स किंचिदेव यथागमम् ।
तस्यार्धस्यापि व्याख्यानं करोमीति निशामय ॥ ३० ॥

जिस अधम पुरुष ने श्रीकृष्ण जी की आराधना नहीं की, उसके तप से क्या लाभ ? वह व्यर्थ है। उसका परिश्रम निष्फल है। व्रत, दान, तप, उपवास, वेदोपयुक्त यज्ञ तथा शुभकर्म अभक्त मनुष्य को उसी प्रकार पवित्र नहीं करते, जिस प्रकार सुरा के कुम्भों को नदियाँ पवित्र नहीं कर सकतीं। अभक्त के स्पर्शमात्र से तीर्थ कम्पित हो जाते हैं। अभक्त के भार के दुःख से यह पृथिवी भी कम्पित हो जाती है। हे वत्स ! श्लोक के आधे भाग की व्याख्या आगम के अनुसार थोड़ी सी ही मैंने की है। उसके द्वितीयार्ध की भी व्याख्या मैं कर रहा हूं, उसे तुम सुनो ॥ २७-३० ॥

वेदसारं कृष्णमतं ममापि नहि कल्पना ।
अन्तर्बहिर्यदि हरिर्येषां पुंसां महात्मनाम् ॥ ३१ ॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत्तपस्तेषां च निष्फलम् ।
स एव विष्णुतुल्यो हि तदंशो भारते मुने ॥ ३२ ॥
तस्य रक्षानिबन्धेन तदभ्यासे सुदर्शनम् ।
ध्यानमात्रेण निष्पापः पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ३३ ॥
दत्त्वा चक्रं च रक्षार्थं न निश्चिन्तो जनार्दनः ।
स्वयं तन्निकटं याति तं द्रष्टुं रक्षणाय च ॥ ३४ ॥
तत्परो हि प्रियो नास्ति कृष्णस्य परमात्मनः ।
न हि भक्तात् परश्चात्मा प्राणाश्चावयवादयः ॥
न लक्ष्मी राधिका वाणी स्वयंभुः शम्भुरेव च ॥ ३५ ॥
भक्तप्राणो हि कृष्णश्च कृष्णप्राणा हि वैष्णवाः ।
ध्यायन्ते वैष्णवाः कृष्णं कृष्णश्च वैष्णवांस्तथा ॥ ३६ ।
व्याख्यातं च त्रिपादं च हे मुनीन्द्र यथागमम् ।
शेषपादस्य व्याख्यानं करोमीति निशामय ॥ ३७ ॥

कृष्णमत वेद का सार है और यह मेरी कल्पना मात्र नहीं है। जिस महात्मा पुरुष के बाहर-भीतर अर्थात् स्वप्न में तथा जागरण में कृष्ण भगवान् निरन्तर उपस्थित हैं, उसका तप निष्फल है क्योंकि, हे मुने !

भारतवर्ष में वही विष्णुतुल्य है, वही विष्णु का अंश है। उसकी रक्षा के लिए उसके निकट सुदर्शन है। वह ध्यानमात्र से तीनों भुवनों को पवित्र कर देता है। रक्षा के लिए चक्र को देकर जनार्दन भगवान् निश्चिन्त नहीं हो जाते। वह उसे देखने तथा उसकी रक्षा के लिए स्वयं भी उसके निकट जाते हैं। उससे भिन्न कृष्ण भगवान् का कोई प्रिय नहीं है। भक्त से भिन्न न आत्मा है, न प्राण है और न अवयव आदि हैं, न लक्ष्मी हैं, न राधिका हैं, न सरस्वती हैं, न ब्रह्मा हैं और न शिव ही हैं। श्रीकृष्ण भक्तप्राणस्वरूप तथा वैष्णव कृष्ण प्राणस्वरूप हैं। वैष्णव कृष्ण का ध्यान करते हैं तथा कृष्ण वैष्णव का ध्यान करते हैं। हे मुनीन्द्र! आगम के अनुसार मैंने तीन पादों की व्याख्या कर दी। अब मैं अन्तिम पाद की व्याख्या कर रहा हूं उसे सुनो ॥३१-३७॥

नान्तर्बहिर्यदि हरिर्येषां पुंसां च नारद।
तेषामपि तपो व्यर्थमन्तर्मलिनचेतसाम् ॥ ३८ ॥
किं तज्ज्ञानेन तपसा व्रतेन नियमेन च।
तीर्थस्नानेन पुण्येनाप्यभक्तमूढचेतसाम् ॥ ३९ ॥
कृष्णभक्तिविहीनेभ्यो द्विजेभ्यः श्वपचो महान्।
शूकरो म्लेच्छनिवहः स्वधर्माचरणेन च ॥ ४० ॥
स्वधर्महीना विप्राश्चाप्यभक्ष्यभक्षणेन च।
नित्यं नित्यं विधर्मेण पतिताः श्वपचाधमाः ॥ ४१ ॥
ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च सन्ततं कृष्णसेवनम्।
नित्यं ते भुञ्जते सन्तस्तन्नैवेद्यं पाददोकम् ॥ ४२ ॥
न दत्त्वा हरये यस्तु यदि भुङ्क्ते द्विजाधमः।
अन्नं विष्ठासमं मूत्रसमं तोयं विदुर्बुधाः ॥ ४३ ॥
भुङ्क्ते स्वभक्ष्यं कोलश्च म्लेच्छश्च श्वपचाधमः।
विप्रो नित्यमभक्ष्यं च भुङ्क्ते च पतितस्ततः ॥ ४४ ॥
श्लोकमेकं च व्याख्यातं यथाज्ञानं च नारद।
सन्निबोध परस्यार्थं व्याख्यानं च यथोचितम् ॥ ४५ ॥

हे नारद ! जिन मनुष्यों के बाहर तथा भीतर कृष्ण भगवान् नहीं हैं, उन मलिन चित्तवालों का भी तप व्यर्थ है। उन मूढचेता अभक्तों के ज्ञान से, तप से, व्रत से, नियम से, तीर्थस्नान से तथा पुण्य से क्या लाभ ? कृष्णभक्ति से विहीन द्विजों से तो चाण्डाल, शूकर तथा म्लेच्छ भी स्वधर्म का पालन करने के कारण महान् हैं। स्वधर्म-विहीन ब्राह्मण अभक्ष्य भक्षण से तथा प्रतिदिन अधर्म का आचरण करने से पतित एवं चाण्डालों से भी अधम हो जाते हैं। ब्राह्मणों का स्वधर्म निरन्तर कृष्ण की सेवा करना है। सन्तजन नित्य उनके चरणोदक तथा नैवेद्य का ही सेवन करते हैं। यदि द्विजाधम श्रीकृष्ण भगवान् को बिना भोग लगाये स्वयं खाता है, तो विद्वज्जन उसके अन्न को विष्ठा के समान तथा जल को मूत्र के समान कहते हैं। सूअर, म्लेच्छ, चाण्डालों में भी अधम लोग अपना भक्ष्य खाते हैं। जो ब्राह्मण नित्य अभक्ष्य का भोजन करता है वह उनसे भी पतित है। हे नारद ! अपने ज्ञान के अनुसार मैंने एक श्लोक की व्याख्या कर दी। अब दूसरे श्लोक का यथोचित व्याख्यान सुनो ॥ ३८-४५ ॥

तपसो विरम ब्रह्मन् व्यर्थं भक्त तपो ध्रुवम् ।
शङ्करश्च गुरुं कृत्वा हरिभक्तिं लभाचिरम् ॥ ४६ ॥
सुपक्वा हरिभक्तिश्च तरणी भवतारणे ।
गुरुरेव परं ब्रह्म कर्णधारस्वरूपकः ॥ ४७ ॥
इत्येवमुक्त्वा त्वां देवी प्रजगाम सरस्वती ।
व्याख्यातस्तदभिप्रायः किं भूयः कथयामि ते ॥ ४८ ॥

हे ब्रह्मन् ! हे भक्त ! तपस्या को छोड़ दो। निश्चित रूप से तप व्यर्थ है। शङ्कर को गुरु बनाकर शीघ्र कृष्ण की भक्ति को प्राप्त करो। संसार के भवसागर से पार होने के लिए हरिभक्ति सुदृढ़ नौका है। गुरु ही परब्रह्म तथा कर्णधारस्वरूप है। तुम्हें यह बात बताकर देवी सरस्वती चली गयीं। उनके अभिप्राय की व्याख्या मैंने तुम्हारे लिए कर दी। अब बताओ तुम्हें क्या बताऊँ ? ॥ ४६-४८ ॥

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा जहास योगिनां गुरुः ।
सनत्कुमारो भगवानुवाच पितरं शुक ॥ ४९ ॥

हे शुक ! ब्रह्मा जी की वाणी को सुन कर योगियों के गुरु भगवान् सनत्कुमार पिता के प्रति हँस पड़े ॥ ४९ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

पूर्वश्लोकस्य व्याख्यानं न बुद्धं शिशुना मया ।
पुत्रं शिष्यमबोधं च युक्तं बोधयितुं पुनः ॥ ५० ॥
आराधितो हरिर्येन तस्य व्यर्थं तपो यदि ।
नाराधितो हरिर्येन तस्य व्यर्थं तपो यदि ॥
तस्यारहितौ तौ द्वौ तपसश्च स्थलं कुतः ॥ ५१ ॥
तपः कुर्वन्ति ये तात त्वं मां बोधय बालकम् ॥ ५२ ॥

सनत्कुमार बोले : मैं बालक हूं। पूर्व श्लोक का व्याख्यान समझ नहीं पाया। अबोध पुत्र तथा शिष्य को पुनः बतलाना उचित है। जिसने हरि की आराधना कर ली है उसका तप व्यर्थ है तथा जिसने हरि की आराधना नहीं की है उसका भी तप व्यर्थ है। इस प्रकार यदि दोनों के लिए ही तप व्यर्थ है तब तप के लिए स्थान कहाँ है? हे तात ! जो तप करते हैं उसका क्या अर्थ है? मुझ बालक को आप इसे बतायें। ॥ ५०-५२ ॥

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा सन्दिग्धो जगतां गुरुः ।
दध्यौ कृष्णपदाम्भोजं परं कल्पतरुं शुक ॥ ५३ ॥
क्षणं संचिन्त्य पादाब्जं प्राप राद्धान्तमीप्सितम् ।
व्याख्यां कर्त्तुं समारेभे विधाता जगतामपि ॥ ५४ ॥

पुत्र के इस वचन को सुन कर जगत के गुरु ब्रह्मा भी संदिग्ध हो गये। हे शुक ! तब उन्होंने परम कल्पतरु श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान किया। एक क्षण चरणकमल का ध्यान करके जगद्विधाता ब्रह्मा ने अभीष्ट सिद्धान्त को प्राप्त कर लिया और साधिकार व्याख्या करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३-५४ ॥

अथ नैवेद्य प्रशंसा ।

ब्रह्मोवाच ।

धन्योऽहं भवतः पुत्रात् ज्ञानिनां च गुरोर्गुरोः ।

विष्णुभक्ताच्च धर्मिष्ठात् सत्पुत्राच्च पिता सुखी ॥ ५५ ॥
धन्योऽसि पण्डितोऽसि त्वं हरिभक्तोऽसि पुत्रक ।
ममापि सफलं जन्म जीवनं च त्वया बुध ॥ ५६ ॥
निबोध पूर्वश्लोकार्थं पुनर्व्याख्यां करोमि च ।
तथापि चेन्न सन्तोषो भवान् व्याख्यां करिष्यति ॥
आशब्दः सम्यगर्थे च राधितः प्राप्तवाचकः ॥ ५७ ॥
संप्राप्तश्च हरिर्येन व्यर्थस्तस्य तपःश्रमः ॥ ५८ ॥
येन सम्यक्प्रकारेण संप्राप्तो हरिरीश्वरः ।
स्वप्ने ज्ञाने न च ज्ञातस्तेषां व्यर्थस्तपःश्रमः ॥ ५९ ॥
श्रीकृष्णविमुखं मूढं द्विजमेव नराधमम् ।
तीर्थं दानं तपः पुण्यं व्रतं नैव पुनाति तम् ॥ ६० ॥
यश्च मूढतमो लोके यश्च भक्तिं परां गतः ।
तावुभौ सुखसेधेते तवः कुर्वन्ति मध्यमाः ॥ ६१ ॥
देवानन्यांश्च भजते हरिं जानाति तत्परः ।
तपः करोति तं प्राप्तुमाकांक्षन्मध्यमो जनः ॥ ६२ ॥
प्राक्तनादनुरागी च गृही संसारसंवृतः ।
तपःकरोति श्रीकृष्णपादपद्मार्थमीप्सितम् ॥ ६३ ॥
परं श्रीकृष्णभजनं ध्यानं तन्नामकीर्तनम् ।
तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं सर्ववाञ्छितम् ॥ ६४ ॥

नैवेद्य प्रशंसा

ब्रह्मा जी बोले : ज्ञानियों के गुरु के भी गुरु तुम्हारे जैसे पुत्र से मैं धन्य हूं। विष्णुभक्त धर्मिष्ठ सत्पुत्र से पिता सुखी होता है। हे पुत्र ! तुम धन्य हो, पण्डित हो और हरिभक्त हो। हे बुद्धिमन् ! तुम्हारा जन्म और मेरा जीवन सफल हो गया। तुम पूर्वश्लोक के अर्थ को सुनो। मैं पुनः व्याख्या कर रहा हूं। तब भी यदि संतोष न हो तो तुम मुझसे कहना। 'आ' शब्द सम्यक् अर्थवाची है। 'राधितः' प्राप्तिवाचक है।

जिसने हरि को प्राप्त कर लिया है उसके तप का श्रम व्यर्थ है। जिसने सम्यक् रूप से कृष्ण भगवान् को प्राप्त कर लिया है अर्थात् स्वप्न में तथा ज्ञान में हरि का जिसे बोध हो चुका है, उसके तप का श्रम व्यर्थ है। श्रीकृष्ण से विमुख, मूढ नराधम द्विज को तो तीर्थ, दान, तप, पुण्य और व्रत भी कभी पवित्र नहीं करते। जो अत्यन्त मूर्ख हैं तथा जो परम भक्ति को प्राप्त कर चुके हैं वे दोनों सुख प्राप्त करते हैं। अतः मध्यम लोग ही तप करते हैं। मध्यम ही अन्य देवों का भजन करते है तथा कृष्ण जी को जानते और उनको प्राप्त करने की इच्छा करते हुये तप करते हैं। पूर्वजन्म के प्रभाव से संसारसंवृत व्यक्ति गृहस्थ होता हुआ भी भक्ति में अनुराग रखने पर श्रीकृष्ण के चरणकमल को प्राप्त करने के लिए अभीष्ट तप करता है। श्रीकृष्ण जी का भजन, परम ध्यान, उनके नाम का कीर्तन, उनके चरणोदक तथा नैवेद्य का भक्षण सभी के लिए अभीष्ट है ॥ ५५-६४ ॥

अतीव मूढो विप्रश्च प्रोक्तनाद्गुरुदोषतः ॥ ६५ ॥
तामसो हि न जानाति-श्रीकृष्णं त्रिगुणात् परम् ॥
अज्ञानादथ वा ज्ञानात् सत्सङ्गादेव प्राक्तनात् ।
भुंक्ते नैवेद्यमीशस्य कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ६६ ॥
स च मुक्तो भवेत् पुत्र मुच्यते सर्वपातकात् ।
स याति दिव्ययानेन गोलोकं लोकमुत्तमम् ॥ ६७ ॥
शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पूर्वाख्यानं पुरातनम् ।
अतीव सुश्रवं चारु मधुरं मुक्तिदं परम् ॥ ६८ ॥

पूर्वजन्म के भारी दोष अथवा गुरुदोष के कारण एक अत्यन्त तामस ब्राह्मण त्रिगुणातीत श्रीकृष्ण भगवान् को नहीं जानता था। अज्ञान से, ज्ञान से, या पूर्वजन्म के सत्सङ्ग से श्रीकृष्ण भगवान् का नैवेद्य उसने खा लिया। हे पुत्र ! तब वह सभी पापों से रहित हो मुक्त होकर दिव्य यान से गोलोक चला गया। हे वत्स ! मैं यह अत्यन्त सुन्दर, मधुर तथा मुक्तिदायक पुरातन कथा कहूंगा उसे तुम सुनो ॥ ६५-६८ ॥

कान्यकुब्जः सुक्षुब्धश्च ब्राह्मणो ग्रामयाजकः ।
देवलो वृषवाहश्च महामूढश्च पातकी ॥ ६९ ॥

स्वप्ने ज्ञाने न जानाति पुण्यं वा कृष्णपूजनम् ।
कृष्णभक्तसहालापदर्शनस्पर्शनं शुभम् ॥ ७० ॥
बभूव प्राक्तनात्तस्य क्षणमात्रं सुदुर्लभम् ।
तेन पुण्येन नैवेद्यं लेभे कृष्णस्य ब्राह्मणः ॥ ७१ ॥
पितुः पुण्येन पुत्रश्च मार्गे पतितमल्पकम् ।
स्वयं भुक्तावशेषं च पतितं वैष्णवाज्जनात् ॥ ७२ ॥
सुस्निग्धाक्षतजीर्णं च रजसा मिश्रितं परम् ।
गच्छ तस्तत्र विप्रस्य पतितं भक्ष्यवस्तु च ॥ ७३ ॥
नैवेद्योपरि कृष्णस्य त्वरायुक्तस्य पुत्रक ।
तद्वस्तु भुक्तं विप्रेण कृष्णनैवेद्यमिश्रितम् ॥ ७४ ॥
सपुत्रेण क्षुधार्त्तेन भुक्त्वा तौ ययतुर्गृहम् ।
विप्रोच्छिष्टं च बुभुजे तस्य पत्नी पतिव्रता ॥ ७५ ॥
परम्परानुसंबन्धात् पवित्रा सा बभूव ह ।
जीवन्मुक्तो ब्राह्मणश्च बभूव च सपुत्रकः ॥ ७६ ॥
कालेन तेन पुण्येन व्याघ्रभुक्तश्च कानने ।
सार्धं च व्याघ्रपुत्राभ्यां गोलोकं प्रययौ द्विजः ॥
पतिव्रता सहमृता भर्त्रा सार्धं जगाम सा ॥ ७७ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
ब्रह्मसनत्कुमारसंवादे नैवेद्यप्रशंसनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥

एक अत्यन्त व्याकुल, ग्रामयाजक, मन्दिर का पुजारी, बैल की सवारी करने वाला, पातकी तथा महामूर्ख कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहता था। स्वप्न में या ज्ञान में भी वह पुण्य तथा कृष्ण जी का पूजन नहीं जानता था। एक बार पूर्वजन्म के प्रभाव से अत्यन्त दुर्लभ कृष्णभक्त के साथ वार्तालाप, दर्शन और स्पर्शन का शुभ अवसर एक क्षण के लिए उसे मिला। उस पुण्य से कृष्ण भगवान् का नैवेद्य उस ब्राह्मण ने खाया।

पिता के पुण्य से पुत्र ने भी मार्ग में किसी वैष्णवजन से गिरा हुआ मुक्तावशेष नैवेद्य पाया जिसमें स्निग्ध अक्षत मिला हुआ था तथा जो पुराना और धूलिमिश्रित हो गया था। शीघ्रता से जाते हुए उस ब्राह्मण की कोई भक्ष्य वस्तु उस कृष्ण के नैवेद्य पर गिर गयी। हे पुत्र! कृष्णनैवेद्य से मिश्रित उस खाद्यवस्तु को उठाकर उस क्षुधार्त ब्राह्मणपुत्र ने खाया और पिता-पुत्र दोनों घर चले गये। विप्र का जूठा उसकी पतिव्रता पत्नी ने खाया। परम्परानुसन्धान से वह भी पवित्र हो गयी। वह ब्राह्मण भी अपने पुत्र के साथ जीवनमुक्त हो गया। कुछ समय बाद उस पुण्य से वन में एक बाघ ने उसे खा डाला। तब व्याघ्र भी ब्राह्मण और उसके पुत्र के साथ गोलोक चला गया। पतिव्रता ब्राह्मण पत्नी भी मर कर अपने पति के ही साथ गयी ॥ ६९-७७ ॥

इति श्रीनारपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के प्रथम रात्रि में
ब्रह्मसनत्कुमारसंवादोक्त नैवेद्यप्रशंसानामक
द्वितीय अध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे तृतीयोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच ।

अहो तात किमाश्चर्यं कृष्णस्य परमात्मनः ।
परं नैवेद्यमाहात्म्यं विस्तराद्वद सांप्रतम् ॥ १ ॥

हे तात् ! कृष्ण भगवान् के नैवेद्य का परम माहात्म्य अहो ! क्या आश्चर्यमय है ? अब आप विस्तार से कहें ॥१॥

अथ श्रीकृष्णमहिम वर्णनम् ।
ब्रह्मोवाच ॥

एकदा ब्राह्मणो हृष्टः प्रफुल्लवदनेक्षण ।
पुत्रेण सार्द्धं प्रययौ बान्धवस्य गृहं मुदा ॥ २ ॥
निमन्त्रितो विवाहेन महासंभारसंभृतः ।
भुक्त्वा पीत्वा च तद्गेहे स्वगृहं प्रययौ मुदा ॥ ३ ॥
सपुत्रो ब्राह्मणो मार्गे क्षुत्पिपासार्दितः सुतः ।
ददर्श चन्द्रभागां तां नदीमतिमनोहराम् ॥ ४ ॥
उवाच पुत्रः पितरं स्नात्वा भोक्ष्यामि चेति भोः ।
क्षुत्पिपासा बलवती वर्धते तात वर्त्मनि ॥ ५ ॥
पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजः स्वयम् ।
भयंकरं वनमिदं समीपे सरितः सुतः ॥ ६ ॥
सुशीघ्रं गच्छ ग्रामान्तं पुरो रम्यसरोवरम् ।
तत्र स्नात्वा च भोक्ष्यावो गच्छ वत्स यथासुखम् ॥ ७ ॥
तातस्य वचनं श्रुत्वा जहास च चुकोप ह ।
पितरं वक्तुमारेभे रक्तपङ्कजलोचनः ॥ ८ ॥

कृष्णमहिमा वर्णन

ब्रह्माजी बोले : एक बार प्रसन्न नेत्र तथा मुखवाला हृष्टपुष्ट ब्राह्मण प्रसन्नता से पुत्र के साथ किसी सम्बन्धी के घर विवाह में निमन्त्रित होकर भारी सामानों के साथ गया। वह उस सम्बन्धी के घर में खा-पीकर प्रसन्नता से अपने घर गया। हे सुत ! पुत्रसहित वह ब्राह्मण मार्ग में भूख-प्यास से व्याकुल हो गया। तभी पुत्र ने सामने चन्द्रभागा नदी को देखा जो अत्यन्त मनोहर थी। पुत्र पिता से बोला : 'हे पिता जी, स्नान करके हम खायेंगे। मार्ग में भूख और प्यास बहुत बढ़ गयी है।' पुत्र के वचन को सुन कर ब्राह्मण स्वयं उससे बोला : 'हे पुत्र ! नदी के समीप यह भयङ्कर वन है। अतः शीघ्र ही गाँव में चलो जहाँ सामने ही रम्य सरोवर है। वहीं स्नान करके हम दोनों खावेंगे तब तक सुखपूर्वक मार्ग पर चलो।' पिता के वचन को सुन कर वह हंसा, क्रुद्ध हुआ और लाल कमल के समान आँखें करके पिता से कहना आरम्भ किया॥ २-८ ॥

शिशुरुवाच।

बालोऽहं दशवर्षीयस्त्वं च वृद्धश्च ज्ञानदः।
पिता ददाति पुत्राय ज्ञानं सर्वत्र भूतले ॥ ९ ॥
अहो दुरत्ययः कालो वृद्धो वदति बालवत्।
कथं प्राक्तनमुल्लंघ्य ब्रूहि तात दुरत्ययम् ॥ १० ॥
प्राक्तनात् सुखदुःखं च रोगं शोकं भयं पितः।
सुमृत्युरपमृत्युर्वा चिरायूरल्पजीवनः ॥ ११ ॥
यत्र काले च यन्मृत्युर्भवनं शुभकर्म च।
न्यूनाधिकं क्षणं नास्ति निषेकः केन वार्यते ॥ १२ ॥
यस्य हस्ते च यन्मृत्युर्विधात्रा लिखितः पुरा।
न च तं खण्डितुं शक्तः स्वयं विष्णुश्च शंकरः ॥ १३ ॥
तात व्यर्थमधीतं ते दुर्बुद्धेर्जन्म निष्फलम्।
सुबुद्धेः सफलं जन्म तत्क्षणं जीवनं सुखम् ॥ १४ ॥
येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः।

मयूराश्चित्रिता येन स मे रक्षां करिष्यति ॥ १५ ॥
येन कृष्णेन विश्वानि चासंख्यानि कृतानि च ।
चराचरं च यो रक्षेत् स मे रक्षां करिष्यति ॥ १६ ॥
घोरारण्ये सुखं शेते यो हि कृष्णेन रक्षितः ।
निर्बन्धोऽपि स्थितो यस्य मरणं तस्य मन्दिरे ॥ १७ ॥
यः शेते नागशय्यासु प्राक्तनान्मङ्गलाहितः ।
यो नागभक्षितो भोगात् स मृतो गरुडान्तिके ॥ १८ ॥
न समुद्रे च म्रियते नाग्निराशौ विषानले ।
न शस्त्रेण न चास्त्रेण आयुर्मर्माणि रक्षति ॥ १९ ॥
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।
तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥ २० ॥
कश्चिद्‌गर्भे च म्रियते कश्चिद्भूमिष्ठमात्रतः ।
कश्चिद्यौवनकाले च कश्चिदेव हि वार्द्धके ॥ २१ ॥
कश्चिच्चिरायू रोगी चाप्यरोगी चापि कश्चन ।
कश्चिद्धनी दरिद्रश्च कश्चिदेव हि कर्मणा ॥ २२ ॥
कश्चित्कल्पान्तजीवी च चिरजीवी च कश्चन ।
प्राक्तनादमरः कश्चिन्निषेको बलवत्तरः ॥ २३ ॥
कश्चिद्याति च राजेन्द्रो दिव्ययानेन कर्मणा ।
कश्चित्कीटपतंगेषु कश्चित्पश्वादियोनिषु ॥ २४ ॥
कश्चिदेव हि संन्यासी कश्चिच्च नरघातकः ।
कश्चिद्‌गजेन्द्रगामी च पशुयायी च कश्चन ॥ २५ ॥
कश्चिद्ददाति रत्नं च कश्चिद्भिक्षां करोति च ।
कश्चित्सूक्ष्मांशुकाधारी कश्चिज्जीर्णपटी जनः ॥ २६ ॥
कश्चिन्नग्नोऽप्यनाहारी सुधाभोजी च कश्चन ।
कश्चिच्च सुन्दरः श्रीमान् गलत्कुष्ठी च कश्चन ॥ २७ ॥

कश्चित्कुब्जश्चाङ्गहीनो बधिरः काण एव च ।
कश्चिद्दीर्घो मध्यमश्च कश्चित्खञ्जश्च वामनः ॥ २८ ॥
कश्चित्कृष्णश्च गौरश्च श्यामलश्च स्वकर्मणा ।
कश्चिद्भक्त्या च प्राप्नोति कृष्णदास्यं सुदुर्लभम् ॥ २९ ॥
ब्रह्मणः परमं स्थानं जन्ममृत्युजराहरम् ।
कश्चित् प्राप्नोति परमं ब्रह्मलोकं निरामयम् ॥ ३० ॥
कश्चित् स्वर्गमिन्द्रपदं शिवलोकं स्वकर्मणा ।
कश्चित् स्वर्गमिन्द्रलोकं यमलोकं च कश्चन ॥ ३१ ॥
कश्चिच्च नरके घोरे प्राप्नोति क्लेशमुल्बणम् ।
ताडितो यमदूतेन क्षुधितस्तृषितः सदा ॥ ३२ ॥
भुङ्क्ते विण्मूत्रकीटं तन्मलं श्लेष्मां गरं वसाम् ।
क्षुरधारे तप्ततैले वह्नौ शीते जले स्थले ॥ ३३ ॥
प्राप्नोति दारुणं दुःखमाकल्पं पातकी पितः ।
ततो भोगावशेषे च लब्ध्वा जन्म स्वकर्मणा ॥ ३४ ॥
व्याधियुक्तः प्रमुच्येत तथा चेदीश्वरेच्छया ।
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ ३५ ॥
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति जन्तुषु ।
यस्याज्ञया सृष्टिविधौ मूर्मोऽनन्तं दधाति च ॥ ३६ ॥
स च सर्वं च ब्रह्माण्डं लीलया चेश्वरेच्छया ।
यस्याज्ञया महाभीता सर्वाधारा वसुधरा ॥ ३७ ॥
धरा सा सर्वसस्याद्या रत्नवांश्च हिमालयः ।
स्वयं विधाता भगवान् ध्यायते यमहर्निशम् ॥ ३८ ॥
यं ध्यायते च भजते स्वयं मृत्युञ्जयः शिवः ।
सहस्रवक्त्रो यं स्तौति ध्यायते भजते सदा ॥ ३९ ॥
स्वयं सरस्वती स्तौति यमीश्वरमभीप्सितम् ।

सेवते पादपद्मं च स्वयं पद्मालया पितः ॥ ४० ॥
माया भीता च यं स्तौति दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।
स्तुवन्ति वेदाः सततं सावित्री वेदमातृका ॥ ४१ ॥
सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च योगीन्द्राः सनकादयः ।
राजेन्द्राश्चासुरेन्द्राश्च सुरेन्द्रा मनवस्तथा ॥ ४२ ॥
ध्यायन्ते च भजन्ते च भक्ताः सन्तो हि सन्ततम् ।
केचिद्वदन्ति यं ब्रह्मं भगवन्तं सनातनम् ॥ ४३ ॥
केचित् प्रधानं सर्वाद्यं केचिच्च ज्योतिरीश्वरम् ।
केचिच्च सर्वरूपं च सर्वकारणकारणम् ॥ ४४ ॥
केचित् स्वेच्छामयं रूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।
केचित् सुरुचिरं श्यामसुन्दरं मनोहरम् ॥ ४५ ॥
सानन्दं परमानन्दं गोविन्दं नन्दनन्दनम् ।
भज तात परं ब्रह्म स्मर शश्वत सुरेश्वरम् ॥ ४६ ॥

बालक बोला : मैं दश वर्ष का बालक हूं। आप वृद्ध हैं और ज्ञान देने वाले हैं। संसार में सर्वत्र पिता पुत्र के लिए ज्ञान देता है। अहो! समय कितना दुर्जय है। वृद्ध एक बालक के समान बोल रहा है। हे तात! प्राक्तन कर्म का उल्लंघन कैसे हो सकता है? इसे आप कहें। हे पिता जी! पूर्वजन्म के कर्म से सुख, दुःख, रोग, शोक, भय, उत्तम मृत्यु, अपमृत्यु, चिरायु और अल्पायु मनुष्य पाता है। जिस समय जन्म, मृत्यु, शुभकर्म होना है उसमें एक क्षण की भी न्यूनाधिकता नहीं हो सकती। गर्भाधान को कौन रोक सकता है? जिसके हाथ से जिसकी मृत्यु विधाता ने पहले लिखी है, उसे विष्णु और शिव भी काटने में समर्थ नहीं हो सकते। हे तात! तुम्हारा पढ़ना-लिखना व्यर्थ है। दुर्बुद्धि का जन्म निष्फल और सुबुद्धि का जन्म सफल तथा उसका जीवन सुखमय है। जिसने हंसों को श्वेत बनाया है, तोतों को हरा बनाया है तथा मोरों को चित्रविचित्र बनाया है वह मेरी रक्षा करेगा। जिस कृष्ण भगवान् ने असंख्य विश्व को बनाया है तथा जो चराचर जगत् की भी रक्षा करता है वही हमारी रक्षा

करेगा। घोर वन में भी वह सुख से सोता है, जिसकी कृष्ण भगवान् रक्षा करते हैं। जिसका मरण निश्चित है, वह तो घर में बाधारहित रहता हुआ भी मृत्यु को प्राप्त करता है। पूर्वजन्म के मङ्गलमय प्रभाव से जो साँपों की शय्या पर सोता है और साँप के काटने पर भी नहीं मरता वही दुर्भाग्य के कारण गरुड के समीप रह कर भी मर जाता है (गरुड़ पक्षी साँप का शत्रु होता है)। मनुष्य न समुद्र में मरता है, न अग्नि की राशि में मरता है, न विष की अग्नि में मरता है, न शस्त्र से मरता है और न अस्त्र से मरता है। आयु मर्मों की रक्षा करता है। सैकड़ों बाणों से बिंध जाने पर भी जिसका समय नहीं आया है वह नहीं मरता। जिसका समय आ गया है वह तृण के अग्रभाग के स्पर्श से भी मर जाता है। कोई गर्भ में मर जाता है, कोई पैदा होते ही मर जाता है, कोई युवावस्था में मर जाता है और कोई वृद्धावस्था में मरता है। पूर्वजन्म के कर्म से कोई चिरायु होता है, कोई रोगी होता है, कोई स्वस्थ भी होता है। कोई धनी होता है तथा कोई दरिद्र होता है। कोई कल्पान्तजीवी होता है, कोई चिरजीवी होता है, और कोई पूर्वजन्म के प्रभाव से अमर होता है। निश्चित रूप से भाग्य ही बलवान् होता है। कोई अपने पूर्वजन्म के कर्म से राजेन्द्र होकर दिव्य यान से जाता है। कोई कीड़े-मकोड़ों की योनियों में तथा कोई पशु आदि की योनियों में जाता है। कोई सन्यासी होता है, कोई नर घातक होता है। कोई गजेन्द्रों पर चलने वाला तथा कोई पशुओं द्वारा खींचे जानेवाले वाहनों पर चलता है। कोई रत्नों का दान करता है तो कोई भिक्षा माँगता है। कोई उत्तम पतले वस्त्र पहनता है तो कोई फटे-पुराने वस्त्र पहनता है। कोई नंगा रह कर भी भोजन नहीं पाता, कोई अमृतभोजन करता है। कोई सुन्दर श्रीमान् होता है कोई गलितकुष्ठी होता है। कोई कुबड़ा होता है कोई अङ्गहीन, बहरा और काना होता है। कोई लम्बा, कोई मध्यम, कोई लंगड़ा तथा कोई बामन होता है। अपने कर्म से कोई काला, कोई गोरा तथा कोई श्याम होता है। कोई भक्ति के कारण अत्यन्त दुर्लभ कृष्ण भगवान् की दास्यता को प्राप्त करता है। कोई ब्रह्मा के परम स्थान को प्राप्त होता है जो जन्म-मृत्यु तथा वृद्धावस्था को नष्ट करने वाला है। कोई निरामय परम ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। कोई स्वर्ग, कोई इन्द्रलोक तथा कोई यमलोक को प्राप्त करता है। कोई घोर नरक में यमदूतों से

ताडित होता हुआ सदा भूखा-प्यासा विष्ठा, मूत्र, कीट तथा उसका मल, श्लेष्मा, विष और चर्बी खाता है। हे पिता जी, कोई पापी छुरे की धार से, गर्म तेल में, आग में, शीत में, जल में तथा स्थल में कल्पपर्यन्त दारुण दुःख प्राप्त करता है। इसके बाद भोगशेष रहने पर अपने कर्म से व्याधियुक्त जन्म लेकर भी भगवदिच्छा से मुक्त होता है। जिसके भय से यह हवा बहती है, जिसके भय से सूर्य तपता है, जिसके भय से इन्द्र वर्षा करता है, अग्नि जलाता है, प्राणियों में मृत्यु विचरता है; जिसकी आज्ञा से कूर्म अनन्त ब्रह्माण्ड को अनायास ही धारण करता है; जिसकी आज्ञा से सबकी आधारभूत और समस्त अन्नों से भरी-पूरी वसुन्धरा भयभीत होकर सबको धारण करती है तथा हिमालय रत्नालय है; जिसकी स्वयं भगवान् ब्रह्मा दिन-रात उपासना करते हैं; जिसका मृत्युञ्जय शिव ध्यान तथा भजन करते हैं; जिसको सहस्रवक्त्र स्तुति, ध्यान तथा भजन करता है; स्वयं सरस्वती जिस अभीष्ट ईश्वर की स्तुति करती हैं; हे पिता जिसके चरणकमल की स्वयं लक्ष्मी जी सेवा करती हैं; माया तथा दुर्गतिनाशिनी दुर्गा जी भयभीत होकर जिसकी स्तुति करती हैं; वेद तथा वेदमातृका सावित्री जिसकी सदा स्तुति करते हैं; सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र तथा योगीन्द्र सनक आदि, राजेन्द्र, असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और मनु भक्त होते हुए निरन्तर जिसका ध्यान तथा भजन करते हैं; जिसे कोई ब्रह्म कहते हैं, कोई सनातन भगवान् कहते हैं, कोई प्रधान, कोई सर्वाद्य ज्योति तथा ईश्वर कहते हैं और कोई सर्वरूप तथा सर्वकारण कहते हैं; कोई उसे स्वेच्छामय रूप, कोई भक्तों पर कृपा कर शरीर धारण करने वाले कहते हैं; कोई सुन्दर श्यामसुन्दर अत्यन्त मनोहर सानन्द परमानन्द गोविन्द तथा नन्दनन्दन कहते हैं, हे तात ! उन्हीं परमब्रह्म का भजन करिये, उन्हीं शाश्वत सुरेश्वर का स्मरण कीजिये॥ ६-४६॥

इत्येवमुक्त्वा पितरं चन्द्रभागानदीजले।
स्नात्वा पपौ जलं स्वच्छं बुभुजे मिष्टमोदकम्॥ ४७॥
पिता तद्वचनं श्रुत्वा सानन्दाश्रु मुमोच सः।
चुचुम्ब गण्डं पुत्रस्य समाश्लेषणपूर्वकम्॥ ४८॥

पिता स्नात्वा समारेभे सन्ध्यां कर्त्तुं च पूजनम् ।
सुस्नातं पितरं दृष्ट्वा पुत्रः स प्रययौ वनम् ॥ ४९ ॥
पत्रं भोजनपात्रार्थमाहर्त्तुं चञ्चलः शिशुः ।
चकार चयनं तूर्णं प्रशस्तं पत्रपञ्चकम् ॥ ५० ॥
सुन्दरं कुसुमं वन्यं पूजनार्थं पितुस्तथा ।
ददर्श पुरतो बालः सुपक्वं वदरीफलम् ॥ ५१ ॥
चकार चयनं तानि फलानि शोभनानि च ।
धात्रीफलं सुपक्वं च पक्वमाम्रातकं तथा ॥ ५२ ॥
सुपक्वं च कदम्बं च चकार चयनं पुनः ।
सुपक्वं सुन्दरं रम्यं दाडिमं श्रीफलं तथा ॥ ५३ ॥
रम्यं जम्बुफलं चैव खर्जूरं सुमनोहरम् ।
करञ्जकं च जाम्बीरं सुन्दरं चिकुरं तथा ॥ ५४ ॥
तत्सर्वं चयनं कृत्वा ददर्श पुरतः सरः ।
सुनिर्मलं जलं स्वच्छं श्वेतपद्मं मनोहरम् ॥ ५५ ॥
रुचिरं रक्तकह्लारं प्रस्फुटं च जलान्तिके ।
विहाय तानि सर्वाणि सरःशिरसि सुस्थले ॥ ५६ ॥
पपौ सरःस्वच्छतोयं जहार पद्ममुल्वणम् ।
किञ्चित्सुरक्तकह्लारं पक्वं पद्मफलं तथा ॥ ५७ ॥
सर्वमाहरणं कृत्वा पितरं गन्तुमुद्यतः ।
प्रफुल्लवदनः श्रीमान् सस्मितो द्विजबालकः ॥ ५८ ॥
प्रफुल्लचम्पकतरुं ददर्श पुरतः शिशुः ।
मल्लिकामालतीकुन्दयूथिकामाधवीलताः ॥ ५९ ॥
चकार चयनं स्फीतः पुष्पाणि सुन्दराणि च ।
पुष्पेण फलपत्रेण तस्य भारो बभूव ह ॥ ६० ॥
बालो वोढुमशक्तश्च ययौ गमनमन्थरः ।

न फलं बुभुजे सोऽपि धर्माधर्मभयेन च ॥ ६१ ॥
पुरो ददर्श स शिशुर्घोरं व्याघ्रालयं भिया ।
तात तातेति शब्दं च चकार ह पुनः पुनः ॥ ६२ ॥
न ददर्श च तातं च शार्दूलं च ददर्श सः ।
भिया सस्मार गोविन्दपादारविन्दमीप्सितम् ॥ ६३ ॥
हरिं नरहरिं रामं कृष्णं विष्णुं च माधवम् ।
दामोदरं हृषीकेशं मुकुन्दं मधुसूदनम् ॥ ६४ ॥
एतानि दश नामानि जपन् विप्रशिशुर्भिया ।
प्रययौ पुरतः शीघ्रं पुनरेव सरोवरम् ॥ ६५ ॥
सरसो निर्मले तोये पुष्पाणि च फलानि च ।
ददौ भक्त्या भगवते कृष्णाय परमात्मने ॥ ६६ ॥
श्रीकृष्णपूजां कुर्वन्तं ध्यायमानं पदाम्बुजम् ।
निकटं न ययौ व्याघ्रो दृष्ट्वा बालं च दूरतः ॥ ६७ ॥
व्याघ्रं ददर्श बालश्च प्रकटास्यं भयानकम् ।
विकृताकारदशनं विकटाक्षं महोदरम् ॥ ६८ ॥
दृष्ट्वा च दुरतो व्याघ्रमुवास सरसस्तटे ।
दध्यौ कृष्णपदाम्भोजं जन्ममृत्युजराहरम् ॥ ६९ ॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् ।
विशुद्धं च तथाज्ञाख्यं षट्चक्रं च विभाव्य च ॥ ७० ॥
कुण्डलिन्या स्वशक्त्या च सहितं परमेश्वरम् ।
सहस्रदलपद्मस्थं हृदये स्वात्मनः प्रभुम् ॥ ७१ ॥
ददर्श द्विभुजं कृष्णं पीतकौशेयवाससम् ।
सस्मितं सुन्दरं शुद्धं नवीनजलदप्रभम् ॥ ७२ ॥
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यलीलाधाममनोहरम् ।
कोटिपार्वणपूर्णेन्दुप्रभाजुष्टं च सुन्दरम् ॥ ७३ ॥

सुखदृश्यं सुरूपं च भक्तानुग्रहकारकम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ७४ ॥
प्रफुल्लपद्मनयनं राधावक्षःस्थलस्थितम् ।
मालतीमाल्यसम्बद्धचूडाचारुसुशोभनम् ॥ ७५ ॥
धृतरत्नं रत्नपद्मं दक्षिणेन करेण च ।
वामेन मणिनिर्माणदीप्तदर्पणमुज्वलम् ॥ ७६ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ।
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण चारुवक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥ ७७ ॥
मुक्ताराजिविनिन्दैकदन्तराजिविराजितम् ।
आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ॥ ७८ ॥
वेदाननसरस्वत्या स्तुतं ब्रह्मेशवन्दितम् ।
पद्मापद्मालयामायासंसेवितपदाम्बुजम् ॥ ७९ ॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ।
निर्लिप्तं साक्षिभूतं च भगवन्तं सनातनम् ॥ ८० ॥
सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वकारणकारणम् ।
पुरुषं परमात्मैकं परेशं प्रकृतेः परम् ॥ ८१ ॥
एवम्भूतं विभुं दृष्ट्वा मनसा प्रणनाम तम् ।
तुष्टाव परया भक्त्या तमीशं सम्पुटाञ्जलिः ॥ ८२ ॥

इस प्रकार पिता से कह कर उस बालक ने चन्द्रभागा नदी के जल में स्नान करके मीठे मोदक खाये तथा स्वच्छ जल पीया। पिता ने उसके वचन को सुन कर आनन्द के आँसू बहाये और आलिङ्गनपूर्वक पुत्र के गाल को चूमा। पिता ने स्नान करके सन्ध्या-पूजन करना आरम्भ किया। स्नान किये हुए पिता को देख कर वह पुत्र भोजनपात्र के लिए पत्ते लाने वन में गया। उस चञ्चल बालक ने शीघ्र ही पांच चौड़े पत्ते तथा पिता की पूजा के लिए वन के सुन्दर फूल एकत्र कर लिये। इसके बाद बालक ने सामने पके हुए बेर के फल देखे। उन उत्तम

फलों को भी उसने एकत्र कर लिया। पके आँवले, पके आमड़े, पके कदम्ब भी एकत्र किये। पके सुन्दर अनार, बेल तथा उत्तम जामुन, मनोहर खजूर, करंज, नींबू तथा सुन्दर चिकुर यह सब उसने एकत्र करके सामने सरोवर को देखा। उसके स्वच्छ सुनिर्मल जल में मनोहर श्वेतपद्म, और सुन्दर रक्तकमल खिले हुये थे। उसने एकत्र की हुई अपने पास की सब वस्तुओं को उस सरोवर के तट पर एक स्वच्छ स्थान पर रख कर सरोवर के स्वच्छ जल का पान किया। इसके बाद उसने विकसित रक्तकमलों को तोड़ा। सब कुछ लेकर प्रसन्नमुख सस्मित वह ब्राह्मण बालक पिता के पास जाने के लिए उद्यत हुआ। आगे बढ़ने पर उसने सामने फूले हुए चम्पा के वृक्ष को तथा मल्लिका, मालती, कुन्द, जूही तथा माधवीलता को देखा। उत्साहित होकर उसने सुन्दर फूलों का संग्रह किया। पुष्पों, फलों तथा पत्तों से उसका बोझ भारी हो जाने से उसे ढोने में असमर्थ होता हुआ धीरे-धीरे चला। धर्म और अधर्म के भय से उसने एक भी फल खाया नहीं। तभी सामने मार्ग में उसने घोर व्याघ्र की माँद को देखा। तब भय से वह बार-बार 'पिता जी, पिता जी' पुकारने लगा। फिर भी पिता को न देख और समने व्याघ्र को देख कर भयसे उसने अभीष्ट गोविन्द के चरणकमल का स्मरण किया। हरि, नरहरि, राम, कृष्ण, विष्णु, माधव, दामोदर, हृषीकेश, मुकुन्द तथा मधुसूदन इन दश नामों का जप करता हुआ वह ब्राह्मण बालक भय से पुनः पीछे सरोवर पर लौट गया और निर्मल जल में परमात्मा भगवान् कृष्ण को भक्तिभाव से पुष्पों और फलों को प्रदान किया। श्री कृष्ण की इस प्रकार पूजा और चरणकमल का ध्यान करते हुए बालक को दूर से देख कर वह व्याघ्र उसके निकट नहीं गया। बालक ने भी भयंकर मुख फैलाये हुए विकृत आकार वाले, विकट आँखों वाले और बड़े पेट वाले उस व्याघ्र को देखा। दूर स्थित व्याघ्र को देख कर बालक सरोवर के तट पर ही रुक कर वहाँ जरा-मृत्यु-नाशक कृष्ण भगवान् के चरणकमल का ध्यान करने लगा। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा—इन छः चक्रों को भावना करके अपनी कुण्डलिनी शक्ति के साथ अपने हृदय के सहस्रदल कमल में स्थित प्रभु पीतकौशेयधारी द्विभुज, सस्मित, सुन्दर, नवीन मेघ के समान प्रभा वाले, करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य के मनोहर लीलाधाम, करोड़ों

पूर्णिमा के चन्द्रमाओं के समान प्रभा से युक्त, सुन्दर सुखस्वरूप, भक्तानुग्रहकारक, चन्दनचर्चितसर्वाङ्ग, रत्नभूषणभूषित, प्रफुल्लपद्मनयन, राधावक्ष:स्थलस्थित, मालतीमाला से सम्बद्ध चूडाचारुसुशोभमन, रत्नधारी, दाहिने हाथ में रत्नकमल धारण किये हुए तथा बाएँ हाथ में मणिनिर्माण से दीप्त उज्ज्वल दर्पण को लिए हुए, दो रत्नकुण्डलों से शोभित गण्डस्थल, मोतियों की पंक्तियों को भी विनिन्दित करने वाली रत्नपंक्तियों से सुशोभित, वेदाननसरस्वती से स्तुत, ब्रह्मा और शिव से स्तुत, पद्मा, पद्मालया तथा माया से सेवित चरणकमलवाले, परिपूर्णतम ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, निर्लिप्त, साक्षीभूत, भगवान्, सनातन, सर्वेश, सर्वरूप, सर्वकारणों के कारण, पुरुष, एकमात्र परमात्मा, परेश, प्रकृति से परे भगवान् कृष्ण को देख कर उन्हें उसने नमस्कार किया तथा हाथ जोड़ कर परम भक्ति से उन ईश की स्तुति की ॥ ४७-८२ ॥

श्रीसुभद्र उवाच ।

हे नाथ दर्शनं देहि मां भक्तं शरणागतम् ।
श्रीद श्रीश श्रीनिवास श्रीनिधे श्रीनिकेतन ॥ ८३ ॥
श्रिया सेवितपादाब्ज श्रीसमुत्पत्तिकारण ।
वेदानिर्वचनीयेश निरीह निर्गुणाधिप ॥ ८४ ॥
सर्वाद्य सर्वनिलय सर्वबीज सनातन ।
शान्त सरस्वतीकान्त नितान्त सर्वकर्मसु ॥ ८५ ॥
सर्वाधार निराधार कामपूर परात्पर ।
दुष्पारासारसंसारकर्णधार नमोऽस्तु ते ॥ ८६ ॥

श्री सुभद्र बोले : हे नाथ ! मुझ शरणागत को दर्शन दीजिये। हे श्रीद, श्रीश, श्रीनिवास, श्रीनिधे, श्रीनिकेतन, श्रीसेवितपादाब्ज, श्रीसमुत्पत्तिकारण, वेदानिर्वचनीयेश; निरीह, निर्गुणाधिप, सर्वाद्य, सर्वनिलय, सर्वबीज, सनातन, शान्त, सरस्वतीकान्त, सब कार्यों में असाधारण, सर्वाधार, कामपूर, परात्पर तथा दुष्पारासार-संसारकर्णधार आपको नमस्कार हो ॥ ८३-८६ ॥

इत्येवमुक्त्वा स शिशू रुरोद च पुनः पुनः ।

ध्यानेन तत्पदाम्भोजं शरणं च चकार सः ॥ ८७ ॥

यह कहकर वह बालक बार-बार रोने लगा और उसने ध्यान से उनके (श्रीकृष्ण के) चरणकमल की शरण लिया ॥ ८७ ॥

इति विप्रकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ८८ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे ब्रह्मसनत्कुमार
संवादे श्रीकृष्णमहिमोपालम्भनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ब्राह्मणकृत इस स्तोत्र को जो मनुष्य तीनों सन्ध्याओं में पढ़ता है वह सब पापों से युक्त होकर विष्णुलोक को चला जाता है ॥ ८८ ॥

श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में प्रथम रात्रि में ब्रह्म-
सनत्कुमार संवाद में श्रीकृष्णमहिमोपालम्भ
नामक तृतीय अध्याय समाप्त ।

प्रथमैक रात्रे चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच ।

ब्राह्मणस्य स्तवं श्रुत्वा परितुष्टो जनार्द्दनः ।
कृपां चकार भगवान् भक्तेशो भक्तवत्सलः ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी बोले : ब्राह्मण की स्तुति को सुन कर जनार्दन सन्तुष्ट हुये और उन भक्तेश, भक्तवत्सल भगवान् ने कृपा की ॥ १ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवान् नन्दनन्दनः ।
नारायणर्षिः कृपया चाजगाम सरोवरम् ॥ २ ॥
ददर्श ब्राह्मणवटुं तमेव मुनिपुङ्गवम् ।
तेजसा सुखदृश्येन सुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ३ ॥
पीतवस्त्रपरीधानं नवीनजलदप्रभम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम् ॥ ४ ॥
प्रसन्नवदनं शुद्धं सस्मितं सर्वपूजितम् ।
विभान्तं च जपन्तं च शुद्धस्फटिकमालया ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा ननाम सहसा शिरसा विप्रपुङ्गवः ।
शुभाशिषं ददौ तस्मै दत्वा शिरसि हस्तकम् ॥ ६ ॥
तमुवाच मुनिश्रेष्ठः कृपया दीनवत्सलः ।
हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥ ७ ॥

इसी बीच, नन्दनन्दन नारायण महर्षि कृपाकर उस सरोवर पर आ गये। ब्राह्मण पुत्र ने उन मुनिपुङ्गव को देखा जो सुखमय तेज से सुन्दर, सुमनोहर, पीतवस्त्रधारी, नवीन मेघ के समान प्रभाव वाले, सारे शरीर में चन्दन लगाये हुये, वनमाला से विभूषित, प्रसन्नवदन, शुद्ध हास्ययुक्त, सर्वपूजित, प्रकाश फैलाते हुये शुद्ध स्फटिक की माला

से जप कर रहे थे। उन्हें देख कर उस विप्रश्रेष्ठ ने शिर झुकाकर नमस्कार किया। भगवान् ने भी उसके शिर पर हाथ रख कर उसे शुभ आशीर्वाद दिया और वे दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ उससे परिणाम में सुखदायी, नीतिसारयुक्त तथ्यपूर्ण तथा हितकर वाणी में बोले ॥ २-७ ॥

श्रीनारायणर्षिरुवाच ।

अये विप्र महाभाग सफलं जीवनं तव ।
यस्मिन् कुले च जातोऽसि तद्धन्यं सुप्रशंसितम् ॥ ८ ॥
भज त्वं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ।
ध्रुवं यास्यसि गोलोकं परमानन्दमीप्सितम् ॥ ९ ॥
तत्कुलं पावनं धन्यं यशस्यं च निरापदम् ।
यस्मिन् स्वयं भवान् जातः पुण्यः कृष्णपरायणः ॥ १० ॥
नैवेद्यं पतितं मार्गे जीर्णं श्वापदभक्षितम् ।
भुक्त्वा तवैषा बुद्धिश्च कृष्णभक्तिर्बभूव च ॥ ११ ॥
कृष्णनैवेद्यमाहात्म्यं को वत्स कथितुं क्षमः ।
यद्वक्तुं न हि शक्ताश्च वेदाश्चत्वार एव च ॥ १२ ॥
वरं वृणुष्व भद्रं ते सुभद्र द्विजपुङ्गव ।
सर्वं दातुमहं शक्तो यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ १३ ॥

श्रीनारायण ऋषि बोले : हे महाभाग विप्र ! तुम्हारा जीवन सफल है। जिस कुल में तुमने जन्म लिया है वह प्रशंसित तथा धन्य हो गया। तुम सानन्द परमानन्द नन्दनन्दन (श्रीकृष्ण) का भजन करो। इससे तुम निश्चित रूप से परमानन्दस्वरूप गोलोक को प्राप्त होगे। वह कुल यशस्वी, निरापद, पावन और धन्य है जिसमें तुम्हारे जैसे पुण्यस्वरूप कृष्णभक्तिपरायण का जन्म हुआ है। मार्ग में गिरे हुये श्वानभक्षित जीर्ण नैवेद्य के भक्षण के कारण ही तुम्हारी यह कृष्णपरायण बुद्धि हुई है। हे वत्स ! कृष्ण भगवान के नैवेद्य के माहात्म्य को कहने में कौन समर्थ है ? उसे कहने में चारों वेद भी समर्थ नहीं हैं। हे द्विजपुङ्गव सुभद्र ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर मांगो। मैं तुम्हें सभी मनोवाञ्छित दे सकता हूं ॥ ८-१३ ॥

नारायणवचःश्रुत्वा तमुवाच शिशुः स्वयम् ।
पुनः कम्पितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः पुटाञ्जलिः ॥ १४ ॥

श्रीनारायण के वचन को सुनकर काँपते हुये और अश्रुपूरित नेत्र से वह बालक हाथ जोड़कर उनसे बोला ॥ १४ ॥

सुभद्र उवाच ।

देहि मे कृष्णपादाब्जे दृढ़ां भक्तिं सुदुर्लभाम् ।
तद्दास्यं तत्पदे वासं जरामृत्युहरं परम् ॥ १५ ॥
अन्यं वरं गृह्णामि न मे किंचित् प्रयोजनम् ।
नाहं वरार्थी कामी च रागी नेतनभुग्यथा ॥ १६ ॥

सुभद्र बोला : आप मुझे श्रीकृष्ण के चरणकमलों में दृढ़ और अत्यन्त दुर्लभ भक्ति दीजिये। उनके उन चरणों के प्रति परम दास्य प्रदान कीजिये जो जरा-मृत्यु का हरण करने वाले हैं। अन्य वर मैं ग्रहण नहीं करूँगा, क्योंकि उससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। वेतन-भोगियों की भाँति मैं वरार्थी, कामी और रागी नहीं हूं ॥ १५-१६ ॥

नारायणर्षिरुवाच ।

श्रीकृष्णे यस्य भक्तिश्च तस्यात्र किं सुदुर्लभम् ।
अणिमादिकद्वात्रिंशत् सिद्धिः करतले परा ॥ १७ ॥
निर्विकल्पो ददात्यस्य नैव गृह्णाति वैष्णवः ।
अनिमित्तां हरेर्भक्तिं भक्ता वाञ्छन्ति सन्ततम् ॥ १८ ॥
गृहाण मन्त्रं कृष्णस्य परं कल्पतरुं वरम् ।
भक्तिदं दास्यदं शुद्धं कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥ १९ ॥

श्रीनारायण महर्षि बोले : श्रीकृष्ण में जिसकी भक्ति है उसके लिये इस संसार में अत्यन्त दुर्लभ क्या वस्तु है? अणिमादि परमदुर्लभ बत्तीस सिद्धियाँ उसके हाथ में हो जाती हैं। वैष्णव को देने पर वह निर्विकल्प समाधि तक नहीं चाहता क्योंकि भक्तगण सदा अनिमित्त हरिभक्ति ही चाहते हैं। तुम कृष्ण के उत्तम परम कल्पतरु-स्वरूप मन्त्र को ग्रहण करो जो भक्तिदायक, दास्यदायक, शुद्ध तथा कर्मों के मूल को काटने वाला है ॥ १७-१९ ॥

लक्ष्मीर्मायाकामबीजं ङेऽन्तं कृष्णपदं तथा ।
वह्निजायान्तमन्त्रं च मन्त्रराजं मनोहरम् ॥ २० ॥

लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), कामबीज (क्लीं), चतुर्थ्यन्त कृष्णपद (कृष्णाय) और अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगाने से मनोहर मन्त्रराज बनता है (मन्त्र : श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा) ॥ २० ॥

इत्येवमुक्त्वा तत्कर्णे कथयामास दक्षिणे ।
वारत्रयं मुनिश्रेष्ठः शुद्धभावेन पुत्रक ॥ २१ ॥
येन स्तोत्रेण तुष्टाव सुभद्रः परमेश्वरम् ।
आज्ञां चकार स ऋषिस्तदेव पठितुं मुदा ॥ २२ ॥
कवचं च ददौ स तस्मै जगन्मङ्गलमङ्गलम् ।
ध्यानं च सामवेदोक्तं सर्वपूजाविधिक्रमम् ॥ २३ ॥
हरेर्दास्यं च तद्भक्तिं गोलोकवासमीप्सितम् ।
जन्मद्वयान्तरे चैव कर्मभोगक्षये सति ॥ २४ ॥

हे पुत्र ! इस प्रकार कहकर उन मुनिश्रेष्ठ ने शुद्ध भाव से उसके दाहिने कान में तीन बार मन्त्र को कहा। सुभद्र ने जिस स्तोत्र से परमेश्वर को सन्तुष्ट किया था उसी का पाठ करने के लिये महर्षि ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी। साथ ही, उसे मङ्गलकारक जगन्मङ्गल कवच, सामवेदोक्त ध्यान तथा सभी पूजाओं का विधिक्रम, कृष्ण का दास्य-भाव, भक्ति एवं दोनों जन्मों में कर्मभोग के क्षय होने पर अभीष्ट गोलोकवास दिया ॥ २१-२४ ॥

श्रीसुभद्र उवाच ।

सत्यं कुरु महाभाग वरं मे यदि दास्यसि ।
वरं वृणोमि तत्पश्चात् यन्मे मनसि वाञ्छितम् ॥ २५ ॥

श्री सुभद्र बोले : हे महाभाग ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो उसे सत्य कीजिये क्योंकि बाद में मैं अपना मनोवाञ्छित वर माँगूँगा ॥ २५ ॥

नारायण उवाच ।

ओ सत्यं वत्स दास्यामि वरं वृणु यथेप्सितम् ।
ममाशक्यं नास्ति किञ्चित् दाताहं सर्वसम्पदाम् ॥ २६ ॥

श्रीनारायण बोले : हे वत्स ! सत्य है, मैं तुम्हें वर दूंगा। तुम यथेष्ट वर मांगो। मेरे लिये कुछ भी अशक्य नहीं है। मैं समस्त सम्पत्तियों का देनेवाला हूं ॥ २६ ॥

सुभद्र उवाच ।

कण्ठे ते किं च कवचं कस्य वा सर्वपूजितम् ।
अमूल्यरत्नगुटिकायुक्तं च सुमनोहरम् ॥ २७ ॥
कवचं देहि मे देव स्वसत्यरक्षणं कुरु ।

सुभद्र बोले : आपके कण्ठ में किसका और कौन-सा सर्वपूजित अमूल्य रत्नगुटिकायुक्त अत्यन्त मनोहर कवच है ? हे देव ! आप मुझे उस कवच को देकर सत्य की रक्षा करें ॥ २७ ॥

विप्रस्य वचनं श्रुत्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥ २८ ॥
वक्तुं न शक्तस्तद्वाक्यं दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् ।
प्रददौ गुटिकां तस्मै नोवाच कवचं मुनिः ॥ २९ ॥
तमुवाच महर्षिश्च वितुष्टश्चोन्मनाः सुत ।
वत्स क्रोधो हि देवस्य वरं तुल्यं च वाञ्छितम् ॥ ३० ॥

विप्र के वचन को सुन कर शुष्क कण्ठ, ओष्ठ और तालु वाले नारायण महर्षि बोल नहीं सके और तब वे श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान करने लगे। तदनन्तर उन्होंने गुटिका को उसे दे दिया किन्तु उन्होंने उस बालक से कवच के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा। यद्यपि वे महर्षि अप्रसन्न एवं व्याकुल हुये तथापि उन्होंने कहा : हे वत्स ! देवों का क्रोध भी मनोवाञ्छित वर के समान ही होता है ॥ २८-३० ॥

नारायणर्षिरुवाच ।

त्रिंशत्सहस्रवर्षं च भुङ्क्ष्व राज्यं सुदुर्लभम् ।
लभस्व दुर्लभां लक्ष्मीं मायया मोहितो भव ॥ ३१ ॥

मदिष्टदेवकवचं गृहीतं येन हेतुना ।
सप्तकल्पान्तजीवित्वं परत्र च भविष्यति ॥ ३२ ॥
सुचिरेणैव कालेन गोलोकं च प्रयास्यसि ।
परे मृकण्डुपुत्रस्त्वं मार्कण्डेयो भविष्यसि ॥ ३३ ॥
मया दत्तं च कवचं त्वां च रक्षति पुत्रक ।
तव कण्ठे स्थितिश्चास्य प्रतिजन्मनि जन्मनि ॥ ३४ ॥

नारायण महर्षि बोले : तीस हजार वर्ष पर्यन्त अत्यन्त दुर्लभ राज्य का भोग करो । दुर्लभ लक्ष्मी को प्राप्त करो और माया से मोहित होओ । तुमने मेरे इष्टदेव का कवच लिया है अतः तुम अगले जन्म में सात कल्प तक जीवित रहोगे । बहुत दिनों के बाद तुम गोलोक जाओगे । अगले जन्म में तुम मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय नाम से प्रसिद्ध होगे । हे पुत्रक ! मेरा दिया हुआ कवच तुम्हारी रक्षा करता रहेगा और यह प्रत्येक जन्म में तुम्हारे कण्ठ में बना रहेगा ॥ ३१-३४ ॥

पुनश्च गुटिकायुक्तं कृत्वा च कवचं मुनिः ।
गले दधार भक्त्या च तद्भक्तो धर्मनन्दनः ॥ ३५ ॥
वरं दत्वा च स मुनिर्ययौ गेहं स उन्मनाः ।
विप्राय कवचं दत्वा नष्टवत्सा च गौर्यथा ॥ ३६ ॥
भ्रात्रा नरेण पित्रा च धर्मेण च महात्मना ।
मात्रामूर्त्या च पत्न्या च शान्त्या च भर्त्सितोमुनिः ॥
विप्रः संप्राप्य कवचं मन्त्रं कल्पतरुं परम् ॥ ३७ ॥
सरोवरात् समुत्थाय प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥ ३८ ॥
क्षणं तस्थौ सरस्तीरे वटमूले मनोहरे ।
जजाप परमं मन्त्रं सम्पूज्य जगदीश्वरम् ॥ ३९ ॥

इसके बाद मुनि ने गुटिकायुक्त कवच विप्र को दे दिया । उनके भक्त, धर्मनन्दन ने भी उसे भक्तिपूर्वक अपने गले में धारण कर लिया । तदनन्तर वर देकर व्याकुलचित्त मुनि घर की ओर चल पड़े । विप्र

को कवच देकर उनकी वही दशा हो गई जो मृतवत्सा गाय की हो जाती है। भ्राता नर तथा पिता महात्मा धर्म, मातामूर्ति तथा पत्नी शान्ति ने मुनि की भर्त्सना की। विप्र कल्पतरु स्वरूप परम मन्त्र और कवच को पाकर ब्रह्मतेज से देदीप्यमान होते हुये सरोवर के तट से उठ कर क्षण भर सरोवर के तट पर स्थित वटवृक्ष के नीचे ठहर गये और जगदीश्वर की पूजा करके परम श्रेष्ठ मन्त्र का जप किया ॥ ३५-३९ ॥

अथ तत्तातविप्रो हि समन्विष्य सुतं चिरम् ।
गत्वा च स्वगृहं दुःखी शोकार्त्तः स रुरोद च ॥ ४० ॥
समुद्यता तनुं त्युक्तुं तन्माता पुत्रवार्त्तया ।
न तत्याज तनुं विप्रो दृष्ट्वा सुस्वप्नमुत्तमम् ॥ ४१ ॥
विप्रो विप्रा गृहं त्यक्त्वा पुत्रान्वेषणपूर्वकम् ।
प्रययौ काननं घोरं सर्वैश्च बान्धवैः सहः ॥ ४२ ॥
सर्वं वनं समन्विष्य प्रययुस्ते सरोवरम् ।
ददृशुस्ते शिशुं गुह्यं सूर्याभं वटमूलके ॥ ४३ ॥
चुचुम्ब गण्डं पुत्रस्य विप्रो विप्रा च सादरम् ।
आशिश्लेष क्रमेणैव माता तातः पुनः पुनः ॥ ४४ ॥
पुत्रश्च सर्ववृत्तान्तं कथयामास सादरम् ।
श्रुत्वा पुत्रस्य विप्रश्च विप्रा च बान्धवास्तथा ॥ ४५ ॥
ययुः सर्वे स्वदेशं च परमाह्लादमानसाः ।
चन्द्रभागां समुत्तीर्य विवेश नगरं परम् ॥ ४६ ॥

इधर उसके ब्राह्मण पिता लड़के को अच्छी तरह खोज कर शोकार्त तथा दुःखी हो अपने घर आकर रोने लगे। पुत्र का समाचार जानकर उसकी माता भी शरीर त्यागने के लिये उद्यत हो गई। ब्राह्मण ने उत्तम स्वप्न देख कर शरीर नहीं छोड़ा। अन्त में ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी घर छोड़ कर पुत्र को खोजने के लिये सभी बन्धु-बान्धवों के साथ घोर वन में गये। सारा वन खोज कर वे लोग सरोबर पर आये और वहाँ उन लोगों ने वटवृक्ष के नीचे सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को

देखा। ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी ने पुत्र के गाल का सादर चुम्बन लिया। फिर उन माता तथा पिता ने क्रम से बार-बार पुत्र का आलिङ्गन किया। इसके बाद पुत्र ने सम्पूर्ण वृत्तान्त आदरपूर्वक सुनाया। पुत्र की बातों को सुनकर ब्राह्मण, ब्राह्मणी तथा बान्धवगण परम प्रसन्नचित्त होकर अपने-अपने घर के लिये चल पड़े और चन्द्रभागा नदी को पार कर वे अत्यन्त सुन्दर नगर में प्रविष्ट हुये ॥ ४०-४६ ॥

नगरस्थो नृपेन्द्रश्च दृष्ट्वा तेजस्विनं शिशुम् ।
ददौ तस्मै स्वकन्यां च रत्नालंकारभूषितम् ॥ ४७ ॥
युवतीं सुन्दरीं श्यामां तप्तकाञ्चनसंनिभाम् ।
पतिव्रतां महाभागां सुन्दरीं कमलाकलाम् ॥ ४८ ॥
गजेन्द्राणां सहस्रं च प्रददौ यौतुकं मुदा ।
अश्वानां दशलक्षं च रत्नानां च सहस्रकम् ॥ ४९ ॥
दासीनां निष्ककण्ठीनां सुन्दरीणां सहस्रकम् ।
वस्त्ररत्नसहस्रं च बहुमूल्यं सुदुर्लभम् ॥ ५० ॥
दासानां च सहस्रं च पदातीनां त्रिलक्षकम् ।
दशलक्षं सुवर्णं च रत्नमालां सुदुर्लभाम् ॥ ५१ ॥
दत्वा तस्मै च कन्यां च रुरोद च सभार्यकः ।
राजा च कन्यया सार्धं प्रययौ विप्रमन्दिरम् ॥ ५२ ॥

नगर के महाराज ने तेजस्वी बालक को देख कर रत्नालंकार-भूषित, युवती, सुन्दर, श्यामा, तप्तस्वर्ण के समान दीप्तिमती, पतिव्रता, महाभागा, सुन्दरी तथा कमलाकलायुक्त अपनी पुत्री को उस बालक को दे दिया। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक एक सहस्र गजेन्द्र, दश लाख घोड़े, एक सहस्र रत्न और स्वर्णमण्डित कण्ठों वाली एक सहस्र सुन्दर दासियाँ, वस्त्र, एक सहस्र अत्यन्त दुर्लभ बहुमूल्य रत्न, एक सहस्र दास, तीन लाख पैदल सिपाही, दस लाख स्वर्ण, अत्यन्त दुर्लभ रत्नों की माला भी दहेज में दिया। इस प्रकार कन्या को देने के बाद वह राजा पत्नी सहित रोने लगा। फिर वह भी ब्राह्मणों आदि को साथ लेकर कन्या के घर की ओर चल पड़ा ॥ ४७-५२ ॥

गत्वा चापि कियद्दूरं ददर्श नगरं नृपः ।
अतीव सुन्दरं रम्यं विजित्य चामरावतीम् ॥ ५३ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं रत्नसारविनिर्मितम् ।
त्रिकोट्यट्टालिकागेहं नवकोटिसुमन्दिरम् ॥ ५४ ॥
सप्तप्राकारयुक्तं च परिखात्रयसंयुतम् ।
दुर्लङ्घ्यमतिदुर्गम्यं रिपूणामपि पुत्रक ॥ ५५ ॥
शिशोश्च स्वाश्रमं रम्यं सद्रत्नसारनिर्मितम् ।
स्फुरत्वज्रकपाटं च रत्नेन्द्रकलशान्वितम् ॥ ५६ ॥
सद्रत्नदर्पणैर्दीपं रत्नकुम्भैर्विराजितम् ।
प्राङ्गणं रत्नसाराढ्यं रत्नसोपानशोभितम् ॥ ५७ ॥

कुछ ही दूर जाने पर राजा ने एक नगर देखा जो अत्यन्त सुन्दर और अमरावती को लज्जित करने वाला था। वह नगर शुद्ध स्फटिक के समान रत्नसार से निर्मित था। उसमें तीन करोड़ महल और नव करोड़ उत्तम मन्दिर थे। उसके चारों ओर सात प्राचीरें तथा तीन खाइयाँ थीं। हे पुत्र! वह नगर शत्रुओं के लिये अत्यन्त दुर्गम तथा दुर्जय था। बालक का आश्रम अत्यन्त रम्य और श्रेष्ठ रत्नों से बना हुआ था। उसमें चमकते हुये हीरों से युक्त कपाट, रत्नजटित कुम्भ, रत्नसार जड़े प्राङ्गण और रत्नजटित सीढ़ियाँ सुशोभित हो रही थीं॥ ५३-५७॥

मनोहरं राजमार्गं सिन्दूरादिपरिष्कृतम् ।
प्राकारं मणिभूषाढ्यमुच्चैराकाशस्पर्शि च ॥ ५८ ॥
जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा नगरमुत्तमम् ।
पित्रा मात्रा सह शिशुर्विस्मयं च ययौ मुदा ॥ ५९ ॥
गजेन्द्राणां त्रिलक्षं च अश्वानां शतलक्षकम् ।
चतुर्गुणं पदातीनामाययुस्तेऽप्यनुव्रजम् ॥ ६० ॥
वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य वेश्यां च नर्तकं तथा ।
द्विजांश्च पूर्णकुम्भांश्च पतिपुत्रवतीं सतीम् ॥ ६१ ॥

महापात्रः शिशुं दृष्ट्वा गजेन्द्रोपरिसंस्थितम् ।
मूर्ध्ना ननाम वेगेनाप्यवरुह्य गजादपि ॥ ६२ ॥
शिशुं प्रवेशयामास रत्ननिर्माणमन्दिरम् ।
रत्नसिंहासनं तस्मै प्रददौ सादरं मुदा ॥ ६३ ॥
कन्यादात्रे च पित्रे च मात्रे च सादरं मुदा ।
रत्नसिंहासनं रम्यं प्रददौ पात्र एव च ॥ ६४ ॥
शिशुं सिषेव पात्रश्च स्वयं च श्वेतचामरैः ।
दधार रत्नछत्रं च हीराहारपरिष्कृतम् ॥ ६५ ॥
उवास स सभायां च सुधर्मायां महेन्द्रवत् ।
श्वसुरश्च ययौ गेहं शिशुना च पुरस्कृतः ॥ ६६ ॥

मनोहर राजमार्ग से मण्डित, सिन्दूर आदि से परिष्कृत, मणियों से सुभूषित और गगनचुम्बी प्राचीरों आदि से युक्त नगर को देख कर राजा आश्चर्यचकित हो गया। अपने पिता-माता के साथ वह बालक भी प्रसन्नता से विस्मित हो उठा। तीन लाख गजेन्द्र, एक करोड़ घोड़े, इनके चारगुने पदाती मार्ग में आ गये। गजेन्द्रों, वेश्यायों, नर्तकों, द्विजों, पूर्णघटों, और पुत्रवती सती नारियों को आगे करके महामन्त्री ने गजारूढ़ शिशु को देख कर वेग से अपने हाथी पर से उतर कर शिर झुकाकर प्रणाम किया। उन्होंने शिशु को रत्नों से बने मन्दिर में प्रवेश कराया। कन्यादाता पिता-माता को भी मन्त्री ने प्रसन्नता और आदरपूर्वक रत्नजटित सिंहासन दिया। तदनन्तर मन्त्री स्वयं श्वेत चँवर से शिशु की सेवा करने लगे। हीरों के हारों से सुसज्जित रत्नछत्र को उस शिशु ने धारण किया। उस समय वह सुधर्मा नामक सभा में महेन्द्र के समान बैठा। शिशु द्वारा पुरस्कृत होकर उसके श्वसुर अपने घर चले गये ॥ ५८-६६ ॥

त्रिंशत्सहस्रवर्षं च राजा राज्यं चकार सः ।
कालान्तरे तत्पिता च वने व्याघ्रेण भक्षितः ॥ ६७ ॥
पतिव्रता महाभागा माता सहमृता सुत ।

रत्नयानेन रम्येण सस्त्रीकः कृष्णमन्दिरम् ॥ ६८ ॥
प्रययौ सादरं विप्रः कृष्णनैवेद्यभक्षणात् ।
तदस्थि भुक्त्वा व्याघ्रश्च पूतः सद्यश्च सांप्रतम् ॥ ६९ ॥
ताभ्यां सार्धं च प्रययौ गोलोकं सुमनोहरम् ।
शिशुर्देहं परित्यज्य हिमाद्रौ स्वर्णदीतटे ॥ ७० ॥
दत्त्वा पुत्राय राज्यं च स्वर्गादपि सुदुर्लभम् ।
मृकण्डुपत्नीगर्भे च लेभे जन्म स्वकर्मणा ॥ ७१ ॥
मार्कण्डेयो मुनिश्रेष्ठो बभूव परजन्मनि ।
सप्तकल्पान्तजीवी च नारायणवरेण सः ॥ ७२ ॥

उस (शिशु) राजा ने तीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया। कालान्तर में उसके पिता को वन में व्याघ्र ने खा डाला। हे पुत्र ! उसकी पतिव्रता माता भी पति के साथ ही स्वर्ग चली गई। श्रीकृष्ण के नैवेद्य के भक्षण से वह ब्राह्मण सपत्नीक रमणीय रत्नजटित यान से श्रीकृष्ण के मन्दिर में गया। उसको अस्थियों का भक्षण करने से उक्त व्याघ्र भी पवित्र होकर तत्काल उन्हीं दोनों के साथ गोलोक को चला गया। शिशु ने स्वर्ग से भी दुर्लभ राज्य को अपने पुत्र को समर्पित करके स्वर्ण नदी के तट पर देह त्याग किया। अपने कर्मों से अगले जन्म में वह मृकण्डु की पत्नी के गर्भ से जन्म लेकर मार्कण्डेय नामक मुनिश्रेष्ठ हुआ। श्रीकृष्ण के नैवेद्य-भक्षण के पुण्य से और श्रीनारायण के वरदान से वह सात कल्प पर्यन्त जीवित रहा। ॥ ६७-७२ ॥

बभूव सांप्रतं विप्रः कृष्णनैवेद्यभक्षणात् ।
श्वभक्षितं च नैवेद्यं भुक्त्वा चेदीदृशी गतिः ॥ ७३ ॥
अकामतश्चाप्यज्ञातो जीर्णं मार्गस्थितं सुत ।
यो भक्षेत् कामतो ज्ञातो नित्यं नैवेद्यमीप्सितम् ॥
न जानन्ति गतिं तस्य वेदाश्चत्वार एव च ॥ ७४ ॥

हे पुत्र ! अज्ञात मार्ग में गिरे हुये जीर्ण और कुत्ते द्वारा खाये हुये नैवेद्य के अनिच्छापूर्वक भक्षण से यदि उसको यह गति प्राप्त हुई तो जो

इच्छापूर्वक जानकर अभीष्ट नैवेद्य का नित्य भक्षण करता है उसकी गति को तो चारों वेद भी नहीं जानते ॥ ७३-७४ ॥

इति ते कथितं ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम् ।
आश्चर्यं मधुरं रम्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७५ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हें यह आश्चर्यमय, मधुर तथा रम्य पुरातन इतिहास बताया है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ ७५ ॥

श्रीनारद उवाच ।

श्रुतं नैवेद्यमाहात्म्यं अतीव सुमनोहरम् ।
ईश्वरस्यापि हे तात कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ७६ ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि स्वात्मसन्देहभञ्जनम् ।
नारायणर्षेः कण्ठे च कवचं तस्य तद्वद ॥ ७७ ॥

श्री नारद बोले : हे तात ! ईश्वरस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण के सुमनोहर नैवेद्य-माहात्म्य को मैंने सुना। अब मैं अपने सन्देह का निवारण करने के लिये श्रीनारायण महर्षि के कण्ठ के कवच के सम्बन्ध में सुनना चाहता हूं। अतः आप मुझे उसके सम्बन्ध में बतायें ॥ ७६-७७ ॥

अथ कवच प्रश्नः ।
सनत्कुमार उवाच ॥

ममाप्यस्तीति सन्देहो वचने प्रपितामह ।
कस्य तत् कवचं ब्रह्मन्निदं वक्तुं त्वमर्हसि ॥ ७८ ॥
स पिता स गुरुः स्वच्छः करोति भ्रमभञ्जनम् ।
शीघ्रं ब्रूहि महाभाग नारदं मां सुतप्रिय ॥ ७९ ॥

कवच सम्बन्धी प्रश्न

सनत्कुमार बोले : हे प्रपितामह ! मुझे भी इस सम्बन्ध में सन्देह है। अतः, हे ब्रह्मन् ! आप बतायें कि वह किस देवता का कवच है। जो भ्रम का भंजन करता है वही पिता है और वही गुरु है। हे पुत्रप्रिय ! हे महाभाग ! आप शीघ्र ही मुझे तथा नारद जी को इसे बतायें ॥ ७८-७९ ॥

पुत्रयोश्च वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ।
उवाच वचनं ब्रह्मा स्मरन् कृष्णपदाम्बुजम् ॥ ८० ॥

दोनों पुत्रों के वचन को सुन कर सूखे कण्ठ, ओष्ठ और तालुवाले ब्रह्मा श्रीकृष्ण के चरणकमल का स्मरण करते हुये बोले ॥ ८० ॥

ब्रह्मोवाच ।

नारायणेन मुनिना जगन्मङ्गलमङ्गलम् ।
विप्राय कवचं दत्तं ध्यानं च परमात्मनः ॥ ८१ ॥
तद्ब्रवीमि महाभाग त्वामेव नारदं प्रति ।
कण्ठस्थं कवचं वक्तुं नैव शक्नोमि सांप्रतम् ॥ ८२ ॥
मत्कण्ठे कवचं यस्य गोपनीयं सुदुर्लभम् ।
नारायणर्षिकण्ठे च तदेव परमाद्भुतम् ॥ ८३ ॥
तदेव धर्मकण्ठे च नरस्य च महात्मनः ।
अगस्त्यस्य च कण्ठे च लोमशस्य महामुनेः ॥ ८४ ॥
तुलस्याश्चापि संज्ञायाः सावित्र्याश्चापि पुत्रक ।
अन्येषां च भाग्यवतां भारते च सुदुर्लभे ॥ ८५ ॥

ब्रह्मा बोले : श्रीनारायण मुनि ने जो मंगलकारक जगन्मंगल कवच तथा परमात्मा का ध्यान विप्र को दिया उसे, हे महाभाग ! मैं तुम्हें और नारद को बता रहा हूं। किन्तु इस समय मैं उस नारायण महर्षि के कण्ठ में स्थित कवच को बताने में असमर्थ हूं। मेरे कण्ठ में जो गोपनीय तथा अत्यन्त दुर्लभ कवच है वैसा ही परम अद्भुत कवच नारायण महर्षि के कण्ठ में भी था; और वही धर्म के, महात्मा नर के, अगस्त्य ऋषि के, लोमश महामुनि के, और हे पुत्र ! तुलसी के, और सावित्री के भी कण्ठ में है, तथा वही इस दुर्लभ भारतवर्ष के अन्य भाग्यवानों के कण्ठ में भी है ॥ ८१-८५ ॥

नारद उवाच ।

पश्चात् श्रोष्यामि कवचं जगन्मङ्गलमङ्गलम् ।
ध्यानं पूजां विधानं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ८६ ॥

आदौ कथय भद्रं ते परं परमभद्रकम् ।
सुभद्रप्राप्तं कवचं माहात्म्यं यस्य दुर्लभम् ॥ ८७ ॥

नारद बोले : मैं मंगलकारक जगन्मङ्गल कवच को, कृष्ण और भगवान के ध्यान, पूजा तथा विधान को तो बाद में सुनूँगा । कृपा करके इस समय आप सबसे पहले उस सुभद्र ब्राह्मण द्वारा प्राप्त परम अद्भुत कवच के सम्बन्ध में बतायें जिसका माहात्म्य अत्यन्त दुर्लभ है ॥८६-८७॥

ब्रह्मोवाच ॥

सुभद्रप्राप्तं कवचं पश्चात् श्रोष्यसि पुत्रक ।
शङ्करस्य मुखाद्विप्र स्वगुरोर्ज्ञानिनस्तथा ॥ ८८ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे ब्रह्मनारदसंवादे
प्रथमैकरात्रे कवचप्रश्नोनाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥

ब्रह्मा बोले : हे पुत्र ! उस कवच को तुम बाद में अपने ज्ञानी गुरु शंकर जी से सुनोगे और तब तुम यह जान लोगे कि सुभद्र ने उसे किस प्रकार प्राप्त किया था ॥ ८८ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के प्रथम रात्र में ज्ञानामृतसार में
ब्रह्मनारद संवादोक्त कवचप्रश्न नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

प्रथमैक रात्रे पञ्चमोऽध्यायः

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

तवेच्छा यत्र कवचे ध्याने तद्वद सांप्रतम् ।
यच्छृणोमि शुभं तच्च केन श्रेयसि तृप्यते ॥ १ ॥

श्री सनत्कुमार बोले : आपकी इच्छा जिस कवच तथा ध्यान में हो, उसे ही आप कहें। जो शुभ है उसे मैं सुनूँगा । कल्याणमयी वाणी के श्रवण से कौन तृप्त हो सकता है ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ध्यानं च सामवेदोक्तं दत्तं नारायणेन वै ।
कवचं च सुभद्राय धर्मिष्ठाय महात्मने ॥ २ ॥

ब्रह्मा बोले : श्री नारायण ने धर्मिष्ठ महात्मा सुभद्र को सामवेदोक्त ध्यान तथा कवच दिया था ॥ २ ॥

नवीनजलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥ ३ ॥
मालतीमाल्यभूषाढ्यं रत्नभूषणभूषितम् ।
मुनीन्द्रेशसुसिद्धेशब्रह्मेशशेषवन्दितम् ॥ ४ ॥
सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वबीजं सनातनम् ।
सर्वाद्यमपि सर्वज्ञं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ५ ॥
निर्गुणं च निरीहं च निर्लिप्तमीश्वरं भजे ।
ध्यात्वा मूलेन तस्मै च दद्यात् पाद्यादिकं मुदा ॥ ६ ॥

ध्यान इस प्रकार है । "नवीन मेघ के समान श्याम, पीत कौशेय वस्त्र धारण किये हुए, सर्वाङ्ग में चन्दन लगाये हुए, मालती की माला से विभूषित, रत्नों के आभूषणों से मण्डित, मुनीन्द्रेश, सुसिद्धेश, ब्रह्मा तथा शिव से वन्दित, सर्वस्वरूप, सर्वेश, सर्वबीज, सनातन, सर्वाद्य,

सर्वज्ञ, प्रकृति से परे, पुरुष, निर्गुण, निरीह, निर्लिप्त तथा ईश्वर सस्मित श्यामसुन्दर का मैं ध्यान करता हूं।" इस प्रकार ध्यान करते हुए प्रसन्नचित्त से मूलमन्त्र से उन्हें पाद्य तथा अर्घ्य आदि देवे ॥ ३-६ ॥

ततः स्तोत्रं च कवचं भक्त्या च प्रपठेन्नरः ।
जप्त्वा च मन्त्रं भक्त्या च दण्डवत् प्रणमेद्भुवि ॥
इति ते कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७ ॥

इसके बाद मनुष्य भक्तिपूर्वक कवच तथा स्तोत्र का पाठ करे। और फिर भक्ति से मन्त्र का जप करके भूमि पर दण्डवत प्रणाम करे। हे वत्स! यह मैंने तुम्हें बता दिया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ ७ ॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ॥

ब्रूहि मे कवचं ब्रह्मन् जगन्मङ्गलमङ्गलम् ।
पूज्यं पुण्यस्वरूपं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ८ ॥

श्री सनत्कुमार बोले : हे ब्रह्मन्! अब आप मुझे पूज्य, और पुण्य-स्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण के मंगलकारक जगन्मंगल कवच को बतायें ॥ ८ ॥

अथ जगन्मङ्गलमङ्गलकवचम् ॥

ब्रह्मोवाच ॥

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम् ।
श्रीकृष्णेनैव कथितं मह्यं च कृपया पुरा ॥ ९ ॥
मया दत्तं च धर्माय तेन नारायणर्षये ।
ऋषिणा तेन तद्दत्तं सुभद्राय महात्मने ॥ १० ॥
अतिगुह्यतमं शुद्धं परं स्नेहाद्ददाम्यहम् ।
यद्धृत्वा पठनात् सिद्धाः सिद्धानि प्राप्नुवन्ति च ॥ ११ ॥
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
ऋषिश्छन्दश्च सावित्री देवो नारायणः स्वयम् ॥ १२ ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।

ब्रह्मा बोले : हे विप्रेन्द्र ! सुनो, मैं तुम्हें परम अद्‌भुत कवच बता रहा हूं। पूर्वकाल में इसे श्रीकृष्ण ने कृपापूर्वक मुझे बताया था। मैंने इसे धर्म को बताया; धर्म ने नारायण ऋषि को दिया; और नारायण ऋषि ने उसे सुभद्र को दिया। इसी अत्यन्त गुह्यतम और शुद्ध वर-स्वरूप कवच को स्नेहवश तुम्हें बता रहा हूं। इसके धारण तथा पाठ करने से व्यक्ति सिद्धियों को प्राप्त करता है। इसी से इन्द्रादि सभी ने समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त किया है। इस कवच के ऋषि नारायण हैं, छन्द सावित्री (गायत्री) और देवता स्वयं नारायण हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में इसका विनियोग बताया गया है ॥ ६-१२ ॥

कवच पाठ

ॐ

राधेशो मे शिरः पातु कण्ठं राधेश्वरः स्वयम् ॥ १३ ॥
गोपिशश्चक्षुषी पातु तालु च भगवान् स्वयम् ।
गण्डयुग्मं च गोविन्दः कर्णयुग्मं च केशवः ॥ १४ ॥
गलं गदाधरः पातु स्कन्धं कृष्णः स्वयं प्रभुः ।
वक्षस्थलं वासुदेवश्चोदरं चापि सोऽच्युतः ॥ १५ ॥
नाभिं पातु पद्मनाभः कङ्कालं कंससूदनः ।
पुरुषोत्तमः पातु पृष्ठं नित्यानन्दो नितम्बकम् ॥ १६ ॥
पुण्डरीकः पादयुग्मं हस्तयुग्मं हरिः स्वयम् ।
नासां च नखरं पातु नरसिंहः स्वयं प्रभुः ॥ १७ ॥
सर्वेश्वरश्च सर्वाङ्गं सन्ततं मधुसूदनः ।
प्राच्यां पातु च रामश्च वह्नौ वंशीधरः स्वयम् ॥ १८ ॥
पातु दामोदरो दक्षे नैर्ऋते च नरोत्तमः ।
पश्चिमे पुण्डरीकाक्षो वायव्यां वामनः स्वयम् ॥ १९ ॥
अनन्तश्चोत्तरे पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ।
जले स्थले चान्तरीक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥ २० ॥
पातु वृन्दावनेशश्च मां भक्तं शरणागतम् ।

इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् ॥ २१ ॥
सुखदं मोक्षदं सारं सर्वसिद्धिप्रदं सताम् ।
इदं कवचमिष्टं च पूजाकाले च यः पठेत् ॥
हरिदास्यमवाप्नोति गोलोके वासमुत्तमम् ।
इहैव हरिभक्तिं च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
ब्रह्मनारदसंवादे जगन्मङ्गलनाम
कवचं समाप्तं ।

हे वत्स ! मैंने तुम्हें यह परम अद्भुत कवच बतला दिया। यह सज्जनों को सुखदायक, मोक्षदायक, सर्वसिद्धिप्रद तथा सारभूत है। इस इष्ट कवच को जो पूजाकाल में पढ़ता है वह हरि के दास्य भाव को और उत्तम गोलोकवास को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, वह इसी जन्म में हरि भक्ति को प्राप्त कर जीवनमुक्त हो जाता है ॥ २१-२२ ॥

इति नारदपञ्चरात्र के ज्ञानमृतसार की प्रथम रात्रि में
ब्रह्म-नारदसंवादोक्त मङ्गलकारक जगन्मङ्गल
नामक कवच समाप्त ॥

नारद उवाच ।

नारायणर्षिणा दत्तं कवचं यत् सुदुर्लभम् ।
सुभद्राय ब्राह्मणाय तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ २३ ॥

नारद बोले : नारायण ऋषि ने जो अत्यन्त दुर्लभ कवच ब्राह्मण सुभद्र को दिया था उसे आप मुझे बतायें ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

मदीष्टदेव्याः कवचं कथं तत्कथयामि ते ।
मत्कण्ठे पश्य कवचं सद्रत्नगुटिकान्वितम् ॥ २४ ॥
नारायणर्षिणा दत्तं कवचं गुटिकान्वितम् ।
तथापीदं न कथितं निषिद्धं हरिणा स्मृतम् ॥ २५ ॥

तस्यर्षेश्रेष्टदेव्याश्च नोक्तं तेनेदमीप्सितम् ।
मह्यं न दत्ता गुटिका बान्धवैर्भर्त्सितेन च ॥ २६ ॥
आत्मनः कवचं मन्त्रं स्वयं दातुं न चार्हति ।
प्राणा नष्टाश्च दानेन चेति वेदविदो विदुः ॥ २७ ॥
शङ्करं गच्छ भगवन् जन्मान्तरगुरुं तव ।
स एव तुभ्यं कवचं दास्यत्येव न संशयः ॥ २८ ॥
त्वत्प्राक्तनेन विप्रेन्द्र सत्वरेण शुभेन च ।
ध्रुवं प्राप्स्यसि त्वं वत्स कवचं तत् सुदुर्लभम् ॥ २९ ॥
कुमार गच्छ वैकुण्ठं स्वगुरुं पश्य सत्वरम् ।
नारायणश्च कवचं तुभ्यं दास्यति निश्चितम् ॥ ३० ॥

ब्रह्मा बोले : जो मेरे इष्टदेव का कवच है उसे मैं तुम्हें कैसे बताऊं? श्रेष्ठ रत्नों की गुटिका में निहित कवच को मेरे कण्ठ में देखो। श्री नारायण ऋषि ने यद्यपि गुटिकान्वित कवच को दे दिया परन्तु श्रीहरि के निषेध का स्मरण करके उसका उद्घाटन नहीं किया। ऋषि के इष्टदेव का कवच होने के कारण उन्होंने उस गुटिका को मुझे भी नहीं दिया, यद्यपि इसके लिये उनके बान्धवों ने उनकी भर्त्सना भी की थी। अपना कवच और मन्त्र स्वयं किसी को देना उचित नहीं है, क्योंकि दूसरों को इस प्रकार दे देने से स्वयं अपने जीवन के लिए संकट उत्पन्न हो जाता है—ऐसा वेदविद् विद्वानों का कथन है। अतः, हे भगवन्! आप अपने जन्म जन्मान्तर के गुरु शंकर के पास जाइये। वे निश्चय ही आपको यह कवच देंगे। हे विपेन्द्र! हे वत्स! तुम अपने शुभ कर्मों से शीघ्र ही उस अत्यन्त दुर्लभ कवच को निश्चित रूप से प्राप्त करोगे। हे सनत्कुमार! तुम शीघ्र वैकुण्ठ जाओ और अपने गुरु से मिलो। श्री नारायण तुम्हें निश्चित रूप से कवच देंगे॥ २४-३०॥

सनत्कुमारो भगवान् गत्वा वैकुण्ठमीप्सितम् ।
संप्राप्य कवचं वत्स कवचं तत् सुदुर्लभम् ॥ ३१ ॥

हे वत्स! यह सुनकर भगवान् सनत्कुमार वैकुण्ठ गये और वहां उन्होंने अपने इच्छित अत्यन्त दुर्लभ कवच को प्राप्त किया॥ ३१॥

आज्ञया ब्रह्मणश्चापि नारदो गन्तुमुद्यतः ।
ब्रह्मा ययौ ब्रह्मलोकं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्मा जी की आज्ञा से जब नारद जाने के लिये उद्यत हो गये तब ब्रह्मा जी भी जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था से रहित ब्रह्मलोक को चले गये ॥ ३२ ॥

इति नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार की प्रथम
रात्रि में पञ्चम अध्याय समाप्त ।

प्रथमैक रात्रे षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच ।

सनत्कुमारो वैकुण्ठं ब्रह्मलोकं च ब्रह्मणि ।

गते ब्रह्मन् किं चकार भगवान्नारदो मुनिः ॥ १ ॥

श्री शुक बोले : हे ब्रह्मन् ! जब ब्रह्मा जो ब्रह्मलोक तथा सनत्कुमार वैकुण्ठ चले गये तब भगवान् नारद मुनि ने क्या किया ॥ १ ॥

व्यास उवाच ।

मुनिस्तयोश्च गतयोः स रुरोद सरित्तटे ।

इतस्ततश्च बभ्राम मद्वियोगशुचास्पदः ॥ २ ॥

स्वमानसे समालोक्य मुनिश्रेष्ठः स उन्मनाः ।

ध्यायमानो हरिपदं शिवं द्रष्टुं समुत्सुकः ॥ ३ ॥

प्रणम्य पितरं भक्त्या कुमारं भ्रातरं ततः ।

जगाम तपसः स्थानात् कैलासाभिमुखो मुनिः ॥ ४ ॥

व्यास बोले : जब वे दोनों चले गये तब उस नदी के तट पर इधर-उधर भटकते हुए नारद रोने लगे। वह अपने आपको व्याकुल जानकर हरिपद का ध्यान करते हुए शिवदर्शन के लिये उत्सुक हो गये। तब उन्होंने पहले पितर ब्रह्मा को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, और इसके बाद अपने भ्राता सनत्कुमार को भी प्रणाम किया। फिर वे अपनी तपोभूमि से कैलास पर्वत की ओर चल पड़े ॥ २-४ ॥

स्नात्वा च कृतमालायां संपूज्य परमेश्वरम् ।

भुक्त्वा फलं जलं पीत्वा प्रययौ गन्धमादनम् ॥ ५ ॥

ददर्श ब्राह्मणं तत्र वटमूले मनोहरे ।

कटमस्तं ध्यायमानं श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ॥ ६ ॥

दीर्घं नग्नं च गौराङ्गं दीर्घलोमभिरावृतम् ।

निमीलिताक्षं सानन्दं सानन्दाश्रुसमन्वितम् ॥ ७ ॥
पाद्मे पद्मेशशेषादिसुरपूजितवन्दिते ।
श्रीपादपद्मे शोभाढ्ये शश्वत्संन्यस्तमानसम् ॥ ८ ॥
वाह्यज्ञानपरित्यक्तं योगज्ञानविशारदम् ।
शिवस्य शिष्यं सद्भक्तं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरोः ॥ ९ ॥
हृत्पद्मे पद्मनाभं च परमात्मानमीश्वरम् ।
प्रदीपकलिकाकारं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ १० ॥
साक्षिस्वरूपं परमं भगवन्तमधोक्षजम् ।
पश्यन्तं सस्मितं कृष्णं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥ ११ ॥
सद्भावोद्रिक्तचित्तं च सद्भावं पुरुषोत्तमे ।
दृष्ट्वा महर्षिप्रवरं देवर्षिर्विस्मयं ययौ ॥ १२ ॥

उन्होंने कृतमाला नदी में स्नान तथा परमेश्वर का पूजन किया, और फल खाकर तथा जल पीकर गन्धमादन की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने एक मनोहर वटवृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण के चरण कमल में ध्यान-लीन, जटा-जूटधारी, नग्न, लम्बे-चौड़े गौराङ्ग, दीर्घ रोमों से युक्त, आँखों को बन्द किये हुए, आनन्दाश्रु से युक्त और सानन्द एक ब्राह्मण को देखा जो पद्मेश (ब्रह्मा) और शेष आदि देवों से पूजित और वन्दित, शोभामय, पद्मस्वरूप, श्रीपादपद्म में निरन्तर ध्यानमग्न, वाह्यज्ञान परित्यक्त, योगज्ञानविशारद, योगीन्द्रों के गुरु के गुरु महादेव का शिष्य था। वह अपने हृदय कमल में परमात्मा, पद्मनाभ, ईश्वर की प्रदीप-कालिकाकार ब्रह्म ज्योति का दर्शन कर रहा था। सनातन, साक्षिरूप, परम भगवान, अधोक्षज, सस्मित श्रीकृष्ण को देखते हुए पुलकांकित-विग्रह, सद्भावोद्रिक्त चित्त और पुरुषोत्तम में सद्भाव रखनेवाले उन महर्षि प्रवर को देखकर देवर्षि नारद अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए ॥ ५-१२ ॥

इतस्ततश्च बभ्राम ददर्श स्वाश्रमं मुनेः ।
अतीव सुरहःस्थानं रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥ १३ ॥
सुस्निग्धं सुन्दरं शुद्धं परं स्वच्छं सरोवरम् ।

श्वेतरक्तोत्पलदलैः कमलैः कमनीयकम् ॥ १४ ॥
गुञ्जदिन्दिन्दिरवरैर्मकरन्दोदरैस्तथा ।
व्याकुलैः संकुलैः शश्वद्भ्राजितैश्च विराजितम् ॥ १५ ॥
वन्यैर्वृक्षैर्बहुविधैः फलशाखासुशोभितैः ।
करञ्जकैश्च करजैर्बिम्बैः शाखोटकैस्तथा ॥ १६ ॥
तिन्तिडीभिः कपित्थैश्च वटशिंशपचन्दनैः ।
मन्दारैः सिन्धुवारैश्च ताडिपत्रैः सुशोभनैः ॥ १७ ॥
गुवाकैर्नारिकेलैश्च खर्जुरैः पनसैस्तथा ।
तालैः शालैः पियालैश्च हिन्तालैर्वकुलैरपि ॥ १८ ॥
आम्रैराम्रातकैश्चैव जम्बीरैर्दाडिमैस्तथा ।
श्रीफलैर्वदरीभिश्च जम्बुभिर्नागरङ्गकैः ॥ १९ ॥
सुपक्वफलशोभाढ्यैः सुस्निग्धैः सुमनोहरैः ।
तरुणैस्तरुराजैश्च नानाजातिभिरीप्सितम् ॥ २० ॥
मल्लिकामालतीकुन्दकेतकीकुसुमैः शुभैः ।
माधवीनां लताजालैश्चर्चितं चारुचम्पकैः ॥ २१ ॥
कदम्बानां कदम्बैश्च स्वच्छैः श्वेतैश्च पुष्पितैः ।
नागेश्वराणां वृन्दैश्च दीप्तं मन्दारकैर्वरैः ॥ २२ ॥
हंसकारण्डवकुलैः पुंस्कोकिलकुलैस्तथा ।
सन्ततं कूजितं शुद्धं सुव्यक्तं सुमनोहरम् ॥ २३ ॥
शार्दूलैः शरभैः सिंहैर्गण्डकैर्महिषैः परम् ।
मनोहरैः कृष्णसारैश्चमरीभिर्विभूषितम् ॥ २४ ॥
महामुनिप्रभावेन हिंसादोषविवर्जितम् ।
दस्युचौरहिंस्रजन्तुभयशोकविवर्जितम् ॥ २५ ॥
सुपुण्यदं तीर्थवरं भारते सुप्रशंसितम् ।
सिद्धस्थलं सिद्धिदं तं मन्त्रसिद्धिकरं परम् ॥ २६ ॥

दृष्ट्वाश्रमं मुनिश्रेष्ठो जगाम मुनिसंसदि ।
आसने च समासीनं ध्यानहीनं ददर्श तम् ॥ २७ ॥

इधर-उधर घूमकर उन्होंने मुनि के आश्रम को देखा । अत्यंत एकान्त सुरम्य स्थान पर उस रम्य आश्रम में नवीन वस्तुएँ उसको स्वच्छ नवीनता प्रदान कर रही थीं । वहाँ सुस्निग्ध, सुन्दर, शुद्ध तथा परम जल का एक सरोवर था जिसमें श्वेत तथा रक्त कमल खिले थे । उन पर बड़ी-बड़ी मधुमक्खियाँ पुष्पों के मकरन्दों से व्याकुल होकर निरन्तर गुञ्जन कर रही थीं । नाना प्रकार के फल-शाखा-सुशोभित वन्य वृक्षों में करञ्जक, करज, बिम्ब, शाखोटक, तिन्तिडी, कपित्थ, वट, शिंशपा, चन्दन, मन्दार, सिन्धुवार, सुशोभन ताडिपत्र, गुवाक, नारिकेल, खजूर पनस, ताल, शाल, पियाल, हिन्ताल, बकुल, आम्र, आम्रातक, जम्बीर दाडिम, श्रीफल, बदरीफल, जम्बु, नारङ्ग, सुपक्व फलों वाले शोभामय, सुमनोहर और तरुण नाना जातियों के वृक्ष वहाँ बहुतायत से विद्यमान थे । मल्लिका, मालती, कुन्द, केतकी के शुभ पुष्प, माधवी लता के जालों से युक्त चम्पा आदि पुष्पों के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे । कदम्बों के समूह, स्वच्छ श्वेत पुष्पित नागेश्वरों के समूहों से तथा उत्तम मन्दार से स्थान प्रकाशित हो रहा था । हंस तथा कारण्डव के समूहों और पुंस्कोकिल के समूहों से सतत गुञ्जायमान; शुद्ध, सुव्यक्त, सुमनोहर, शार्दूल, शरभ, सिंह, गण्डक, महिष, परम मनोहर कृष्णसारमृग तथा चमरी गायों से विभूषित; महामुनि के प्रभाव से हिंसा दोष से विवर्जित; दस्यु, चोर, हिंस्र जन्तुओं के भय तथा शोक से रहित पुष्पदायक, भारत में सुप्रशंसित तीर्थवर, सिद्धिदायक, मन्त्रसिद्धिकर तथा परम सिद्धस्थल उस आश्रम को देखकर मुनिश्रेष्ठ नारद मुनिसभा में गये और उन्हें आसन पर विराजमान किन्तु ध्यानहीन देखा ॥ १३-२७ ॥

समुत्तस्थौ स वेगेन दृष्ट्वा देवर्षिपुङ्गवम् ।
दत्त्वाऽमलं फलं मूलं संभाषां स चकार ह ॥ २८ ॥
प्रश्नं चकार स मुनिर्वीणापाणिं च नारदम् ।
सस्मितः सस्मितं शुद्धं शुद्धवंशसमुद्भवम् ॥ २९ ॥
सद्भाग्योपस्थितं दीप्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।

अतिथिं ब्राह्मणवरं ब्रह्मपुत्रं च पूजितम् ॥ ३० ॥

मुनिपुङ्गव नारद को देखकर वेग से खड़े हुए और पवित्र फल मूल उन्हें देकर बातचीत करते हुए सस्मित हो वे शुद्ध, शुद्ध वंश में उत्पन्न, सस्मित, सद्भाग्योपस्थित, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त, पूजित, ब्रह्मपुत्र, ब्राह्मणवर, वीणापाणि अतिथि नारद से प्रश्न करने लगे ॥ २८-३० ॥

मुनिरुवाच ।

किं नाम भवतो विप्र क्व यासीति क्व चागतः ।
क्व ते पिता स को वापि क्व वासः कुत्र संभवः ॥ ३१ ॥
मां वा ममाश्रमं वापि पूतं कर्त्तुमिहागतः ।
मूर्त्तिमद्ब्रह्मतेजो हि मम भाग्यादुपस्थितः ॥ ३२ ॥

मुनि बोले : हे विप्र ! आपका क्या नाम है ? आप कहाँ से आ रहे हैं ? आप कहाँ जा रहे हैं ? आपके पिता कौन और कहाँ हैं ? आपका जन्म कहाँ हुआ है ? आप मुझे और मेरे आश्रम को पवित्र करने के लिये ब्रह्मतेज के स्वयं मूर्तिमान स्वरूप होकर सौभाग्य से उपस्थित हुए हैं ॥ ३१-३२ ॥

अथ वैष्णव दर्शनफलम् ।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन वैष्णवो दर्शनेन च ॥ ३३ ॥
सद्यः पूतानि तीर्थानि सद्यः पूता ससागरा ।
सशैलकाननद्वीपा पादस्पर्शाद्वसुन्धरा ॥ ३४ ॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं मम जीवनम् ।
सहसोपस्थितो गेहे ब्राह्मणो वैष्णवोऽतिथिः ॥ ३५ ॥
पूजितो वैष्णवो येन विश्वं च तेन पूजितम् ।
आश्रमं वस्तुसहितं सर्वं तुभ्यं निवेदितम् ॥ ३६ ॥
फलानि च सुपक्वानि भुङ्क्ष्व भोगानि सांप्रतम् ।
सुवासितं पिब स्वादु शीतलं निर्मलं जलम् ॥ ३७ ॥
दुग्धं च सुरभीदत्तं रम्यं मधुरितं मधु ।

परिपक्वं फलरसं पिव स्वादु मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥
सुखवीज्ये सुतल्पे च शयनं कुरु सुन्दरे ।
सुशीतवातसौगन्ध्यपूतेन सुरभीकृते ॥ ३९ ॥

वैष्णव दर्शन का फल

जलमय तीर्थ और मृण्मय या शिलामय देव तो अधिक काल में पवित्र करते हैं; किन्तु वैष्णव दर्शन मात्र से पवित्र कर देता है। वैष्णव के पाद-स्पर्श से तीर्थ सद्यः पवित्र हो जाते हैं और सागर, वन, पर्वत तथा द्वीप सहित यह वसुन्धरा तत्काल पवित्र हो जाती है। मैं धन्य हूं, कृतकृत्य हूं; मेरा जीवन सफल है क्योंकि सहसा मेरे घर पर ब्राह्मण वैष्णव अतिथि उपस्थित हुआ है। जिसने वैष्णव की पूजा की है उसने विश्व की पूजा कर ली है। मैं समस्त वस्तुओं सहित यह आश्रम आपको अर्पित कर रहा हूं। अब आप अच्छी तरह पके फलों को खाइये और भोगों को भोगिये। सुगन्धित, सुस्वादु, शीतल, निर्मल जल और सुरभी द्वारा दिया गया मधुयुक्त मधुर तथा उत्तम दूध पीजिये। अच्छी तरह पके सुस्वादु फलों के रस का बार-बार पान कीजिये। आप उत्तम व्यजन से युक्त सुखमय, सुन्दर, शीतल और सुगन्धित, वायुपूत, सुरभियुक्त बिस्तर पर शयन कीजिये ॥ ३३-३९ ॥

अतिथिपूजन फलम् ।

अतिथिर्यस्य पुष्टो हि तस्य पुष्टो हरिः स्वयम् ।
हरौ तुष्टे गुरुस्तुष्टो गुरौ तुष्टे जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥
अधिष्ठाताऽतिथिर्गेहे सन्ततं सर्वदेवताः ।
तीर्थान्येतानि सर्वाणि पुण्यानि च व्रतानि च ॥ ४१ ॥
तपांसि यज्ञाः सत्यं च शीलं धर्मः सुकर्म च ।
अपूजितैरतिथिभिः सार्द्धं सर्वे प्रयान्ति ते ॥ ४२ ॥

अतिथिपूजन का फल

जिस पर अतिथि सन्तुष्ट होता है उस पर स्वयं हरि सन्तुष्ट होते हैं। हरि के सन्तुष्ट होने पर गुरु सन्तुष्ट होते हैं और गुरु के सन्तुष्ट होने पर तीनों लोक सन्तुष्ट हो जाते हैं। घर में अतिथि के निरन्तर

अधिष्ठित होने पर समस्त देवता, समस्त तीर्थ, सम्पूर्ण पुण्य तथा व्रत, सभी तप तथा यज्ञ, सत्य, शील, धर्म और सुकर्म ये सब अधिष्ठित रहते हैं, और अतिथि की पूजा न होने पर ये सब भी उसके साथ ही चले जाते हैं ॥ ४०-४२ ॥

अथातिथि विमुखे दोषाः ।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते ।
पितरस्तस्य देवाश्च पुण्यं धर्मव्रताशनाः ॥ ४३ ॥
यमः प्रतिष्ठा लक्ष्मीश्चाभीष्टदेवो गुरुस्तथा ।
निराशाः प्रतिगच्छन्ति त्यक्त्वा पापं च पूरुषम् ॥ ४४ ॥
स्त्रीघ्नैश्चैव कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः ।
विश्वासघातिभिर्दुष्टैर्मित्रद्रोहिभिरेव च ॥ ४५ ॥
सत्यघ्नैश्च कृतघ्नैश्च पापिभिः स्थापिभिस्तथा ।
दानापहारिभिश्चैव कन्याविक्रयिभिस्तथा ॥ ४६ ॥
सीमापहारिभिश्चैव मिथ्यासाक्षिप्रदातृभिः ।
ब्रह्मस्वहारिभिश्चैव तथा स्थाप्यस्वहारिभिः ॥ ४७ ॥
वृषवाहैर्देवलैश्च तथैव ग्रामयाजिभिः ।
शूद्रान्नभोजिभिश्चैव शूद्रश्राद्धाहभोजिभिः ॥ ४८ ॥
श्रीकृष्णविमुखैर्विप्रैर्हिंस्रैर्नरविघातिभिः ।
गुरावभक्तैरोगार्त्तैः शश्वन्मिथ्याप्रवादिभिः ॥ ४९ ॥
विप्रस्त्रीगामिभिः शूद्रैर्मातृगामिभिरेव च ।
अश्वत्थघातिभिश्चैव पत्नीभिः पतिघातिभिः ॥ ५० ॥
पितृमातृघातिभिश्च शरणागतघातिभिः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रैः शिलास्वर्णापहारिभिः ॥ ५१ ॥
तुल्यो भवति विप्रेन्द्रातिथिरेव त्वनर्चितः ।

अतिथि के विमुख होने के दोष

अतिथि जिसके घर से भग्नआशा होकर लौट जाता है उस पापी

पुरुष को उसके पितर, पुण्य, धर्म, व्रताहारी देव, यम, प्रतिष्ठा, लक्ष्मी, अभीष्ट देव तथा गुरु ये सभी छोड़ कर निराश हो लौट जाते हैं। जो विप्रेन्द अतिथि का पूजन नहीं करता वह स्त्रीघातक, कृतघ्न, ब्रह्मघ्न, गुरुतल्पग, विश्वासघाती, दुष्ट, मित्रद्रोही, सत्यघ्न, पापी, स्वापी, दानापहारी, कन्याविक्रयी, सीमापहारी, मिथ्या साक्षिदायी, ब्रह्मस्व धरोहरहारी, वृषवाह, देवल, ग्रामयाजी, शूद्रान्न तथा श्राद्धाहभोजी, श्रीकृष्णविमुख, हिंसक ब्राह्मण तथा मनुष्यघाती, गुरुविरोधी, रोगार्त, निरन्तर मिथ्याभाषी, विप्रस्त्रीगामी शूद्र, मातृगामी, अश्वत्थघाती, पतिघातिनी स्त्री, मातृ-पितृघाती, शरणागतघाती, शिला और स्वर्णापहारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के समान हो जाता है ॥ ४३-५१॥ ॥

इत्येवमुक्त्वा स मुनिः पूजयामास नारदम् ॥
मिष्टं च भोजयामास शाययामास भक्तितः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार कह कर उन मुनि ने नारद को मधुर भोजन तथा सेवापूर्वक शयन कराया ॥ ५२ ॥

श्रीनारद उवाच ।

नारदोऽहं मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मणो ब्रह्मणः सुतः ।
तपःस्थलादागतोऽहं यामि कैलासमीप्सितम् ॥ ५३ ॥
आत्मानं पावनं कर्त्तुं त्वां च द्रष्टुमिहागतः ।
पुनन्ति प्राणिनः सर्वे विष्णुभक्तप्रदर्शनात् ॥ ५४ ॥

श्रीनारद बोले : हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं ब्रह्मा का पुत्र नारद नामक ब्राह्मण हूं। मैं अपने तपःस्थल से आ रहा हूं और सभी के अभीष्ट कैलास को जाऊँगा। यहाँ मैं आपका दर्शन करके अपने को पवित्र करने के लिये आया हूं क्योंकि विष्णुभक्त के दर्शन से प्राणी अपने आप पवित्र हो जाते हैं ॥ ५३-५४ ॥

को भवान् ध्यानपूतश्च नग्नश्च कटमस्तकः ।
त्वत्कण्ठे कवचं कस्य सद्रत्नगुटिकान्वितम् ॥
किं ध्यायसे महाभाग श्रेष्ठदेवश्च को गुरुः ॥ ५५ ॥

ध्यानपूत, नग्न एवं कटमस्तक आप कौन हैं? आपके कण्ठ में

सद्रत्नों से जटित गुटिका में बन्द किसका कवच है ? हे महाभाग ! आप किसका ध्यान करते हैं ? कौन श्रेष्ठ देव आपके गुरु हैं ? ॥ ५५ ॥

मुनिरुवाच ।

जीवन्मुक्तो भवानेव पुनासि भुवनत्रयम् ।
यस्य यत्र कुले जन्म तस्य तत्तद्वचोमनः ॥ ५६ ॥
पुत्रे यशसि तोये च कवित्वेन च विद्यया ।
प्रतिष्ठायां च ज्ञायेत सर्वेषां मानसं नृणाम् ॥ ५७ ॥
विधाता जगतां ब्रह्मा ब्रह्मैकतानमानसः ।
तत्पुत्रोऽसि महाख्यातो देवर्षिप्रवरो महान् ॥ ५८ ॥

लोमशोऽहं महाभाग जगत्पावनपावन ।
नग्नोऽल्पायुर्विवेकी च वाससा किं प्रयोजनम् ॥ ५९ ॥
वृक्षमूले निवासो मे छत्रेण किं गृहेण च ।
रौद्रवृष्टिवारणार्थं साम्प्रतं कटमस्तकः ॥ ६० ॥
जलबुद्बुदविद्युद्वत्त्रैलोक्यं कृत्रिमं द्विज ।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव स्वप्नवत् ॥ ६१ ॥
किं कलत्रेण पुत्रेण धनेन संपदा श्रिया ।
किं वित्तेन च रूपेण जीवनाल्पायुषा मुने ॥ ६२ ॥
इन्द्रस्य पतनेनैव लोमैकोत्पाटनं मम ।
मनोश्च पतनं तत्र मायया किं प्रयोजनम् ॥ ६३ ॥
सर्वलोमोत्पाटनेन केशौघोत्पाटनेन च ।
अल्पायुषो मम मुने मरणं निश्चितं भवेत् ॥ ६४ ॥
ध्याये श्रीपादपद्मं तत् पाद्मपद्मेशवन्दितम् ।
परस्य प्रकृतेस्तस्य कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ६५ ॥
तस्य मेऽभीष्टदेवस्य सर्वेषां कारणस्य च ।
गुरुर्मे जगतां नाथो योगीन्द्राणां गुरुः शिवः ॥ ६६ ॥

मत्कण्ठे कवचं यस्य मद्गुरुः कथयिष्यति ।
गुरोर्निषेधो यत्रास्ते तद्वक्तुं कः क्षमो भुवि ॥ ६७ ॥
गुरोश्च वचनं यो हि पालनं न करोति च ।
गुरूक्तमुक्त्वा पापी स ब्रह्महत्यां लभेत् ध्रुवम् ॥ ६८ ॥
स्वगुरुं शिवरूपं च तद्भिन्नं मन्यते हि यः ।
ब्रह्महत्यां लभेत् सोऽपि विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ ६९ ॥
अकर्त्तव्यं तु कर्त्तव्यं पालनीयं गुरोर्वचः ।
अपालने सर्वविघ्नं लभते नात्र संशयः ॥ ७० ॥
आशिषा पादरजसा चोच्छिष्टालिङ्गनेन च ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ ७१ ॥
स्वगुरुं शङ्करं पश्य गच्छ कैलासमीश्वरम् ।
मुच्यते विघ्नपापेभ्यो गुरोश्चरणदर्शनात् ॥ ७२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
लोमशनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मुनि बोले : आप जीवनमुक्त हैं। आप तीनों लोकों को पवित्र करते हैं। जिस कुल में जिसका जन्म होता है उसी के अनुरूप उसको वाणी और मन हो जाते हैं। पुत्र में, यश में, जल में, कवित्व में, विद्या में तथा प्रतिष्ठा में सभी मनुष्यों के मन का ज्ञान होता है। ब्रह्मा जी सम्पूर्ण जगत् के विधाता हैं। अपने मन को एकमात्र ब्रह्मा में ही लगाये हुए आप उनके पुत्र, महाविख्यात और महान देवर्षि प्रवर हैं। हे महाभाग, हे सबको पावन करने वाले ! मेरा नाम लोमश है। मैं नग्न अल्पायु और विवेकी हूं। मुझे वस्त्र की क्या आवश्यकता है ? वृक्ष के नीचे मेरा निवास है। छत्र और गृह से मुझे क्या प्रयोजन ? रौद्रवृष्टि के निवारण के लिये मैं इस समय कटमस्तक (मस्तक पर जटा-जूट धारण किये हुये) हूं। जल के बुलबुले और विद्युत के समान ये तीनों लोक कृत्रिम हैं। हे द्विज ! ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सबकुछ स्वप्नवत् मिथ्या है। स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति, और लक्ष्मी से क्या ? हे मुने ! जब जीवन ही अल्पायु हो तो वित्त और रूप से क्या लाभ ? मेरे एक रोम

के उत्पाटन से एक इन्द्र का तथा मनु का पतन हो जाता है—तब मुझे माया से क्या प्रयोजन ? मेरे सभी लोगों का पतन हो जाने पर मुझ अल्पायु की मृत्यु निश्चित है। ब्रह्मा, महादेव तथा लक्ष्मी से वन्दित, प्रकृति से परे और सर्वकारणस्वरूप अपने अभीष्ट देव परमात्मा श्रीकृष्ण के पादपद्म का मैं ध्यान करता हूं। सब के कारण श्रीकृष्ण मेरे इष्टदेव हैं और योगीन्द्रों के गुरु शिव मेरे गुरु हैं। मेरे कण्ठ में जिसका कवच है उसे मेरे गुरु आपको बतायेंगे। गुरु का निषेध होने के कारण मैं इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता; और संसार में ऐसा कौन है जो इस प्रकार निषेध के बाद कुछ कहेगा। जो गुरु के वचन का पालन नहीं करता वह पापी होकर निश्चित रूप से ब्रह्महत्या का भागी होता है। जो अपने गुरु को शिव से भिन्न मानता है वह भी ब्रह्महत्या का भागी होता है और उसके लिये पग-पग पर विघ्न उपस्थित होते हैं। गुरु की आज्ञा यदि अकरणीय भी हो तो उसका पालन करना चाहिये। उनकी आज्ञा का पालन न करने पर मनुष्य के सामने अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। गुरु के आशीर्वाद से, उनके पद-रज से और उनके उच्छिष्टालिङ्गन से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर जीवनमुक्त हो जाता है। अतः आप कैलास जाकर अपने गुरु शंकर भगवान् का दर्शन करें क्योंकि अपने गुरुचरण के दर्शन से मनुष्य विघ्नों और पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ५६-७२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार का प्रथम रात्रि में
लोमश-नारद संवाद रूपी षष्ठ अध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे सप्तमोऽध्यायः

श्रीव्यास उवाच ।

संभाष्य लोमशं तस्माज्जगाम नारदो मुनिः ।
पुष्पभद्रानदीतीरमतीव सुमनोहरम् ॥ १ ॥
यत्रास्ते शृङ्गकूटश्च शुद्धस्फटिकसन्निभः ।
नानावृक्षसमायुक्तैस्त्रिभिरन्यैः सरवोरैः ॥ २ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णैर्भ्रमरैर्ध्वनिसुन्दरैः ।
पुंस्कोकिलनिनादैश्च सन्ततं सुमनोहरैः ॥ ३ ॥
शैत्यसौगन्ध्यमान्द्यैश्च वायुभिः सुरभीकृतैः ।
समाधियुक्तो यत्रास्ते मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ ४ ॥
स मुनिर्नारदं दृष्ट्वा भक्त्या च प्रणनाम च ।
पप्रच्छ कुशलं शान्तं शान्तः सत्त्वगुणाश्रयः ॥ ५ ॥

श्री व्यास जी बोले : लोमश ऋषि से वार्तालाप करने के बाद श्री नारद मुनि अत्यन्त मनोहर पुष्पभद्रा नदी के तट पर गये जहाँ शुद्ध स्फटिक के समान शृङ्गकूट स्थित है; जो नाना प्रकार के वृक्षों तथा हंसों और कारण्डवों से व्याप्त, भ्रमरों की ध्वनि से सुन्दर, पुंस्कोकिल की ध्वनियों से मनोहर, शीतल सुगन्धित मन्द पवन से सुवासित, तथा तीन अन्य सरोवरों से युक्त है। वहाँ पर मार्कण्डेय महामुनि समाधियुक्त थे। उन मुनि ने नारद जी को देखकर भक्ति से प्रणाम किया। सत्त्व-गुण धाम उन शान्त ऋषि ने शान्त नारद जी से पूछा ॥ १-५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं चातिसार्थकम् ।
ममाश्रमे पुण्यराशिर्ब्रह्मपुत्रश्च नारदः ॥ ६ ॥
अहो देवर्षिप्रवरो दीप्तिमान् ब्रह्मतेजसा ।

क्व यासि कुत आयासि किं ते मनसि वर्त्तते ॥ ७ ॥
मानसं प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणं ।
मनोऽनुरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय बोले : अहो, आज मेरा जन्म सफल और जीवन अत्यन्त सार्थक हो गया क्योंकि मेरे आश्रम में पुण्य राशि, ब्रह्मतेज से दीप्तिमान, देवर्षियों में श्रेष्ठ नारद जी पधारे हैं। कहें आप कहां से आये हैं, कहाँ जा रहे हैं और आपका उद्देश्य क्या है ? प्राणियों का मन ही समस्त कर्मों का एकमात्र कारण है। वाक्य मनोरूप हैं। वाक्य से ही मन प्रस्फुटित होता है ॥ ६-८ ॥

मुनेश्च वचनं श्रुत्वा वीणापाणि स्वमीप्सितम् ।
उवाच सस्मितं शान्तं वचः सत्यं सुधोपमम् ॥ ९ ॥

मुनि के वचन को सुनकर वीणापाणि नारद जी ने मुस्कराते हुए शान्त, सत्य और अमृत के समान वाणी में अपने अभीप्सित को कहा ॥ ९ ॥

नारद उवाच ।

हे बन्धो यामि कैलासं ज्ञानार्थं ज्ञानिनां वरम् ।
द्रष्टुं महादेवं प्रणामं कर्त्तुमीश्वरम् ॥ १० ॥

नारद जी बोले : हे बन्धो ! ज्ञान के लिये ज्ञानियों में श्रेष्ठ ईश्वर महादेव के दर्शन तथा प्रणाम के लिये मैं कैलास पर जा रहा हूं ॥ १० ॥

पूजां गृहीत्वा चेत्युक्त्वा प्रययौ नारदो मुनिः ।
मार्कण्डेयश्च शोकार्त्तः सद्विच्छेदः सुदारुणः ॥ ११ ॥

यह कहकर तथा मार्कण्डेय जी से पूजा पाकर जब नारद मुनि चल पड़े तब मार्कण्डेय ऋषि शोकार्त हो गये क्योंकि सज्जन का विच्छेद अत्यन्त दारुण होता है ॥ ११ ॥

हिमालयं च दुर्लंघ्य विघ्लंय चैव लीलया ।
स्वर्गमन्दाकिनीतीरं कैलासं प्रययौ मुनिः ॥ १२ ॥
ददर्श वटवृक्षं च योजनायतमुच्छ्रितम् ।
शोभितं शतकैः स्कन्धैः रक्तपक्वफलान्वितैः ॥ १३ ॥

सुस्निग्धैः सुन्दरै रम्यै रम्यपक्षीन्द्रसंकुलैः ।
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च योगीन्द्रैः परिशोभितम् ॥ १४ ॥
प्रणतांस्तांश्च संभाष्य पार्वतीकाननं ययौ ।
सुन्दरं वर्तुलाकारं चतुर्योजनमीप्सितम् ॥ १५ ॥
शोभितं सुन्दरै रम्यैः सप्तभिश्च सरोवरैः ।
शश्वन्मधुकरासक्तपद्मराजिविराजितैः ॥ १६ ॥
नीलरक्तोत्पलदलपटलैः परिशोभितैः ।
पुष्पोद्यानैश्च शतकैः पुष्पितैः सुमनोहरैः ॥ १७ ॥
मल्लिकामालतीकुन्दयूथिकामाधवीलता ।
केतकीचम्पकाशोकमन्दारकविराजिका ॥ १८ ॥
नागपुन्नागकुटजपाटलाझिण्टिझिञ्झिका ।
विष्णुक्रान्ता च तुलसी शेफाली सप्तला तथा ॥ १९ ॥
एतेषां च समूहैश्च पुष्पवल्लीविराजितैः ।
आम्रैराम्रातकैस्तालनारिकेलैः पियालकैः ॥ २० ॥
खर्जूरैश्च गुवाकैश्च पलाशैर्जम्बुभिस्तथा ।
दाडिम्बैश्चापि जम्बीरैर्निम्बैश्चैव वटैस्तथा ॥ २१ ॥
करञ्जैर्बदरीभिश्च परितः श्रीफलोज्ज्वलैः ।
कदम्बानां कदम्बैश्च तिन्तिडीनां कदम्बकैः ॥ २२ ॥
अश्वत्थैः सरलैः शालैः शाल्मलीनां समूहकैः ।
वटशाखोटकैः कुन्दैः शंगुभिः सप्तपर्णकैः ॥ २३ ॥
पिच्छिलैः पर्णशालैश्च गम्भारिभिश्च वल्गुकैः ।
हिंगुलैरञ्जनैर्वल्कैर्भूर्जपत्रैः सपत्रकैः ॥ २४ ॥
अन्यैश्च दुर्लभैर्वन्यैः पुष्पपत्रैर्विराजितम् ।
कल्पवृक्षैः पारिजातैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥ २५ ॥
सुस्निग्धस्थलपद्मैश्च चित्रितैर्भूमिचम्पकैः ।

अन्यैश्च दुर्लभैर्वन्यैः पुष्पपत्रैर्विभूषितम् ॥ २६ ॥

दुर्लंघ्य हिमालय को सरलता से पार कर मुनि स्वर्गमन्दाकिनी के तट पर स्थित कैलास पर गये। वहाँ उन्होंने एक योजन विस्तृत, सैकड़ों शाखाओं वाला और लाल पके फलों से सुशोभित एक विशाल वट वृक्ष देखा। वह सुन्दर, स्निग्ध और रम्य पक्षिराजों से संकुलित था तथा योगीन्द्रों, मुनीन्द्रों और सिद्धेन्द्रों से सुशोभित हो रहा था। उन सबको प्रणाम करके नारद ने उनसे संभाषण किया। तदनन्तर वे सबके द्वारा अभीप्सित अत्यन्त सुन्दर पार्वती कानन गये जो वर्तुलाकार, चार योजन विस्तृत और सात सुन्दर तथा रम्य सरोवरों से सुशोभित था। उनमें खिले कमलों पर निरन्तर आसक्त भ्रमर पंक्तियाँ विराजमान थीं और उनमें नीले तथा रक्तवर्ण कमल सुशोभित हो रहे थे। वह कानन सैकड़ों सुन्दर और पुष्पित पुष्पोद्यानों से शोभित था। उसमें मल्लिका, मालती, कुन्द, यूथिका, माधवीलता, केतकी, चम्पा, अशोक, मन्दार, कविराजिका, नाग, पुन्नाग, कुटज, पाटला, झिण्टी, भिञ्झिका, विष्णुक्रान्ता, तुलसी, शेफाली तथा सप्तला आदि के समूह विराजमान थे। अन्य स्थानों पर आम, आम्रातक, ताल, नारिकेल, पियाल, खजूर, गुवाक, पलाश, जम्बू, दाडिम, जम्बीर, निम्ब, वट, करञ्ज, बदरी, उज्ज्वल श्रीफल, कदम्ब, तिन्तिडी, अश्वत्थ, सरल, शाल्मलि, वट शाखोटक, कर्णशाल, गम्भारी, वल्गुक, हिंगुल, अञ्जन, वल्क, भूर्जपत्र, सप्तपर्ण, तथा अन्यान्य दुर्लभ पुष्प-पत्रादि विराजित थे। वहाँ कल्पवृक्ष, पारिजात और सुन्दर चन्दन के वृक्ष भी थे। अन्यत्र सुस्निग्ध स्थल-पद्म, विभिन्न रंगों के भूमि चम्पक, तथा अन्यान्य दुर्लभ वृक्ष त था सुन्दर पुष्प और पत्र सुशोभित थे ॥ १२-२६ ॥

सिंहेन्द्रैः शरभेन्द्रैश्च गजेन्द्रैर्गण्डकेन्द्रकैः ।
शार्दूलेन्द्रैश्च महिषैरश्वैश्च वन्यशूकरैः ॥ २७ ॥
शल्लकैर्भल्लकैर्मर्कैः कूटैश्च शशकैः शकैः ।
कृष्णसारैश्च हरिणैश्चमरीचामरोज्वलम् ॥ २८ ॥

कुछ स्थानों पर सिंह, शरभ, गज, गण्डक, व्याघ्र, महिष, अश्व और वन्य शूकर विचारण कर रहे थे और कहीं शल्लक, भल्लक, वानर, शश, कूट, शक, कृष्णमृग, चमरी गाय, आदि पशु विद्यमान थे।२७-२८।

पुंस्कोकिलकुलानां च गानैश्चैव विराजितम् ।
मत्तानां पल्लवस्थानां माधवेषु मनोहरम् ॥ २९ ॥
शुकानां राजहंसानां मयूराणां च पुत्रकैः ।
क्षेमंकरीखञ्जनानां राजिभिश्च मनोहरम् ॥ ३० ॥

कहीं पर मनोहर वसन्तागमन से मत्त होकर पुंस्कोकिल वृक्षों की शाखों पर बैठकर गान कर रहे थे और कहीं शुक, राजहंस, बच्चों सहित मोर, क्षेमंकरी तथा खञ्जन आदि स्थान को मनोहरता प्रदान कर रहे थे ॥ २९-३० ॥

हरित्पीतरक्तकृष्ण सुपक्वफलपत्रकैः ।
सुस्निग्धाक्षतपत्रैश्च नूतनैरभिभूषितम् ॥ ३१ ॥
हिंसाभयादिरहितं सर्वेषां पशुपक्षिणाम् ।
परस्परं च सुप्रीतं हिंस्राणां क्षुद्रजन्तुभिः ॥ ३२ ॥
तत्र क्रीडास्थलं रम्यं पार्वतीपरमेशयोः ।
मुनीन्द्रैरिन्द्रनीलैश्च पद्मरागैः परिष्कृतम् ॥ ३३ ॥
क्रोशायतं परिमितं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत् ।
अम्लानरम्भास्तम्भानां लक्षलक्षैश्च वेष्टितम् ॥ ३४ ॥
चित्रितं सूक्ष्मसूत्राक्तैर्नूतनैरभिभूषितम् ।
नूतनाक्षतपत्रैश्च ललितैः परिशोभितम् ॥ ३५ ॥
रक्तपीतासितैः स्निग्धैरम्लानैः सुमनोहरैः ।
परितः परितः शश्वन्मालाजालैर्विभूषितम् ॥ ३६ ॥
शय्याभूतं सुतल्पैश्च स्निग्धचम्पकचन्दनैः ।
पुष्पचन्दनयुक्तेन वायुना सुरभीकृतम् ॥ ३७ ॥
कस्तूरीकुंकुमासक्तसुगन्धि चन्दनैः सितैः ।
मार्जितं चित्रितं चित्रैः परितो रङ्गवस्तुभिः ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं शीघ्रं प्रययौ स्वर्णदीं मुनिः ।

शुद्धस्फटिकसंकाशां सर्वपापविनाशिनीम् ॥ ३९ ॥
भवाब्धिघोरतरणे तरणीं नित्यनूतनाम् ।
कृष्णपादप्रसूतां च जगत्पूज्यां पतिव्रताम् ॥ ४० ॥

पुनः कुछ स्थानों पर सुपक्व फल और हरे, पीले, लाल, काले, आदि रंगों के नवपल्लव शोभित हो रहे थे। वहाँ के पशु-पक्षी सभी हिंसा आदि के भय से रहित थे। हिंसक जीव और क्षुद्र जीव दोनों ही परस्पर प्रेमपूर्वक रहते थे। इस प्रकार पार्वती और शिव का वह रम्य क्रीडास्थल मुनीन्द्रों, इन्द्रनील मणियों तथा पद्मरागों से परिष्कृत हो रहा था। उस स्थान का विस्तार एक कोश, आकार चन्द्रबिम्ब के समान वर्तुल, तथा वह चारों ओर लाखों-लाख कदली वृक्षों से वेष्टित था। वे सभी वृक्ष नूतन सूक्ष्म सूत्रों से चित्रित, नूतन अक्षत तथा ललित पत्रों से भूषित थे। सम्पूर्ण प्रदेश लाल, पीले, नीले, चिकने, सुमनोहर मालाजालों से चारों ओर निरन्तर विभूषित था। स्निग्ध चम्पा और चन्दन से सारा वायुमण्डल सुगन्धित, कस्तूरी तथा केसर की सुगन्धि से सुवासित, श्वेत चन्दन से मार्जित, रंग द्रव्यों से निर्मित चित्रों से चारों ओर चित्रित शय्या के समान उस अद्भुत स्थान को देखकर नारद मुनि शीघ्रता से शुद्ध स्फटिक के समान, सर्वपापविनाशिनी, घोर संसार सागर को पार करने में नित्य नूतन नौका के समान श्रीकृष्ण के चरणों से निकली जगत्पूज्या पतिव्रता स्वर्ण नदी की ओर चले ॥ ३१-४० ॥

स्नात्वा कृष्णं च संपूज्य परमात्मानमीश्वरम् ।
प्रकृतेः परिमिष्टं च निर्लिप्तं निर्गुणं परम् ॥ ४१ ॥
साक्षिणं कर्मणामेव ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ।
प्रययौ पुरतो रम्यं राजमार्गं ददर्श सः ॥ ४२ ॥
मणिभिः स्फटिकाकारैरमलैर्बहुमूल्यकैः ।
परिष्कृतं च सर्वत्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४३ ॥
सतां पुण्यवतां दृष्टमदृष्टं कृतपापिनाम् ।
धनुःशतं परिमितं चित्रराजिविराजितम् ॥ ४४ ॥

दर्श्य सर्वाश्रमान्तं च प्रख्यात् कोटिगुणोत्तरम् ।
रथं ददर्श पुरतो मनोयायि मनोहरम् ॥ ४५ ॥

वहाँ स्नान करके और परमात्मा, ईश्वर, प्रकृति से परे, इष्टदेव, निर्लिप्त, निर्गुण, श्रेष्ठ कर्मों के साक्षी, ब्रह्मज्योति तथा सनातन श्रीकृष्ण की पूजा करके वे (नारद) अपनी यात्रा पर चल पड़े और सामने राजमार्ग देखा जो बहुमूल्य स्फटिकाकार मणियों से सर्वत्र परिष्कृत और विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया था। उस मार्ग पर किसी प्रकार की गन्दगी नहीं थी। उन्होंने वहाँ सामने ही एक मनोहर रथ देखा जो मन की गति से चलने वाला और पुण्यवानों को ही दृष्ट तथा पापियों के अदृष्ट था। उसकी चौड़ाई एक सौ धनुष के बराबर थी (एक धनुष= ४ हाथ या ६ फुट) और वह सुन्दर चित्रपंक्तियों से सुशोभित था। सभी आश्रमों के अन्त तक पहुंचने वाली उसकी लम्बाई उसकी चौड़ाई से एक करोड़ गुना अधिक थी। ॥ ४१-४५ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणविमानसारसुन्दरम् ।
धनुर्लक्षं परिमितं परितो वर्तुलाकृतम् ॥ ४६ ॥
ऊर्ध्वस्थितमूर्ध्वगं च सहस्रचक्रसंयुतम् ।
धनुर्लक्षेऽपि सूतं च वह्निशुद्धांशुकान्वितम् ॥ ४७ ॥
हीरासारविनिर्माणं सुचारुकलशोज्ज्वलम् ।
रत्नप्रदीपदीप्ताढ्यं रत्नदर्पणभूषितम् ॥ ४८ ॥
मुक्ताशुक्तिनिबद्धैश्च शोभितं श्वेतचामरैः ।
माणिक्यसारहारेण मणिराजैर्विराजितम् ॥ ४९ ॥
पारिजातप्रसूनानां मायाजालैः परिष्कृतम् ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रसदृशोज्ज्वलम् ॥ ५० ॥
ईश्वरेच्छाविनिर्माणं कामपूरं च कामिनाम् ।
सर्वभोगसमाविष्टं कल्पवृक्षपरं वरम् ॥ ५१ ॥
संसक्तचित्रितैरम्यैरतिमन्दिरसुन्दरैः ।
गोलोकादागतं पूर्वं क्रीडार्थं शङ्करस्य च ॥ ५२ ॥

विवाहे परिनिष्पन्ने पार्वतीपरमेशयोः ।

वह रथ (विमान) बहुमूल्य रत्नों और मणियों से निर्मित तथा सभी विमानों के सार के समान सुन्दर था। उसका आकार गोल था और उसकी परिधि एक लाख धनुषों के बराबर थी। एक सहस्र चक्रों वाले उस ऊर्ध्वगामी विमान की ऊँचाई बहुत अधिक थी। उसका सारथि एक लाख धनुष की ऊँचाई पर बैठा था और सम्पूर्ण विमान अग्निशुद्ध वस्त्र से ढँका हुआ था। अत्यन्त उत्कृष्ट हीरों से उसका निर्माण हुआ था। वह सुन्दर कलशों के समान उज्ज्वल, रत्न प्रदीपों से प्रचुर प्रकाशित, रत्नमय दर्पणों से विभूषित, मुक्ताशुक्ति के समान श्वेत चामरों से सुशोभित तथा उत्तम माणिक्यहारों और मणिपंक्तियों से मण्डित था। पारिजात पुष्पों की मालाओं से उसे सजाया गया था। ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालिक सहस्रों सूर्य के समान वह विमान उज्ज्वल था। उसका निर्माण ईश्वरेच्छा से हुआ था और वह कामियों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष के समान सभी भोगों से युक्त था। उसके कमरों में अत्यन्त सुन्दर चित्र लगे थे। शिव तथा पार्वती का विवाह निष्पन्न हो जाने के बाद शिव जी की क्रीडा के लिये सर्वप्रथम वह विमान गोलोक से आया था ॥ ४६-५२॥ ॥

रथं दृष्ट्वा च प्रययौ कियद्दूरं महामुनिः ॥ ५३ ॥
अतीव रम्यं रुचिरं ददर्श शङ्कराश्रमम् ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं शिबिरैः शतकोटिभिः ॥ ५४ ॥
मितैस्तस्मात् शतगुणैस्तत्र सुन्दरमन्दिरैः ।
युक्तं रत्नकपाटैश्च रत्नधातुविचित्रितैः ॥ ५५ ॥
परमस्तम्भसोपानैर्वज्रमिश्रैर्विभूषितम् ।
ददर्श शिबिरं शम्भोः परिखाभिस्त्रिभिर्युतम् ॥ ५६ ॥

रथ को देखकर महामुनि कुछ दूर आगे गये। वहाँ उन्होंने अत्यन्त रम्य तथा रुचिर शङ्कर के आश्रम को देखा। रत्नसार से उस आश्रम का निर्माण हुआ था और उसके चारों ओर अरबों शिविर थे। उस आश्रम में सैकड़ों सुन्दर मन्दिर थे जो रत्नों और धातुओं से चित्रित तथा रत्न कपाटों से युक्त थे। हीरे जड़े सुन्दर स्तम्भ और मनोहर

सीढ़ियाँ उनकी शोभावृद्धि कर रही थीं। वहाँ उन्होंने तीन परिखाओं से युक्त शिव जी के शिविर को देखा ॥ ५३-५६ ॥

दुर्लंघ्याभिरमित्राणां सुगम्याभिः सतामहो ।
प्राकारैश्च त्रिभिर्युक्तं धनुर्लक्षोच्छ्रितं सुत ॥ ५७ ॥
सम्मितं सप्तभिर्द्वारैर्नानारक्षकरक्षितैः ।
धनुःशतसहस्रं च चतुरस्रं च सम्मितम् ॥ ५८ ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं चतुःशालाशतैर्युतम् ।
अतीव रम्यं पुरतो पुरद्वारं ददर्श सः ॥ ५९ ॥

हे पुत्र ! वह शिविर एक लाख धनुष ऊँचा, शत्रुओं से दुर्लंघ्य और सज्जनों से सुगम्य, तीन प्राकारों से घिरा हुआ था। वह अनेक रक्षकों से रक्षित सात द्वारों से युक्त, एक लाख धनुष-परिमाण विस्तार वाला तथा चतुष्कोण था। नारद ने सामने ही महल का अत्यन्त रम्य द्वार देखा जिसके भीतर अमूल्य रत्नों से निर्मित सैकड़ों चौकोर शालायें थीं ॥ ५७-५९ ॥

पुरतो रत्नभित्तौ च कृत्रिमं च सुशोभितम् ।
पुण्यं वृन्दावनं रम्यं तन्मध्ये रासमण्डलम् ॥ ६० ॥
सर्वत्र राधाकृष्णं च प्रत्येकं रतिमन्दिरे ।
रम्यं कुञ्जकुटीराणां सहस्रं सुमनोहरम् ॥ ६१ ॥
सुगन्धि पुष्पशय्यानां सहस्रं चन्दनोक्षितम् ।
द्वारपालं च तत्रैव मणिभद्रं भयंकरम् ॥ ६२ ॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम् ।
तं संभाष्य विलोक्यैवं द्वितीयद्वारमीप्सितम् ॥ ६३ ॥

वहाँ रत्नों से निर्मित दीवारों पर कृत्रिम पुण्य वृन्दावन् तथा उसके मध्य सुन्दर रासमण्डल और प्रत्येक रतिमन्दिर में सर्वत्र राधाकृष्ण को देखा। उन्होंने सहस्रों कुञ्जकुटीरों तथा अत्यन्त मनोहर, सुगन्धित और चन्दनोक्षित सहस्रों पुष्प शय्याओं को भी देखा। वहीं पर उन्होंने उत्तम व्याघ्रचर्म पहने हुए, त्रिशूल और पट्टिश धारण किये हुए द्वारपाल

भयङ्कर मणिभद्र को देखा। उससे संभाषण करके वे अभीप्सित द्वार की ओर चल पड़े ॥ ६०-६३ ॥

जगाम च मुनिश्रेष्ठो ददर्श चित्रमुत्तमम् ।
कदम्बानां समूहं च तन्मूलं च मनोहरम् ॥ ६४ ॥
रत्नभित्तिसमायुक्तं कालिन्दीकूलमुत्तमम् ।
स्नातं गोपीसमूहं च नग्नसर्वाङ्गमद्भुतम् ॥ ६५ ॥
कदम्बाग्रे च श्रीकृष्णं वस्त्रपुञ्जकरं परम् ।
तत्रैव शूलहस्तं च महाकालं ददर्श च ॥ ६६ ॥
कृपालुं द्वारपालं तं संभाष्य नारदो मुनिः ।
प्रययौ शीघ्रगामी स तृतीयद्वारमुत्तमम् ॥ ६७ ॥

आगे चलकर मुनिश्रेष्ठ ने एक उत्तम चित्र देखा। कदम्बों के समूह तथा उनकी मनोहर छाया, रत्नमण्डित दीवारों से युक्त कालिन्दी के उत्तम किनारे, सर्वाङ्ग नग्न स्नान करती हुई गोपियों का अद्‌भुत समूह, कदम्ब के ऊपर वस्त्रों को एकत्र किये हुए परमदेव श्रीकृष्ण तथा वहीं पर शूलहस्त महाकाल को भी देखा। शीघ्रगामी नारद मुनि उस द्वार के कृपालु द्वारपाल से वार्ता करके उत्तम तृतीय द्वार की ओर चल पड़े ॥ ६४-६७ ॥

ददर्श तत्र पुरतः कृत्रिमं वटमूलकम् ।
गोपानां च समूहं च पीताम्बरधरं परम् ॥ ६८ ॥
बालक्रीडां च कुर्वन्तं तन्मध्ये कृष्णमुत्तमम् ।
ब्राह्मणीभिः प्रदत्तं च भुक्तवन्तं सुपायसम् ॥ ६९ ॥
कुर्वन्तं च समाधानं मुनेःवामकरेण च ।
गृहीत्वा तदनुज्ञां च चतुर्थं द्वारमीप्सितम् ॥ ७० ॥

वहाँ उन्होंने सामने एक कृत्रिम वटवृक्ष देखा। वहीं पर गायों के समूह को, तथा बालक्रीडा करते हुए, ब्रह्मचारियों द्वारा प्रदत्त खीर खाते हुए तथा बाँये हाँथ से मुनि का समाधान करते हुए परमोत्तम श्रीकृष्ण को देखा। उनसे आज्ञा लेकर मुनि तब चतुर्थ द्वार की ओर चल पड़े ॥ ६८-७० ॥

प्रययौ ब्रह्मपुत्रश्च ददर्श चित्रमुत्तमम् ।
गोवर्धनं पर्वतं च तत्र कृष्णकरस्थितम् ॥ ७१ ॥
गोकुलं गोकुलस्थानां गोपीनां चैव रक्षणम् ।
व्याकुलं गोकुलं भीतं शक्रवृष्टिभयेन च ॥ ७२ ॥
अभयं दत्तवन्तं च कृष्णं दक्षकरेण च ।
नन्दिनं द्वारपालं च शूलहस्तं च सस्मितम् ॥ ७३ ॥
विलोक्य प्रययौ विप्रः पञ्चमं द्वारमुत्तमम् ।
नानाकृत्रिमचित्राढ्यं वीरभद्रान्वितं परम् ॥ ७४ ॥
तत्रैव नीपमूलं च यमुनाकूलमेव च ।
कालीयदमनं तत्र कृत्रिमं च ददर्श ह ॥ ७५ ॥

आगे जाकर ब्रह्मपुत्र नारद ने एक अन्य उत्तम चित्र देखा जिसमें व्याकुल और भयभीत गोकुल तथा गोकुलवासियों की इन्द्र की वृष्टि से रक्षा करने के लिये अपने एक हाथ पर गोवर्धन पर्वत उठाये तथा दाहिने हाथ से सबको अभयदान देते हुए श्री कृष्ण चित्रित थे। वहीं मुस्कराते हुए शूलहस्त द्वारपाल नन्दी को भी देखकर विप्र नारद उत्तम पञ्चम द्वार की ओर चल पड़े। वहाँ नाना प्रकार के कृत्रिम चित्रों से भरे हुए, वीरभद्र से युक्त, कदम्ब की छाया तथा कृत्रिम यमुना के तट और कालीयदमन को नारद जी ने देखा ॥ ७१-७५ ॥

तद्दृष्ट्वा सस्मितस्तुष्टः षष्ठद्वारं जगाम सः ।
द्वारे नियुक्तं बालं च शूलहस्तं चतुर्भुजम् ॥ ७६ ॥
रत्नसिंहासनस्थं च सस्मितं स्वगणाधिपम् ।
ददर्श चित्रं तत्रैव मथुरागमनं हरेः ॥ ७७ ॥
गोपिकानां विलापं च यशोदानन्दयोस्तथा ।
व्याकुलं गोकुलं चापि रथस्थं शरणं हरिम् ॥ ७८ ॥
अक्रूरं च तथा नन्दं निरानन्दं शुचाकुलम् ।

तद्दृष्ट्वा सप्तमद्वारं द्वारपालं ददर्श सः ॥ ७९ ॥
चित्रंकौतुकयुक्तं च मथुरायाः प्रवेशनम् ।
सबलं गोपसहितं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥ ८० ॥
मथुरानागरीभिश्च बालकैर्वानिरर्गलैः ।
वीक्षन्तं सादरं सर्वैर्नगरस्थैर्मनोहरम् ॥ ८१ ॥

उसे देखकर वह प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर मुस्कराते हुए छठे द्वार की ओर चल पड़े। इस द्वार पर नियुक्त शूलहस्त चतुर्भुज बालक को रत्नसिंहासन पर बैठे हुए उन्होंने गणाधिप को देखा। वहीं श्रीकृष्ण का मथुरा आगमन, यशोदा और नन्द तथा गोपियों का विलाप, व्याकुल गोकुल, रथ पर बैठे सबके शरणागत हरि, अक्रूर, तथा आनन्दरहित एवं शोक से व्याकुल नन्द का चित्र देखा। यह सब देखकर उन्होंने सप्तम द्वार और उसके द्वारपाल को देखा। यहाँ श्रीकृष्ण के मथुरा में प्रवेश करने का कौतुकयुक्त मनोहर चित्र था जिसमें गोप सहित, सबल, प्रकृति से परे श्रीकृष्ण को मथुरा की नागरियाँ, निर्मुक्त बालक तथा समस्त नगरनिवासी देख रहे थे ॥ ७६-८१ ॥

धनुर्भङ्गं तथा शंभोः कंसादिनिधनादिकम् ।
सभार्यं वसुदेवं च निगडान्मुक्तमीप्सितम् ॥ ८२ ॥
द्वारे नियुक्तं देवेशं गणेशं गणसंयुतम् ।
ध्यानस्थं च विभान्तं च शुद्धस्फटिकमालया ॥ ८३ ॥
जपन्तं परमं शुद्धं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ।
निर्लिप्तं निर्गुणं कृष्णं परमं प्रकृतेः परम् ॥ ८४ ॥

वहाँ शंभु का धनुर्भङ्ग, कंसादि का निधन और जंजीरों से मुक्त भार्या सहित वसुदेव का चित्र देखा। वहीं उन्होंने शुद्ध ब्रह्मज्योति, सनातन, निर्लिप्त, निर्गुण, प्रकृति से परे, देवेश परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यानस्थ हो जप करते हुए द्वार पर नियुक्त गणों सहित गणेश को शुद्ध स्फटिक की माला से प्रकाशित देखा ॥ ८२-८४ ॥

दृष्ट्वा तं च सुरश्रेष्ठं मुनिश्रेष्ठोऽपि नारदः ।
सामवेदोक्तस्तोत्रेण पुष्टाव परमेश्वरम् ॥

साश्रुनेत्रः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ ८५ ॥

सुरश्रेष्ठ गणेश को देखकर साश्रुनयन, पुलकित और भक्तिभाव से नम्र स्कन्धवाले मुनिश्रेष्ठ नारद ने सामवेदोक्त स्तोत्र से उन परमेश्वर की स्तुति की ॥ ८५ ॥

अथ गणपतिस्तोत्रम् ।

नारद उवाच ।

भो गणेश सुरश्रेष्ठ लम्बोदर परात्पर ।
हेरम्ब मङ्गलारम्भ गजवक्त्र त्रिलोचन ॥ ८६ ॥
मुक्तिद शुभद श्रीद श्रीधरस्मरणे रत ।
परमानन्द परम पार्वतीनन्दन स्वयम् ॥ ८७ ॥
सर्वत्र पूज्य सर्वेश जगत्पूज्य महामते ।
जगद्गुरो जगन्नाथ जगदीश नमोऽस्तु ते ॥ ८८ ॥

गणपतिस्तोत्र

नारद जी बोले : हे गणेश, सुरश्रेष्ठ, लम्बोदर, परात्पर, हेरम्ब, मङ्गलारम्भ, गजवक्त्र, त्रिलोचन, मुक्तिदाता, शुभदाता श्रीदाता, श्रीधरस्मरणरत, परमानन्द, परम, स्वयं पार्वतीनन्दन, सर्वत्रपूज्य, सर्वेश, जगत्पूज्य, महामते, जगद्गुरो, जगन्नाथ, जगदीश ! आपको नमस्कार हो ॥ ६८-८८ ॥

यत्पूजा सर्वपरतो यः स्तुतः सर्वयोगिभिः ।
यः पूजितः सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैस्तं नमाम्यहम् ॥ ८९ ॥

जिसकी पूजा सर्वप्रथम होती है, जो सब योगियों से स्तुत हैं, जो मुनीन्द्रों तथा सुरेन्द्रों से पूजित हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ ८९ ॥

परमाराधनेनैव कृष्णस्य परमात्मनः ।
पुण्यकेन व्रतेनैव यं प्राप पार्वती सती ॥ ९० ॥
तं नमामि सुरश्रेष्ठं सर्वश्रेष्ठं गरिष्ठक ।
ज्ञानिश्रेष्ठं वरिष्ठं च तं नमामि गणेश्वरम् ॥ ९१ ॥

परमात्मा कृष्ण के परमाराधन के पुण्यव्रत से सती पार्वती ने जिसे

पाया उन सुरश्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, गरिष्ठ, ज्ञानिश्रेष्ठ, वरिष्ठ गणेश्वर को नमस्कार करता हूं ॥ ९०-९१ ॥

इत्येवमुक्त्वा देवर्षिस्तत्रैवान्तर्दधे विभुः ।
नारदः प्रययौ शीघ्रमीश्वराभ्यन्तरं मुदा ॥ ९२ ॥

यह कहकर देवर्षि विभु नारद जी अन्तर्धान हो गये और शीघ्र ही ईश्वर के पास पहुंच गये ॥ ९२ ॥

इदं लम्बोदरस्तोत्रं नारदेन कृतं पुरा ।
पूजाकाले पठेन्नित्यं जयस्तस्य पदे पदे ॥ ९३ ॥
संकल्पितं पठेद्योहि वर्षमेकं सुसंयतः ।
विशिष्टपुत्रं लभते परं कृष्णपरायणम् ॥ ९४ ॥
यशस्विनं च विद्वांसं धनिनं चिरजीवनम् ।
विघ्ननाशो भवेत्तस्य महैश्वर्यं यशोऽमलम् ॥
इहैव च सुखं भक्त्या अन्ते याति हरेः पदम् ॥ ९५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
गणपतिस्तोत्रंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस लम्बोदर स्तोत्र का, जिसे पहले नारद ने बताया था, पूजा के समय नित्य पाठ करने वाले को पग-पग पर जय की प्राप्ति होती है। जो संकल्प सहित सुसंयत होकर एक वर्ष तक इसका पाठ करता है वह कृष्णपरायण, यशस्वी, विद्वान्, धनी चिरजीवी तथा विशिष्ट पुत्र को प्राप्त करता है; उसके विघ्नों का नाश हो जाता है। वह यहीं पर भक्ति से महान् ऐश्वर्य, पवित्र यश तथा सुख प्राप्त करता है और अन्त में हरि के स्थान को चला जाता है ॥ ९३-९५ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के प्रथम
रात्रि में गणपति स्तोत्र नामक
सप्तम अध्याय समाप्त ।

प्रथमैक रात्रे अष्टमोऽध्यायः

श्रीव्यास उवाच ।

अथ चाभ्यन्तरं गत्वा नारदो हृष्टमानसः ।
ददर्श स्वाश्रमं रम्यमतीव सुमनोहरम् ॥ १ ॥
पयःफेननिभशय्यासहितं रत्नमन्दिरम् ।
साक्षाद्गोरोचनाभैश्च मणिस्तम्भैर्विभूषितम् ॥ २ ॥
मणीन्द्रसारसोपानैः कपाटैश्च परिष्कृतम् ।
मुक्तामाणिक्यहीराणां मालाराजिविराजितम् ॥ ३ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं प्राङ्गणं मणिसंस्कृतम् ।
सुन्दरं मन्दिरचयं सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् ॥ ४ ॥
रत्नपत्रपटाकीर्णं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् ।
सुधानां च मधूनां च पूर्णकुम्भं शतं शतम् ॥ ५ ॥
दासदासीसमूहैश्च रत्नालंकारभूषितैः ।
पार्वतीप्रियसङ्घैश्च स्वकर्माकुलसंकुलम् ॥ ६ ॥

श्री व्यास जी बोले : अत्यन्त प्रसन्नचित्त नारद मुनि ने भीतर प्रवेश कर अतीव रम्य, मनोहर तथा सुन्दर आश्रम को देखा। वहाँ जल के फेन के समान धवल शय्या सहित रत्नमण्डित मन्दिर देखा जो साक्षात् गोरोचन की आभावाले मणिस्तम्भों से विभूषित, मणीन्द्रसार के सोपानों तथा कपाटों से विभूषित था। मुक्ता, माणिक्य और हीरों की मालाओं की पंक्तियाँ चारों ओर सुशोभित थीं। शुद्ध स्फटिक के समान और मणियों से संस्कृत आँगन, सद्रत्नों के कलशों से उज्ज्वल रत्नजटित पत्रों तथा पटों से व्याप्त, वह्निशुद्ध वस्त्रों से युक्त, अमृत तथा मधु के सैकड़ों पूर्णकुम्भों से युक्त और रत्नालंकार भूषित दास-दासियों के समूह से युक्त सुन्दर मन्दिरों के समूह को उन्होंने देखा जहाँ पार्वती की प्रिय सखियाँ और सेविकायें अपने-अपने कार्यों में व्यस्त थीं ॥ १-६ ॥

तद्दृष्ट्वा च मुनिश्रेष्ठस्तत्पराभ्यन्तरं ययौ ।
रत्नसिंहासनस्थं च शङ्करं च ददर्श सः ॥ ७ ॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम् ।
प्रसन्नवदनं स्वच्छं शान्तं श्रीमन्तमीश्वरम् ॥ ८ ॥
विभूतिभूषिताङ्गं च परं गङ्गाजटाधरम् ।
भक्तप्रियं च भक्तेशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥ ९ ॥
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च कोटिचन्द्रसमप्रभम् ।
जपन्तं परमात्मानं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ १० ॥

उसे देखकर मुनि श्रेष्ठ नारद उसके भी आगे गये। वहाँ उन्होंने रत्नसिंहासन पर बैठे शङ्कर को देखा जो व्याघ्रचर्म का परिधान धारण किये हुए, मुस्कराते हुए, चन्द्रशेखर, प्रसन्नवदन, स्वच्छ, शान्त, श्रीमान्, ईश्वर, विभूतिभूषिताङ्ग, पर, जटा में गङ्गा को धारण किये हुए, भक्तप्रिय, भक्तेश, ब्रह्मतेज से ज्वलन्त, त्रिनेत्र, पञ्चवक्त्र, करोड़ों चन्द्रमा के समान सनातन ज्योति, ब्रह्म और परमात्मा, निरन्तर मन्त्र का जप कर रहे थे ॥ ७-१० ॥

निर्लिप्तं च निरीहं च दातारं सर्वसंपदाम् ।
स्वेच्छामयं सर्वबीजं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥ ११ ॥

वे निर्लिप्त, निरीह, समस्त सम्पत्तियों के दाता, स्वेच्छाधाम, सर्वबीज और प्रकृति से परे श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे थे ॥ ११ ॥

सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम् ।
पार्श्वदप्रवरश्रेष्ठसेवितं श्वेतचामरैः ॥ १२ ॥
दुर्गासेवितपादाब्जं भद्रकालीपरिष्टुतम् ।
पुरतो हि वसन्तं तं स्कन्दं गणपतिं तथा ॥ १३ ॥
गले बद्ध्वा च वसनं भक्तिनम्रात्मकंधरः ।
योगीन्द्रं स्वगुरुं शम्भुं शिरसा प्रणनाम सः ॥ १४ ॥

महादेव जी सिद्धेन्द्रों, मुनीन्द्रों, देवेन्द्रों और चामर डुलाते हुए श्रेष्ठ पार्षदों से सेवित थे। उनके चरण कमल दुर्गा जी द्वारा सेवित थे;

भद्रकाली उनकी स्तुति कर रही थीं; और उनके सामने ही स्कन्द तथा गणपति विराजमान थे। ऐसे महादेव जी को देखकर और गले में वस्त्र लपेट कर भक्ति से झुके कन्धों वाले नारद जो ने अपने गुरु योगीन्द्र शङ्कर जी को शिर से प्रणाम किया॥ १२-१४॥

तुष्टाव परया भक्त्या देवर्षिर्जगतां पतिम् ।
स्वगुरुं च पशुपतिं वेदोक्तेन स्तवेन च ॥ १५ ॥

देवर्षि नारद ने जगत्पति, स्वगुरु, श्री पशुपति को परम भक्ति से वेदोक्त स्तव द्वारा स्तुति की॥ १५॥

नारद उवाच ।

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मम नाथ मम प्रभो ।
भवरूपतरोर्बीज फलरूप फलप्रद ॥ १६ ॥

अबीजाज प्रज प्राज सर्वबीज नमोऽस्तु ते ।
सद्भाव परमाभाव विभाव भावनाश्रय ॥ १७ ॥

भवेश भवबन्धेश भावाब्धिनाविनाविक ।
सर्वाधार निराधार साधार धरणीधर ॥ १८ ॥
वेदविद्याधराधार गङ्गाधर नमोऽस्तु ते ।
जयेश विजयाधार जयबीज जयात्मक ॥ १९ ॥
जगदादे जयानन्द सर्वानन्द नमोऽस्तु ते ।
इत्येवमुक्त्वा देवर्षिः शम्भोश्च पुरतः स्थितः ॥
प्रसन्नवदनः श्रीमान् भगवांस्तमुवाच सः ॥ २० ॥

नारद बोले : 'हे जगन्नाथ, मेरे नाथ, मेरे प्रभो, भवरूपी वृक्ष के बीज, फलरूप, फलप्रद ! आपको मेरा नमस्कार है। हे अबीज, अज, प्रज, प्राज, सर्वबीज ! आपको नमस्कार है। हे सद्भाव, परमाभाव, विभाव, भावनाश्रय, भवेश, भवबन्धेश, संसार-सागर की नौका के नाविक, सर्वाधार, निराधार, साधार, धरणीधर, वेदविद्याधराधार, गङ्गाधर ! आपको नमस्कार है। हे जयेश, विजयाधार, जयबीज, जयात्मक, जगदादे, जयानन्द, सर्वानन्द ! आपको नमस्कार है।' इस

प्रकार कहकर देवर्षि नारद शम्भु के सम्मुख स्थित हुए। तब प्रसन्नवदन, श्रीमान, भगवान् (शिव) उनसे बोले ॥ १६-२० ॥

श्रीमहादेव उवाच।

वरं वृणु महाभाग यत्ते मनसि वर्त्तते।
दास्यामि त्वां ध्रुवं पुत्र दाताहं सर्वसंपदाम् ॥ २१ ॥
सुखं मुक्तिं हरेर्भक्तिं निश्चलामविनाशिनीम्।
हरेः पादं च तद्दास्यं सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ २२ ॥
इन्द्रत्वममरत्वं वा यमत्वमानिलेश्वरम्।
प्रजापतित्वं ब्रह्मत्वं सिद्धत्वं सिद्धिसाधनम् ॥ २३ ॥
सिद्धैश्वर्यं सिद्धिबीजं वेदविद्याधिपं परम्।
अणिमादिकसिद्धिं च मनोयायित्वमीप्सितम् ॥ २४ ॥
हरेः पदं च गमनं सशरीरेण लीलया।
एतेषु वाञ्छितार्थेषु किं वा ते वाञ्छितं सुत ॥ २५ ॥
तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ सर्वं दातुमहं क्षमः।
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः ॥ २६ ॥

श्री महादेव बोले : 'हे महाभाग ! तुम्हारे मन में जो हो वह वर माँगो। हे पुत्र ! मैं समस्त सम्पत्तियों का देनेवाला हूं अतः तुम्हें निश्चय ही दूँगा। हे पुत्र ! सुख, मुक्ति, निश्चल और अविनाशी हरिभक्ति, हरिपाद, उनका दास्य, सालोक्य आदि चारों पद, इन्द्रत्व, अमरत्व, यमत्व, अनिलेश्वरत्व, प्रजापतित्व, ब्रह्मत्व, सिद्धत्व, सिद्धिसाधन, सिद्धैश्वर्य, सिद्धिबीज, परम वेदविद्याधिपत्व, अणिमादि सिद्धियाँ और अभीष्ट मनोगामित्व, अनायास सशरीर हरि के पद में गमन—इन वाञ्छित विषयों में से तुम्हारे मन में क्या अभीष्ट है ? हे मुनिश्रेष्ठ ! जो तुम्हारे मन में हो उसे मुझसे कहो। मैं सब देने में समर्थ हूं।' शङ्कर की वाणी सुनकर महामुनि नारद उनसे बोले ॥ २१-२६ ॥

नारद उवाच।

देहि मे हरिभक्तिं च तन्नामसेवने रुचिः।

अतितृष्णा गुणाख्याने नित्यमस्तु ममेश्वर ॥ २७ ॥

नारद जी बोले : हे मेरे ईश्वर ! मुझे आप हरिभक्ति देवें। उनके (हरि के) नामसेवन में मेरी रुचि हो और उनके गुणों के कथन में नित्य मेरी अतितृष्णा हो ॥ २७ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा जहास शङ्करः स्वयम् ।
पार्वती भद्रकाली च कार्त्तिकेयो गणेश्वरः ॥ २८ ॥

सर्वं ददौ महादेवो नारदाय च धीमते ।
सर्वप्रदस्तु सर्वेशः सर्वकारण कारणः ॥ २९ ॥

नारद का वचन सुनकर स्वयं शङ्कर जी हंस पड़े। पार्वती, भद्रकाली, कार्तिकेय तथा गणेश जी भी उनके साथ हँस पड़े। सर्वप्रद, सर्वेश, सर्वकारण कारण महादेव जी ने धीमान् नारद को सबकुछ दे दिया ॥ २८-२९ ॥

नारदेन कृतं स्तोत्रं नित्यं यः प्रपठेत् शुचिः ।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्य तन्नाम्नि गुणतो रुचिः ॥ ३० ॥
दशवारजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य सिद्धस्तोत्रो भवेद्यदि ॥ ३१ ॥
इह प्राप्नोति लक्ष्मीं च निश्चलां लक्षपौरुषीम् ।
परिपूर्णमहैश्वर्यमन्ते याति हरेः पदम् ॥ ३२ ॥
पुत्रं विशिष्टं लभते हरिभक्तं जितेन्द्रियम् ।
सुसाध्वीं सुविनीतां सुव्रतां च पतिव्रताम् ॥ ३३ ॥
प्रजां भूमि यशः कीर्त्तिं विद्यां सकवितां लभेत् ।
प्रसूयते महाबन्ध्या वर्षमेकं शृणोति चेत् ॥ ३४ ॥
गलत्कुष्ठी महारोगी सद्यो रोगात् प्रमुच्यते ।
धनी महादरिद्रश्च कृपणः सत्यवान् भवेत् ॥
विप्रदूग्रस्तो राजबद्धो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जो पवित्र होकर नारद जी के बनाये स्तोत्र का नित्य पाठ करता है उसकी हरि में भक्ति तथा नाम और गुणों में रूचि होती है। दश वार के जप से स्तोत्र की सिद्धि मनुष्यों को प्राप्त हो जाती है। यदि स्तोत्र सिद्ध हो जाय तो उससे सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है। वह मनुष्य इस संसार में निश्चल तथा लाखों गुनी शक्तिवाली लक्ष्मी को और परिपूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त करके अन्त में हरि के पद को प्राप्त करता है। वह हरिभक्ति तथा जितेन्द्रिय विशिष्ट पुत्र को तथा सुसाध्या, सुविनीता, सुव्रता और पतिव्रता कन्या को प्राप्त करता है। साथ ही प्रजा, भूमि, यश, कीर्ति, विद्या तथा कविता की शक्ति भी प्राप्त करता है। यदि महावन्ध्या एक वर्ष तक इस स्तोत्र को सुनती है तो उसे सन्तान की प्राप्ति होती है। गलित कुण्ठी तथा महारोगी शीघ्र ही रोग से मुक्त हो जाता है। महादरिद्र तथा कृपण सत्यवान् तथा धनी हो जाता है। विपद्ग्रस्त तथा राजबद्ध मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३०-३५॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार की प्रथम रात्रि में अष्टमाध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे नवमोऽध्यायः

श्रीव्यास उवाच ।

वरं दत्वा महादेवो भक्त्या तं ब्राह्मणातिथिम् ।
पूजां चकार वेदोक्तां स्वयं वेदविदां वरः ॥ १ ॥

श्री व्यास जी बोले : स्वयं वेदविदों में श्रेष्ठ महादेव जी ने अपने ब्राह्मण अतिथि नारद जी को वर देने के बाद उनकी भक्तिपूर्वक वेदोक्त पूजा की ॥ १ ॥

भुक्त्वा पीत्वा मुनिश्रेष्ठो महादेवस्य मन्दिरे ।
तिष्ठन्नुपासनां चक्रे पार्वतीपरमेशयोः ॥ २ ॥

महादेव जी के मन्दिर में खाने-पीने के बाद मुनिश्रेष्ठ नारद जी ने पार्वती और परमेश्वर की उपासना करना आरम्भ किया ॥ २ ॥

एकदा चिरकालान्ते तमुवाच महामुनिम् ।
महादेवः सभामध्ये कृपया च कृपानिधिः ॥ ३ ॥

इस प्रकार जब बहुत दिन हो गये तो कृपानिधि महादेव ने सभा के बीच महामुनि को सम्बोधित किया ॥ ३ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

किं वा ते वाञ्छितं वत्स ब्रूहि मां यदि रोचते ।
वरो दत्तः किमपरं यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ ४ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे पुत्र ! तुम्हारा वाञ्छित क्या है उसे मुझसे कहो । मैंने तुम्हें पहले ही वर प्रदान कर दिया है; अब तुम और क्या चाहते हो ? ॥ ४ ॥

महादेववचः श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः ।
कैलासे च सभामध्ये यत्तन्मनसि वाञ्छितम् ॥ ५ ॥

कैलास की उस सभा में श्री महादेव के वचन को सुनकर महामुनि नारद ने अपने मन की इच्छा को इस प्रकार प्रकट किया ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच ।

ज्ञानामाध्यात्मिकं नाम वेदसारं मनोहरम् ।
हरिभक्तिप्रदं ज्ञानं मुक्तिदं ज्ञानमीप्सितम् ॥ ६ ॥
योगयुक्तं च यज्ज्ञानं ज्ञानं यत्सिद्धिदं तथा ।
संसारविषयज्ञानमेव पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥

नारद जी बोले : एक आध्यात्मिक ज्ञान है जो मनोहर वेदसार कहलाता है। दूसरा हरिभक्तिप्रद ज्ञान कहलाता है। तीसरा अभीष्ट मुक्तिप्रद ज्ञान कहलाता है। चौथा योगयुक्त ज्ञान कहलाता है, जिससे सिद्धियों की प्राप्ति होती है। पाँचवाँ संसारविषयक ज्ञान होता है। इस प्रकार ज्ञान पाँच प्रकार का होता है ॥ ६-७ ॥

आश्रमाणां समाचारं तेषां धर्मपरिष्कृतम् ।
विधवानां च भिक्षूणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८ ॥
पूजाविधानं कृष्णस्य तत्स्तोत्रं कवचं मनुम् ।
पुरश्चर्याविधानं च सर्वाह्निकमभीप्सितम् ॥ ९ ॥
जीवकर्मविपाकं च कर्ममूलनिकृन्तनम् ।
संसारवासनां कां वा लक्षणं प्रकृतीशयोः ॥ १० ॥
तयोः परं वा किं वस्तु तस्यावतारवर्णनम् ।
को वा तदंशः कः पूर्णः परिपूर्णतमश्च कः ॥ ११ ॥
नारायणर्षिकवचं सुभद्रप्रवराय च ।
यद्दत्तं किं तद्देवेश तदाराध्यं प्रयत्नतः ॥ १२ ॥
मया ज्ञानमनापृष्टं यद्यदस्ति सुरोत्तम ।
तन्मे कथय तत्त्वेन मामेवानुग्रहं कुरु ॥ १३ ॥
गुरोश्च ज्ञानोद्गिरणात् ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः ।
तत्तन्त्रं स च मन्त्रः स्याद्यतो भक्तिरधोक्षजे ॥ १४ ॥
ज्ञानं स्याद्विदुषां किञ्चित् वेदव्याख्यानचिन्तया ।
स्वयं भवान् वेदकर्त्ता ज्ञानाधिष्ठातृदेवता ॥ १५ ॥

संसार विषयक ज्ञान में आश्रमों का आचार, विधवाओं, भिक्षुकों, यतियों तथा ब्रह्मचारियों के परिष्कृत धर्म, कृष्ण का पूजाविधान, उनके स्तोत्र तथा कवच और मन्त्र, पुरश्चर्या का विधान, अभीष्ट सभी आह्निक कर्म, जीव के कर्मों का विपाक, कर्ममूल का नाश अथवा संसार की वासनाओं का नाश, प्रकृति और ईश्वर का लक्षण, अथवा इन दोनों से परे क्या वस्तु है तथा उसके अवतार का वर्णन; कौन उसका अंश है, कौन पूर्ण है, तथा कौन परिपूर्णतम है; सुभद्र प्रवर को जो नारायण ऋषि ने कवच दिया था वह क्या है और उसका आराध्य कौन है? हे देवेश! मैं प्रयत्न से उसकी आराधना करूँगा। हे सुरोत्तम! जो जो ज्ञान हो और जो मेरे पूछने में न आया हो वह सब आप मुझे तत्वरूप से बताकर मुझ पर कृपा करें। गुरु के ज्ञान देने से तन्त्र-मन्त्र का ज्ञान होता है। वही तन्त्र है और वही मन्त्र जिससे शिव जी में मनुष्य की भक्ति हो। वेदव्याख्या के चिन्तन से विद्वानों को वेद का ज्ञान होता है। आप स्वयं वेदों के कर्त्ता तथा ज्ञान के अधिष्ठातृ देवता हैं ॥ ८-१५ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः पार्वतीपतिः।
निरीक्ष्य पार्वतीवक्त्रं गजवक्त्रमुवाच सः ॥ १६ ॥

नारद के वचन को सुनकर पार्वतीपति मुस्कराने लगे और पार्वती तथा गणेश के मुख को देखकर वह बोले ॥ १६ ॥

अथ नारदोपदेश ग्रहणम्।

श्रीमहादेव उवाच।

अहो अनन्तदासानां माहात्म्यं परमाद्भुतम्।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिं ये च शश्वद्धरेः पदे ॥ १७ ॥
पद्मनाभपादपद्मं पद्मापद्मेश्वरार्चितम्।
दिवानिशं ये ध्यायन्ते शेषादिसुरवन्दितम् ॥ १८ ॥
आलापं गात्रसंस्पर्शं पादरेणुमभीप्सितम्।
वाञ्छन्त्येव हि तीर्थानि वसुधाचात्मशुद्धये ॥ १९ ॥
कृष्णमन्त्रोपासकानां शुद्धं पादोदकं सुत।
पुनाति सर्वतीर्थानि वसुधामपि पार्वति ॥ २० ॥

कृष्णमन्त्रो द्विजमुखाद्यस्य कर्णं प्रयाति च ।
तं वैष्णवं जगत्पूतं प्रवदन्ति पुराविदः ॥ २१ ॥

नारद का उपदेश ग्रहण

श्री महादेव जी बोले : अहो ! जो निरन्तर हरि के चरणों में अहैतुकी भक्ति रखते हैं उन दासों का अनन्त और परम अद्भुत माहात्म्य है। पद्मा तथा पद्मेश से अर्चित और शेषादि देवताओं से वन्दित पद्मनाभ के पादपद्म का जो रात-दिन ध्यान करते हैं, उनसे वार्तालाप करते हैं, उनके शरीर का स्पर्श करते हैं, उनके माहात्म्य का क्या कहना। हे पुत्र अपने को शुद्ध करने के लिये उनके चरण रज की वसुधा और समस्त तीर्थ भी कामना करते हैं। हे पुत्र ! हे पार्वती ! कृष्ण-मन्त्रोपासक का शुद्ध पादोदक समस्त तीर्थों को तथा वसुधा को पवित्र कर देता है। जिसके कान में द्विजमुख से कृष्ण मन्त्र प्रवेश करता है उस वैष्णव को पुराविद् जगत्पूज्य कहते हैं ॥ १७-२१ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणात्मकः ।
पुनाति लीलामात्रेण पुरुषाणां शतं शतम् ॥ २२ ॥
यज्जन्ममात्रात् पूतं च तत्पितॄणां शतं शतम् ।
प्रयाति सद्यो गोलोकं कर्मभोगात् प्रमुच्यते ॥ २३ ॥
मातामहादिकान् सप्त जन्ममात्रात् समुद्धरेत् ।
यत्कन्यां प्रतिगृह्णाति तस्य सप्तावलीलया ॥ २४ ॥

मन्त्र के ग्रहणमात्र से नर (मनुष्य) नारायण तुल्य हो जाता है और लीला मात्र से वह शत-शत पूर्वपुरुषों को पवित्र कर देता है। वैष्णव का जन्म मात्र उसके पितामहों को शत-शत पीढ़ियों को पवित्र कर देता है और वे सभी कर्मभोग से मुक्त होकर गोलोक चले जाते हैं। सात पीढ़ियों तक मातामहों और जिसकी कन्या को वह ग्रहण करता है उसकी भी सात पीढ़ियों का अनायास हो उसके जन्म मात्र से उद्धार हो जाता है ॥ २२-२४ ॥

मातरं तत्प्रसूं भार्यां पुत्रांश्च सप्तपूरुषम् ।
भ्रातरं भगिनीं कन्यां कृष्णभक्तः समुद्धरेत् ॥ २५ ॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
फलं स लेभे पूजानां व्रती सर्वव्रतेषु च ॥ २६ ॥

विष्णुमन्त्रं यो लभेत वैष्णवाच्च द्विजोत्तमात् ।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २७ ॥

श्री कृष्ण का भक्त अपनी माता, दादी, पत्नी और इन सबकी सात पीढ़ियों तथा भ्राताओं, बहनों और पुत्रियों का उद्धार कर देता है। कृष्णभक्त समस्त तीर्थस्थान का और यज्ञ में दीक्षित होने का पुण्य प्राप्त कर लेता है। वह पूजाओं का फल प्राप्त कर लेता है तथा सभी व्रतों का व्रती हो जाता है। जिसने द्विजोत्तम वैष्णव से विष्णुमन्त्र प्राप्त कर लिया है वह करोड़ों जन्मों के अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २५-२७ ॥

कृष्णमन्त्रोपासकानां सद्यो दर्शनमात्रतः ।
शतजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २८ ॥

वैष्णवाद्दर्शनेनैव स्पर्शनेन च पार्वति ।
सद्यः पूतं जलं वहिर्जगत्पूतः समीरणः ॥ २९ ॥

दर्शनं वैष्णवानां च देवा वाञ्छन्ति नित्यशः ।
न वैष्णवात् परः पूतो विश्वेषु निखिलेषु च ॥ ३० ॥

कृष्णमन्त्र के उपासकों के दर्शन मात्र से मनुष्य शत जन्मार्जित पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। हे पार्वती ! वैष्णव के दर्शन तथा स्पर्शन से जल तथा जगत्पावक समीर सद्यः पवित्र हो जाते हैं। देवता नित्य वैष्णवों के दर्शन की इच्छा करते रहते हैं। निखिल विश्व में वैष्णवों से पवित्र कोई नहीं है ॥ २८-३० ॥

इत्युक्त्वा शङ्करः शीघ्रं नारदेन सहात्मजः ।
ययौ मन्दाकिनीतीरं नीरं क्षीरोपमं परम् ॥ ३१ ॥

तत्र स्नातो महादेवो नारदश्च महामुनिः ।
समाचान्तः शुचिस्तत्र धृत्वा धौते च वाससी ॥ ३२ ॥

कृष्णमन्त्रं ददौ तस्मै नारदाय महेश्वरः ।
परं कल्पतरुवरं सर्वसिद्धिप्रदं शुक ॥ ३३ ॥

यह कहकर पुत्र सहित शङ्कर जी नारद के साथ परम क्षीरोपम जलवाली मन्दाकिनी के तट पर गये । हे शुक ! वहाँ महादेव और महामुनि नारद ने स्नान, आचमन कर पवित्र हो धुले दो वस्त्र धारण किये। तब महेश्वर ने सर्वसिद्धिप्रद और परम कल्पतरु-स्वरूप कृष्ण मन्त्र नारद को दिया ॥ ३१-३३ ॥

लक्ष्मीर्मायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं ततः ।
जगत्पूतप्रियान्तं च मन्त्रराजं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३४ ॥

मन्त्रं गृहीत्वा स मुनिः शिवं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
सप्त वारान् नमस्कृत्य स्वात्मानं दक्षिणां ददौ ॥ ३५ ॥

तत्पादपद्मे विक्रीतमाजन्म मस्तकं परम् ।
मुनिना भक्तियुक्तेन स्वर्गमन्दाकिनीतटे ॥ ३६ ॥

मन्त्र यह है : लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) चतुर्थ्यन्त कृष्णपद (कृष्णाय) और अन्त में जगत् को पवित्र करनेवाले अग्नि की प्रिया (स्वाहा) रखने से मन्त्रराज बनता है (यथा : 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह कृष्ण मन्त्रराज है) । इस मन्त्र को ग्रहण करके नारद मुनि ने शिव की सात बार प्रदक्षिणा की तथा उन्हें नमस्कार करके दक्षिणा में स्वयं अपने को ही दे दिया । उनके (महादेवजी के) चरण कमल में नारद मुनि ने स्वर्गमन्दाकिनी के तट पर भक्तियुक्त होकर अपने परम मस्तक को आजन्म बेच दिया ॥ ३४-३६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वत्स पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ।
नारदोपरि तत्रैव सुश्राव दुन्दुभिं मुनिः ॥ ३७ ॥

ननर्त्त ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्मलोके निरामये ।
ब्रह्मा जगाम तत्रैव सुप्रसन्नश्च सस्मितः ॥ ३८ ॥

पुत्रं शुभाशिषं कृत्वा तुष्टाव चन्द्रशेखरम् ।

शम्भुश्च पूजयामास ब्राह्मणमतिथिं तथा ॥
शम्भुं शुभाशिषं कृत्वा ब्रह्मलोकं ययौ विधिः ॥ ३९ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
नारदोपदेश ग्रहणं नाम
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हे वत्स ! इसी बीच नारद जी के ऊपर पुष्पवृष्टि हुई और उन मुनि ने दुन्दुभिनाद सुना। निरामय ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पुत्र ने नृत्य किया। ब्रह्मा जी प्रसन्नता से मुस्कराते हुए वहाँ गये, पुत्र को आशिर्वाद दिया और चन्द्रशेखर (शिव) को सन्तुष्ट किया। शम्भु ने भी ब्रह्मा और अतिथि की पूजा की। तब शम्भु को शुभाशीर्वाद देकर विधि (ब्रह्मा) ब्रह्मलोक चले गये ॥ ३७-३९ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में
प्रथम रात्र में नारदोपदेश ग्रहणनाम
नवम अध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच ।

नारदो हि महाज्ञानी देवर्षिर्ब्रह्मणः सुतः ।
सर्ववेदविदां श्रेष्ठो गरिष्ठश्च वरिष्ठकः ॥ १ ॥
कथं स नोपदिष्टश्च ज्ञानहीनो महामुनिः ।
एतन्मां बोधय विभो सन्देहभञ्जनं कुरु ॥ २ ॥

श्री शुक बोले : ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद महाज्ञानी, समस्त वेदविदों में श्रेष्ठ, गरिष्ठ और वरिष्ठ हैं। हे विभो ! तब वे कैसे अनुपदिष्ट रहे ? महामुनि होते हुए भी वे कैसे ज्ञानहीन हुए। कृपा करके मुझे यह बताकर आप मेरे सन्देह का निवारण कीजिये ॥ १-२ ॥

श्रीव्यास उवाच ।

नारदो ब्रह्मणः पुत्रः पुराकल्पे बभूव सः ।
सर्वज्ञानं ददौ तस्मै विधाता जगतामपि ॥ ३ ॥
वेदांश्च पाठयामास वेदाङ्गान्यपि सुव्रत ।
सिद्धविद्यां शिल्पविद्यां योगशास्त्रं पुराणकम् ॥ ४ ॥
भगवानेकदा पुत्रं कथयामास संसदि ।
सृष्टिं कुरु महाभाग कृत्वा दारपरिग्रहम् ॥ ५ ॥

श्री व्यास जी बोले : पूर्वकाल में नारद ब्रह्मा के पुत्र हुए और ब्रह्मा ने उन्हें संसार का सम्पूर्ण ज्ञान दे दिया। हे सुव्रत ! उन्हें वेद, वेदाङ्ग, सिद्धविद्या शिल्पविद्या, योगशास्त्र तथा पुराण भी पढ़ाया। तब एक बार सभा में ब्रह्मा जी ने पुत्र से कहा : 'महाभाग ! विवाह करके अब तुम सृष्टि करो।' ॥ ३-५ ॥

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा कोपरक्तास्यलोचनः ।
उवाच पितरं कोपात् परं कृष्णपरायणः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर क्रोध से लाल आँखें किये हुए परम कृष्णपरायण नारद जी अपने पिता से बोले ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच ।

सर्वेषामपि वन्द्यानां पिता चैव महागुरुः ।
ज्ञानदातुः परो वन्द्यो न भूतो न भविष्यति ॥ ७ ॥
स्तनदात्री गर्भधात्री स्नेहकर्त्री सदाम्बिका ।
जन्मदाताऽन्नदाता स्यात् स्नेहकर्त्ता पिता सदा ॥ ८ ॥
न क्षमौ तौ च पितरौ पुत्रस्य कर्म खण्डितुम् ।
करोति सद्‌गुरुः शिष्यकर्ममूलनिकृन्तनम् ॥ ९ ॥
गुरुश्च ज्ञानोद्‌गिरणात् ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः ।
तत्तन्त्रं स च मन्त्रश्च कृष्णभक्तिर्यतो भवेत् ॥ १० ॥
श्रीकृष्णविमुखो भूत्वा विषये यस्य मानसम् ।
विषमत्त्यमृतं त्यक्त्वा स च मूढो नराधमः ॥ ११ ॥

श्री नारद जी बोले : सभी पूजनीयों में पिता ही सर्वश्रेष्ठ गुरु है, और ज्ञान देनेवाले से भी अधिक उसका आदर करना चाहिये। अतः पिता से पूज्य न कोई हुआ है और न कोई होगा। माता वह है जो सदा स्नेह करती है, शिशु को गर्भ में धारण करती है और स्तनपान कराती है। परन्तु माता और पिता अपने पुत्र के कर्म को खण्डित नहीं कर सकते। यह तो केवल सद्‌गुरु ही है जो शिष्य के कर्मों के मूल को निर्मूल कर सकता है। ज्ञान देने के कारण वह गुरु होता है; ज्ञान मात्र मन्त्र-तन्त्रमय होता है, और वही मन्त्र-तन्त्र है जिससे कृष्णभक्ति उत्पन्न होती है। जिसका मन श्रीकृष्ण से विमुख होकर विषयोन्मुख हो जाता है वह मूढ नराधम मानो अमृत को छोड़कर विष का भक्षण करता है ॥ ७-११ ॥

स गुरुः स पिता वन्द्यः सा माता स पतिः सुतः ।
यो ददाति हरौ भक्तिं कर्ममूलनिकृन्तनीम् ॥ १२ ॥
श्रीकृष्णभजनं तात सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
कर्मोपभोगरोगाणामौषधं तन्निकृन्तनम् ॥ १३ ॥

वही गुरु, वही पिता, वही माता, वही पति तथा वही पुत्र वन्दनीय है जो कर्मों के मूल का उन्मूलन करने वाली हरिभक्ति प्रदान करता है। हे तात! श्रीकृष्ण का भजन सर्वमङ्गलों का मङ्गलकारक और कर्मोपभोग रूपी रोगों की औषधि तथा उनका विनाशक है ॥१२-१३॥

अहो जगद्विधातुश्च धर्मशास्तुरियं मतिः ।
स्वयं मायामोहितश्च परं भ्रष्टं करोति च ॥ १४ ॥
विष्णुस्त्वां मोहितं कृत्वा युयोज स्रष्टुमीश्वरः ।
न ददौ स्वात्मभक्तिं तां स्वदास्यं चातिदुर्लभम् ॥ १५ ॥
माता ददाति पुत्राय मोदकं क्षुन्निवारकम् ।
स च बालो न जानाति कथं भूतं च मोदकम् ॥ १६ ॥
बालकं वञ्चनं कृत्वा मिष्टं द्रव्यं प्रदाय सः ।
पिता प्रयाति कार्यार्थं विष्णुना मोहितस्तथा ॥ १७ ॥
संसारकूपपतितो विष्णुना प्रेरितो भवान् ।
न युक्तं पतनं तत्र तदुद्धारमभीप्सितम् ॥ १८ ॥

अहो! आश्चर्य है कि जगत् के विधाता तथा धर्मोपदेशक की यह बुद्धि है कि वह स्वयं मायामोहित होकर दूसरों को भी भ्रष्ट कर रहा है। विष्णु भगवान ने आपको मोहित करके सृष्टि-सृजन के कार्य में लगा दिया है। उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ अपना दास्य और अपनी भक्ति आपको नहीं दी। जिस प्रकार क्षुधानिवारण के लिये माता अपने पुत्र को मोदक दे देती है किन्तु बालक नहीं जानता कि वह मोदक कैसा है; अथवा बालक की वञ्चना करके उसे मीठा द्रव्य देकर जिस प्रकार उसका पिता काम करने के लिये अन्यत्र जाता है उसी प्रकार विष्णु ने आप को भी मोहित किया है। संसार रूपी कूप में आप विष्णु से प्रेरित होकर पतित हुए हैं किन्तु आपका इस प्रकार पतन उचित नहीं है। इसके विपरीत आपका उद्धार हो अभीप्सित है ॥ १४-१८ ॥

ज्ञानी गुरुश्च बलवान् भवाब्धेः शिष्यमुद्धरेत् ।
गुरुः स्वयमसिद्धश्च दुर्बलः कथमुद्धरेत् ॥ १९ ॥
गुरोरत्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ २० ॥

स गुरुः परमो वैरी यो ददाति ह्यसन्मतिम् ।

तं नमस्कृत्य सत्शिष्यः प्रयाति ज्ञानदं गुरुम् ॥ २१ ॥

संसारविषयोन्मत्तो गुरुरार्त्तः स्वकर्मणि ।

दुर्बलो दुर्वहं भारं ददाति जनकाय च ॥ २२ ॥

वही गुरु ज्ञानी और बलवान है जो संसार सागर से शिष्य का उद्धार करता है। जो गुरु स्वयं असिद्ध और दुर्बल है वह कैसे उद्धार कर सकता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य को न जानने वाले प्रमादी और उन्मार्ग-गामी गुरु का परित्याग कर देना चाहिये। वह गुरु परम वैरी है जो सन्मति नहीं देता। सत्शिष्य उसे नमस्कार करके ज्ञान देनेवाले गुरु के पास चला जाता है। संसार के विषयों से उन्मत्त गुरु अपने कर्म में दुखी होता है तथा दुर्बल गुरु दुर्वहभार को पिता के ऊपर डाल देता है। ॥ १९-२२ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा क्रुद्धः पुत्रमुवाच सः ।

कम्पितस्तमसा धाता कोपरक्तास्यलोचनः ॥ २३ ॥

नारद के वचन को सुनकर क्रोध से आरक्त लोचन और तमोगुण से कम्पित हुए ब्रह्मा जी बोले ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

ज्ञानन्ते भवतु भ्रष्टं स्त्रीजितो भव पामर ।

सर्वजातिषु गन्धर्वः कामी सोऽपि भवान् भव ॥ २४ ॥

पञ्चाशत्कामिनीनां च स्वयं भर्त्ता भवाचिरात् ।

तासां वशश्च सततं स्त्रीणां क्रीडामृगो यथा ॥ २५ ॥

ब्रह्मा जी बोले : रे पामर ! तेरा ज्ञान भ्रष्ट हो जाय। तू स्त्री से जीता जाने वाला हो जा। तू गन्धर्व होकर उनमें भी अत्यन्त कामी हो जा। तू तत्काल पचास कामिनियों का पति हो जा और उसी प्रकार सतत उन सबके वशीभूत रह जिस प्रकार मृग स्त्रियों के हाथ का खिलौना बन जाता है ॥ २४-२५ ॥

शृङ्गारशूरो भव रे शश्वत्सुस्थिरयौवनः ।

तासां नित्यं यौवनानां सुन्दरीणां प्रियो भव ॥ २६ ॥
कामबाध्यो भव चिरं दिव्यवर्षसहस्रकम् ।
निर्जने निर्जने रम्ये वने क्रीडां करिष्यसि ॥ २७ ॥
ततो वर्षसहस्रान्ते मया शप्तः स्वकर्मणा ।
विप्रदास्यांतु शूद्रायां जनिष्यसि न संशयः ॥ २८ ॥
ततो वैष्णवसंसर्गात् विष्णोरुच्छिष्टभोजनात् ।
विष्णुमन्त्रप्रसादेन विष्णुमायाविमोहितः ॥ २९ ॥

रे नारद ! तू शृङ्गारशूर तथा स्थिरयौवन हो जा। निरन्तर उन युवतियों का प्रिय बना रह। एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तू निरन्तर काम से बाध्य होकर निर्जन रम्य वनों में अकेले क्रीडा करेगा। सहस्र वर्ष के अन्त में मुझसे अभिशप्त हुआ तू अपने कर्म से विप्रदासी शूद्रा के गर्भ से जन्म लेगा—इसमें कोई संशय नहीं है। इसके बाद वैष्णव संसर्ग से तथा विष्णु के उच्छिष्ट भोजन से, विष्णु मन्त्र के प्रसाद से और विष्णु की माया से विमोहित हो जायगा ॥ २६-२९ ॥

तातस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप नारदो मुनिः ।
शशाप पितरं शीघ्रं दारुणं च यथोचितम् ॥ ३० ॥
अपूज्यो भव दुष्ट त्वं त्वन्मन्त्रोपासकः कुतः ।
अगम्यागमनेच्छा ते भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

पिता के वचन को सुनकर नारद मुनि क्रुद्ध हो गये और उन्होंने भी पिता को शीघ्र ही यथेप्सित दारुण शाप देते हुए कहा : 'हे दुष्ट ! तू अपूज्य हो जा। तेरे मन्त्र का उपासक कहाँ से होगा ? अगम्यगमन को तेरी इच्छा होगी—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३०-३१ ॥

नारदस्य तु शापेन सोऽपूज्यो जगतां विधिः ।
दृष्ट्वा स्वकन्यारूपं च पश्चाद्धावितवान पुरा ॥ ३२ ॥
पुनः स्वदेहं तत्याज भर्त्सितः सनकादिभिः ।
लज्जितः कामयुक्तश्च पुनर्ब्रह्मा बभूव सः ॥ ३३ ॥

नारद के शाप से जगत के स्रष्टा वह ब्रह्मा अपूज्य हो गये। प्राचीन

काल में वे उपनी कन्या के रूप को देखकर उसके पीछे दौड़े और सनकादि ऋषियों से भर्त्सित होकर उन्होंने अपने देह का त्याग कर दिया। काममुक्त लज्जित ब्रह्मा ने पुनः दूसरा शरीर धारण किया ॥ ३२-३३ ॥

नारदस्तु नमस्कृत्य पितरं कमलोद्भवम् ।
विप्रदेहं परित्यज्य गन्धर्वश्च बभूव सः ॥ ३४ ॥
नवयौवनकालेन बलवान् मदनोद्धतः ।
जहार कन्याः पञ्चाशत् बलाच्चित्ररथस्य तु ॥ ३५ ॥
गान्धर्वेण विवाहेन ता उवाह च निर्जने ।
मूर्च्छां प्रापुश्च ताः कन्या दृष्ट्वा सुन्दरमीश्वरम् ॥ ३६ ॥
विसस्पुरुश्च पितरं मातरं भ्रातरं तथा ।
रेमिरे तेन सार्द्धं च कामुक्यः कामुकेन च ॥ ३७ ॥
कन्दरे कन्दरे रम्ये रम्ये सुन्दरमन्दिरे ।
शैले शैले सुरहसि कानने कानने तथा ॥ ३८ ॥
पुष्पोद्याने तरूद्याने नद्यां नद्यां नदे नदे ।
सरःश्रेष्ठे सरःश्रेष्ठे वरे चन्द्रसरोवरे ॥ ३९ ॥
सुरेशस्यापि निकटे सुभद्रस्य तटे तटे ।
अगम्ये च महाघोरे गन्धमादनगह्वरे ॥ ४० ॥
पारिजाततरूणां च पुष्पितानां मनोहरे ।
तदन्तरे सुन्दरे चामोदिते पुष्पवायुना ॥ ४१ ॥
मलये निलये रम्ये सुगन्धे चन्दनान्विते ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गश्चन्दनाक्तेन कामिना ॥ ४२ ॥
रम्यचम्पकशय्यासु चन्दनाक्तासु सस्मिताः ।
दिवानिशं न जानन्ति कामिना सस्मितेन च ॥ ४३ ॥

तदनन्तर वह नारद अपने कमलोद्भव पिता को नमस्कार करके विप्र देह का त्याग करने के बाद गन्धर्व बन गये। नवयौवन काल से

बलवान और मदनोद्धत होकर उन्होंने चित्ररथ की पचास कन्याओं का बलात हरण कर लिया और एकान्त में उन सबसे गान्धर्व विवाह किया। अपने सुन्दर स्वामी को देखकर वे कन्यायें मूर्च्छा को प्राप्त हुईं। माता, पिता तथा भ्राता को भूल कर वे सब कामयुक्त कामिनियाँ इस कामुक (नारद) के साथ रमण करने लगीं। रम्य कन्दराओं में, रम्य सुन्दर मन्दिरों में, एकान्त पर्वत-पर्वत पर तथा कानन-कानन में, पुष्पोद्यानों में, तरूद्यानों में, नदी-नदों के तट पर, उत्तम सरोवरों पर, श्रेष्ठ चन्द्र सरोवरों में, सुरेश के निकट, सुभद्र तटों पर, पुष्पित पारिजात वृक्षों से मनोहर अगम्य तथा महाघोर गन्धमादन के गह्वरों के भीतर पुष्पवायु से सुगन्धित स्थानों पर, चन्दनयुक्त मलय पर्वत के रम्य सुगन्धमय निलय में, चन्दनोक्षित तथा सर्वाङ्ग में चन्दन लगाये हुए कामी के साथ चन्दनाक्त रम्य चम्पक शय्याओं पर मुस्कराती हुई वे कामिनियाँ उस कामुक और सस्मित पति के साथ रमण करती हुई रात-दिन नहीं जान पाती थीं ॥ ३४-४३ ॥

विस्यन्दके शूरसेने नन्दने पुष्पभद्रके ।
स्वाहावने काम्यके च रम्यके पारिभद्रके ॥ ४४ ॥

सुरन्ध्रके गन्धके च सुरन्ध्रे पुण्ड्रकेऽपि च ।
कालञ्जरे पञ्जरे च काञ्चीकाञ्चनकानने ॥ ४५ ॥

मधुमाधवमासे च मथूरे मधुकानने ।
वने कल्पतरूणां च विश्वकारुकृतस्थले ॥ ४६ ॥

रत्नाकराणां निकरे सुन्दरे सुन्दरान्तरे ।
सुवेले च सुपार्श्वे च प्रवालांकुरकानने ॥ ४७ ॥
मन्दारे मन्दिरे पूरे गान्धारे च युगन्धरे ।
वने केलिकदम्बानां केतकीनां मनोहरे ॥ ४८ ॥
माधवीमालतीनां च यूथिकानां वने वने ।
चम्पकानां पलाशानां कुन्दानां विपिने तथा ॥ ४९ ॥
नागेश्वरलवङ्गानामन्तरे ललितालये ।

कुमुदानां पङ्कजानां पङ्किले कोमलस्थले ॥ ५० ॥
स्थलपद्मप्रकाशे च भूमिचम्पककानने ।
लाङ्गलीनां रसालानां पनसानां सुखप्रदे ॥ ५१ ॥
कदलीबदरीणां च श्रीफलानां च श्रीयुते ।
जम्बीराणां च जम्बूनां करञ्जानां तथैव च ॥ ५२ ॥
कृत्वा विहारं ताभिश्च गन्धर्वश्चोपबर्हणः ।
दिव्यं वर्षसहस्रं च स्वाश्रमं पुनराययौ ॥ ५३ ॥

विस्यन्दक, शूरसेन, पारिभद्रक, स्वाहावन, काम्यकवन, रम्यकवन, पारिभद्रक, सुरन्धक, गन्धक, सुरन्ध्र, पुण्ड्रक, कालञ्जर, पञ्जर और काञ्चीकाञ्चन कानन में मधुर माधवमास में; मधुर मधुकानन में, कल्प-तरुओं के वन में, विश्वकारुकृत स्थल में, रत्नाकरों के समूह में, सुन्दर और सुन्दरान्तर सुवेल तथा सुपार्श्व पर; प्रवालांकुर कानन में, मन्दार मन्दिरों में, गान्धार और युगन्धर में, कदम्बों और केतकी के मनोहर केलिवनों में; माधवी मालती तथा जूही के वनों में; चम्पा पलाश तथा कुन्दों के वन-वन में; नागेश्वर और लवङ्ग के भीतर ललितालय में; कुमुद और पंकजों से पंकिल कोमल स्थलों में, स्थल-पद्म-प्रकाश में, भूमि चम्पक कानन में; लांगली, रसाल, पनस, कदली, बदरी, श्रीफल, जम्बीर, जामुन तथा करञ्ज के श्रीयुत और सुखप्रद वनों में सहस्र दिव्य वर्षों तक उन स्त्रियों के साथ विहार करके वह उपबर्हण नामक गन्धर्व पुनः अपने आश्रम पर चला आया ॥ ४४-५३ ॥

श्रुत्वा विधातुराह्वानं पुष्करं च ययौ पुनः ।
ददर्श तत्र ब्रह्माणं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ५४ ॥
देवेन्द्रैश्चापि सिद्धेन्द्रैर्मुनीन्द्रैः सनकादिभिः ।
समावृतं सभायां च रक्षोगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ५५ ॥
सुशोभितं यथा चन्द्रं गगने भगणैः सह ।
प्रणनाम सभामध्ये ताभिः सार्धं जगद्विधिम् ॥ ५६ ॥

फिर विधाता (ब्रह्मा) के आह्वान को सुनकर वह पुष्कर चला गया। वहाँ उसने रत्नों के सिंहासन पर बैठे हुए ब्रह्मा को देखा। वे

अपनी उस सभा में देवेन्द्रों, सिद्धेन्द्रों, सनकादि मुनीन्द्रों तथा राक्षसों, गन्धर्वों और किन्नरों से उसी प्रकार घिरे हुए थे जिस प्रकार आकाश में नक्षत्रों से घिरा चन्द्रमा सुशोभित होता है। उन सबके साथ जगत के विधाता को उन्होंने (नारद ने) प्रणाम किया ॥ ५४-५६ ॥

महेशं च गणेशं च धनेशं शेषमीश्वरम् ।
धर्मं धन्वन्तरिं स्कन्दं सूर्यसोमहुताशनम् ॥ ५७ ॥
उपेन्द्रेन्द्रं विश्वकारुं वरुणं पवनं स्मरम् ।
यममष्टौ वसून् रुद्रान् जयन्तं नलकूवरम् ॥ ५८ ॥
सर्वान् देवान् नमस्कृत्य ननाम मुनिपुङ्गवम् ।
अगस्त्यं च पुलस्त्यं च पुलहं च प्रचेतसम् ॥ ५९ ॥
सर्वश्रेष्ठं वशिष्ठञ्च दक्षं च कर्दमं तथा ।
सनकं च सनन्दं च तृतीयं च सनातनम् ॥ ६० ॥
सनत्कुमारं योगीशं ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम् ।
वोढुं पञ्चशिखं शङ्खं भृगुमङ्गिरसं तथा ॥ ६१ ॥
आसुरिं कपिलं कौत्सं क्रतुं नारायणं नरम् ।
मरीचिं कश्यपं कण्वं व्यासं दुर्वाससं कविम् ॥ ६२ ॥
बृहस्पतिं च च्यवनं मार्कण्डेयं च लोमशम् ।
वाल्मीकिं परशुरामं च संवर्त्तं च विभाण्डकम् ॥ ६३ ॥
देवलं च वामदेवमृष्यशृङ्गं पराशरम् ।
एतान् सर्वान् नमस्कृत्य तस्थौ स पुरतो विधेः ॥ ६४ ॥
तुष्टाव सर्वान् देवांश्च मुनीन्द्रांश्च तथैव च ।
तमुवाच सभामध्ये विधाता जगतामपि ॥
सस्मितः सुप्रसन्नश्च गन्धर्वमुपवर्हणम् ॥ ६५ ॥

इसके बाद उन्होंने महेश और गणेश तथा धनेश, शेष, ईश्वर, धर्म, धनवन्तरि, स्कन्द, सूर्य, सोम, हुताशन, उपेन्द्र, इन्द्र, विश्वकर्मा, वरुण, पवन, स्मर, यम, आठ वसु, रुद्र, जयन्त तथा नलकूबर—इन सब देवों

को नमस्कार करके, मुनि पुङ्गवों को नमस्कार किया : अगस्त्य, पुलस्त्य, पुलह, प्रचेता, सर्वश्रेष्ठ वसिष्ठ, दक्ष, कर्दम, सनक, सनन्दन, सनातन, योगीश, और ज्ञानियों के गुरुओं के गुरु सनत्कुमार, बोढु, पञ्चशिख, शंख, भृगु, अङ्गिरा, आसुरि, कपिल, कौत्स, क्रतु, नारायण, नर, मरीचि, कश्यप, कण्व, व्यास, दुर्वासा, कवि, वृहस्पति, च्यवन, मार्कण्डेय, लोमश, वाल्मीकि, परशुराम, संवर्त, विभाण्डक, देवल, वामदेव, ऋष्यभृङ्ग तथा पराशर—इन सब मुनियों को प्रणाम करके ब्रह्मा के सामने खड़े हो गये। फिर उन्होंने सब देवों और मुनीन्द्रों की स्तुति की। इससे ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और उन्होंने सभा के मध्य उस उपबर्हण नामक गन्धर्व (नारद) से मुस्कराते हुए कहा ॥ ५७-६५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रीकृष्णरससंगीतं वीणाध्वनिसमन्वितम् ।
कुरु वत्साधुनाऽैव शृण्वन्तु मुनयः सुराः ॥ ६६ ॥
गोपीनां वस्त्रहरणं हरं रासमहोत्सवम् ।
ताभिः सार्द्धं जलक्रीडां हरेरुत्कीर्त्तनं कुरु ॥ ६७ ॥

ब्रह्मा जी बोले : हे वत्स ! तुम वीणाध्वनि से समन्वित और श्रीकृष्ण रस से पूरित संगीत सभी देवताओं और मुनीन्द्रों को सुनाओ। गोपियों का वस्त्रहरण, परम रासमहोत्सव, गोपियों के साथ जल-क्रीडा तथा हरि के अन्य संकीर्तन करो ॥ ६६-६७ ॥

कृष्णसंकीर्त्तनं तूर्णं पुनाति श्रुतिमात्रतः ।
श्रोतारं च प्रवक्तारं पुरुषैः सप्तभिः सह ॥ ६८ ॥
यत्रैव प्रभवेद्वत्स तन्नामगुणकीर्त्तनम् ।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि मङ्गलानि च ॥ ६९ ॥
तत्कीर्त्तनध्वनिं श्रुत्वा सर्वाणि पातकानि च ।
दूरादेव पलायन्ते वैनतेयमिवोरगाः ॥ ७० ॥

श्रीकृष्ण का कीर्तन श्रोता और वक्ता को उनकी सात पीढ़ियों सहित श्रुतिमात्र से पवित्र कर देता है। हे वत्स ! जहां पर भी उनके नाम और गुण का कीर्तन होता है वहां सभी तीर्थ, पुण्य और मङ्गल

उपस्थित हो जाते हैं। उनके कीर्तन की ध्वनि को सुनकर सभी पातक दूर से ही उसी प्रकार भाग जाते हैं जैसे वैनतेय को देखकर सर्प भाग जाते हैं ॥ ६८-७० ॥

तद्दिनं सफलं धन्यं यशस्यं सर्वमङ्गलम् ।
श्रीकृष्णकीर्त्तनं यत्र तत्रैव नायुषो व्ययः ॥ ७१ ॥
संकीर्त्तनध्वनिं श्रुत्वा ये च नृत्यन्ति वैष्णवाः ।
तेषां पादरजःस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा ॥ ७२ ॥
तत्कीर्त्तनं भवेद्यत्र कृष्णस्य परमात्मनः ।
स्थानं तच्च भवेत्तीर्थं मृतानां तत्र मुक्तिदम् ॥ ७३ ॥
नात्र पापानि तिष्ठन्ति पुण्यानि सुस्थिराणि च ।
तपस्विनां च व्रतिनां व्रतानां तपसां स्थलम् ॥ ७४ ॥

वह दिन सफल है, धन्य है, यशस्वी है और हर प्रकार से मङ्गलमय है जब श्रीकृष्ण का कीर्तन होता है। ऐसे स्थान पर आयु का क्षय नहीं होता। संकीर्तन को सुनकर जो वैष्णव नृत्य करते हैं उनके पैरों की धूल के स्पर्श से तत्काल वसुन्धरा पवित्र हो जाती है। जिस स्थान पर परमात्मा श्रीकृष्ण का कीर्तन होता है वह स्थान मृतकों को मुक्ति देनेवाला तीर्थ हो जाता है। वहाँ पाप नहीं टिकते तथा पुण्य सुस्थिर हो जाता है। ऐसा स्थान तपस्वियों और व्रतियों तथा व्रतों और तपस्याओं का स्थल बन जाता है ॥ ७१-७४ ॥

वर्त्तते पापिनां देहे पापानि त्रिविधानि च ।
महापापोपपापातिपापान्येव स्मृतानि च ॥ ७५ ॥
हन्ता यो विप्रभिक्षूणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
स्त्रीणां च वैष्णवानां च स महापातकी स्मृतः ॥ ७६ ॥
भ्रूणघ्नश्चापि गोघ्नश्च शूद्रघ्नश्च कृतघ्नकः ।
विश्वासघाती विड्भोजी स एव ह्युपपातकी ॥ ७७ ॥
अगम्यागामिनो ये च सुरविप्रस्वहारिणः ।
अतिपातकिनश्चैते वेदविद्भिः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७८ ॥

पापियों के देह में तीन प्रकार के पाप विद्यमान रहते हैं जो महापाप, उपपाप और अतिपाप के नाम से जाने जाते हैं। जो विप्र, भिक्षु, यती, ब्रह्मचारी, स्त्री और वैष्णवों का हन्ता है उसे महापातकी कहा गया है। भ्रूणहत्या करनेवाले, गो हत्या करनेवाले, शूद्रहत्या करनेवाले, कृतघ्न, विश्वासघाती तथा विड्भोजी ये उपपातकी कहे गये हैं। जो अगम्यगामी हैं तथा देव और ब्राह्मण की सम्पत्ति का हरण करने वाले हैं उन्हें वेदविदों ने अतिपातकी कहा है ॥ ७५-७८ ॥

कृष्णसंकीर्त्तनध्यानात्तन्मन्त्रग्रहणादहो ।
मुच्यन्ते पातकैस्तैस्ते पापिनस्त्रिविधाः स्मृताः ॥ ७९ ॥

श्रीकृष्ण के संकीर्तन, ध्यान और उनके मन्त्रग्रहण से, अहो ! जो तीन प्रकार के पापी बताये गये हैं, वे सभी अपने पातकों से मुक्त हो जाते हैं ॥ ७९ ॥

तपोयज्ञकृती पूतस्तीर्थस्नातव्रती तथा ।
भिक्षुर्यतिर्ब्रह्मचारी वानप्रस्थश्च तापसः ॥ ८० ॥
पवित्रः परमो वह्निः सुपवित्रं जलं तथा ।
एते सर्वे वैष्णवानां कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८१ ॥

तप तथा यज्ञ करनेवाला पवित्र होता है; तीर्थ में स्नान करनेवाला पवित्र होता है; व्रत करनेवाला पवित्र होता है; भिक्षु तथा यति पवित्र होते हैं; ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा तापसी पवित्र होते हैं; अग्नि परम पवित्र होता है तथा जल भी अत्यन्त पवित्र होता है; किन्तु ये सभी वैष्णवों की पवित्रता की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं ठहरते ॥ ८०-८१ ॥

विष्णुपादोदकोच्छिष्टं भुञ्जते ये च नित्यशः ।
पश्यन्ति च शिलाचक्रं पूजां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ ८२ ॥
जीवन्मुक्ताश्च ते धन्या हरिदासाश्च भारते ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य प्राप्नुवन्ति फलं ध्रुवम् ॥ ८३ ॥
नहि तेषां पराभूताः पुण्यवन्तो जगत्त्रये ।
तेषां च पादरजसा तीर्थं पूतं तथा धरा ॥ ८४ ॥

तेषां च दर्शनं स्पर्शं वाञ्छन्ति मुनयः सुराः ।
पुरुषाणां सहस्रं च पूतं तज्जन्ममात्रतः ॥ ८५ ॥

जो नित्य प्रति विष्णु के पादोदक का उच्छिष्ट खाते हैं तथा जो नित्य शालग्राम शिला का दर्शन और उसका पूजन करते हैं वे हरिभक्त भारत में जीवनमुक्त तथा धन्य हैं। वे पग-पग पर अश्वमेध का फल निश्चित रूप से प्राप्त करते हैं। तीनों लोकों में वे किसी से भी पराजित नहीं होते। उनके चरणरज से तीर्थ तथा वसुन्धरा दोनों ही पवित्र हो जाते हैं। उनके दर्शन-स्पर्शन की देव तथा मुनिगण भी इच्छा करते हैं। उनके जन्म मात्र से सहस्र पुरुष पवित्र हो जाते हैं ॥ ८२-८५ ॥

इत्युक्त्वा जगतां धाता तत्र तूष्णीं बभूव सः ।
आश्चर्यं मेनिरे श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ८६ ॥

यह कहकर ब्रह्मा जी चुप हो गये। देव तथा मुनिजन भी यह सब सुनकर आश्चर्यमग्न हो गये ॥ ८६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्याधर्यः समागताः ।
गन्धर्वाश्चापि विविधा ननृतुः किन्नरा जगुः ॥ ८७ ॥
रम्भोर्वशी घृताची च मेनका च तिलोत्तमा ।
सुधामुखी पूर्णचित्ती मोहनी कलिका तथा ॥ ८८ ॥
चम्पावती चन्द्रमुखी पद्मा पद्ममुखीति च ।
एताश्चान्याश्च बह्वयश्च श्वश्वत्सुस्थिरयौवनाः ॥ ८९ ॥
बृहन्नितम्बश्रोणीकास्तनभारैः समानताः ।
ईषद्धास्याः प्रसन्नास्याः कामार्त्ताश्च समाययुः ॥ ९० ॥

इसी बीच वहाँ पर विद्याधरियाँ आ गईं। अनेक प्रकार के गन्धर्व नृत्य करने लगे। किन्नर गाने लगे। रम्भा, उर्वशी, घृताची, मेनका, तिलोत्तमा, सुधामुखी, पूर्णचित्ति, मोहिनी कलिका, चम्पावती, चन्द्र-मुखी, पद्मा, पद्ममुखी—ये सब तथा अनेक अन्य स्थिरयौवना, बृहत् नितम्बा तथा श्रोणीवाली, स्तनभार से किञ्चित नत, मुस्कराती हुईं प्रसन्नमुख तथा कामार्त अप्सरायें वहाँ आईं ॥ ८७-९० ॥

वेदज्ञा मूर्त्तिमन्तश्च वेदाश्चात्वार एव च ।

ब्राह्मणा भिक्षवः सिद्धा यतयो ब्रह्मचारिणः ॥ ९१ ॥
समाययुस्तथा मन्दा दैवज्ञाः स्तुतिपाठकाः ।
लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री रोहिणी रतिः ॥ ९२ ॥
तुलसी पृथिवी गङ्गा स्वाहा च यमुना तथा ।
वारुणी मनसेन्द्राणी ताः सर्वा देवयोषितः ॥ ९३ ॥
मुनिपत्न्यश्च गन्धर्व्यो हर्षयुक्ताः समाययुः ।
अहो महोत्सवं परमानन्दमानसाः ॥
विचित्रां च ब्रह्मसभां पुष्करं तीर्थमाययुः ॥ ९४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
महोत्सवारम्भो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वेदज्ञ तथा मूर्तिमान चारों वेद, ब्राह्मण, भिक्षु सिद्ध, यति तथा ब्रह्मचारी आये। मन्द, दैवज्ञ, स्तुतिपाठक, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, रोहिणी, रति, तुलसी, पृथिवी, गङ्गा, स्वाहा, यमुना, वारुणी, मनसा, इन्द्राणी आदि सभी देवपत्नियाँ, मुनिपत्नियाँ तथा हर्षयुक्त गन्धर्वियाँ वहाँ उपस्थित हुईं। अहो! कितना आश्चर्यमय महोत्सव था। परमानन्द से पूर्ण मनवाले सभी लोग पुष्कर तीर्थ में एकत्र होकर उस विचित्र ब्रह्मसभा में आ गये ॥ ९१-९४ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के प्रथम रात्र में
महोत्सव नामक दशम अध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे एकादशोऽध्यायः

अथ महोत्सवदर्शनम् ।

श्रीव्यास उवाच ।

अथ गन्धर्वराजस्तु भगवानाज्ञया विधेः ।
संगीतं च जगौ तत्र कृष्णरासमहोत्सवम् ॥ १ ॥
सुसमं तालमानं च सुतानं मधुरं श्रुतम् ।
वीणामृदङ्गमुरुजयुक्तं ध्वनिसमन्वितम् ॥ २ ॥
रागिणीयुक्तरागेण समयोक्तेन सुन्दरम् ।
माधुर्यं मूर्छनायुक्तं मनसो हर्षकारणम् ॥ ३ ॥
विचित्रं नृत्यरुचिरं रूपवेशमनुत्तमम् ।
लोकानुरागबीजं च नाट्योपयुक्तहस्तकम् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा सुराः सर्वे मुनयः सर्वयोषितः ।
मूर्च्छां प्रापुश्च सहसा चेतनां च पुनः पुनः ॥ ५ ॥

महोत्सव दर्शन

श्री वेदव्यास बोले : इसके बाद गन्धर्वराज उपबर्हण ने भगवान् की आज्ञा से कृष्णरासलीला महोत्सव का संगीत गाया। सुसम तालमान तथा सुन्दर तान सहित और मधुर वीणा, मृदङ्ग, मुरुज की ध्वनियों से समन्वित संगीत सुनाई पड़ने लगा। समयोचित रागिनी-युक्त राग और सुन्दर मूर्च्छनायुक्त माधुर्य मन को हर्षित कर रहा था। उत्तम वेशयुक्त नृत्य के कारण रुचिर विचित्र नाट्य तथा अभिनययुक्त और हाथों के तालों सहित लोकानुराग का कारण स्वरूप संगीत सुन कर देवता, मुनि तथा स्त्रियाँ सभी बार-बार मूर्च्छा तथा चेतना को प्राप्त हुए ॥ १-५ ॥

गोपीनां वस्त्रहरणं गोपीगणविलापनम् ।

ताभ्यो वस्त्रप्रदानं च सम्मानं वरदानकम् ॥ ६ ॥
कात्यायनीव्रतं चापि विप्रदारान्नभोजनम् ।
महेन्द्रदर्पपूजादि भञ्जनं शैलपूजनम ॥ ७ ॥
पुनश्च शुश्रुवुः सर्वे श्रीवृन्दावनवर्णनम् ।
संप्रापुश्च पुनर्मूर्च्छां पुनः प्रापुश्च चेतनाम् ॥ ८ ॥

गोपियों के चीर हरण, गोपियों के विलाप, उन्हें वस्त्र, सम्मान तथा वरदान देना, कात्ययानी व्रत, ब्राह्मण पत्नियों के भोजन, महेन्द्र के दर्प तथा पूजादि के भंजन, गोवर्धन पर्वत की पूजा, तथा श्री वृन्दावन के संगीतमय वर्णन को सभी लोगों ने पुनः पुनः सुना तथा पुनः पुनः मूर्च्छा और चेतना को प्राप्त हुए ॥ ६-८ ॥

तस्मै ददौ पुरो ब्रह्मा वह्निशुद्धांशुकं परम् ।
परं शुभाशीर्वचनं यत्तन्मानसवाञ्छितम् ॥ ९ ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं चारुकुण्डलयुग्मकम् ।
मणीन्द्रसारमुकुटं परं रत्नांगुरीयकम् ॥ १० ॥
सुगन्धि चन्दनं पुष्पं स्वपादरेणुमीप्सितम् ।
अमूल्यरत्नतिलकं रत्नभूषणमुज्ज्वलम् ॥ ११ ॥
प्रत्येकं वस्तु रुचिरं तद्योषिद्भ्यश्च संददौ ।
विश्वकर्मा च निर्माणमणिं भूषणमुत्तमम् ॥ १२ ॥
प्रत्येकं शङ्खसिन्दूरं कस्तूरीयुक्तचन्दनम् ।
सकर्पूरं च ताम्बूलं रत्नेन्द्रसारदर्पणम् ॥ १३ ॥
मणिनिर्माणमञ्जीरं श्वेतचामरशोभनम् ।
मनोयायि रथं दिव्यं ईश्वरेच्छाविनिर्मितम् ॥ १४ ॥
मुक्तामाणिक्यहीरेन्द्रैर्मणीन्द्रैश्च परिष्कृतम् ।
सद्रत्नमालाजालैश्च श्वेतचामरदर्पणैः ॥ १५ ॥
सुशोभितं च परितो लक्षैः सुन्दरमन्दिरैः ।

मणिमाणिक्यहीराढ्यं सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥
सहस्रचक्रसंसक्तं योजनायतसम्मितम् ।
धनुर्लक्षोच्छ्रितं चैव सहस्राश्वेन योजितम् ॥ १७ ॥

सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने गन्धर्व उपबर्हण को वह्निशुद्ध वस्त्र तथा उसके द्वारा सर्ववाञ्छित शुभाशीर्वाद दिया। फिर अमूल्य रत्नों से निर्मित सुन्दर दो कुण्डल, मणीन्द्रसार से निर्मित मुकुट, रत्नजटित अँगूठी, सुगन्धित चन्दन और पुष्प तथा अभीप्सित स्वपादरेणु दिया। उन्होंने उपबर्हण को पत्नियों में से प्रत्येक को बहुमूल्य रत्नतिलक, उज्ज्वल रत्नभूषण और सुन्दर वस्तुएँ दीं। विश्वकर्मा द्वारा मणियों से निर्मित उत्तम भूषण, शङ्ख, सिन्दूर, कस्तूरीयुक्त चन्दन, कपूरयुक्त ताम्बूल तथा रत्नेन्द्रसार से बने दर्पण प्रत्येक को दिये। मणि से निर्मित मंजीरें, सुशोभन श्वेत चामर, ईश्वरेच्छा से निर्मित और मन की गति के समान वेगवान दिव्य रथ; मुक्ता, माणिक्य, हीरे और इन्द्रमणीन्द्रों से परिष्कृत सद्रत्नों के जालों से निर्मित मालायें; श्वेत चामर और सुन्दर दर्पण; चारों ओर मणि, माणिक्य, हीरों तथा सद्रत्नों से जटित कलशों के समान उज्ज्वल लाखों मन्दिर; सहस्र चक्रों से युक्त, एक योजन लम्बा, एक लाख धनुषों के बराबर ऊँचा और सहस्र अश्वों से युक्त रथ—यह सब भी दिया ॥ ६-१७ ॥

एतदेव ददौ ब्रह्मा प्रहृष्टस्तुष्ट एव च ।
शम्भुस्तुष्टो ददौ हृष्टो हरिभक्तिं च निश्चलाम् ॥ १८ ॥
ज्ञानमाध्यात्मिकं चैव योगज्ञानं सुदुर्लभम् ।
नानाजन्मस्मृतिज्ञानं नैपुण्यं सर्वसिद्धिषु ॥ १९ ॥
हरेश्चर्चाविधानं च स्तवनं पूजनं तथा ।
माणिक्यहीराहारं च रत्नलक्षं सुदुर्लभम् ॥ २० ॥

अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने उक्त सब वस्तुयें दीं। शिवजी ने प्रसन्न होकर निश्चल हरिभक्ति, आध्यात्मिक ज्ञान, अत्यन्त दुर्लभ योगज्ञान, अनेक जन्मों की स्मृतियों का ज्ञान, सब सिद्धियों में निपुणता; हरिपूजा का विधान, स्तवन एवं पूजन; मणि-माणिक्य और हीरों का हार तथा दुर्लभ एक लाख रत्न दिया ॥ १८-२० ॥

नागहारं ददौ शेषो नागेन्द्रमौलिमण्डनम् ।
नागकन्याशतं चैव वरभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥
नागेभ्यश्चाभयं नित्यं हिंस्रजन्तुभ्य एव च ।
नृपालयगतिज्ञानं सर्वलोकविलोकनम् ॥ २२ ॥

शेष ने नागेन्द्र मणिमण्डित नागहार और उत्तम भूषणभूषित सौ नाग कन्यायें दिया। नागों से तथा हिंस्र जन्तुओं से नित्य अभय, नृपालयगतिज्ञान और सर्वलोक-विलोकन की क्षमता भी दिया। ॥ २१-२२ ॥

निर्विघ्नत्वं ददौ तस्मै विघ्नराजश्च संसदि ।
सुदुर्लभं पादपद्मयुग्मरेणुमभीप्सितम् ॥ २३ ॥
अमूल्यं च निरुपमं ग्रीष्मसूर्यप्रभोपमम् ।
मणिराजं सुदीप्तं च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २४ ॥
सर्वत्र विजयं चैव वाञ्छितं निर्मलं यशः ।
संगीतविद्याविज्ञानं तन्नैपुण्यं मनोरमम् ॥ २५ ॥
लक्षस्वर्णं धनेशश्च दासानां च शतं शतम् ।
धर्मः कीर्त्तिमयीं मालां स्कन्दो धैर्यं ददौ तथा ॥ २६ ॥
विषजीर्णापहरणं ददौ धन्वन्तरिर्मनुम् ।
सूर्यः स्यमन्तकमणि स्वर्णभाराष्टकप्रसुम् ॥ २७ ॥
चन्द्रः श्वेताश्वरत्नं च ह्यमूल्यमुत्तमं ददौ ।
वह्निशुद्धांशुकयुगं ददौ वह्निश्च संसदि ॥ २८ ॥

विघ्नराज गणेश जी ने सभा में निर्विघ्नता तथा पादपद्मों का अभीप्सित दुर्लभ धूलि; अमूल्य और निरुपम ग्रीष्मकालीन सूर्य की प्रभा के समान, तीनों लोकों में दुर्लभ सुदीप्त मणिराज; तथा सर्वत्र विजय, तथा वाञ्छित निर्मल यश दिया। कुबेर ने संगीतविद्या का विज्ञान, और उसमें निपुणता; एक लाख स्वर्ण तथा शत-शत दास दिया। धर्म ने कीर्तिमयी माला दिया। स्कन्द ने धैर्य दिया। धन्वन्तरि ने विष और जीर्णापहरण मन्त्र दिया। सूर्य ने अष्टभार सुवर्ण देनेवाली स्यमन्तक

मणि दिया। चन्द्रमा ने अमूल्य और उत्तम श्वेत अश्व दिये। अग्नि ने एक जोड़े अग्निशुद्ध वस्त्र दिये ॥ २३-२८ ॥

उपेन्द्रो रत्नकोटिं च तदेवेन्द्रो ददौ पुरा।
वीणाशिल्पं विश्वकर्मा वरुणश्च मणिस्रजम् ॥ २९ ॥
स्मरः शृङ्गारनैपुण्यं वीर्यस्तम्भनमेव च।
कामसन्दीपनं ज्ञानं कामिनीप्रेममूर्छनम् ॥ ३० ॥
कामिनीवशगं शिल्पं रतितत्त्वं ददौ तथा।
पापदाहनमन्त्रं च रत्नछत्रं समीरणः ॥ ३१ ॥
यमश्च धर्मतत्त्वं च नरकत्राणकारणम्।
वसवश्च वसून् दिव्यान् रुद्रस्तेभ्योऽभयं ददौ ॥ ३२ ॥
मधुपात्रं सुधापात्रं जयन्तो नलकूवरः।
शुक्लपुष्पं शुक्लधान्यं पादरेणुमभीप्सितम् ॥ ३३ ॥
मनोभिरामं मुनयो ददौ तस्मै शुभाशिषम्।
लक्ष्मीश्च परमैश्वर्यं भारती हारमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
रत्नमालां ददौ दुर्गा सर्वत्राभयमीप्सितम्।
तत्पत्नीभ्यश्च रत्नानि सिन्दूराभरणानि च ॥ ३५ ॥
क्रीडापद्मं रोहिणी च रतिः सद्रत्नदर्पणम्।
तुलसी चातुलं माल्यं दिव्यं वसु वसुन्धरा ॥ ३६ ॥
गङ्गा च विपुलं पुण्यं स्वाहा सद्रत्नपाशकम्।
यमुना जलजं पद्ममम्लानं सार्वकालिकम् ॥ ३७ ॥
वारुणीं वारुणी तुष्टा रत्नपात्रं शची ददौ।
मनसा प्रददौ तस्मै नागानां मौलिमण्डनम् ॥ ३८ ॥
गन्धर्वाश्चापि तत्पत्न्यः स्वशिल्पं प्रददुस्तथा।
परमानन्दयुक्ताश्च मुनिपत्न्यः शुभाशिषम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
महोत्सवदर्शनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

उपेन्द्र और इन्द्र ने एक-एक करोड़ रत्न दिये। विश्वकर्मा ने वीणा-शिल्प और वरुण ने मणियों की माला दी। कामदेव ने शृङ्गारनैपुण्य, वीर्यस्तम्भन, कामसन्दीपनज्ञान, कामिनीप्रेममूर्छन, कामिनी वशीकरण शिल्प तथा रतितत्त्व दिया। वायु ने पापदाहन मन्त्र और रत्नछत्र दिया। यम ने धर्मतत्त्व, और नरकत्राण का उपाय दिया। वसुओं ने दिव्य सम्पत्ति और रुद्र ने अभय दिया। जयन्त ने मधुपात्र तथा सुधा-पात्र दिया। नलकूबर ने शुक्लपुष्प, शुक्लधान्य, और अभीप्सित पादरेणु दिया। मुनियों ने उन्हें मनोभिराम शुभाशीर्वाद दिया। लक्ष्मी ने परम ऐश्वर्य और भारती ने हार दिया। दुर्गा ने उन्हें रत्नमाला तथा सर्वत्र अभीष्ट अभय और उनको पत्नियों को रत्न, सिन्दूर तथा आभूषण प्रदान किया। रोहिणी ने क्रीडापद्म, रति ने सद्रत्न दर्पण, तुलसी ने अतुलनीय माला, वसुन्धरा ने दिव्य सम्पत्ति, गङ्गा ने विपुल पुण्य, स्वाहा ने सद्रत्नपाशक और यमुना ने कभी भी न मुरझानेवाला जलज पद्म दिया। सन्तुष्ट वारुणी ने वारुणी, शची ने रत्नपात्र और मनसा ने नागों की शिरोमणि दिया। गन्धर्वों और उनकी पत्नियों ने सहर्ष अपनी कलायें और शिल्प तथा मुनिपत्नियों ने शुभ आशीर्वाद दिया ॥ २९-३९ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के प्रथम रात्र में
महोत्सव दर्शनामक एकादश अध्याय।

प्रथमैक रात्रे द्वादशोऽध्यायः

शुक उवाच ।

महोत्सवे सुनिरूपन्ने दानस्योत्तरकालतः ।
किं बभूव रहस्यं च तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

शुक बोले : महोत्सव के समाप्त हो जाने तथा दान आदि दे दिये जाने के बाद रहस्यमय और क्या हुआ उसे आप हमें बतायें ॥ १ ॥

श्रीव्यास उवाच ।

सम्प्राप्य दानं देवानां गन्धर्वश्चोपवर्हणः ।
तेषां च पुरतो भक्त्या विदयामास वै तदा ॥ २ ॥
श्रुत्वा तद्वचनं ब्रह्मा तमुवाच च संसदि ।
शम्भुना च समालोच्य विधाता जगतामपि ॥ ३ ॥

श्री व्यासजी बोले : देवों द्वारा दिये गये दानों को पाकर गन्धर्व उपबर्हण उनके सामने जब भक्तिपूर्वक कृतज्ञताज्ञापन करने लगा तब उसके वचन को सुनकर सभा में जगत् के विधाता ब्रह्मा जी शम्भु से विचार करके उससे (उपबर्हण से) बोले ॥ २-३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

मथुरागमनं चैव कृष्णस्य परमात्मनः ।
विलापं गोपगोपीनां श्रावयास्मांश्च साम्प्रतम् ॥ ४ ॥
महोत्सवं कुरु पुनः शृण्वन्तु मुनयः सुराः ।
गायन्तु ताश्च संगीतं नृत्यन्त्वप्सरसां गणाः ॥ ५ ॥

ब्रह्मा बोले : हे उपबर्हण ! परमात्मा कृष्ण का मथुरागमन और गोपियों का विलाप तुम इस समय हमलोगों को सुनाओ, तथा पुनः महोत्सव करो। सभी देवता और मुनिजन उसे सुनेंगे। ये अप्सरायें भी नृत्य और संगीत प्रस्तुत करें ॥ ४-५ ॥

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
चक्रुस्ताः सरसं गीतं विद्याधर्यश्च संसदि ॥ ६ ॥
मायिनां चैव प्रवरो गन्धर्वश्चोपवर्हणः ।
जगौ सन्धानभावेन मथुरागमनं हरेः ॥ ७ ॥
विलापं गोकुलस्थानां श्रुत्वा विप्राः सुरादयः ।
मूर्च्छां प्रापुश्च रुरुदुर्ददुर्दानं पुनः पुनः ॥ ८ ॥
गोपीनां विरहालापैर्मूर्च्छितश्चोपवर्हणः ।
विस्वरेण वितानात्तु तालभङ्गो बभूव ह ॥ ९ ॥
तत्तालभङ्गं विज्ञाय देवाश्च मुनयस्तथा ।
चुकुपुः सहसा सर्वे निर्गतास्तन्मुखाग्नयः ॥ १० ॥
तद्दृष्ट्वा सहसा भीतो गन्धर्वश्चोपवर्हणः ।
सस्मार कृष्णं स्वाभीष्टं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ११ ॥

ब्रह्मा के वचन को सुनकर अप्सरायें उस सभा में नृत्य करने और विद्याधारियाँ सरस गीत गाने लगीं । मायावियों में श्रेष्ठ गन्धर्व उपबर्हण संधान भाव से हरि के मथुरागमन और गोपियों के विलाप को प्रस्तुत करने लगा । गोपियों के विलाप को सुनकर देवता तथा ब्राह्मण रोने, बार-बार मूर्च्छित होने और दान देने लगे । गोपियों के विरहालाप को प्रस्तुत करते समय उपबर्हण भी मूर्च्छित हो गया और स्वर तथा तान में विकृति आ जाने से ताल भंग हो गया । तालभङ्ग जानकर सभी देवता तथा मुनि क्रुद्ध हो गये और सहसा उनके मुख से अग्नियाँ निकल पड़ीं । उसे देखकर गन्धर्व उपबर्हण सहसा भयभीत हो गया । तब उसने स्वाभीष्ट परमात्मा ईश्वर श्रीकृष्ण का स्मरण किया ॥ ६-११ ॥

ददृशुः स्मृतिमात्रेण तत्तेजो नभसि स्थितम् ।
स्तम्भिता देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिका यथा ॥ १२ ॥
स्तम्भिता वह्नयः सर्वे मुनयश्च विजृम्भिताः ।
हरिस्मृतिश्चाभयदा शुभदा विघ्ननाशिनी ॥ १३ ॥
ददृशुर्देवताः सर्वा मुनयाश्चापि योषितः ।

गन्धर्वाश्च तथैवान्ये तेजो दृश्यं सुखप्रदम् ॥ १४ ॥

स्मरण मात्र से उसने आकाश में उनके तेज को देखा। उस तेज को देखकर देवगण चित्रलिखित मूर्तियों के समान स्तम्भित हो गये। सभी अग्नि शान्त हो गई। मुनि यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये कि श्रीहरि का स्मरण मात्र भी कितना अभयदायक, सुखदायक और विघ्नविनाशक है। उस सुखद और सुन्दर तेज को उस समय देवों मुनियों, स्त्रियों, गन्धर्वों, तथा सभी अन्य लोगों ने देखा ॥ १२-१४ ॥

परं कुज्झटिकाकारं कोटीन्दुकिरणप्रभम् ।
योजनायतविस्तीर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम् ॥ १५ ॥
तत्तेजोऽभ्यन्तरे सर्वे ददृशूरथमुत्तमम ।
गव्यूतिमानं विस्तीर्णं धनुष्कोटिसमुच्छ्रितम् ॥ १६ ॥
श्वेताश्वानां च चक्राणां सहस्रेण समावृतम् ।
अमूल्यरत्नरचितमीश्वरेच्छाविनिर्मितम् ॥ १७ ॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं मनोयायि मनोहरम ।
मुक्तामाणिक्यपरमहीराहारैर्विराजितम् ॥ १८ ॥
रत्नदर्पणलक्षैश्च त्रिलक्षैः श्वेतचामरैः ।
वह्निशुद्धांशुकानां च त्रिलक्षैः परिशोभितम् ॥ १९ ॥
त्रिकोटिभिश्च ज्वलितं क्रीडासुन्दरमन्दिरैः ।
पारिजातप्रसूनानां मन्दाराणां मनोहरैः ॥ २० ॥
मालाजालैस्त्रिलक्षैश्च मालतीनां च मण्डितम् ।

वह तेज घने कुहरे के समान और करोड़ों चन्द्रमा की किरणों की प्रभा से युक्त, एक योजन विस्तृत, स्निग्ध और सुमनोहर था। उस तेज के भीतर सबने एक उत्तम रथ देखा जो गव्यूतिमान, विस्तीर्ण और एक करोड़ धनुष के बराबर ऊंचा था। वह एक सहस्र श्वेत अश्वों तथा एक सहस्र ही चक्रों से युक्त था। उसमें अमूल्य रत्न लगे थे और ईश्वर की इच्छा से उसका निर्माण हुआ था। वह नाना प्रकार के विचित्र चित्रों से युक्त, मन की गति के समान वेगवान और मनोहर था। वह चारों ओर मुक्ता, माणिक्य और अत्यन्त उत्कृष्ट हीरों के हारों से

सुशोभित था। उसके भीतर एक लाख रत्नदर्पण और तीन लाख चामर तथा वह्निशुद्ध वस्त्रों की तीन लाख झण्डियाँ और ध्वज आदि लगे थे। तीन करोड़ अत्यन्त उज्ज्वल और सुन्दर क्रीड़ामन्दिर, पारिजात, मन्दार तथा मालती के सुन्दर पुष्पों की तीन लाख मालायें उसकी शोभावृद्धि कर रही थीं॥ १५-२०॥ ॥

एवंभूतं रथं दृष्ट्वा ददृशुस्ते तदनन्तरे ॥ २१ ॥
मध्यकोष्ठाभ्यन्तरे च किशोरं श्यामसुन्दरम् ।
वह्निशुद्धांशुकेनैव पीतवर्णेन शोभितम् ॥ २२ ॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ।
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसमुज्ज्वलम् ॥ २३ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं नित्योपास्यं सुरासुरैः ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥ २४ ॥
मणिना कौस्तुभेन्द्रेण गण्डस्थलविभूषितम् ।
परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम ॥ २५ ॥
स्तुतं ब्रह्मेशशेषैश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ।
वेदानिर्वचनीयं च स्वेच्छामयमनीश्वरम् ॥ २६ ॥
नित्यं नित्यं निर्गुणं च ज्योतिरूपं सनातनम् ।
प्रकृतेः परमीशानं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ २७ ॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाममनोहरम् ।
मयूरपुच्छचूडं च वरं वंशीधरं परम् ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा तमद्भुतं रूपं तुष्टाव कमलोद्भवः ।
गणेशः शेषः शम्भुश्च तदन्ये मुनयः सुराः ॥ २९ ॥

इस प्रकार का रथ देखने के बाद उन लोगों ने रथ के मध्य कोष्ठ (कमरे) में पीतवर्ण, वह्निशुद्धांशुक से सुशोभित, रत्नकेयूर, वलय, और रत्न मंजीर से भूषित, रत्नकुण्डलों से उज्ज्वल गण्डस्थलवाले, मुस्कराते हुए, प्रसन्नमुख, चन्दनोक्षित सर्वाङ्ग, मालतीमाला से मण्डित, कौस्तुभेन्द्र मणि से विभूषित गण्डस्थलवाले, पर, प्रधान, परम, परमात्मा,

ईश्वर, राधावक्षःस्थलस्थित किशोर श्यामसुन्दर को देखा जो ब्रह्मा, ईश, और शेष से स्तुत थे। वेदानिर्वचनीय, स्वेच्छामय, अनीश्वर, नित्य, निर्गुण, ज्योतिरूप, सनातन, प्रकृति से परे, ईशान, भक्तानुग्रह-कातर, कोटिकन्दर्पलावण्य-लीलाधाम, मनोहर, मयूरपुच्छचूड, वर वंशीधर और परम अद्भुत रूप को देखकर ब्रह्मा, गणेश, शेष, शम्भु, अन्य मुनिजन तथा देवता स्तुति करने लगे॥ २१-२९॥

ब्रह्मोवाच॥

परं ब्रह्म परं धाम परमात्मानमीश्वरम्।
वन्दे वन्द्यं च सर्वेषां सर्वकारणकारणम्॥ ३०॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं सर्वाद्यं सद्भिरीडितम्।
वेदावेद्यं च विद्वद्भिर्न दृष्टं स्वप्नगोचरे॥ ३१॥

ब्रह्मा जी बोले: परम ब्रह्म, परमधाम, परमात्मा तथा ईश्वर को मैं नमस्कार करता हूं। जो सबके वन्दनीय है, जो सब कारणों के कारण हैं, जो सर्वेश्वर हैं, जो सज्जनों से स्तुत हैं, वेदों से भी जो अवेद्य हैं, विद्वानों द्वारा जो जागृत तथा स्वप्नावस्था में भी नहीं देखे गये हैं उन सर्वरूप, और सर्वाद्य को मैं नमस्कार करता हूं॥ ३०-३१॥

श्रीमहादेव उवाच।

सिद्धस्वरूपं सिद्धाद्यं सिद्धबीजं सनातनम्।
प्रसिद्धं सिद्धिदं शान्तं सिद्धानां च गुरोर्गुरुम्॥ ३२॥
वन्दे वन्द्यं च महतां परात्परतरं विभुम्।
स्वात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुग्रहकातरम्॥ ३३॥
भक्तिप्रियं च भक्तेशं स्वभक्तिदास्यदं परम्।
स्वपदप्रदमेकं च दातारं सर्वसम्पदाम्॥ ३४॥

श्री महादेव जी बोले: सिद्धस्वरूप, सिद्धाद्य, सिद्धबीज, सनातन, प्रसिद्ध, सिद्धिदाता, शान्त, सिद्धों के गुरु के गुरु, महान लोगों द्वारा वन्दनीय, परात्पर, विभु, स्वात्माराम, पूर्णकाम, भक्तानुग्रहकातर, भक्तिप्रिय, भक्तेश, स्वभक्ति तथा स्वदास्य के दाता, परम, स्वपदप्रद, तथा सर्वसम्पत्तियों के दाता को मैं नमस्कार करता हूं॥ ३२-३४॥

अनन्त उवाच ।

वक्त्राणां च सहस्रेण किं वा स्तौमि श्रुतिश्रुतम् ।
कोटिभिः कोटिभिर्वक्त्रैः को वा स्तोतुं क्षमः प्रभो ॥ ३५ ॥
किमु स्तोष्यति शम्भुश्च पञ्चवक्त्रेण वाञ्छितम् ।
कर्त्ता चतुर्णां वेदानां किं स्तोष्यति चतुर्मुखः ॥ ३६ ॥
षड्वक्त्रो गजवक्त्रश्च देवाश्च मुनयोऽपि वा ।
वेदा वा कि वेदविदः स्तुवन्ति प्रकृतेः परम् ॥ ३७ ॥
वेदानिर्वचनीयं च वेदां निर्वक्तुमक्षमाः ।
वेदविज्ञातवाक्येन विद्वांसः किं स्तुवन्ति तम् ॥ ३८ ॥

अनन्त बोले : हे प्रभो ! एक सहस्र मुखों से श्रुतिश्रुत आपकी स्तुति मैं क्या करूँ ? कोटि कोटि मुखों से भी आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ है ! शम्भु भी पांच मुख से क्या वाञ्छित स्तुति करेंगे ! चारों वेदों के कर्ता चतुर्मुख ब्रह्मा जी क्या स्तुति करेंगे ! षण्मुख, गजानन, देव या मुनि, वेद या वेदविद् भी प्रकृति से परे भगवान् को क्या स्तुति कर सकते हैं ! वेदों से अनिर्वचनीय होने के कारण आपके सम्बन्ध में वेद भी कुछ कहने में अक्षम हैं, फिर वेदों से विज्ञात वाक्य द्वारा विद्वाज्जन आपकी क्या स्तुति कर सकते हैं ॥ ३५-३८ ॥

श्रीगणेश उवाच ।

मूर्खो वदति विष्णाय बुधो वदति विष्णवे ।
नम इत्येवमर्थं च द्वयोरेव समं फलम् ॥ ३९ ॥
यस्मै दत्तं च यज्ज्ञानं ज्ञानदाता हरिः स्वयम् ।
ज्ञानेन तेन स स्तौति भावग्राही जनार्दनः ॥ ४० ॥
एकवक्त्रोऽनेकवक्त्रो मूर्खो विद्वान् स्वकर्मणा ।
अधनी च धनी वापि सपुत्रो वाप्यपुत्रकः ॥ ४१ ॥
कर्मणां परमीशं च स्तोतुं को वाप्यनुत्तमम् ।
यथाशक्ति स्तुतिः पूजा वन्दनं स्मरणं हरेः ॥ ४२ ॥
संकीर्त्तनं च भजनं जपनं बुद्ध्यनुक्रमम् ।

कुर्वन्ति सन्तोऽसन्तश्च सन्ततं परमात्मनः ॥ ४३ ॥

गणेश जी बोले : मूर्ख व्यक्ति "विष्णाय" कहता है। बुद्धिमान् व्यक्ति 'विष्णवे" कहता है। "नमः" इस अर्थ के लिए दोनों का समान फल होता है। ज्ञानदाता तो हरि स्वयं हैं। जिसको उन्होंने जो ज्ञान दिया है, वह उसी ज्ञान से स्तुति करता है। जनार्दन तो भावग्राही हैं। अपने कर्म से एकमुख, अनेकमुख, मूर्ख या विद्वान्, धनी या निर्धन, सपुत्र या अपुत्र, कर्मों से परे अनुत्तम ईश की स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? परमात्मा हरि की यथाशक्ति स्तुति, पूजा, वन्दन, स्मरण, संकीर्तन, भजन और जप सज्जन या असज्जन अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार ही करते हैं ॥ ३९-४३ ॥

कार्तिकेय उवाच ।

सर्वान्तरात्मा भगवान् ज्ञानं च सर्वजीविनाम् ।
ज्ञानानुरूपं स्तवनं सन्तो नैव हसन्ति तम् ॥ ४४ ॥

भवेषु त्रिविधो लोकोऽप्युत्तमो मध्यमोऽधमः ।
सर्वे स्वकर्मवशगा निषेकः केन वार्यते ॥ ४५ ॥

सर्वेश्वरं च संवीक्ष्य सर्वो वदति मत्प्रभुम् ।
मदीश्वरस्य समता सर्वेषु किंकरेषु च ॥ ४६ ॥

भजन्ति केचित् शुद्धान्तं परमात्मानमीश्वरम् ।
केचित्तदंशमंशांशं प्राप्नुवन्ति क्रमेण तम् ॥ ४७ ॥

कार्तिकेय जी बोले : भगवान् सर्वान्तरात्मा हैं। समस्त जीवों में ज्ञान हैं। स्तुति ज्ञान के अनुरूप ही होती है। सज्जन पुरुष उसे देखकर हंसते नहीं। संसार में तीन प्रकार के लोग होते हैं : (१) उत्तम, (२) मध्यम, (३) अधम। सभी अपने अपने कर्म के वश में हैं। निषेक को कौन रोक सकता है। सर्वेश्वर को देखकर सभी उस प्रभु को कहते हैं कि 'मेरे ईश्वर की तथा सभी किंकरों की समता है।' कुछ लोग, शुद्धान्त परमात्मा ईश्वर का भजन करते हैं; कुछ लोग उनके अंश का भजन करते हैं; कुछ लोग उनके अंश के अंश का भजन करते हैं। क्रम से सभी उन प्रभु को प्राप्त करते हैं ॥ ४४-४७ ॥

धर्म उवाच ।

अहं साक्षी च सर्वेषां विधिना निर्मितः पुरा ।
विधातुश्च विधाता त्वं सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥ ४८ ॥

धर्म बोले : मैं सबका साक्षी हूं। ब्रह्मा जी ने पहले मुझे ऐसा बनाया था। ब्रह्मा जी के भी बनाने वाले आप हैं। हे सर्वेश्वर ! आपको मेरा नमस्कार है ॥ ४८ ॥

देवा ऊचुः ।

यं स्तोतुमसमर्थश्च सहस्रायुः स्वयं विधिः ।
ज्ञानाधिदेवः शम्भुश्च तं स्तोतुं किं वयं क्षमाः ॥ ४९ ॥

देवता बोले : जब सहस्र वर्ष की आयु वाले स्वयं ब्रह्मा जी जिसकी स्तुति करने में असमर्थ हैं; ज्ञान के अधिदेव शिव जी भी जिसकी स्तुति करने में सक्षम नहीं हैं, तब हम उसकी स्तुति करने में कैसे सक्षम हो हो सकते हैं ॥ ४६ ॥

वेदा ऊचुः ।

किं जानीमो वयं के वाप्यनन्तेशस्य यो गुणः ।
वयं वेदास्त्वमस्माकं कारणस्यापि कारकः ॥ ५० ॥

वेद बोले : हम कौन हैं और अनन्तेश का क्या गुण है। हम वेद हैं। आप हमारे कारण के भी कारण हैं ॥ ५० ॥

मुनय ऊचुः ।

यदि वेदा न जानन्ति माहात्म्यं परमात्मनः ।
न जानीमस्तव गुणं वेदानुसारिणो वयं ॥ ५१ ॥

मुनि बोले : यदि परमात्मा के माहात्म्य को वेद नहीं जानते तो वेदानुसारी हमलोग भी आप के गुण को नहीं जानते ॥ ५१ ॥

सरस्वत्युवाच ।

विद्याधिदेवताहं च वेदा विद्याधिदेवकाः ।
वेदाधिदेवो धाता च तदीशं स्तौमि किं प्रभो ॥ ५२ ॥

सरस्वती बोलीं : हे प्रभो मैं विद्या की देवता हूं। वेद भी विद्या

के देवता हैं। वेदों के अधिदेवता ब्रह्मा जी हैं; और उनके भी स्वामी आपकी मैं क्या स्तुति करूँ ? ॥ ५२ ॥

पद्मोवाच ।

यत्पादपद्मं पद्मेशः शेषाश्चान्ये सुरास्तथा ।
ध्यायन्ते मुनयो देवा ध्याये तं प्रकृतेः परम् ॥ ५३ ॥

पद्मा बोलीं : जिसके चरण कमल का पद्मेश तथा अन्य देव और मुनिजन ध्यान करते हैं, उन प्रकृति से परे भगवान् का मैं ध्यान करती हूं ॥ ५३ ॥

सावित्र्युवाच ।

सावित्री वेदमाताहं वेदानां जनको विधिः ।
त्वामेव धत्ते धातारं नमामि त्रिगुणात् परम् ॥ ५४ ॥

सावित्री बोलीं : मैं वेदों की माता सावित्री हूं। वेदों के जनक ब्रह्मा हैं और वह तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। मैं उस त्रिगुणातीत भगवान् को नमस्कार करती हूं ॥ ५४ ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

तव वक्षसि राधाहं रासे वृन्दावने वने ।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पादपद्मार्चने रता ॥ ५५ ॥
श्वेतद्वीपे सिन्धुकन्या विष्णोरुरसि भूतले ।
ब्रह्मलोके च ब्रह्माणी वेदमाता च भारती ॥ ५६ ॥
तवाज्ञया च देवानामाविर्भूता च तेजसि ।
निहत्य दैत्यान् देवारीन् दत्त्वा राज्यं सुराय च ॥ ५७ ॥
तत्पश्चाद्दक्षकन्याहमधुना पार्वती हरे ।
तवाज्ञया हरक्रोडे त्वद्भक्ता प्रतिजन्मनि ॥ ५८ ॥
नारायणप्रिया शश्वत्तेन नारायणी श्रुतौ ।
विष्णोरहं-पराशक्तिर्विष्णुमाया च वैष्णवी ॥ ५९ ॥
अनन्तकोटि ब्रह्माण्डं मया सम्मोहितं सदा ।

विदुषां रसनाग्रे च प्रत्यक्षं हि सरस्वती ॥ ६० ॥

महाविष्णोश्च माताहं विश्वानि यस्य लोमसु ।
रासेश्वरी च सर्वाद्या सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ ६१ ॥

तद्रासे धारणाद्राधा विद्वद्भिः परिकीर्त्तिता ।
परमानन्दपादाब्जं वन्दे सानन्दपूर्वकम् ॥ ६२ ॥

यत्पादपद्मं ध्यायन्ते परमानन्दकारणम् ।
पादपद्मेशशेषाद्या मुनयो मनवः सुराः ॥ ६३ ॥

योगिनः सन्ततं सन्तः सिद्धाश्च वैष्णवास्तथा ।
अनुग्रहं कुरु विभो बुद्धिशक्तिरहं तव ॥ ६४ ॥

पार्वती बोलीं : आपके वक्षस्थल पर मैं राधा हूं जो वृन्दावन के रास में थी। वैकुण्ठ में महालक्ष्मी के रूप में मैं आपके चरण कमल की सेवा में रत थी। भूतल पर श्वेत द्वीप में विष्णु के वक्षस्थल पर सिन्धु कन्या के रूप में थी। ब्रह्मलोक में मैं ब्राह्मणी, वेदमाता तथा भारती के रूप में थी। आपकी आज्ञा से मैं देवताओं के तेज से उत्पन्न हुई। देवों के शत्रुओं, दैत्यों को, मारकर देवों को राज्य देने के बाद हे हरे ! अब मैं दक्षकला पार्वती के रूप में शङ्कर जी के क्रोड में हूं। मैं प्रत्येक जन्म में आपकी भक्त रही हूं। मैं सदा नारायण की प्रिया रही हूं। इसलिये वेदों में मुझे नारायणी के नाम से कहा गया है। मैं विष्णु की परा शक्ति विष्णुमाया तथा वैष्णवी हूं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड सदा मेरे द्वारा संमोहित किये गये हैं। विद्वानों के जिह्वाग्र पर मैं प्रत्यक्ष सरस्वती हूं। महाविष्णु की मैं माता हूं, सारे विश्व जिसके रोम कूपों में हैं। मैं ही रासेश्वरी, सर्वाद्या तथा सर्वशक्ति स्वरूपिणी हूं। उनके रास में धारण करने से विद्वानों द्वारा मैं 'राधा' नाम से कही गयी हूं। वही मैं परमानन्द पादपद्म की आनन्दपूर्वक वन्दना करती हूं। जिस परमानन्द कारण पादपद्म का पादपद्मेश, शेष आदि, मुनिजन, मनु, सुर, योगी, सन्त, सिद्ध तथा वैष्णव ध्यान करते हैं, वह आप हे विभो ! मुझपर कृपा करें। मैं आपकी बुद्धि तथा शक्ति हूं ॥ ५५-६४ ॥

इति सर्वकृतं स्तोत्रं यः पठेत् संयतः शुचिः ।

इहैव च सुखं भुंक्ते यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ६५ ॥
निवृत्तेषु च देवेषु देवीषु मुनिपुङ्गवे ।
उपवर्हणगन्धर्वः स्तुतिं कर्त्तुं समुद्यतः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार सभी देवों, ऋषियों, आदि द्वारा स्तुत स्तोत्रों का जो पवित्र और संयत होकर पाठ करता है वह इस संसार में ही सुख प्राप्त करता है और अन्त में श्रीहरि के स्थान को प्राप्त होता है। सभी देवों, देवियों और मुनियों के चले जाने पर गन्धर्व उपबर्हण स्तुति करने के करने के लिये उद्यत हुआ ॥ ६५-६६ ॥

अथ गन्धर्वकृतस्तोत्रम् ।

गन्धर्व उवाच ।

वन्दे नवघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥ ६७ ॥
राधेशं राधिकाप्राणवल्लभं वल्लवीसुतम् ।
राधासेवितपादाब्जं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ ६८ ॥
राधानुरागं राधिकेष्टं राधापहृतमानसम् ।
राधाधारं भवाधारं सर्वाधारं नमामि तम् ॥ ६९ ॥

गन्धर्वकृत स्तोत्र

गन्धर्व बोला : नूतन मेघ के समान श्याम, पीत रेशमी वस्त्र धारण किये हुए, सानन्द, सुन्दर, शुद्ध, प्रकृति से परे श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूं। जो राधेश, राधिकाप्राणवल्लभ, वल्लवीसुत, राधासेवित पादाब्ज, राधावक्षः स्थलस्थित, राधानुग, राधिकेष्ट, राधापहृतमानस, राधाधार, भवाधार तथा सर्वाधार हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६७-६९ ॥

राधाहृत्पद्ममध्ये च वसन्तं सन्ततं शुभम् ।
राधासहचरं शश्वत् राधाज्ञापरिपालकम् ॥ ७० ॥
ध्यायन्ते योगिनो योगात् सिद्धाः सिद्धेश्वराश्च यम् ।
तं ध्याये सततं शुद्धं भगवन्तं सनातनम् ॥ ७१ ॥

सेवन्ते सन्ततं सन्तो ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः ।
सेवन्ते निर्गुणं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ ७२ ॥

निर्लिप्तं च निरीहं च परमात्मानमीश्वरम् ।
नित्यं सत्यं च परमं भगवन्तं सनातनम् ॥ ७३ ॥
यं सृष्टेरादिभूतं च सर्वबीजं परात्परम् ।
योगिनस्तं प्रपद्यन्ते भगवन्तं सनातनम् ॥ ७४ ॥

राधा के हृदयकमल में निरन्तर वास करनेवाले, शुभ, राधासहचर, निरन्तर राधाज्ञापरिपालक, जिन सनातन शुद्ध भगवान् को योग से सिद्ध योगिजन तथा सिद्धेश्वर ध्यान करते हैं उन शुद्ध, सबल भगवान् का मैं ध्यान करता हूं। ब्रह्मा, ईश, शेष तथा सन्तगण भी निर्गुण ब्रह्म, निर्लिप्त, निरीह, परमात्मा, ईश्वर, नित्य, सत्य, परम भगवान्, सनातन, सृष्टि के आदिभूत, परात्पर, सनातन भगवान् का सेवन करते हैं। ॥ ७०-७४ ॥

बीजं नानावताराणां सर्वकारणकारणम् ।
वेदावेद्यं वेदबीजं वेदकारणकारणम् ॥ ७५ ॥
योगिनस्तं प्रपद्यन्ते भगवन्तं सनातनम् ।
इत्येवमुक्त्वा गन्धर्वः पपात धरणीतले ॥ ७६ ॥
ननाम दण्डवद्भूमौ देवदेवं परात्परम् ।

जो नाना अवतारों के बीज, सर्वकारणकारण, वेदों से अवेद्य, वेदबीज, वेदों के कारण के भी कारण हैं, योगिजन उन्हीं सनातन भगवान् को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार कहकर गन्धर्व पृथिवी पर दण्डवत् गिर पड़ा और परात्पर देवों के देव को भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया। ॥ ७५-७६॥ ॥

इति तेन कृतं स्तोत्रं यः पठेत् प्रयतः शुचिः ॥ ७७ ॥
इहैव जीवन्मुक्तश्च परे याति परांगतिम् ।
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं गोलोके च निरामयः ॥

पार्षदप्रवरत्वं च लभते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
गन्धर्वकृतस्तोत्रं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस गन्धर्व कृत स्तोत्र का जो शुद्ध एवं संयत होकर पाठ करता है वह इस संसार में ही जीवनमुक्त हो जाता है और परमगति को प्राप्त होता है। गोलोक में वह नीरोग होकर हरिभक्ति और हरि का दास्य प्राप्त करके पार्षदों में श्रेष्ठता को प्राप्त कर लेता है—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ७७-७८ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में प्रथमरात्र के
अन्तर्गत गन्धर्वस्तोत्रनामक
द्वादश अध्याय समाप्त ।

प्रथमैक रात्रे त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच।

स्तोत्रान्तरे च काले च किं रहस्यं बभूव ह।
तन्मे कथय भद्रं ते भगवन् भगवद्वचः ॥ १ ॥

श्री शुक बोले : हे भगवन्! स्तोत्र के पश्चात क्या रहस्य हुआ इसे मुझे बतायें। आपका कल्याण हो ॥ १ ॥

श्रीव्यास उवाच।

स्तोत्रान्तरे च काले च गन्धर्वश्चोपवर्हणः।
उवाच ब्रह्मसदसि भगवन्तं सनातनम् ॥ २ ॥

श्री व्यास जी बोले : स्तोत्र के पश्चात गन्धर्व उपबर्हण उस ब्रह्म सभा में सनातन भगवान् से बोला ॥ २ ॥

सर्वैर्देवैरहं शप्तश्चाधुना देवहेतुना।
देवानामग्निपुञ्जश्च प्रदीप्तश्च सुमेरुवत् ॥ ३ ॥
अधुना च त्वयि गते भस्मसान्मां करिष्यति।
अतो रक्ष जगन्नाथ मां समुद्धर्तुमर्हसि ॥ ४ ॥
त्वद्दंशशूकरेणैव धरोद्धारः कृतः पुरा।
हिरण्याख्यं महादैत्यं निहत्य चावलीलया ॥ ५ ॥
पाद्मपद्मार्च्चितपदे पद्मे ते शरणागतम्।
मामनाथं भयाक्रान्तं रक्ष रक्ष सुरानलात् ॥ ६ ॥

मैं इस समय सभी देवों द्वारा अभिशप्त हो चुका हूं। देवताओं के कारण देवों का अग्निपुञ्ज मेरु पर्वत के समान प्रदीप्त हो उठा है और इस समय आपके चले जाने के बाद वह मुझे भस्म कर देगा। हे जगन्नाथ! अतएव आप मेरी रक्षा करें। आप ही मेरा उद्धार करने में समर्थ हैं। लीला मात्र से हिरण्याक्ष नामक महादैत्य को मार कर आपने ही अपने

अंशावतार शूकर के द्वारा पूर्व समय में पृथिवी का उद्धार किया था। ब्रह्मा द्वारा पूजित आपके पादपद्म में मैं शरणागत हो रहा हूं। देवों की अग्नि से मुझ भयाक्रान्त अनाथ की आप रक्षा करें, रक्षा करें ॥ ३-६ ॥

गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ।

उवाच श्लक्ष्णया वाचा ब्रह्मेशो ब्रह्मसंसदि ॥ ७ ॥

गन्धर्व के वचन को सुनकर ब्रह्मेश जगदीश्वर हँसकर उस ब्रह्म सभा में श्लक्ष्ण वाणी में बोले ॥ ७ ॥

अथ गन्धर्वमोक्षणम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

गन्धर्वराजप्रवर स्थिरो भव भयं त्यज ।

शुभाश्रयस्य भक्तस्य भयं किं ते मयि स्थिते ॥ ८ ॥

सर्वेऽभ्योऽपि भयं नास्ति मद्भक्तानामकर्मणाम् ।

जन्ममृत्युजराव्याधिभयं तेषां न विद्यते ॥ ९ ॥

मन्मन्त्रोपासकश्चैव स्वतन्त्रोनित्यविग्रहः ।

पुनर्न विद्यते जन्म मन्त्रग्रहणमात्रतः ॥ १० ॥

नास्ति कालाद्भयं तस्य न निषेकाद्विधेरपि ।

मन्त्रग्रहणमात्रेण मुच्यते सर्वकर्मणः ॥ ११ ॥

गन्धर्वमोक्षण

श्री भगवान बोले : हे गन्धर्वराजप्रवर ! स्थिर हो, भय त्याग दो; जिसने शुभ आश्रय ले लिया है ऐसे तुम भक्त को मेरे रहते किसका भय हो सकता है। मेरे कर्ममुक्त भक्तों को किसी से भी भय नहीं है। मेरे मन्त्र का उपासक नित्यविग्रही और स्वतन्त्र होता है। मन्त्रग्रहण मात्र से वह सभी कर्मों से मुक्त हो जाता है। उसे काल का भय नहीं होता; विधि के जन्म देने का भी भय नहीं होता; मन्त्रग्रहण से ही वह सब कर्मों से मुक्त हो जाता है ॥ ८-११ ॥

मन्मन्त्रो हि दहेत्पापं कोटिजन्मकृतं च यत् ।

सुदीप्तो ज्वलदग्निश्च तृणपुञ्जं दहेद्यथा ॥ १२ ॥

मन्मन्त्रग्रहणाद्योगान्मन्नामग्रहणस्य वा ।
तेषां पापानि वेपन्ते कोटिजन्मकृतानि च ॥ १३ ॥
यमस्तन्नामलिखनं दूरीभूतं करोति च ।
अन्ते दास्यं च लभते गत्वा गोलोकमुत्तमम् ॥ १४ ॥
यावदायुर्भ्रमेत् तावत् स्वतन्त्रो मत्तकुञ्जरः ।
ततः पापाः पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः ॥ १५ ॥
तेषां च पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा ।
पुनाति सर्वतीर्थानि दूरतो दर्शनादपि ॥ १६ ॥

मेरा मन्त्र करोड़ों जन्मों के किये गये पापों को भी उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार सुदीप्त प्रज्वलित अग्नि तृणपुञ्ज को जला देती है। मेरे मन्त्रग्रहण या मेरे नामग्रहण से करोड़ों जन्मों के किये गये पाप काँपते हैं। यम उसके लिखे नाम को दूर कर देता है। अन्त में वह उत्तम गोलोक जाकर मेरे दास्य भाव को प्राप्त करता है। आयु-पर्यन्त वह स्वतन्त्र मत्तकुञ्जर के समान भ्रमण करता है। उससे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं जिस प्रकार वैनतेय को देखकर सर्प भाग जाते हैं। उसके पादरज से वसुन्धरा सद्यः पवित्र हो जाती है। दूर से देखते ही वह सभी तीर्थों को पवित्र कर देता है॥ १२-१६ ॥

पूतश्च पवनो वह्निर्जलं च तुलसीदलम् ।
पूतान्येव हि तीर्थानि गङ्गादीनि च गायन ॥ १७ ॥
पूता सुशीला धर्मिष्ठा सुव्रता स्त्री पतिव्रता ।
मन्मन्त्रोपासकाश्चैव तेभ्यः पूतोत्तमाः सदा ॥ १८ ॥
मन्मन्त्रोपासकानां च तीर्थस्नानं व्रतं सुत ।
श्राद्धं दानं पूजनं च यथा चर्वितचर्वणम् ॥ १९ ॥

हे गायक ! वायु पवित्र है; अग्नि पवित्र है; जल तथा तुलसीदल पवित्र हैं; गङ्गा आदि तीर्थ पवित्र हैं; सुशीला, धर्मिष्ठा, सुव्रता, पतिव्रता स्त्री पवित्र है, परन्तु मेरा भक्त इन सब में भी सदा सर्वोत्तम और पवित्र है। हे सुत ! मेरे मन्त्र के उपासकों का तीर्थस्नान, व्रत,

श्राद्ध, दान तथा पूजन वैसा ही है, जैसा चर्वित वस्तु का चर्वण—अर्थात् निरर्थक है ॥ १७-१९ ॥

भक्त्या तीर्थानि पूतानि स्वतः पूतो हि वैष्णवः ।
तत्तन्त्रं च तथा दानमलं श्राद्धं च निष्फलम् ॥ २० ॥
श्राद्धस्य सम्प्रदानं च कर्त्तुश्च पुरुषत्रयम् ।
पुरुषाणां शतं भुक्तं को भुंक्ते श्राद्धवस्तु च ॥ २१ ॥
केचिदेवं वदन्तीति पितृलोकार्थमेव च ।
तद्विरुद्धं च ते तुष्टा मन्त्रग्रहणमात्रतः ॥ २२ ॥
तेषां शुभाशिषं कर्म नैव भोगाय कल्पते ।
देवान्नप्रभवेद्वत्स सिद्धधान्यं यथांकुरः ॥ २३ ॥
साक्षात्करोति तेषां च कर्ममूलनिकृन्तनम् ।
मन्मन्त्रोपासकादन्ये कर्मभोगं च भुञ्जते ॥ २४ ॥

तीर्थ भक्ति से पवित्र होते हैं; किन्तु वैष्णव स्वतः पवित्र होता है। तन्त्र तथा दान व्यर्थ है; श्राद्ध भी निष्फल है; श्राद्धकर्ता द्वारा तीन पीढ़ियों का श्राद्ध करना निरर्थक है; सौ पुरुषों को भोजन कराना भी व्यर्थ है क्योंकि श्राद्धवस्तु को कौन खाता है? कुछ लोग यह कहते हैं कि पितृलोक के लिये ही श्राद्ध किया जाता है किन्तु यह भी प्रमाणों के विरुद्ध है। मृतात्मायें तो मेरे मन्त्र के ग्रहणमात्र से ही सन्तुष्ट हो जाती हैं। हे वत्स! उनका शुभाशीर्वाद उसी प्रकार कर्मभोग के लिगे नहीं होता जिस प्रकार देव के प्रभाव से भी पका हुआ अन्न अंकुरित नहीं होता। मैं स्वयं उनके कर्मों के मूल को साक्षात् नष्ट कर देता हूं। जो मेरे मन्त्र की उपासना नहीं करते केवल वही कर्मों के फल का भोग करते हैं ॥ २०-२४ ॥

मया स्वयं प्रदत्तश्च स्वमन्त्रः पुरुषाय च ।
परद्वाराद्ग्राहयित्वा भक्तं मुक्तं करोम्यहम् ॥ २५ ॥

मया प्रदत्तमन्त्रश्च पुरा मृत्युञ्जयस्तथा ।
मृत्युञ्जयाय गोलोके शुद्धसत्त्वगुणाय च ॥ २६ ॥

पुनः सनत्कुमाराय धर्माय ब्रह्मणे तथा ।
कपिलाय च शेषाय गणेशाय महामते ॥ २७ ॥
नारायणर्षये चैव धर्मपुत्राय धीमते ।
पुनर्महाविष्णवे च विश्वानि यस्य लोमसु ॥ २८ ॥
कालाधिष्ठातृदेवाय तस्मै सर्वान्तकाय च ।
उपेन्द्राय च कामाय भृगवेऽङ्गिरसे तथा ॥ २९ ॥
सरस्वत्यै च पद्मायै राधायै विरजातटे ।
सावित्र्यै विष्णुमायायै पार्षदेभ्यश्च पुत्रक ॥ ३० ॥

मैं स्वयं ही पुरुष को अपना मन्त्र प्रदान करता हूं। दूसरे के द्वारा मन्त्र दिला कर मैं ही भक्त को मुक्त करता हूं। पूर्व समय में मैंने मृत्युञ्जय को अपना मन्त्र दिया था। शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त मृत्युञ्जय को गोलोक में यह मन्त्र दिया गया था। पुनः, सनत्कुमार को, धर्म को, ब्रह्मा को, कपिल को, शेष को, महामति गणेश को, नारायण ऋषि को, धीमान् धर्मपुत्र को मन्त्र दिया गया। पुन: जिसके रोमों में सम्पूर्ण विश्व स्थित है उन विष्णु को, काल के अधिष्ठातृ देवता उन सर्वान्तक यम को, उपेन्द्र को, काम को, भृगु को, अङ्गिरा को, सरस्वती को, पद्मा को और हे पुत्र ! विरजा के तट पर राधा को, सावित्री को, विष्णुमाया को, तथा पार्षदों को भी मैंने ही मन्त्र दिया है ॥ २५-३० ॥

तुभ्यं न दत्तो मन्त्रोऽत्र श्रूयतां तन्निमित्तकम् ।
जनिष्यसि शूद्रयोनौ ब्रह्मणो वाक्यपालनात् ॥ ३१ ॥
इत्येवं कथितं सर्वं गच्छ वत्स यथा सुखम् ।
द्वादशाब्दान्तरे शूद्रयोनौ देवाज्जनिष्यसि ॥ ३२ ॥
पञ्चवर्षाभ्यन्तरे च मन्मन्त्रं प्राप्य विप्रतः ।
दशाब्दान्ते वपुस्त्यक्त्वा ब्रह्मपुत्रो भविष्यसि ॥ ३३ ॥
मन्मन्त्रं पुनरेवेति शम्भुवक्त्राल्लभिष्यसि ।
इत्येवमुक्त्वा सर्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३४ ॥

तुम्हें मन्त्र क्यों नहीं दिया, उसका कारण सुनो। ब्रह्मा के वाक्य

के पालन के कारण तुम शूद्रयोनि में जन्म लोगे। इस प्रकार तुम्हें यह सब बता दिया। हे वत्स! अब तुम सुखपूर्वक जाओ। बारह वर्ष के बाद तुम शूद्रयोनि में देवता से जन्म लोगे। फिर पाँच वर्ष के भीतर ही एक ब्राह्मण से मेरे मन्त्र को पाकर दस वर्ष बाद शरीर छोड़कर ब्रह्मा के पुत्र होओगे। तब मेरे मन्त्र को तुम शम्भु के मुख से प्राप्त करोगे। इस प्रकार कहकर सर्वात्मा श्रीकृष्ण वहीं अन्तर्धान हो गये। ॥ ३१-३४ ॥

गन्धर्वः प्रययौ तस्माद्योषिद्भिः सह पुत्रक।

इत्येवं कथितं सर्वं पूर्ववृत्तान्तमेव च ॥ ३५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
गन्धर्वमोक्षणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

हे पुत्र तब स्त्रियों के साथ वह गन्धर्व चला गया। इस प्रकार मैंने सभी पूर्ववृत्तान्त तुम्हें बता दिया ॥ ३५ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में प्रथम रात्र
के अन्तर्गत गन्धर्वमोक्षणनामक
त्रयोदश अध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच ।

प्रयाते राधिकानाथे गोलोकं च निरामयम् ।
बभूव किं रहस्यं च गते गन्धर्वपुङ्गवे ॥ १ ॥

श्री शुक बोले : राधिकानाथ के निरामय गोलोक प्रयाण और गन्धर्वपुङ्गव उपबर्हण के चले जाने के बाद क्या रहस्य घटित हुआ ? ॥ १ ॥

श्रीव्यास उवाच ।

सर्वे देवाश्च मुनयः प्रयाते परमात्मनि ।
सर्वे बभूवुस्ते तुष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥ २ ॥
उवाच शम्भुर्ब्रह्माणं नीतिसारविशारदम् ।
ज्ञानाधिदेवो भगवान परिणामसुखं वचः ॥ ३ ॥

श्री व्यास जी बोले : परमात्मा के प्रयाण के पश्चात् सब देव तथा मुनि उसी प्रकार शान्त हो गये जिस प्रकार दिन के बीत जाने पर पक्षी शान्त हो जाते हैं। तब ज्ञानाधिदेव भगवान् शम्भु ने नीतिविशारद ब्रह्मा जी से परिणाम में सुखद वचन कहा ॥ २-३ ॥

श्रीमहादेव उवाच।

रक्षिता यस्य भगवान् कल्याणं तस्य सन्ततम् ।
स यस्य विघ्नकर्त्ता च रक्षितुं तं च कः क्षमः ॥ ४ ॥
स्मृतिमात्रेण निर्विघ्ना ये च कृष्णपरायणः ।
विघ्नं कर्त्तुं के समर्थास्तेषां च मुनयः सुराः ॥ ५ ॥
कोपाग्नीनां स्थलं कुत्र स्तम्भितानां च साम्प्रतम् ।
देवानां च मुनीनां च क्षणेनैवेश्वरेच्छया ॥ ६ ॥
यदि तिष्ठन्ति भूमौ च दग्धशस्या वसुन्धरा ।

जले यदि ततस्तप्तं नष्टास्ते जलजन्तवः ॥ ७ ॥
स्थले दहन्ति लोकांश्च वृक्षांश्च प्रलयाग्नयः ।
विधानं कर्त्तुमुचितमेषां च जगतां विधे ॥ ८ ॥
त्वमेव धाता जगतां पिता च विष्णुरीश्वरः ।
कालाग्निरुद्रः संहर्ता नेदानीं प्रलयक्षमः ॥ ९ ॥
एते विषयिणः सर्वे कृष्णस्य परमात्मनः ।
आज्ञावहाश्च सततं दिक्पालाश्च दिगीश्वराः ॥ १० ॥
तस्यैवाज्ञावहो धर्मः साक्षी च कर्मणां नृणाम् ।
भ्रमन्ति विषये शश्वन्मोहिता मायया हरेः ॥ ११ ॥

श्री महादेव जी बोले : जो भगवान् से रक्षित है उसका सदा कल्याण होता है और जिसके वही विघ्नकर्त्ता हैं उसकी रक्षा करने में कौन समर्थ है? जो कृष्णपरायण है वह कृष्ण के स्मरण मात्र से निर्विघ्न हो जाता है। उसके कार्यों में विघ्न करने के लिये कौन देव और मुनि समर्थ हो सकते हैं? इस समय देवों और मुनियों की ईश्वरेच्छा से स्तम्भित कोपाग्नियों के लिये क्या स्थान हो? यदि यह भूमि पर रहती है तो क्षणमात्र में वसुन्धरा का सम्पूर्ण अन्न दग्ध हो जायगा। यदि इसे जल में रक्खा जाय तो सम्पूर्ण जल के तप्त हो जाने से सभी जलजन्तु नष्ट हो जायेंगे। स्थल पर ये प्रलयाग्नियाँ वृक्षों तथा लोकों को जला देंगी। अतः, हे जगद्विधाता! इन अग्नियों की व्यवस्था करना उचित है। तुम्हीं संसार के विधाता हो; ईश्वर विष्णु उसके पालक हैं, और कालाग्नि रुद्र उसके संहर्ता हैं। किन्तु अभी प्रलय का समय उपस्थित नहीं हुआ है। ये सब विषयी, दिक्पाल और दिगीश्वर सब श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। मनुष्यों के कर्मों के साक्षी धर्म भी उन्हीं के आज्ञापालक हैं। ये सभी निरन्तर हरि की माया से मोहित होकर विचरते हैं ॥ ४-११ ॥

अहं न पाता न स्रष्टा न संहर्त्ता च जीविनाम् ।
निर्लिप्तोऽहं तपस्वी च हरेराराधनोन्मुखः ॥ १२ ॥
संहारविषयं मह्यं श्रीकृष्णश्च पुरा ददौ ।

दत्त्वा रुद्राय तदहं तपस्यासु रतो हरेः ॥ १३ ॥
तदर्चनेन ध्यानेन तपसा पूजनेन च ।
स्तवेन कवचेनैव नाममन्त्रजपेन च ॥ १४ ॥
मृत्युञ्जयोऽहमधुना न च कालाद्भयं मम ।
कालः संहरते सर्वं मां विना च तथेश्वरम् ॥ १५ ॥

मैं जीवों का पालक, स्रष्टा या संहर्त्ता नहीं हूं। मैं निर्लिप्त तपस्वी होकर हरि की आराधना में संलग्न रहता हूं। पूर्व समय में श्रीकृष्ण ने संहार का अधिकार मुझे दिया था किन्तु उसे रुद्र को देकर मैं हरि की तपस्या में लग गया। उनकी अर्चा से, ध्यान से, तप से, पूजन से, स्तुति से, कवच से तथा नाममन्त्र के जप से इस समय मैं मृत्युञ्जय हो गया हूं और मुझे काल का भय नहीं है। मुझे तथा ईश्वर को छोड़कर काल अन्य सब का संहार करता है ॥ १२-१५ ॥

पुरा सर्वादिसर्गे च कस्यचित् स्रष्टुरेव च ।
भालोद्भवाश्च ते रुद्रास्तेष्वेकोऽहं च शङ्करः ॥ १६ ॥
कल्पश्च ब्रह्मणः पाते लये प्राकृतिके तथा ।
सर्वे नष्टा विषयिणो न भक्ताश्च यथेश्वरः ॥ १७ ॥
असंख्यब्रह्मणः पातः कल्पश्चासंख्य एव च ।
समतीतः कतिविधो भविता वा पुनः पुनः ॥ १८ ॥
श्रीकृष्णस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् ।
तत्र प्राकृतिकाः सर्वे तिरोभूताः पुनः पुनः ॥ १९ ॥
न प्राकृतो न विषयी नित्यदेही च वैष्णवः ।
हरेर्वरेणामरोऽहं शिवाधारस्ततस्ततः ॥ २० ॥

प्राचीन काल में सब जीवों की सृष्टि के समय स्रष्टा के भाल से वे रुद्रगण उत्पन्न हुए। उन्हीं में से एक मैं हूं और मेरा नाम शङ्कर है। प्राकृतिक लय में ब्रह्मा का नाश हो जाता है और उस अवधि को कल्प कहते हैं। उस समय सब कुछ नष्ट हो जाता है और केवल ईश्वर तथा उनके भक्त ही बच जाते हैं। असंख्य ब्रह्मा नष्ट और असंख्य कल्प भी व्यतीत हो चुके हैं। जो नष्ट हो गया है वह पुनः पुनः न जाने कितनी

बार जन्म लेगा। श्रीकृष्ण के एक निमेषमात्र में ब्रह्मा का पतन हो जाता है और उसमें सभी प्राकृतिक पुनः पुनः तिरोभूत हो जाते हैं। न प्राकृत बचता है न विषयी बचता है; केवल वैष्णव ही नित्य देही रहता है। हरि के वर से मैं अमर हूं और क्रमशः समस्त कल्याणों का आधार बन जाऊँगा ॥ १६-२० ॥

जलप्लुतं च विश्वौघं लये प्राकृतिके ध्रुवम् ।
आब्रह्मलोकपर्यन्तं परं कृष्णालयं विना ॥ २१ ॥
सर्वा देव्यो विलीनाश्च कृष्णः सत्यं सुनिश्चितम् ।
सर्वे पुमांसो लीनाश्च सत्ये नित्ये सनातने ॥ २२ ॥
अहं कृष्णश्च प्रकृतिः पार्षदप्रवरो हरेः ।
नित्यं नित्या विद्यमाना गोलोके च निरामये ॥ २३ ॥
एक ईशो न द्वितीय इति सर्वादिसर्गतः ।
नहि नश्यन्ति तद्भक्ताः प्रकृतिप्राकृते लये ॥ २४ ॥
तस्य भक्तोत्तमानां च सततं स्मरणेन च ।
आयुर्व्ययो नहि भवेत् कथं मृत्युर्भविष्यति ॥ २५ ॥

प्राकृतिक लय के समय ब्रह्मा से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त विश्व जल में डूब जायगा और केवल कृष्णालय, अर्थात् गोलक ही बच रहेगा। सब देवियाँ और सभी पुरुष उन सुनिश्चित सत्य और सनातन श्रीकृष्ण में विलीन हो जायेंगे। कृष्ण तथा उन हरि का पार्षद मैं तथा प्रकृति नित्य निरामय गोलोक में विद्यमान रहेंगे। सभी सृष्टियों में एक ही ईश्वर होता है, दूसरा नहीं। उसके भक्त प्रकृति के प्राकृत प्रलय में नष्ट नहीं होते। उन ईश्वर के निरन्तर स्मरण से उत्तम भक्तों की आयु का व्यय नहीं होता—तो फिर उनकी मृत्यु कैसे हो सकती है ॥ २१-२५ ॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
तेषां भक्तोत्तमानां च सततं स्मरणेन च ॥ २६ ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नाप्युपजायते।
अत्र कल्पे भवान् ब्रह्मा व्यवस्थाता च कर्मसु ॥ २७ ॥

स्थलं कोपानलानां च विधानं यद्विधे कुरु ।
शम्भोश्च वचनं श्रुत्वा कम्पितः कमलासनः ॥
स्थलं चकार वह्नीनामाज्ञया शङ्करस्य च ॥ २८ ॥

वासुदेव के भक्तों का अशुभ कहीं नहीं होता। निरन्तर श्रीकृष्ण के स्मरण के कारण उन भक्तों को जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का भो कभी भय नहीं होता। इस कल्प में आप ही ब्रह्मा तथा कर्मों की व्यवस्था करनेवाले हैं। अतः आप कोपाग्नियों के लिये किसी स्थान की व्यवस्था करें। शम्भु के वचन को सुनकर कमलासन ब्रह्मा कम्पित हो उठे। शङ्कर को आज्ञा से उन्होंने तब कोपाग्नियों के लिये स्थल बनाया॥ २६-२८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ।
भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ २९ ॥
भवे भवतु सर्वत्र भवकोपानलोऽधुना ।
प्राकृतेषु च देहेषु व्यापारोऽस्य मया कृतः ॥ ३० ॥
मम कोपानलः शम्भो संस्कृताग्निर्द्विजस्य च ।
भवे भवतु सर्वत्र व्यापारोऽस्य मया कृतः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मा जी बोले : ज्वर तीन पैरों वाला, छह भुजाओं वाला, और नव नेत्रों वाला, सबको भस्म करने वाला, रौद्ररूप और कालान्तक यम के समान होगा। अब महादेव का कोपानल मेरी आज्ञा से इस संसार में सर्वत्र ज्वर के रूप में प्रकट होगा। इस प्रकार मैंने मनुष्य और अन्य देहों में इसके स्थान को नियत कर दिया है। हे शम्भु ! मेरा कोपानल ब्राह्मणों की संस्कृत अग्नि होगा—इस प्रकार इस संसार में मैंने इसके स्थान को भी नियत कर दिया ॥२९-३१॥

शेषस्य कोपवह्निश्च शेषास्येऽस्त्वधुना शिव ।
यतो विश्वं च प्रलये दहेद्गोमयपिण्डवत् ॥ ३२ ॥
वह्नेर्मुखानलो विश्वे व्यवहाराग्निरीश्वरः ।
भवत्वेव हि सर्वत्र सर्वेषामुपकारकः ॥ ३३ ॥

हे शिव ! शेष का कोपानल उन्हीं के मुख में निवास करेगा और प्रलय के समय वह सम्पूर्ण विश्व को गोबर के उबले के समान भस्म कर देगा। हे ईश्वर: अग्नि का कोपानल संसार में व्यवहृत होनेवाली अग्नि होगा जो सब देशों में सर्वसाधारण के उपयोग में आयेगा।॥ ३२-३३ ॥

धर्मास्यकोपवह्निश्च कृष्णाग्निश्च भवत्वयम् ।
अधर्मं कुर्वतां सर्वं दाहनं च करिष्यति ॥ ३४ ॥
सूर्यकोपानलश्चायं दावाग्निश्च वनेषु च ।
स्थितिरस्य तरोः स्कन्धे तद्भक्ष्याः पशुपक्षिणः ॥ ३५ ॥
चन्द्रकोपानलो विश्वे कामिनां विरहानलः ।
दम्पत्योर्विरहे शश्वद्भक्ष्यति स्म द्वयोस्तनुम् ॥ ३६ ॥
इन्द्रकोपानलः सद्यो वज्राग्निश्च बभूव ह ।
उपेन्द्रस्यानलश्चैव विद्युदेव भवत्वयम् ॥ ३७ ॥
रुद्राणामास्यवह्निश्च महोल्काग्निर्भवत्वयम् ।
गणेशाग्निः पृथिव्यां तु यथास्थाने तु तिष्ठति ॥ ३८ ॥
यत्र तिष्ठेत्तदुषरमेवमेवं विदुर्बुधाः ।
स्कन्दकोपानलश्चैव रणास्त्राग्निर्बभूव ह ॥ ३९ ॥
कामेतराणां देवानां मुनीनां च मुखानलः ।
जग्राहौर्वमुनिस्तत्र तेजसि ब्रह्मणः सुतः ॥ ४० ॥
स्वदक्षिणोरौ स मुनिः संस्थाप्य वेदमन्त्रतः ।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य शङ्करं तपसे ययौ ॥ ४१ ॥
कालेन तस्मान्निःसृत्य समुद्रे वाडवानलः ।
स बभूव पुरा पुत्र परमौर्वानलः स्वयम् ॥ ४२ ॥

धर्म का कोपानल कृष्णाग्नि में परिणत होकर अधर्म का आचरण करनेवालों का सर्वस्व भस्म कर देगा। सूर्य का कोपानल वन में दावाग्नि के रूप वृक्षों में निवास करे और इसके भक्ष्य पशु-पक्षी होवें। चन्द्रमा का कोपानल संसार में कामियों का विरहानल होकर पति-पत्नी

के परस्पर विरह में निरन्तर दोनों के शरीर को जलाता रहे। इन्द्र का कोपानल तत्काल वज्राग्नि और उपेन्द्र का कोपानल विद्युत होगा। रुद्रों का कोपानल महोल्काग्नि हो जाय। गनेशानल पृथिवी पर यथा-स्थान रहे, अर्थात ऊसर में स्थित रहे। स्कन्द का कोपानल युद्ध में आग्नेयास्त्रों की अग्नि होगा। काम को छोड़कर अन्य देवों और मुनियों की मुखाग्नि को ब्रह्मा के पुत्र और्व मुनि ग्रहण करें। तब और्व ने इन अग्नियों को भी अपनी अग्नि के साथ अपने दाहिने ऊरु में वेदमन्त्र से स्थापित कर लिया और ब्रह्मा को नमस्कार करके तपस्या करने चले गये। यथा समय और्व के ऊरु से निकल कर वह अग्नि समुद्र में वडबा-नल हो गया। हे पुत्र ! यह वही है जो पूर्वकाल में स्वयं और्वानल था। ॥ ३४-४२ ॥

कामाग्निमुल्वणं दृष्ट्वा विचिन्त्य मनसा विधिः।
समालोच्य सुरैः सार्धं मुनीन्द्रैः सह संसदि ॥ ४३ ॥
आजुहाव स्त्रियः सर्वाः सुव्रताश्च पतिव्रताः।
आययुर्योषितः सर्वास्ता ऊचुः कमलोद्भवम् ॥ ४४ ॥

तदनन्तर ब्रह्मा जी ने कामाग्नि को अत्यन्त शक्तिशाली देखकर मन में विचार किया तथा संसद में अन्य देवों तथा मुनियों से परामर्श करके सभी सुव्रता और पतिव्रता स्त्रियों को अपने सामने बुलाया। तब सभी स्त्रियों ने आकर ब्रह्मा जी से कहा ॥ ४३-४४ ॥

स्त्रिय ऊचुः।

किमस्मान् ब्रूहि भगवन् शाधि नः करवाम किम्।
आलोच्य मनसा सर्वं देहि भारं वयं स्त्रियः ॥ ४५ ॥

स्त्रियाँ बोलीं : हे भगवन् ! कहिये आपने हमें किसलिये बुलाया है ? हम सब स्त्रियाँ हैं अतः इस बात पर अपने मन में विचार कर ही हमें कोई कार्यभार देवें ॥ ४५ ॥

ब्रह्मोवाच।

गृहीत्वा मदनाग्निं च मैथुने सुखदायकम्।
विश्वे च योषितः सर्वाः शश्वत्कामा भवन्तु च ॥ ४६ ॥

ब्रह्मा जी बोले : मैथुन में सुखदायक मदनाग्नि को ग्रहण कर संसार में समस्त स्त्रियाँ निरन्तर कामवासना वाली हो जांय ॥ ४६ ॥

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा कोपरक्तास्यलोचनाः ।

तमूचुर्योषितः सर्वा भयं त्यक्त्वा च संसदि ॥ ४७ ॥

ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर क्रोध से रक्तास्यलोचन हो सभी स्त्रियाँ उस सभा में भय का त्याग कर बोलीं ॥ ४७ ॥

स्त्रिय ऊचुः ।

धिक् त्वां जगद्विधिं व्यर्थं चकार परमेश्वरः ।

अपूज्यो मोहिनीशापात् पुत्रशापेन साम्प्रतम् ॥ ४८ ॥

गृहीत्वा मदनाग्निं च पुरुषाश्च तथा स्त्रियः ।

नित्यं दहन्ति सततं वास्तवं दुःसहं परम् ॥ ४९ ॥

तदेकभागः पुरुषे त्रिभागश्चापि योषिति ।

तेन दग्धाः स्त्रियः सर्वाश्चास्माकमपरेण किम् ॥ ५० ॥

समर्पणं चेत् पुरुषे यद्यस्मासु स्मरानलः ।

भस्मीभूतं करिष्यामो रक्षिता को भवेत्तव ॥ ५१ ॥

स्त्रियाँ बोलीं : जगद्विधिरूप आपको धिक्कार है। परमेश्वर ने आपको व्यर्थ ही बनाया है। मोहिनी के शाप तथा अपने पुत्र के शाप से आप इस समय अपूज्य हैं। मदनाग्नि को लेकर पुरुष और स्त्रियाँ निरन्तर वास्तविक परम दुःसह रूप से जलते हैं। वह अग्नि एक भाग पुरुषों में तथा तीन भाग स्त्रियों में है। उससे सभी स्त्रियाँ जल रही हैं। अतः हमें अधिक से क्या प्रयोजन है। यदि आप पुरुषों और स्त्रियों में और अधिक कामानल स्थापित करेंगे तो हम लोग आपको भस्म कर देंगी—तब आपका कौन रक्षक होगा ? ॥ ४८-५१ ॥

पतिव्रतावचः श्रुत्वा तमुवाच शिवः स्वयम् ।

हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥ ५२ ॥

पतिव्रताओं के वचन को सुनकर शिव जी स्वयं ब्रह्मा से बोले : देवियों का यह कथन हितकारक, सत्य, नीतिसार तथा परिणाम में सुखदायक है ॥ ५२ ॥

अथ कुलटोत्पत्तिः ।

श्रीमहादेव उवाच ।

त्यज द्वन्द्वं महाभाग सुव्रताभिः सहाधुना ।
पतिव्रतानां तेजश्च सर्वेभ्यश्च परं भवेत् ॥ ५३ ॥
निर्माणं कुरु देवेन्द्र कृत्यां स्त्रीजातिमीश्वर ।
तस्यै देहि दुःखबीजं कामकोपानलं परम् ॥ ५४ ॥

कुलटोत्पत्ति

श्री महादेव जी बोले : हे महाभाग ! अब आप सुव्रता स्त्रियों के साथ द्वन्द्व को त्याग देवें। पतिव्रता स्त्रियों का तेज सबसे शक्तिशालो होता है। अत: हे ईश्वर ! हे देवेन्द्र ! आप स्त्रीरूपिणी कृत्या का निर्माण करें और उसे ही परम दु:खबीज काम कोपानल दे दें ॥५३-५४॥

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा सत्वरं जगतां विधिः ।
ससृजे तत्क्षणं मूर्त्ति स्त्रीरूपां सुमनोहराम् ॥ ५५ ॥
अहो रूपमहो वेशमहो अस्या नवं वयः ।
अहो चक्षुः कटाक्षं च मुनीनां मोहयन्मनः ॥ ५६ ॥
अहो सुकठिनं चारु स्तनयुग्मं सुवर्त्तुलम् ।
विचित्रं कठिनं स्थूलं श्रोणियुग्मं च सुन्दरम् ॥ ५७ ॥
नितम्बयुग्मं वलितं चक्राकारं सुकोमलम् ।
श्वेतचम्पकवर्णाभं सर्वावयवमीप्सितम् ॥ ५८ ॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुविनिन्दास्यं सुशोभनम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं वस्त्रेणाच्छादितं मुदा ॥ ५९ ॥
वपुः सुकोमलं चालं नातिदीर्घं न वंखरम् ।
वह्निशुद्धांशुकं रत्नभूषणैर्भूषितं सदा ॥ ६० ॥
दाडिम्बकुसुमाकारं सान्द्रं सिन्दूरसुन्दरम् ।
कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं स्निग्धचन्दनविन्दुभिः ॥ ६१ ॥

पक्वाविम्बफलाकारमधरौष्ठपुटं परम् ।
दन्तपंक्तियुगं चैव दाडिम्बबीजसन्निभम् ॥ ६२ ॥
सुचारु कवरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ।
तस्यै ददौ च कामाग्नि दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः ॥ ६३ ॥

शङ्कर के वचन को सुनकर जगद्विधाता ने शीघ्र ही सुमनोहर स्त्रीरुपी मूर्ति का निर्माण किया। उसके रूप का क्या कहना! उसके वेश का क्या कहना! वह कितनी नौयौवना थी! उसके आश्चर्यमय नेत्र और कटाक्ष मुनियों के मन को मोहित करने लगे। अहो कितने सुकठिन, सुन्दर गोल और मनोहर उसके दोनों स्तन थे। विचित्र, कठिन, स्थूल तथा सुन्दर उसके श्रोणियुग्म थे। उसके नितम्बयुग्म वलयाकार, सुकोमल और गोल थे। श्वेतचम्पक के समान उसकी वर्णाभा और अन्य सभी अवयव भी सबके अभीप्सित थे। उसका अत्यन्त सुन्दर मुख शरत्कालीन करोड़ों चन्द्रमाओं को निन्दित करने वाला था। ईषद् हास्य से प्रसन्न मुख वस्त्र से ढँका हुआ था। उसका शरीर अत्यन्त कोमल, सुगठित, न अधिक लम्बा न अधिक छोटा, और सुन्दर था। वह वह्निशुद्धांशुक तथा रत्नाभूषणों से सदा भूषित थी। अनार के फूल के समान गहरे सिन्दूर से विभूषित तथा कस्तूरो की बिन्दी और स्निग्ध चन्दन से सुवासित थी। उसके ओष्ठ पके बिम्ब फल के समान परम सुन्दर थे। दाँतों की दोनों पंक्तियाँ अनार के दानों के समान मनोहर थी। मालती की माला से मण्डित उसकी चोटी भी अत्यन्त सुन्दर थी। उसे देखकर ब्रह्मा ने उसे ही कामानल दे दिया। ॥ ५५-६३ ॥

दृष्ट्वा सा चन्द्ररूपं च कामोन्मत्ता विचेतना ।
कृत्वा कटाक्षं स्मेरास्या मां भजस्वेत्युवाच सा ॥ ६४ ॥

वह स्त्री चन्द्रमा के रूप को देखकर कामोन्मत्त होकर सुध-बुध खो बैठी। उसने मुस्कराते हुए कटाक्ष करके कहा : 'मुझे स्वीकार करो' ॥ ६४ ॥

सस्मितः प्रययौ चन्द्रो लज्जया च सभातलात् ।
कामं दृष्ट्वा च चकमे कामार्त्ता सा गतत्रपा ॥ ६५ ॥

दुद्राव कामस्तस्माच्च तत्पश्चात् सा दधाव च ।
जहसुर्देवताः सर्वा मुनयश्चापि संसदि ॥ ६६ ॥

चन्द्रमा मुस्कराते हुए लज्जा के कारण सभास्थल से चले गये। तब कामदेव को देखकर वह लज्जारहित कामार्त्ता उन्हें चाहने लगी किन्तु कामदेव उससे दूर भागने लगे। वह भी उनके पीछे भागने लगी। सभा में सभी देव तथा मुनिगण हँसने लगे ॥ ६५-६६ ॥

लज्जिता योषितः सर्वास्तां वारयितुमक्षमाः ।
सर्वे चक्रुः परीहासं स्त्रीवर्गं शङ्करादयः ॥ ६७ ॥

लज्जित सभी स्त्रियाँ उसे रोकने में असमर्थ हो गईं। शङ्कर आदि सब लोग स्त्री वर्ग का परिहास करने लगे ॥ ६७ ॥

कामं न लब्ध्वा सा च स्त्री निवृत्यागत्य संसदि ।
तमश्विनीकुमारं चाप्युवाच सुरसन्निधौ ॥ ६८ ॥

तब कामदेव को न पाकर वह कृत्या कामिनी लौटकर सभा में आ गई और देवताओं के समक्ष अश्विनीकुमार से बोली ॥ ६८ ॥

कृत्याकामिन्युवाच ।

मां भजस्व रवेः पुत्र प्रियां रसवतीं मुदा ।
शृङ्गारे सुखदां शान्तां परां कामातुरां वराम् ॥ ६९ ॥
त्वया सार्द्धं भ्रमिष्यामि सुन्दरे गहने वने ।
रहसि रहसि क्रीडां करिष्यामि दिवानिशम् ॥ ७० ॥
मधुपानं च दास्यामि वासितं चामलं जलम् ।
सकर्पूरं च ताम्बूलं भोगवस्तु मनोहरम् ॥ ७१ ॥
शय्यां मनोरमां कृत्वा सपुष्पचन्दनार्चिताम् ।
भगवन्तं करिष्यामि पुष्पचन्दनचर्चितम् ॥ ७२ ॥

कृत्याकामिनी बोली : हे रविपुत्र ! मुझ रसवती, शृङ्गार में सुखद, शान्त, परम कामातुरा तथा श्रेष्ठ प्रिया का सेवन करो। तुम्हारे साथ मैं सुन्दर गहन वनों में भ्रमण करूँगी, एकान्त में रात-दिन क्रीड़ा करूँगी, मधुपान दूँगी और पवित्र सुगन्धित जल दूँगी, कपूर के साथ

ताम्बूल दूँगी, मनोहर भोगवस्तुयें दूँगी तथा पुष्पों और चन्दन से चर्चित मनोरम शय्या तैयार करके आपको भी पुष्पों और चन्दन से चर्चित करूँगी ॥ ६९-७२ ॥

कुमार उवाच ।

वचनं वद वामे मामात्मनो हृदयङ्गम ।
विहाय कपटं कान्ते कपटं धर्मनाशनम् ॥ ७३ ॥
स्त्रीधर्मं स्त्रीमनस्कामं स्त्रीस्वभावं च कीदृशम् ।
तदाचारं कतिविधं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७४ ॥

कुमार बोले : हे वामे ! तू अपने हृदय की बात बता। हे कान्ते ! कपट धर्म का नाशक है। कपट को छोड़ दे। स्त्री का धर्म, स्त्री की मनोकामना और स्त्री का स्वभाव कैसा होता है? उसका आचार कितने प्रकार का होता है? यह सब तुम मुझे विस्तारपूर्वक बताओ। ॥ ७३-७४ ॥

अश्विनीजवचः श्रुत्वा कामार्त्ता तमुवाच सा ।
कामार्त्तानां क्व लज्जा च क्व भयं मानमेव च ॥ ७५ ॥

अश्विनीकुमार के वचन को सुनकर वह कामार्ता उनसे बोली : 'कामार्त्तों को लज्जा कहाँ ! भय कहाँ ! और मान कहाँ !' ॥ ७५ ॥

अथ कुलटा स्वभाव कथनम् ।

कामिन्युवाच ।

स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति दूती तदुत्तमा ।
तेनैव युवतीनां च सतीत्वमुपजायते ॥ ७६ ॥
सुवेशं कामुकं दृष्ट्वा कामिनी मदनातुरा ।
तद्गात्रं च पुलकितं योनौ कण्डूयनं परम् ॥ ७७ ॥
विचेतना भवेत् सा च कामज्वरप्रपीडिता ।
सर्वं त्यजति तद्धेतोः पुत्रं कान्तं गृहं धनम् ॥ ७८ ॥
लब्ध्वा युवानं पुरुषं देशत्यागं करोति सा ।
तदुत्तमं पुनर्लब्ध्वा तं त्यजेत् सा क्षणेन च ॥ ७९ ॥

विषं दातुं समर्था सा स्वामिनं गुणिनां वरम् ।
म्लेच्छं युवानं सम्प्राप्य सर्वस्वं दातुमुत्सुका ॥ ८० ॥
त्यजेत्कुलभयं लज्जां धर्मं बन्धुं यशः श्रियम् ।
सम्प्राप्य रतिशूरं च युवानं सुरतोन्मुखम् ॥ ८१ ॥
सुदृश्यं सुन्दरमुखं शश्वन्मधुरितं वचः ।
हृदयं क्षुरधाराभं को वा जानाति तन्मनः ॥ ८२ ॥
विद्युच्छटा जले रेखा चास्थिरा च यथाम्बरे ।
तथाऽस्थिरा च कुलटाप्रीतिः स्वप्नं च तद्वचः ॥ ८३ ॥
कुलटानां न सत्यं च न च धर्मो भयं दया ।
न लौकिकं न लज्जा स्याज्जारचिन्ता निरन्तरम् ॥ ८४ ॥
स्वप्ने जागरणे चैव भोजने शयने सदा ।
निरन्तरं कामचिन्ता जारे स्नेहो न चान्यतः ॥ ८५ ॥
कुलटा नरघातिभ्यो निर्दया दुष्टमानसाः ।
जारार्थे च सुतं हन्ति बान्धवस्य च का कथा ॥ ८६ ॥
न हि वेदा विदन्त्येवं कुलटाहृदयङ्गमम् ।
कथं देवाश्च मुनयः सन्तो जानन्ति निश्चयम् ॥ ८७ ॥
रतिशूरं प्रियं दृष्ट्वा क्षीरं घृतमिवाचरेत् ।
गते वयसि जीर्णं तं विषं दृष्ट्वा त्यजेत्क्षणात् ॥ ८८ ॥
न विश्वसेयुस्तां दुष्टां तस्मात् सन्तो हि संततम् ।
न रिपुः पुरुषाणां च दुष्टस्त्रीभ्यः परो भुवि ॥ ८९ ॥
विषं मन्त्रादुपशमं जलाद्वह्निश्च निश्चितम् ।
अग्नेश्च कण्टकोच्छन्नं दुर्जनः स्तवनाद्वशः ॥ ९० ॥
लुब्धो धनेन राजा च सेवया सततं वशः ।
मित्रं स्वच्छस्वभावेन भयेन च रिपुर्वशः ॥ ९१ ॥
आदरेण वशो विप्रो युवती प्रेमभारतः ।

बन्धुर्वशः समतया गुरुः प्रणतिभिः सदा ॥ ९२ ॥
मूर्खो वशः कथायां च विद्वान् विद्याविचारतः ।
न हि दुष्टा च कुलटा पुंसश्च वशगा भवेत् ॥ ९३ ॥

कुलटा के स्वभाव का कथन

कामिनी बोली : स्थान नहीं है, अवसर नहीं है, उसकी दूती अच्छी नहीं है इसलिये युवतियों का सतीत्व बचा रह जाता है। उत्तम वेश वाले कामुक पुरुषों को देखकर कामिनी कामातुर हो जाती है। उसका शरीर पुलकित हो जाता है, तथा योनि में परम कण्डूयन होने लगता है। कामज्वर-प्रपीडित वह विचेतन हो जाती है। वह उसके लिये, पुत्र, पति, गृह तथा धन सब कुछ छोड़ देती है। युवा पुरुष को पाकर वह देश त्याग तक कर देती है। उससे उत्तम पुरुष को पाकर वह एक क्षण में उसे भी त्याग सकती है। गुणियों में श्रेष्ठ स्वामी को वह विष देने में समर्थ होती है। म्लेच्छ युवक को पाकर उसे सर्वस्व देने के लिए उत्सुक होती है। रतिशूर युवा सुरतोन्मुख पुरुष को पाकर कुलटा कुल के भय को, लज्जा को, धर्म को, बन्धु को, यश को, श्री को सबको छोड़ सकती है। उसका मुख सुन्दर और सुदृश्य होता है। उसकी वाणी मधु से पूरित होती है। उसका हृदय छुरे की धार के समान होता है। कौन मनुष्य उसके मन को जान सकता है ? जैसे जल में रेखा और आकाश में विद्युच्छटा अस्थिर होती है, वैसे ही कुलटा की प्रीति अस्थिर होती है और उसकी वाणी तो स्वप्न के समान होती है। कुलटा स्त्रियों में न सत्य होता है, न धर्म होता है, न भय होता है, न दया होती है, न लज्जा होती है और न लौकिक व्यवहार की भावना ही होती है। उनमें निरन्तर अपने जार की ही चिन्ता रहती है। स्वप्न में, जागरण में, भोजन में तथा शयन में सदा काम की चिन्ता बनी रहती है। केवल अपने जार में उनका स्नेह रहता है अन्य में नहीं। कुलटा स्त्रियाँ नरघातियों से अधिक निर्दय तथा दुष्ट मन वाली होती हैं। जार के लिए अपने पुत्र को भी मार डालती हैं तब बान्धवों की क्या कथा ? वेद भी कुलटा के हृदय की बात को नहीं जानते फिर देव, मुनि और सन्त उसे निश्चयपूर्वक कैसे जान सकते हैं। रतिशूर प्रिय को देखकर वह दूध और घी के समान उस पर आकृष्ट हो जाती है किन्तु अवस्था ढल जाने पर उसे जीर्ण जानकर विष के

समान क्षण भर में त्याग देती हैं। इसलिए दुष्ट स्त्री पर सज्जन पुरुष कभी विश्वास न करें। इस संसार में दुष्ट स्त्रियों से बढ़कर पुरुषों का कोई शत्रु नहीं है। निश्चित रूप से मन्त्र से विष शान्त हो जाता है; जल से अग्नि शान्त हो जाती है; अग्नि से कण्टकों का उच्छेद हो जाता है; दुर्जन स्तुति से वश में हो जाता है; लोभी धन से वश में हो जाता है; राजा सेवा से वश में हो जाता है; मित्र स्वच्छ स्वभाव से वश में वश में हो जाता है; शत्रु भय से वश में हो जाता है; ब्राह्मण आदर से वश में हो जाता है; युवती प्रेम से वश में होती है; बन्धु समता से वश में हो जाता है; गुरु प्रणाम से वश में हो जाता है; मूर्ख कथा से वश में हो जाता है; विद्वान् विद्याविचार से वश में होता है; किन्तु दुष्ट कुलटा पुरुष के वश में कभी नहीं होती ॥७६-९३॥

स्वकार्ये तत्परा शश्वत् प्रीतिः कार्यानुरोधतः।
न सर्वस्य वशीभूता विना शृङ्गारमुल्वणम् ॥ ९४ ॥
न प्रीत्या न धनेनैव न स्तवान्न च सेवया।
न प्राणदानतो वेश्या वशीभूता भवेत्क्षणम् ॥ ९५ ॥
आहारो द्विगुणस्तासां बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
षड्गुणा मन्त्रणा तासां कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ ९६ ॥
शश्वत्कामा च कुलटा न च तृप्तिश्च क्रीडया।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९७ ॥

वह सदा अपने कार्य में तत्पर रहती है। अपने किसी कार्य के कारण ही प्रीति करती है। शृङ्गार में प्रचण्ड कामुक पुरुष के बिना अन्य किसी के वश में वह नहीं होती। प्रीति से, धन से, स्तुति से, सेवा से और प्राणदान से वेश्या क्षणभर के लिए भी वश में नहीं होती। उसका आहार दूना होता है। उसकी बुद्धि चौगुनी होती है। उसकी मन्त्रणा छगुनी होती है। उसका काम आठ गुना होता है। कुलटा स्त्रियाँ शश्वत्कामा होती हैं। कामक्रीडा से उनकी तृप्ति नहीं होती। जैसे सामग्री डालने से अग्नि बढ़ती है, वैसे ही कामक्रीडा से उनका काम अधिकाधिक बढ़ता जाता है ॥ ९४-९७ ॥

दिवानिशं च शृङ्गारं कुरुते तत्पुमान् यदि।

न तृप्तिः कुलटानां च पुमांसं ग्रस्तुमिच्छति ॥ ९८ ॥

पुरुष यदि रात दिन शृङ्गार नहीं करता तो कुलटा स्त्रियों की तृप्ति नहीं होती। वह पुरुष को ही अपना ग्रास बना लेना चाहती है ॥९८॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां नाशा तृप्यति सम्पदाम् ॥ ९९ ॥
न श्रेयसां मनस्तृप्तं वाडवाग्निर्न पाथसाम्।
वसुन्धरा न रजसां न पुंसां कुलटा तथा ॥ १०० ॥

जैसे अग्नि लकड़ियों से तृप्त नहीं होती; समुद्र नदियों से तृप्त नहीं होता; यमराज समस्त प्राणियों से तृप्त नहीं होता; आशा सम्पदाओं से तृप्त नहीं होती; कल्याणों से मन तृप्त नहीं होता; बड़वानल जलों से तृप्त नहीं होता; तथा वसुन्धरा धूलि से तृप्त नहीं होती, वैसे ही कुलटा पुरुषों से तृप्त नहीं होती ॥ ९९-१०० ॥

इत्येवं कथितं किञ्चित् सर्वं वक्तुं च नोचितम्।
लज्जा बीजं योषितां च निबोध भास्करात्मज ॥ १०१ ॥

इस प्रकार किञ्चित यह मैंने कह दिया। सब कुछ कहना उचित नहीं है। हे भास्करात्मज ! लज्जा ही स्त्रियों का बीज है ॥१०१॥

श्रुत्वा च कृत्यास्त्रीवाक्यं जहसुर्मुनयः सुराः।
चुकुपुर्योषितः सर्वाः पद्माद्या लज्जिताः सुत ॥ १०२ ॥
लज्जानतानना लक्ष्मीर्निर्ययौ देवमण्डलात्।
तत्पश्चात् पार्वती सार्द्धं सरस्वत्या नतानना ॥ १०३ ॥
सावित्री रोहिणी स्वाहा वारुणी च रतिः शची।
सर्वा बभूवुरेकत्र प्रचक्रुर्मन्त्रणां च ताः ॥ १०४ ॥

कृत्यास्त्री के वाक्य को सुनकर देव और मुनिजन हँसने लगे। हे सुत ! समस्त स्त्रियाँ क्रोध करने लगीं। पद्मा आदि स्त्रियाँ लज्जित होने लगीं। देवमण्डल से लक्ष्मी लज्जा से मुख नीचे किये हुए चली गईं। उनके बाद सरस्वती के साथ पार्वती भी मुख नीचा किये चली गईं। सावित्री, रोहिणी, स्वाहा, वारुणी, रति तथा शची सभी एकत्र होकर मन्त्रणा करने लगीं ॥ १०२-१०४ ॥

कृत्यास्त्रियं समाहूय ता ऊचुश्च क्रमेण च ।
रोधयामासुरिष्टां तां सुगोप्यामपि योषितः ॥ १०५ ॥

तब कृत्या कामिनी को बुलाकर उन सब स्त्रियों ने क्रम से उससे कहा कि 'स्त्रियों को अपने सर्वप्रिय और इष्ट उद्देश्यों को सदा गुप्त रखना चाहिये' ॥ १०५ ॥

तस्या मुखे ददौ हस्तं सुशीला कमलालया ।
सलज्जिता भव सुते शान्ता चेति शुभाशिषम् ॥ १०६ ॥
सरस्वती ददौ तस्यै चाभिमानं च धैर्यताम् ।
मौखर्यं वावदूकत्वं मन्त्रणामात्मरक्षणम् ॥ १०७ ॥
सावित्री च ददौ तस्यै सौशील्यं चातिदुर्लभम् ।
आत्मसंगोपनं चैव गाम्भीर्यं कुलतो भयम् ॥ १०८ ॥

सुशीला कमलालया (लक्ष्मी) ने उसके मुख पर हाथ रखकर 'हे शुभे ! सलज्जिता और शान्त हो ।' यह कहकर आशीर्वाद दिया । सरस्वती ने उसे अभिमान, धैर्य, मुखरता, वाचालता, मन्त्रणा तथा आत्मरक्षण दिया । सावित्री ने उसे अतिदुर्लभ सुशीलता, आत्मसंगोपनात्मक गाम्भीर्य तथा कुल से भय दिया ॥ १०६-१०८ ॥

पार्वत्युवाच ।

धिक् त्वां स्वभावकुलटां लज्जिता भव सुन्दरि ।
स्वमानं गौरवं रक्ष ह्यस्माकं च स्मरातुरे ॥ १०९ ॥
जनिं लभ पृथिव्यां च कायव्यूहं विधाय च ।
पुंसामष्टगुणं कामं लभस्व च पृथक् पृथक् ॥ ११० ॥
लज्जां चतुर्गुणां चापि द्विगुणां धैर्यतां तथा ।
अभोगेच्छाधमे गच्छ दूरं गच्छ ममान्तिकात् ॥ १११ ॥

पार्वती बोलीं : हे सुन्दरि ! कुलटा स्वभाव को धिक्कार हो । तू सलज्ज हो जा । हे स्मरातुरे ! अपने मान और हमारे गौरव की रक्षा कर । अपनी इस काया का परित्याग कर पृथिवी पर जन्म ले । पुरुषों से आठ गुना तेरा काम हो; तथा चौगुनी लज्जा और दूना धैर्य हो । हे अधमे ! मेरे पास से अब तू दूर चली जा और वहाँ अपनी अभोग्य इच्छाओं का भोग कर ॥ १०९-१११ ॥

पुंसां च द्विगुणः कामो वास्तवीनां च योषिताम् ।
लज्जा चाष्टगुणा चापि धैर्यता च चतुर्गुणा ॥ ११२ ॥
कुलधर्मः कुलभयं सौशील्यं मानमूर्ज्जितम् ।
शश्वत्तिष्ठतु पुंस्येव सतीषु च ममाज्ञया ॥ ११३ ॥
यस्मात् सदसि सर्वेभ्यो लज्जाहीनः सुराधमः ।
स्त्रीस्वभावं च पप्रच्छ यज्ञभाक् न भवेत्ततः ॥ ११४ ॥
अद्यप्रभृति विश्वेषु नाग्राह्यं पापसंयुतम् ।
चिकित्सकानां विदुषां न भक्ष्यं च ममाज्ञया ॥ ११५ ॥

मेरी आज्ञा से पुरुषों की अपेक्षा साधारण स्त्रियों का काम दूना, लज्जा आठ गुनी, और धैर्य चौगुना हो। साथ ही पतिव्रता नारियों में भी पुरुषों के ही समान कुलधर्म, कुल का भय, सुशीलता, आत्मप्रतिष्ठा प्रतिष्ठित रहे और जिस अधम देवता (अश्विनीकुमार) ने इस सभा में निर्लज्जतापूर्वक स्त्रीस्वभाव के सम्बन्ध में पूछा था उसे यज्ञभाग न प्राप्त हो। आज से मेरी आज्ञा से चिकित्सकों द्वारा प्रस्तुत भोज्य पदार्थ पापसंयुक्त और विद्वानों के लिये संसार में अभक्ष्य माने जाँय। ॥ ११२-११५ ॥

इत्येवमुक्त्वा प्रययुर्देव्यश्च सर्वयोषितः ।
देवाश्च मुनयश्चापि ये चान्ये च समागताः ॥ ११६ ॥
पृथिव्यां कुलटाजातिर्बभूव सर्वतः सुत ।
पतिव्रतानां स्त्रीणां च लज्जा बीजस्वरूपिणी ॥ ११७ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
कुलटोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार कहकर सभी देवियाँ, सभी स्त्रियाँ, देव, मुनिगण तथा अन्य लोग, जो उस सभा में आये थे, वहाँ से चले गये। हे सुत! इस प्रकार पृथिवी पर सर्वत्र कुलटा जाति की स्त्रियों का प्रादुर्भाव हुआ और ये सभी पतिव्रता स्त्रियों के लिये लज्जास्वरूप हैं ॥११६-११७॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत प्रथम
रात्र में कुलटोत्पत्ति नामक चतुर्दश अध्याय समाप्त।

प्रथमैक रात्रे पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीव्यास उवाच ।

गते नियमिते काले गन्धर्वश्चोपवर्हणः ।
स्वयोगेन जहौ देहं भारते प्राक्तनादहो ॥ १ ॥
स जज्ञे शूद्रयोनौ च पितुः शापेन दैवतः ।
विष्णुप्रसादं भुक्त्वा च बभूव ब्रह्मणः सुतः ॥ २ ॥
विमुक्तस्तातशापेन सम्प्राप्य ज्ञानमुत्तमम् ।
प्रतिजन्मस्मृतिस्तस्य कृष्णमन्त्रप्रसादतः ॥ ३ ॥

श्री व्यास जी बोले : निश्चित समय के व्यतीत हो जाने पर गन्धर्व उपबर्हण ने प्राक्तन भाग्यवश भारत में अपना शरीर त्याग दिया। पिता के शाप से वह देवता द्वारा शूद्र योनि में उत्पन्न हुए और अन्ततः विष्णु के प्रसाद का भक्षण कर ब्रह्मा के पुत्र हुए तथा उत्तम ज्ञान प्राप्त कर पिता के शाप से मुक्त हो गये। श्रीकृष्ण-मन्त्र के प्रसाद से पिछले जन्म की स्मृति उन्हें बनी रही ॥ १-३ ॥

पितुः सकाशादागत्य सम्प्राप चन्द्रशेखरात् ।
श्रीकृष्णमन्त्रमतुलं स्वर्गमन्दाकिनीतटे ॥ ४ ॥
स्वर्गमन्दाकिनीतीराद्गुरुणा शङ्करेण च ।
सहितः प्रययौ तूर्णं पार्वतीसन्निधानतः ॥ ५ ॥

पिता के पास से स्वर्ग मन्दाकिनी के तट पर आकर उन्होंने चन्द्र-शेखर से श्रीकृष्ण का अतुल मन्त्र प्राप्त किया। फिर स्वर्ग मन्दाकिनी के तट से गुरु शङ्कर के साथ वह शीघ्र पार्वती के पास गये ॥ ४-५ ॥

उवास तत्र शम्भुश्च नारदश्च महामुनिः ।
पार्वती भद्रकाली च स्कन्दो गणपतिः स्वयम् ॥ ६ ॥

महाकालश्च नन्दी च वीरभद्रः प्रतापवान् ।
सिद्धा महर्षयश्चैव मुनयः सनकादयः ॥ ७ ॥
योगीन्द्रा ज्ञानिनः सर्वे समूचुः शम्भुसंसदि ।
यत् स्तोत्रं कवचं ध्यानं सुभद्राय च कानने ॥ ८ ॥
नारायणर्षिर्भगवान् ब्राह्मणाय ददौ पुरा ।
पूजाविधानं यद्यच्च पुरश्चरणपूर्वकम् ॥ ९ ॥
तदेव भगवान् शम्भुः प्रददौ नारदाय च ।
उवाच शम्भुं देवर्षिर्योगिनां च गुरोर्गुरुम् ॥
पार्वतीसन्निधौ तत्र नारदश्च महामुनिः ॥ १० ॥

वहाँ शम्भु और महामुनि नारद जी रहने लगे। पार्वती, भद्रकाली, स्कन्द, स्वयं गणपति, महाकाल, नन्दी, प्रतापवान् वीरभद्र, सिद्ध महर्षिगण, सनकादि मुनिजन, योगीन्द्र तथा ज्ञानिजन—ये सभी शम्भु की सभा में बोले : 'वन में सुभद्र ब्राह्मण को जो स्तोत्र, कवच तथा ध्यान नारायण ऋषि ने दिया था और जो-जो पूजा विधान बताया था उसी को पुरश्चरणपूर्वक भगवान् शम्भु ने नारद को दिया। तब वहाँ पार्वती के समीप देवर्षियों और योगियों के गुरु के गुरु शम्भु से महामुनि नारद बोले ॥ ६-१० ॥

नारद उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञ सर्वकारण ।
यद्यत्पृष्टं मया पूर्वं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥ ११ ॥

नारद बोले : हे भगवन्, सर्वधर्मज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वकारण ! मैंने आप से जो कुछ पहले पूछा था उस सबको आप मुझे बताने की कृपा करें। ॥ ११ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

यद्यत्पृष्टं त्वया ब्रह्मन् प्रत्येकं च क्रमेण च ।
पुनः प्रश्नं कुरु मुने शृण्वन्तु मत्सभासदः ॥ १२ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे ब्रह्मन् ! तुमने जो-जो प्रश्न पूछे थे

उन सबको क्रम से, हे मुने, मुझसे पुनः पूछो जिससे मेरे सभासद भी उन्हें सुन लें ॥ १२ ॥

नारद उवाच ।

आध्यात्मिकं च यज्ज्ञानं वेदानां सारमुत्तमम् ।
ज्ञानं ज्ञानिषु सारं यत् कृष्णभक्तिप्रदं शुभम् ॥ १३ ॥
निर्वाणमुक्तिदं ज्ञानं कर्ममूलनिकृन्तनम् ।
तत्सिद्धियोगान्मुक्तिश्च योगिनामपि वाञ्छितम् ॥ १४ ॥
संसारविषयं ज्ञानं शश्वत् सम्मोहवेष्टितम् ।
आश्रमाणां समाचारं तेषां धर्मपरिष्कृतम् ॥ १५ ॥
चतुर्णामपि वर्णानां विधवानां महेश्वर ।
भिक्षूणां वैष्णवाणां च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ १६ ॥
वानप्रस्थाश्रमाणां च पण्डितानां तथैव च ।
पतिव्रतानां यद्यच्च श्रीकृष्णपूजनं च यत् ॥ १७ ॥
यत् स्तोत्रं कवचं मन्त्रं पुरश्चरणमीप्सितम् ।
सार्वाह्निकमभीष्टं च विपाकं कर्मजीविनाम् ॥ १८ ॥
संसारवासनाबद्धं लक्षणं प्रकृतीशयोः ।
तयोः परं वा यद्ब्रह्म तस्यावतारवर्णनम् ॥ १९ ॥
कस्तत्कलावतीर्णश्च कस्तदंशस्तथैव च ।
परिपूर्णतमः कश्च कः पूर्णः कः कलांशकः ॥ २० ॥
कस्य वाराधने शम्भो किं फलं किं यशस्तथा ।
अङ्गाङ्गिनोर्भेदफलं विस्तीर्णं निरपेक्षकम् ॥ २१ ॥
नारायणर्षिकवचं सुभद्रब्राह्मणाय च ।
यद्दत्तं किं तद्देवेश तदाराध्यश्च कः सुरः ॥ २२ ॥
अतिसंगोपनीयं च कवचं परमाद्भुतम् ।
सुदुर्लभं च विश्वेषु नोक्तं मां ब्रह्मणा पुरा ॥ २३ ॥

नारद जी बोले : वेदों का उत्तम सारस्वरूप जो आध्यात्मिक ज्ञान है; ज्ञानियों में जो सारभूत ज्ञान है, जो शुभ कृष्ण भक्तिप्रद है, जो निर्वाण और मुक्तिप्रद कर्ममूल का नाश करनेवाला ज्ञान है; जो मुक्ति सिद्धज्ञान, मुक्तिप्रद और योगियों द्वारा वाञ्छित है; संसार-विषयक ज्ञान जो व्यक्ति को सदा सम्मोह से वेष्टित रखता है; आश्रमों के आचार और परिष्कृत धर्म; चारों वर्णों और हे महेश्वर ! विधवाओं, भिक्षुओं, वैषणों, यतियों और ब्रह्मचारियों का जो ज्ञान है; वानप्रस्थों, पण्डितों तथा पतिव्रताओं का धर्म और जो जो कृष्णपूजन हैं तथा जो-जो स्तोत्र, कवच, मन्त्र, और अभीष्ट पुरश्चरण है; सभी आह्निक अभीष्ट, कर्म; कर्मजीवियों के विपाक, प्रकृति तथा ईश्वर का संसारवासनाबद्ध लक्षण; परम ब्रह्म के अवतार का वर्णन; परिपूर्णतम कौन है, पूर्ण कौन है और कलांश कौन है; हे शम्भो ! किसकी आराधना करने में क्या फल है तथा क्या यश है; अङ्ग और अङ्गी के भेद का विस्तीर्ण और निरपेक्ष फल क्या है; नारायण ऋषि ने सुभद्र ब्राह्मण को जो कवच दिया था, हे ईश वह क्या है तथा उसका देवता कौन है; जो कि अत्यंत गोपनीय, परम अद्‌भुत कवच सारे संसार में अत्यन्त दुर्लभ है तथा जिसे ब्रह्मा ने मुझे नहीं बताया था—वह सब मुझे बताइये ॥ १३-२३ ॥

सनत्कुमारो जानाति नोक्तं तेन पुरा च माम् ।
मया ज्ञानमनापृष्टं यद्यज्जानासि मङ्गलम् ॥ २४ ॥
वेदसारमनुपमं कर्ममूलनिकृन्तनम् ।
तन्मे कथय भद्रेश मामेवानुग्रहं कुरु ॥ २५ ॥
अपूर्वं राधिकाख्यानं वेदेषु च सुदुर्लभम् ।
पुराणेष्वितिहासे च वेदाङ्गेषु सुदुर्लभम् ॥ २६ ॥
गुरोश्च ज्ञानोद्गिरणात् ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः ।
तत्तन्त्रं स च मन्त्रः स्यात् कृष्णभक्तिर्यतो भवेत् ॥ २७ ॥
ज्ञानं स्याद्विदुषां किञ्चिद्वेदव्याख्यानतः प्रभो ।
वेदकारणपूज्यस्त्वं ज्ञानाधिष्ठातृदेवता ॥ २८ ॥
तस्माद्भवान् परं ज्ञानं वद वेदविदां वर ।
मां भक्तमनुरक्तं च शरणागतमीश्वर ॥ २९ ॥

इनके अतिरिक्त जो ज्ञान मेरे पूछने से रह गया हो; जो मङ्गलमय हो तथा आप जिसे जानते हों; जो अनुपम वेदसार तथा कर्मों के मूल का नाशक हो; हे भद्रेश ! आप उस सबको कृपापूर्वक मुझे बताइये। अपूर्व राधिका का आख्यान, जो वेदों में भी अत्यन्त दुर्लभ है, पुराणों इतिहासों में तथा वेदाङ्गों में भी जो अत्यन्त दुर्लभ है—वह सब बतायें। गुरु के ज्ञानदान से तन्त्र तथा मन्त्र का ज्ञान होता है। वही तन्त्र और वही मन्त्र है जिससे श्रीकृष्ण की भक्ति हो। हे प्रभो ! वेद-व्याख्यान से विद्वानों को कुछ ज्ञान होता है। आप वेदों के कारणस्वरूप, पूज्य तथा ज्ञान के अधिष्ठातृ देवता हैं। हे वेदविदों में श्रेष्ठ ईश्वर ! इसलिये आप उस परम ज्ञान को शरणागत मुझ अनुरक्त भक्त को बतायें॥ २४-२९ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा योगिनां च गुरोर्गुरुः ।
भगवत्या सहालोच्य ज्ञानं वक्तुं समुद्यतः ॥ ३० ॥

नारद के वचन को सुनकर योगियों के गुरु के गुरु भगवती से परामर्श करके ज्ञान देने के लिये उद्यत हो गये ॥ ३० ॥

इत्येवं कथितं सर्वं पूर्वाख्यानं मनोहरम् ।
हरिभक्तिप्रदं सर्वं कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
समाप्तश्चेदं नारदपञ्चरात्रैकरात्रम् ॥ १ ॥

इस प्रकार हरिभक्तिप्रद, सर्व कर्ममूलनाशक और मनोहर पूर्वाख्यान मैंने बता दिया ॥ ३१ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
प्रथम रात्र का पञ्चदश अध्याय समाप्त ।
नारदपञ्चरात्र का प्रथम रात्र समाप्त हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय रात्रे प्रथमोऽध्यायः

अथाध्यात्मिकवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच ।

नारायणं नमस्कृत्य परमात्मानमीश्वरम् ।
शृणु नारद वक्ष्यामि परमं धर्ममीप्सितम् ॥ १ ॥

श्री महादेव जी बोले : परमात्मा ईश्वर, श्रीनारायण को नमस्कार करके मैं सभी के ईप्सित परमधर्म को कह रहा हूं जिसे, हे नारद ! तुम सुनो ॥ १ ॥

प्रकृतेः परमिष्टं च सर्वेषामभिवाञ्छितम् ।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म पञ्चरात्राभिधं स्मृतम् ॥ २ ॥
कारणं कारणानां च कर्ममूलनिकृन्तनम् ।
अनन्तबीजरूपं च स्वाज्ञानध्वान्तदीपकम् ॥ ३ ॥
सर्वेश्वरं सर्वधाम परं वैराग्यकारणम् ।
परमं परमानन्दमायाबन्धनिकृन्तनम् ॥ ४ ॥
निर्लिप्तं निर्गुणं सारं वेदानां गोपनीयकम् ।
कर्मिणां कर्मणां शश्वत् साक्षिरूपं सुनिर्मलम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मेशशेषप्रमुखदेववन्द्यं प्रशंसितम् ।
वेदज्ञानागोचरं तं योगिनां प्राणतः प्रियम् ॥ ६ ॥
सर्वाधारं च सर्वाद्यं सर्वसन्देहभञ्जनम् ।
सर्वाभीष्टप्रदातारं सर्वेषां च सुदुर्लभम् ॥ ७ ॥
दुराराध्यं च सर्वेषां भक्तिसाध्यं च मुक्तिदम् ।
मङ्गल्यं मङ्गलार्हं च सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ८ ॥

पवित्रं तीर्थपूतं च मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
वरं स्वपददातारं भक्तिदास्यप्रदं हरेः ॥ ९ ॥
पापघ्नं पुण्यदं शुद्धं पापेन्धदाहनानलम् ।
सर्वावतारबीजं तं सर्वावतारवर्णनम् ॥ १० ॥
श्रुतिज्ञं श्रुतिदुर्बोधं सर्वेषां श्रुतिसुन्दरम् ।
प्रसाददं चाशुतोषं प्रसादगुणसंयुतम् ॥ ११ ॥
पञ्चरात्रमिदं ब्रह्मन् पञ्चसंवादमेव च ।
यत्र पञ्चविधं ज्ञानं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ १२ ॥

यह प्रकृति से परे इष्ट, सभी के द्वार वाञ्छित, स्वेच्छामय, परम ब्रह्म पञ्चरात्र नाम से जाना गया है। यह कारणों का भी कारण, कर्मों के मूल को नष्ट करनेवाला, अनन्त, बीजरूप, निज अज्ञानान्धकार के लिये दीपक, सर्वेश्वर, सर्वधाम तथा परम वैराग्य का कारण है। परम, परमानन्द, मायाबन्धनों का विनाशक, निर्लिप्त, निर्गुण, वेदों का सार, गोपनीय, कर्मियों तथा कर्मों का निरन्तर अत्यन्त निर्मल साक्षिरूप, ब्रह्मेश, शेष प्रमुख देवों से वन्दनीय, प्रशंसित, वेदज्ञान से अगोचर, योगियों का प्राणों से प्रिय, सर्वाधार, सर्वाद्य, सर्वसन्देहभञ्जक, सर्वाभीष्टप्रद, सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ, सब के लिये दुराराध्य, भक्तिसाध्य, मुक्तिदाता, मङ्गलकारक, मङ्गलार्ह, सर्वविघ्नविनाशक, पवित्र, तीर्थपूत, मङ्गलों का मङ्गल, श्रेष्ठ, स्वपदप्रदायक, हरिभक्ति तथा हरिदास्यप्रद, पापघ्न, पुण्यप्रद, शुद्ध, पापरूपी काष्ठ को जलाने के लिये अग्निस्वरूप, सर्वावतारबीज, सर्वावतारों का वर्णन करनेवाला, श्रुतिज्ञ, श्रुतिदुर्बोध, सबके लिये श्रुतिसुन्दर, प्रसाददायक, आशुतोष और प्रसादगुणसंयुक्त, हे ब्रह्मन्! पञ्चसंवाद रूपी यह पञ्चरात्र ही है। इसमें निहित पञ्चविधज्ञान तीनों लोकों में दुर्लभ है ॥ २-१२ ॥

कृष्णेन ब्रह्मणे दत्तं गोलोके विरजातटे ।
निरामये ब्रह्मलोके मह्यं दत्तं च ब्रह्मणा ॥ १३ ॥
पुरा सर्वादिसर्गे च सर्वज्ञानप्रदं शुभम् ।

मया तुभ्यं प्रदत्तं च ज्ञानामृतमभीप्सितम् ॥ १४ ॥

इसे श्रीकृष्ण ने गोलोक में विरजा नदी के तट पर ब्रह्मा को दिया था। निरामय ब्रह्मलोक में ब्रह्मा ने मुझे दिया! मैंने इस सर्वज्ञानप्रद और शुभज्ञानामृत को सृष्टि के आरम्भ में तुम्हें दिया ॥ १३-१४ ॥

त्वमेव वेदव्यासाय पश्चाद्दास्यसि निश्चितम् ।
व्यासो दास्यति पुत्राय निर्जनेऽपि शुकाय च ॥ १५ ॥
अतः परं न दातव्यं यस्मै कस्मै च नारद ।
विना नारायणांशं तं व्यासदेवं सुपुण्यदम् ॥ १६ ॥
सत्यं सत्यस्वरूपं च सतीसत्यवतीसुतम् ।
क्रमेण वर्णनं सर्वमेकचित्तं निशामय ॥ १७ ॥

भविष्य में तुम निश्चित रूप से नारायण के अंश से उत्पन्न वेद व्यास को दोगे और व्यास इसे एकान्त में अपने पुत्र शुक को देंगे। हे नारद! इसके बाद अत्यन्त पुण्यदायक, सत्य, सत्यस्वरूप सती सत्यवती पुत्र श्री व्यासदेव के अतिरिक्त तुम इसे किसी ऐसे-तैसे व्यक्ति कदापि न देना। क्योंकि नारायण के अंश से उत्पन्न व्यक्ति के अतिरिक्त इसे किसी को नहीं देना चाहिये। अब मैं क्रम से जो कुछ वर्णन कर रहा हूं उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १५-१७ ॥

सर्वाद्याध्यात्मिकं ज्ञानं वेदसारं मनोहरम् ।
दुर्गं नानाप्रकारं च नानातन्त्रेषु पुत्रक ॥ १८ ॥
सर्वसारोद्धृतं तत्र श्रीकृष्णपादसेवनम् ।
सर्वेषां सम्मतं ज्ञानं निर्लिप्तं भवबन्धतः ॥ १९ ॥
लक्षश्लोकमिदं शास्त्रं श्रीकृष्णेन कृतं पुरा ।
कथयामि कथं ब्रह्मन् स्वल्पं संक्षेपतः शृणु ॥ २० ॥

हे पुत्र! मनोहर, वेदसार, दुर्गम, नाना प्रकार के तन्त्रों में निहित जो सर्वाद्य आध्यात्मिक ज्ञान है उसमें भी सारों का सार श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा है जो सर्वसम्मते, भवबन्धन से निर्लिप्त ज्ञान है। उसे श्रीकृष्ण ने एक लाख श्लोकों में कहा था। यहां मैं उसे संक्षेप में किस प्रकार कहता हूं उसे सुनो ॥ १८-२० ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं कृष्णं चराचरम् ।
पुनस्तस्मिन् प्रलीनं च पुनरेव च सम्भवम् ॥ २१ ॥
एक एवेश्वरः शश्वद्विश्वेषु निखिलेषु च ।
सर्वे तत्कर्मसिद्धाश्च मोहितास्तस्य मायया ॥ २२ ॥
अनन्तस्य च कृष्णस्याप्यनन्तं गुणकीर्त्तनम् ।
अनन्तरूपा कीर्त्तिश्चाप्यनन्तं ज्ञानमेव च ॥ २३ ॥
नामान्यस्याप्यनन्तानि तीर्थपूतानि नारद ।
अनन्तानि च विश्वानि विचित्रकृत्रिमाणि च ॥ २४ ॥
नानाविधानि सर्वाणि जीवरूपाणि सर्वतः ।
मध्यमानि च क्षुद्राणि महान्ति चापि सर्वतः ॥ २५ ॥
पृथक् पृथक् च प्रत्येकं प्रत्यक्षं सर्वजीविषु ।
सन्ततं सन्ति ये देवाः सन्तो जानन्ति निश्चितम् ॥ २६ ॥
परमात्मस्वरूपश्च भगवान् राधिकेश्वरः ।
निर्लिप्तः साक्षिरूपश्च स च कर्मसु कर्मिणाम् ॥ २७ ॥
जीवस्तत्प्रतिबिम्बश्च भोक्ता च सुखदुःखयो ।
केचित् वदन्ति तं नित्यं कारणस्य गुणेन च ॥ २८ ॥
विद्यमानात्तिरोधानं तिरोधानाच्च सम्भवः ।
देहाद्देहान्तरं याति न मृत्युस्तस्य कुत्रचित् ॥ २९ ॥
ततः प्रलीनः प्रलयः परं सर्वालयालये ।
अतो नित्यस्वरूपश्च जीव एव यथात्मकः ॥ ३० ॥

ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त यह सब चराचर जगत् कृष्णस्वरूप ही है। उन्हीं में यह सबकुछ लीन तथा उन्हीं से यह पुनः उत्पन्न होता है। समस्त विश्व में सदा एक ही ईश्वर है। सभी उसके कर्म से सिद्ध तथा उसी की माया से मोहित हो जाते हैं। अनन्त कृष्ण का अनन्त गुण-कीर्तन है। उनकी कीर्ति भी अनन्तरूपा है। उनका ज्ञान भी अनन्तरूप है। हे नारद ! उनके नाम भी अनन्त हैं जो तीर्थों को पवित्र करनेवाले

हैं। विचित्र रूप से निर्मित यह अनन्त विश्व भी उन्हीं का रूप है। वही नाना प्रकार के जीवों में सर्वत्र व्याप्त हैं। इन जीवों में से कुछ मध्यम, कुछ क्षुद्र और कुछ महान हैं। कृष्ण ही पृथक् पृथक् सब जीवों में स्थित हैं और वही सब देवों में भी हैं—ऐसा सन्तगण निश्चित रूप से जानते हैं। परमात्म स्वरूप भगवान राधिकेश्वर सब कर्म करनेवालों के सब कर्मों में निर्लिप्त और साक्षिरूप से विराजमान हैं। जीव उनका प्रतिबिम्ब और सुख-दुःख का भोक्ता मात्र है। कुछ लोग उसे (जीव को) नित्य कहते हैं। परन्तु गुणजन्य कारण के विद्यमान होने से उसका तिरोधान होता है; तिरोधान होने से उसकी उत्पत्ति होती है; और इस प्रकार वह एक देह से दूसरे देह में जाता है तथा उसकी कहीं मृत्यु नहीं होती। प्रलय के समय वह सर्वालय, अर्थात सर्वाधार में ही लीन हो जाता है। अतः जीव भी वैसे ही नित्य स्वरूप है जैसे आत्मा नित्य है॥ २१-३०॥

केचिद्वदन्त्यनित्यश्च मिथ्यैव कृत्रिमः सदा।
प्रतीलये पुनस्तत्र प्रतिविम्बो यथा रवेः॥ ३१॥
यथैव शातकुम्भेषु निर्मलेषु जलेषु च।
प्रत्येकं प्रतिविम्बश्च दृश्य एव हि जीविनाम्॥ ३२॥
पुनः प्रलीयते सूर्ये गतेषु च घटेषु च।
एवं चन्द्रस्य बोद्धव्यं दर्पणे जीवने यथा॥ ३३॥
तस्मान्नित्यं परं ब्रह्म सजीवो नित्य एव सः।
सर्वान्तरात्मा भगवान् प्रत्यक्षं प्रतिजीविषु॥ ३४॥

कुछ लोग कहते हैं कि जीव सदा अनित्य है, किन्तु यह मिथ्या है। सभी कृत्रिम वस्तुयें उसी प्रकार उनमें (कृष्ण में) विलीन हो जाती है जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब केवल सूर्य में ही विलीन होता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब चमकदार निर्मल स्वर्ण पट्ट पर, जल में और घट में दिखाई पड़ता है परन्तु सूर्यास्त होने पर वह प्रतिबिम्ब पुनः सूर्य में ही लीन हो जाता है; अथवा जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखाई पड़ता है किन्तु चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर उसी में लीन हो जाता है—उसी प्रकार जीव भी परब्रह्म में लीन हो

जाता है। इसलिये परब्रह्म के नित्य होने से जीव भी नित्य है। सर्वान्तरात्मा भगवान ही सब जीवों में प्रत्यक्ष होता है॥ ३१-३४॥

अहं ज्ञानस्वरूपश्च ज्ञानाधिष्ठातृदेवता।
बुद्धिरूपा भगवती सर्वशक्तिस्वरूपिणी॥ ३५॥
इयं दुर्गा तव पुरो विष्णुमाया सनातनी।
अनया मोहिताः सर्वे कृष्णभक्तं विना मुने॥ ३६॥
मनःस्वरूपो ब्रह्मा च मनोऽधिष्ठातृदेवता।
स्वयं स विषयी विष्णुः प्राणाः पञ्चस्वरूपिणः॥ ३७॥
एते ह्यभ्यन्तरे देवी चन्द्रः सूर्यश्च चक्षुषोः।
सर्वे चन्द्रादयो देवाश्चेन्द्रियेषु पृथक् पृथक्॥ ३८॥
धर्मः शिरश्च सर्वेषां जठरे च हुताशनः।
प्राणाद्भिन्नश्च पवनः स विश्वासः प्रकीर्त्तितः॥ ३९॥
गणेशः कण्ठदेशस्थो विघ्नदो विघ्ननाशकृत्।
स्कन्दः प्रतापरूपश्च कामो मनसि कामदः॥ ४०॥
पापं पुण्यं हृदयजं लक्ष्मीः सत्त्वानुसारिणी।
आकण्ठदेशात् सर्वेषां रसनासु सरस्वती॥ ४१॥
सा एव मन्त्रणारूपा पृथङ्मुक्त्या च सर्वतः।
बुद्धिजाः शक्तयः सर्वा विद्यन्ते सर्वजन्तुषु॥ ४२॥
निद्रा तन्द्रा दया श्रद्धा तुष्टिः पुष्टिः क्षमा च क्षुत्।
लज्जा तृष्णा यथेच्छा च शान्तिश्चिन्ता जरा जडा॥ ४३॥

मैं ज्ञानस्वरूप और ज्ञान का अधिष्ठातृ देवता हूं। हे मुने! बुद्धि रूपा भगवती सर्वशक्ति स्वरूपिणी हैं। यहाँ तुम्हारे सामने जो दुर्गा हैं वह सनातनी विष्णुमाया हैं और कृष्णभक्त को छोड़कर सब इनसे मोहित हैं। ब्रह्मा मनःस्वरूप और मन के अधिष्ठातृ देवता हैं। स्वयं विष्णु ही पञ्चस्वरूपी प्राण के अधिष्ठातृ देवता और उनके विषयी हैं। यह जो सबके भीतर देवी है वह प्राण-स्वरूपा है। चन्द्रमा और सूर्य नेत्रों में स्थित रहते हैं और अन्य देवता पृथक्

पृथक् इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं। धर्म सबके सिर में और हुताशन (अग्नि) जठर में स्थित हैं। पवन विभिन्न प्राणों के रूप में श्वास और निःश्वास आदि कहे जाते हैं। विघ्नदाता गणेश कण्ठ देश में स्थित होकर विघ्नों का नाश करते हैं। स्कन्द प्रतापरूप हैं और कामदेव मन में कामना और प्रेमभाव उत्पन्न करते हैं। सत्त्वानुसारिणी लक्ष्मी हृदय में उत्पन्न पाप और पुण्य स्वरूपा हैं। सभी व्यक्तियों में सरस्वती कण्ठ से लेकर जिह्वापर्यन्त निवास करती हैं। वही मन्त्रणारूपा हैं तथा मुक्ति में वह सबसे पृथक् रहती हैं। बुद्धिजात सभी शक्तियाँ सभी जीवों में विद्यमान रहती हैं। निद्रा, तन्द्रा, दया, श्रद्धा, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, क्षुधा, लज्जा, तृष्णा, इच्छा, शान्ति, चिन्ता, जरा तथा जडता—ये सभी स्वामी के चले जाने पर उसी प्रकार चली जाते हैं जैसे राजा के चल जाने पर उसके अनुगामी चले जाते हैं ॥ ३५-४३ ॥

यातें स्वामिनि यान्त्येते नरदेवमिवानुगाः ।
चिन्ता ज्वरा च सततं शोभां पुष्टिं च द्वेष्टि च ॥ ४४ ॥
सर्वेषां जीविनामेव देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ।
पृथिवी वायुराकाशस्तेजस्तोयमिति स्मृतः ॥ ४५ ॥
स्वदेहे च प्रपतिते स्वभागं प्राप्नुवन्ति च ।
पृथक् पृथक् च प्रत्येकमेकमेव क्रमेण च ॥ ४६ ॥
सङ्केतपूर्वकं नाम तत् स्मरन्ति च बान्धवाः ।
रुदन्ति सततं भ्रान्त्या मायया मायिनस्तथा ॥ ४७ ॥
तस्मात् सन्तो हि सेवन्ते श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ।
नित्यं सत्यमभयदं जन्ममृत्युजराहरम् ॥ ४८ ॥

चिन्ता और ज्वर सदा शोभा और पुष्टि से द्वेष करते हैं। सभी जीवों का यह देह पाञ्चभौतिक है। पृथिवी, वायु, आकाश, तेज और जल—ये पञ्चभूत कहे गये हैं। स्वदेह के नष्ट हो जाने पर ये तत्त्व अपने-अपने भाग को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक ही शरीर क्रम से प्रत्येक तत्त्व में पृथक्-पृथक् मिल जाता है। मृतक के बान्धवजन संकेतपूर्वक उसके नाम का स्मरण करते हुए माया से विमोहित होकर निरन्तर रोते रहते हैं। इसलिये सन्तजन श्रीकृष्ण के उस चरणाम्बुज

का ही नित्य सेवन करते हैं जो सत्य, अभयप्रद तथा जन्म-मृत्यु-जरा का हरण करनेवाला है ॥ ४४-४८ ॥

प्रभातस्वप्नवद्विश्वमनित्यं कृत्रिमं मुने ।
पाद्मपद्मार्चितं पादपद्मं भज हरेर्मुदा ॥ ४९ ॥

हे मुने ! प्रभातकालीन स्वप्न के समान यह विश्व अनित्य और कृत्रिम है। अतः ब्रह्मा और पद्मा द्वारा अर्चित हरि के पादपद्म का आनन्दपूर्वक भजन करो ॥ ४९ ॥

मयोक्तं प्रथमं ज्ञानं ज्ञानं पञ्चविधेषु च ।
द्वितीयं श्रूयतां वत्स यत्सारं कृष्णभक्तिदम् ॥ ५० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे द्वितीयरात्रे
प्रथमज्ञानाध्यात्मिकवर्णनं नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यह मैंने पञ्चविधज्ञान का प्रथम ज्ञान बता दिया। अब सारभूत द्वितीय ज्ञान को सुनो जो कृष्ण भक्तिप्रद है ॥ ५० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
द्वितीय रात्र में प्रथम आध्यात्मिकज्ञानवर्णन
नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय रात्रे द्वितीयोऽध्याय:

अथ भक्तिज्ञाननिरूपणम् ।

श्रीमहादेव उवाच ।

हरिभक्तिप्रदं ज्ञानं ज्ञानं पञ्चविधेषु च ।
विदुषां वाञ्छिता मुक्तिः सततं परमा सताम् ॥ १ ॥
सा च श्रीकृष्णभक्तेश्च कलां नार्हति षोडशीम् ।
श्रीकृष्णभक्तसङ्गेन भक्तिर्भवती नैष्ठिकी ॥ २ ॥
अनिमित्ता च सुखदा हरिदास्यप्रदा शुभा ।
यथा वृक्षलतानां च नवीनः कोमलांकुरः ॥ ३ ॥
वर्धते मेघवर्षेण शुष्कः सूर्यकरेण च ।
तथैव भक्तालापेन भक्तिवृक्षनवांकुरः ॥ ४ ॥
वर्धते शुष्कतां याति चाभक्तालापमात्रतः ।
तस्माद्भक्तैः सहालापं कुरुते पण्डितः सदा ॥ ५ ॥
यात्येवाभक्तसंसर्गाद्दुष्टात् सर्पाद्यथा नरः ।
आलापाद्गात्रसंस्पर्शात् शयनात् सहभोजनात् ॥ ६ ॥
सञ्चरन्ति च पापानि तैलविन्दुमिवाम्भसा ।
संसर्गजा गुणा दोषा भवन्त्येव हि जीविनाम् ॥ ७ ॥
तस्मात् सतां हि संसर्गं सन्तो वाञ्छन्ति संततम् ।
मुने संसर्गजो दोषो वस्तूनां प्रभवेदिह ॥ ८ ॥
हीनधातुप्रसङ्गेन स्वर्णदोषः प्रजायते ।
तस्माच्च हीनसंसर्गं न वाञ्छन्ति मनीषिणः ॥ ९ ॥
तस्माद्वैष्णवसंसर्गं कुर्वन्ति वैष्णवाः सदा ।

कुर्वन्ति वैष्णवाः शश्वत् षड्विधं भजनं हरेः ॥ १० ॥
स्मरणं कीर्त्तनं चैव वन्दनं पादसेवनम् ।
पूजनं सततं भक्त्या परं स्वात्मनिवेदनम् ॥ ११ ॥

श्री महादेव जी बोले : पाँचों प्रकार के ज्ञानों में हरिभक्ति को देनेवाला ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। सज्जनों तथा विद्वानों का इष्ट परम मुक्ति है, लेकिन यह कृष्णभक्ति को सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण के भक्त के संग से नैष्ठिकी भक्ति होती है। जो बिना निमित्त के हरिदास्यप्रदा, शुभ और सुखप्रदा भक्ति है वही अनिमित्ता भक्ति कहलाती है। जैसे वृक्षों और लताओं के कोमल अंकुर मेघ की वर्षा से बढ़ते हैं तथा सूर्य की किरणों से सूख जाते हैं, वैसे ही भक्तों से वर्तालाप करने से भक्तिरूपी वृक्ष का नूतन अंकुर बढ़ता है और अभक्त के साथ आलापमात्र से वह सूख जाता है। इसलिये पण्डित सदा भक्तों के साथ आलाप करता है। अभक्त के संसर्ग से वह उसी प्रकार दूर चला जाता है जैसे मनुष्य सर्प से दूर भाग जाता है। आलाप, शरीर स्पर्श, शयन तथा सहभोजन से मनुष्यों में वैसे ही पापों का संचरण होता है जैसे पानी से तेल के बिन्दुओं का संचरण होता है। प्राणियों में संसर्ग से गुण या दोष होते हैं। इसलिए सज्जन लोग सदा सज्जनों का संसर्ग चाहते हैं। हे मुने! इस संसार में पदार्थों में भी संसर्गज दोष होते हैं। हीन धातु के संसर्ग से स्वर्ण में दोष आ जाते हैं; इसलिए मनीषिजन नीचों से संसर्ग नहीं चाहते। इसीलिए वैष्णवजन वैष्णवों से ही सदा संसर्ग करते हैं। वैष्णवजन हरि का भजन सदा छः प्रकार से करते हैं : स्मरण, कीर्तन, वन्दन, पादसेवन, सतत पूजन तथा परम भक्तिपूर्वकआत्मनिवेदन ॥ १-११ ॥

गृह्णाति भक्तो भक्त्या च कृष्णमन्त्रञ्च वैष्णवात् ।
अवैष्णवाद्गृहीत्वा च हरिभक्तिर्न वर्द्धते ॥ १२ ॥
चाण्डालादपि पापी स श्रीकृष्णविमुखो नरः ।
निष्फलं तद्धर्मकर्मनाधिकारी स कर्मणाम् ॥ १३ ॥
शश्वदशुचिः पापिष्ठो निन्दां कृत्वा हसत्यपि ।
भगवन्तं भागवतमात्मानं नैव मन्यते ॥ १४ ॥

भक्तजन वैष्णव से भक्ति के द्वारा कृष्णमन्त्र को ग्रहण करते हैं। अवैष्णव से मन्त्र लेने पर हरिभक्ति की वृद्धि नहीं होती। वह मनुष्य चाण्डाल से भी पापी है जो श्रीकृष्ण से विमुख है। उसका सभी धर्म-कर्म निष्फल है। वह पूजा के कर्मों का अधिकारी नहीं है। वह सदा अपवित्र तथा पापों में लीन रहकर अन्यलोगों की निन्दा करके हँसता है। वह भगवान, भगवद्भक्त तथा आत्मा को भी नहीं मानता ॥ १२-१४ ॥

गुरुमुखात् कृष्णमन्त्रो यस्य कर्णे विशेदहो ।
तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति पुराविदः ॥ १५ ॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणानुजः ।
पुरुषाणां शतैः सार्द्धं स्वात्मानं च समुद्धरेत् ॥ १६ ॥
मातामहानां शतकं सोदरं मातरं सुतम् ।
भृत्यं कलत्रं बन्धुश्च शिष्यवर्गास्तथैव च ॥ १७ ॥
यदा नारायणक्षेत्रे मन्त्रं गृह्णाति वैष्णवात् ।
विष्णुः पुंसां सहस्रञ्च लीलया च समुद्धरेत् ॥ १८ ॥

गुरुमुख से कृष्णमन्त्र जिसके कान में प्रविष्ट होता है उस वैष्णव को पुराविद् महापूत कहते हैं। मन्त्रग्रहण मात्र से नर (मनुष्य) नारायण का अनुज हो जाता है और अपने सहित सौ पीढ़ियों का उद्धार करता है। वह सौ मातामहों, भ्राता, पुत्र, माता, भृत्य, कलत्र, बन्धु तथा शिष्य वर्गों का भी उद्धार करता है। जब मनुष्य नारायण क्षेत्र में वैष्णव से मन्त्र ग्रहण करता है तो वह विष्णु होकर सहस्रों लोगों का अनायास ही उद्धार कर देता है ॥ १५-१८ ॥

मया श्रीकृष्णमन्त्रश्च कृष्णालये मुने पुरा ।
गोलोके विरजातीरे नीरे क्षीरनिभेऽमले ॥ १९ ॥
शतलक्षजपं कृत्वा पुण्ये वृन्दावने वने ।
श्रीकृष्णानुग्रहेणैव मन्त्रः सिद्धो बभूव मे ॥ २० ॥

हे मुने! पूर्वकाल में मैंने गोलोक में दुग्ध-धवल जल वाली विरजा नदी के तट पर श्रीकृष्ण से कृष्ण मन्त्र लिया था। पुण्य वृन्दावन में उस

मन्त्र का जब मैंने एक करोड़ जप कर लिया तब श्रीकृष्ण की कृपा से मेरा वह मन्त्र सिद्ध हो गया ॥ १९-२० ॥

ब्रह्मभालोद्भवोऽहं च सर्वादिसर्गतो मुने ।
प्राप्तं मृत्युञ्जयं ज्ञानं कृष्णाच्च परमात्मनः ॥ २१ ॥
सिद्धो मृत्युञ्जयोऽहं च नित्यनूतनविग्रहः ।
ब्रह्मणः पतनेनैव निमेषो मे यथा हरेः ॥ २२ ॥
एवं तेषां पार्षदानां नास्ति मृत्युर्यथा हरेः ।
यस्मिन्देहे लभेन्मन्त्रं वैष्णवो वैष्णवादपि ॥ २३ ॥
पूर्वकर्माश्रितं देहं त्यक्त्वा स पार्षदो भवेत् ।
पञ्चवक्त्रेण सततं तन्नामगुणकीर्त्तनम् ॥ २४ ॥
करोमि भार्यया सार्द्धं पुत्राभ्यां चापि नारद ।
तद्दिनं दुर्दिनं मन्ये मेघाच्छन्नं न दुर्दिनम् ॥ २५ ॥
यद्दिनं कृष्णसंलापकथापीयूषवर्जितम् ।
तं क्षणं निष्फलं मन्ये श्रीकृष्णकीर्त्तनं विना ॥ २६ ॥

हे मुने ! सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के भाल से उत्पन्न होकर मैंने परमेश्वर श्रीकृष्ण से मृत्युञ्जय ज्ञान प्राप्त किया। अब मैं नित्य नूतन विग्रह और सिद्ध मृत्युञ्जय हो गया हूं। मेरे और श्रीहरि के निमेष मात्र में एक ब्रह्मा का पतन हो जाता है। पुनः हरि की ही भांति उनके पार्षदों की भी मृत्यु नहीं होती। जिस देह में वैष्णव किसी वैष्णव से मन्त्र ग्रहण करता है उस पूर्व कर्माश्रित देह को छोड़कर वह पार्षद हो जाता है। हे नारद ! पत्नी तथा दो पुत्रों के साथ मैं अपने पाँच मुखों से निरन्तर उनके (श्रीकृष्ण के) नामगुण का कीर्तन करता रहता हूं। मैं मेघाछन्न दिन को उतना दुर्दिन नहीं मानता जितना उस दिन को दुर्दिन मानता हूं जिस दिन मैं श्रीकृष्ण के कथामृत सम्बन्धी संलाप से वंचित रह जाता हूं। जो दिन कृष्ण के कथामृत के संलाप से वर्जित हो उस क्षण को मैं निष्फल मानता हूं ॥ २१-२६ ॥

आयुर्हरति कालश्च पुंसां तत्कीर्त्तनेन च ।
तं क्षणं मङ्गलं मन्ये सर्वहर्षकरं परम् ॥ २७ ॥

तस्मात् पापाः पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः ।
ब्रह्मणापि पुरा लब्धस्तस्मात्तन्मन्त्र एव च ॥ २८ ॥
पद्मनाभनाभिपद्मे शतलक्षं जजाप सः ।
तदाललाप ज्ञानं च निर्मलं सृष्टिकारणम् ॥ २९ ॥
अणिमादिकसिद्धिं च चकार तत्प्रभावतः ।
सृष्टिं च विविधां कृत्वा विधाता च बभूव सः ॥ ३० ॥

उनके कीर्तन में व्यतीत होनेवाले मनुष्य की आयु के क्षण अत्यन्त हर्षकर और मङ्गलकारक होते हैं। कृष्ण का कीर्तन करने वाले के पास से पाप उसी प्रकार दूर भाग जाते हैं जिस प्रकार वैनतेय (गरुड) से सर्प दूर भाग जाते हैं। पहले ब्रह्मा जी ने उन्हीं से (कृष्ण से) उनका मन्त्र प्राप्त किया और फिर विष्णु के नाभिकमल पर बैठकर उसका एक करोड़ जप किया। तब निर्मल ज्ञान का उन्होंने प्रवचन किया जो सृष्टि का कारण हुआ। उसी के प्रभाव से उन्होंने अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त कीं और नाना प्रकार की सृष्टि करके वह विधाता हो गये। ॥ २७-३० ॥

वरं तस्मै ददौ कृष्णो मत्समस्त्वं भवेति च ।
शेषस्तत्कलया पूर्वं बभूव कश्यपात्मजः ॥ ३१ ॥
तस्मात् सम्प्राप तन्मन्त्रं सिद्धः कोटिजपेन च ।
सहस्रशिरसस्तस्य मस्तकस्यैकदेशतः ॥ ३२ ॥
विश्वं सर्षपवत् सर्पस्यैकदेशे यथा मुने ।
कूर्मस्तत्कलया पूर्वं बभूवायोनिजः स्वयम् ॥ ३३ ॥
अनन्तस्तत्पृष्ठदेशे गजेन्द्रे मशको यथा ।
वाय्वाधारश्च कूर्मश्च जलाधारः समीरणः ॥ ३४ ॥
महज्जलं महाविष्णोः प्रत्येकं लोमकूपतः ।
महाविष्णुर्जलाधारः सर्वाधारो महज्जलम् ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण ने उन्हें (ब्रह्मा को) वर दिया कि 'तुम मेरे समान हो जाओ।' पूर्व समय में शेष भी उन्हीं (कृष्ण) की कला से कश्यप के पुत्र

हुए थे। शेष ने उन्हीं से मन्त्र भी प्राप्त किया और उसका एक करोड़ जप करके सिद्ध और सहस्रशीर्ष हो गये। हे मुने! उन्हीं सर्प के शीर्षों में एक स्थान पर यह विश्व सरसों के दाने के समान स्थित है। पूर्व समय में उन्हीं की एक कला से स्वयं कूर्म भी अयोनिज उत्पन्न हुए। अनन्त उसकी पीठ पर उसी प्रकार स्थित हैं जैसे हाथी की पीठ पर मच्छर। वायु के आधार पर कूर्म स्थित है और जल के आधार पर वायु स्थित है। महाविष्णु के प्रत्येक रोमकूर्म से महत् जल का उद्भव हुआ है। महाविष्णु का आधार जल है अतः यह जल सबका आधार है ॥३१-३५॥

शून्याश्रयं निराधारं परमेतन्महज्जलम् ।
तस्मिन्महज्जले शेते बभूव कलया हरेः ॥ ३६ ॥
महज्जलं महावायुर्बभूव कलया हरेः ।
राधागर्भोद्भवो डिम्भः स च डिम्भोद्भवः पुरा ॥ ३७ ॥
बभञ्ज डिम्भः सहसा गोलोकात् प्रेरितस्तथा ।
भूत्वा द्विखण्डं पतितो डिम्भो मग्नो जलार्णवे ॥ ३८ ॥

यह जल शून्याश्रित अर्थात् निराधार है और इस निराधार जल पर श्रीहरि की कला से उत्पन्न महाविष्णु शयन करते हैं। महत् जल और महावायु भी श्रीहरि की कला से उत्पन्न हुए हैं। पूर्व समय में राधा के गर्भ से एक सुवर्ण डिम्ब उत्पन्न हुआ और उस डिम्ब से वायु उत्पन्न हुआ। सहसा गोलोक से प्रेरित वह डिम्ब दो भागों में विभक्त होकर इस महार्णव में गिरकर डूब गया ॥ ३६-३८ ॥

बालश्च शेते तोये पर्यङ्के च यथा नृपः ।
महाविष्णोश्च लोम्नां च विवरेषु पृथक् पृथक् ॥ ३९ ॥
ब्रह्माण्डानि च प्रत्येकमसंख्यानि च नारद ।
पृथक् पृथग्जलं व्याप्तं प्रतिलोम्नश्च कूपतः ॥ ४० ॥
वायुस्तदूर्ध्वं प्रत्येकं तदूर्ध्वं कमठस्तथा ।
शेषः कमठपृष्ठे च सहस्रमितमस्तकः ॥ ४१ ॥
मस्तकस्यैकदेशे च डिम्भः सर्षपवन्मुने ।
डिम्भान्तरे च ब्रह्माण्डमनित्यं कृत्रिमं च तत् ॥ ४२ ॥

डिम्भान्तरे च ब्रह्माण्डनिर्माणक्रममीप्सितम् ।
सद्भिर्ज्ञातं श्रुतिद्वारा साक्षाद्दृष्टं मया मुने ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार राजा पलङ्ग पर शयन करता है उसी प्रकार वह बालक (महाविष्णु) जल पर शयन करता है। हे नारद ! उसके रोमकूपों से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए और सब पृथक् पृथक् जलराशियों से व्याप्त हैं। प्रत्येक जलराशि पर पृथक् वायु है; प्रत्येक वायु पर पृथक् पृथक् कूर्म हैं; और प्रत्येक कूर्म की पीठ पर पृथक्-पृथक् सहस्रशीर्ष शेष स्थित हैं। हे मुने ! शेष के सहस्र मस्तकों के एक देश में सरसों के दाने के समान एक डिम्ब स्थित है। उसी डिम्ब के भीतर अनित्य और कृत्रिम ब्रह्माण्ड स्थित है। हे मुने ! उसी डिम्ब के भीतर से ब्रह्माण्ड की अभीप्सित सृष्टि हुई है ऐसा विद्वान् वेदों की सहायता से जानते हैं; किन्तु मैंने उस सृष्टि को साक्षात् देखा है ॥ ३९-४३ ॥

एवं च सप्तपातालं यथैवाट्टालिकागृहम् ।
प्रययुः परिनिर्माणं क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥ ४४ ॥
अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम् ।
रसातलं महातलं पातालं परिकीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥
वितलं सुन्दरं शुद्धं निर्माणं स्वर्गवन्मुने ।
सद्रत्नरचितं सर्वमीश्वरेच्छाविनिर्मितम् ॥ ४६ ॥
पातालाधस्तलं कृष्णं गभीरं च भयानकम् ।
डिम्भाधारं तज्जलं च डिम्भाधः शेष एव च ॥ ४७ ॥
अतलोपरि तोयं च तोयोपरि वसुन्धरा ।
काञ्चनी भूमिसंयुक्ता सप्तद्वीपमनोहरा ॥ ४८ ॥
सप्तसागरसंयुक्ता वनशैलसरिद्युता ।
वर्त्तुला चन्द्रबिम्बाभा जलमध्येऽब्जपत्रवत् ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार सात पाताल अट्टालिका गृहों के समान क्रम से अलग अलग निर्मित हैं। ये अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल कहे गये हैं। हे मुने ! वितल का निर्माण सुन्दर, शुद्ध तथा स्वर्ग के समान किया गया है। उत्तम रत्नों से जटित उसे

ईश्वर की इच्छानुसार बनाया गया है। पाताल अधस्तल है। वह काला, गभीर तथा भयानक है। डिम्ब का आधार जल है। डिम्ब के नीचे शेष हैं। अतल के ऊपर जल है। जल के ऊपर वसुन्धरा है। यह स्वर्णमयी भूमि से संयुक्त, सात द्वीपों से मनोहर, सात सागरों से युक्त, वन, पर्वत तथा नदियों से युक्त, गोल चन्द्रमा के बिम्ब के समान, जल के मध्य कमलवत् स्थित है॥ ४४-४९ ॥

जम्बुद्वीपश्च तन्मध्ये लवणोदेन वेष्टितः।
लवणोदसमुद्रश्च लक्षयोजनप्रस्थकः॥ ५० ॥
दैर्घ्यं तस्माद्दशगुणो ग्रामस्य परिखा यथा।
उपद्वीपैर्बहुतरैः शोभायुक्तैः समन्वितः॥ ५१ ॥
जम्बुद्वीपे जम्बुवृक्षो विस्तीर्णोऽतिविचित्रकः।
श्यामवर्णं पक्वफलं गजेन्द्रनिभमेव च॥ ५२ ॥
सुमेरुशिखरो यत्र कैलासः शङ्करालयः।
रत्नाकरो हिमगिरिर्द्वीपमध्ये मनोहरः॥ ५३ ॥
मेरोश्चाष्टसु शृङ्गेषु विचित्राविष्कृतेषु च।
यत्राष्टलोकपालानामाश्रमाणि च नारद॥ ५४ ॥
इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्।
कुवेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्॥ ५५ ॥
एतेषामालयं शुद्धं रमणीयं मनोहरम्।
पूर्वस्मादेव प्रत्येकं क्रमेण च पृथक् पृथक्॥ ५६ ॥
ऊर्ध्वं शृङ्गोऽतिविस्तीर्णो ब्रह्मलोकस्तदग्रतः।
ब्रह्मलोकोर्ध्वडिम्भश्च विश्वं डिम्भान्तरं तथा॥ ५७ ॥

उसके मध्य में जम्बू द्वीप लवण सागर से वेष्टित है। लवणोदक समुद्र एक लाख योजन विस्तारवाला है। उसकी लंबाई उससे दस गुनी अधिक है, जैसे ग्राम की खाईं होती है। यह बहुत से शोभायुक्त उप द्वीपों से समन्वित है। जम्बू द्वीप में एक बहुत बड़ा तथा विचित्र प्रकार का जम्बूवृक्ष है। उसके पके फल काले रंग के हाथी के समान होते हैं।

वहीं सुमेरु शिखर है जहाँ शङ्कर का आलय (निवास स्थान) है। द्वीप के मध्य में मनोहर रत्नाकर हिमालय है। हे नारद ! मेरु के आठों विचित्र तथा अविष्कृत शिखरों पर, आठों लोकपालों के आश्रम हैं। इन्द्र, वह्नि, पितृपति, नैर्ऋत, वरुण, मरुत, कुबेर और ईश क्रम से पूर्वादि दिशाओं के स्वामी हैं। इन दिक्पालों के निवास स्थान भी पूर्वादि क्रम से पृथक्-पृथक् अत्यन्त शुद्ध, रमणीय तथा मनोहर बने हैं। सुमेरु का सर्वोच्च शृङ्ग बहुत विस्तृत है और उसके आगे ब्रह्मलोक स्थित है। ब्रह्मलोक के ऊपर डिम्ब है और डिम्ब के भीतर सम्पूर्ण विश्व स्थित है ॥ ५०-५७ ॥

ऊर्ध्वशृङ्गे षष्ठलोको ब्रह्मलोकस्तदूर्ध्वतः ।
भूर्लोकोऽपि भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च तथैव च ॥ ५८ ॥
जनलोको महर्लोकः सत्यलोकश्च मध्यतः ।
चतुर्युगे सत्यलोके पूर्णो धर्मश्च संततम् ॥ ५९ ॥
ब्रह्मलोकस्य वामे च ध्रुवलोकस्तथैव च ।
विश्वं च ब्रह्मलोकान्तं स्रष्टा सृष्टश्च कृत्रिमम् ॥ ६० ॥

सुमेर के ऊर्ध्व शृङ्ग पर छः लोक स्थित हैं। सबसे ऊपर ब्रह्मलोक है; बीच में भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, महर्लोक और सत्यलोक स्थित हैं। सत्यलोक में चारो युगों में सदा पुण्यधर्म का वास होता है। ब्रह्मलोक के बायें ध्रुवलोक स्थित है। ब्रह्मा ने ब्रह्मलोक पर्यन्त कृत्रिम विश्व की सृष्टि की है ॥ ५८-६० ॥

जम्बूद्वीपश्च कथितो यथा दृष्टो मया मुने ।
सरिच्छैलैर्बहुविधैः काननैः कन्दरैर्युतः ॥ ६१ ॥
यत्र भारतवर्षं च सर्वेषामीप्सितं वरम् ।
कर्मक्षेत्रं सतां सद्भिः प्रशस्यं पुण्यदं परम् ॥ ६२ ॥
आविर्भावोऽत्र कृष्णस्य यत्र वृन्दावनं वनम् ।
अन्यस्थाने सुखं जन्म निष्फलं च गतागतम् ॥ ६३ ॥
भारते च क्षणं जन्म सार्थकं शुभकर्मजम् ।
अनेकजन्मपुण्येन साधूनां जन्म भारते ॥ ६४ ॥

कृष्णानुग्रहतो विद्वान् लब्ध्वा च जन्मभारते ।
न भजेत् कृष्णपादाब्जं तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ६५ ॥

असार्थकं तस्य जन्म वृथा तद्गर्भयातना ।
निष्फलं तच्छरीरं च नश्वरं व्यर्थजीवनम् ॥ ६६ ॥

जीवन्मृतो हि पापी स चाण्डालादधमोऽशुचिः ।
भुङ्क्ते नित्यमभक्ष्यं चाप्यनिवेद्यं हरेरहो ॥ ६७ ॥
विण्मूत्रक्लृप्तभक्ष्यं च नित्यं भुंक्ते च शूकरः ।
नहि क्लृप्तमभक्ष्यं च भुंक्ते स शूकराधमः ॥ ६८ ॥

हे महामुने ! मैंने जैसा नाना प्रकार की नदियों तथा अनेक प्रकार के पर्वतों, वनों और कन्दराओं से सुशोभित जम्बूद्वीप को देखा था वैसा बतला दिया। यहाँ पर सबका अभीप्सित तथा श्रेष्ठ भारतवर्ष है जो कि कर्मक्षेत्र, परमपुण्यदायक तथा श्रेष्ठ राजाओं द्वारा प्रशंसित है। यहीं पर वृन्दावन के वनों में कृष्ण भगवान का अविर्भाव हुआ। इससे भिन्न स्थान पर जन्म निष्फल और गतागत है। भारतवर्ष में एक क्षण के लिये भी जन्म सार्थक है तथा वह शुभ कर्मों के प्रभाव से ही होता है ऐसा जानना चाहिए। अनेक जन्मों के पुण्य से ही सज्जनों का जन्म भारतवर्ष में होता है। भगवान् कृष्ण की कृपा से भारतवर्ष में जन्म लेकर विद्वान् पुरुष यदि कृष्ण भगवान् के चरण कमल का भजन न करे तो यह उसकी अत्यंत विडम्बना ही है। उसका जन्म निरर्थक है; उसकी गर्भयातना भी व्यर्थ है; उसका नश्वर शरीर निष्फल है और उसका जीवन व्यर्थ है। वह जीता हुआ भी मरे हुए के समान पापी, चाण्डाल से भी अधम और अपवित्र है। अहो ! श्रीहरि के लिये जो अनिवेद्य है उसे खानेवाला अभक्ष्य ही खाता है। शूकर तो विष्ठा-मूत्र आदि अपना निश्चित भोज्य ही खाता है; किन्तु जो अपने निश्चित आहार के विपरीत अभक्ष्य भक्षण करता है वह तो शूकर से भी अधम है। ॥ ६१-६८ ॥

अभक्ष्यं ब्राह्मणानां तदनिवेद्यं हरेरहो ।

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥ ६९ ॥
नित्यं पादोदकं भुंक्ते नैवेद्यं च हरेर्द्विज ।
तन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा जीवन्मुक्तो हि भारते ॥ ७० ॥
तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा ।
सर्वाण्येव हि तीर्थानि पवित्राणि च नारद ॥ ७१ ॥
स एव शुद्धः सर्वेषु सद्यो मुक्तो महीतले ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ७२ ॥
एवं भृत्यस्य रक्षार्थं कृष्णो दत्वा सुदर्शनम् ।
तथापि सुस्थो न प्रीतस्तं त्यक्तुमक्षमः क्षणम् ॥ ७३ ॥
एवं भूतो दयासिन्धुर्भक्तानुग्रहकातरः ।
अतः सन्तो हि तं त्यक्त्वा न सेवन्ते सुरान्तरम् ॥ ७४ ॥

जो हरि के लिये अनिवेद्य है वह ब्राह्मणों के लिये अभक्ष्य है। ऐसा अन्न विष्ठा के समान और ऐसा जल मूत्र के समान है जो विष्णु को निवेदित नहीं किया गया है। हे द्विज ! जो नित्य हरि के चरणोदक तथा नैवेद्य का सेवन करता है, उससे भारतवर्ष में मन्त्र लेकर मनुष्य जोवन-मुक्त हो जाता है। उसकी चरणरज से वसुन्धरा तत्काल पवित्र हो जाती है। हे नारद ! उसके चरणरज से सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। पृथिवी पर वह सर्वशुद्ध है तथा वह तत्काल मुक्त हो जाता है। वह निश्चित रूप से पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। इस प्रकार के सेवक की रक्षा के लिये श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र देकर भी स्वयं स्वस्थ और प्रसन्न नहीं रहते। क्षण भर भी वह अपने सेवक को छोड़ देने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार के वे श्रीकृष्ण दयासिन्धु तथा भक्तों पर कृपा करने वाले हैं। इसीलिये सज्जन पुरुष उन्हें छोड़कर दूसरे देव का सेवन नहीं करते ॥ ६९-७४ ॥

जम्बुद्वीपश्च कथितः स्वर्गान्मेरुक्रमेण च ।
अन्येषामपि द्वीपानां श्रूयतामनुवर्त्तनम् ॥ ७५ ॥
जम्बुद्वीपात्परः प्लक्षस्ततोऽपि द्विगुणक्रमात् ।

वृतश्चेक्षुरसोदेन पूर्वस्माद्द्विगुणेन च ॥ ७६ ॥
पूर्वस्माद्द्विगुणैर्युक्तः सरिच्छैलवनादिकैः ।
नानाविभवभोगाद्युक्तः शुद्धोऽतिसुन्दरः ॥ ७७ ॥
तत्र क्रीडन्ति तत्रस्था जरारोगादिवर्जिताः ।
न तत्र कर्मणो जन्म भुंक्ते कर्म पुरातनम् ॥ ७८ ॥
भुक्त्वा शुभाशुभं कर्म स्वर्गं वा नरकं पुनः ।
व्रजन्ति ते क्रमेणैव मूढाः प्राक्तनतो मुने ॥ ७९ ॥

स्वर्गसे लेकर मेरु आदि के क्रम से मैंने जम्बुद्वीप का वर्णन कर दिया। अब अन्य द्वीपों की स्थित्ति भी सुनो। जम्बुद्वीप से परे प्लक्ष द्वीप है जो क्रम से जम्बुद्वीप का दोगुना है। वह इक्षुरससागर से घिरा है। वह समुद्र विस्तार में पूर्वसमुद्र से दूना है। पर्वतों, नदियों तथा वन आदि की दृष्टि से भी वह पहले से दूना है। वह नाना प्रकार के विभवों तथा भोगादि से युक्त, शुद्ध तथा सुन्दर है। वहां के निवासी जरा तथा रोगादि से रहित होकर क्रीडा करते हैं। वहां कोई नया जन्म नहीं होता और जीव पुरातन कर्म का ही भोग करता है। हे मुने! मूढजन पुराने शुभ-अशुभ कर्मस्वरूप स्वर्ग या नरक का क्रमशः भोग करके चले जाते हैं॥ ७५-७९॥

प्लक्षद्वीपात्परः शाकद्वीपो हि सुन्दरो मुने ।
पूर्वस्माद्द्विगुणो युक्तः सुरोदद्विगुणेन च ॥ ८० ॥
शाकद्वीपात् कुशद्वीपो द्विगुणः सुमनोहरः ।
पूर्वस्माद्द्विगुणेनैव घृतोदेन समावृतः ॥ ८१ ॥
कुशद्वीपाच्च द्विगुणोवकद्वीपो महामुने ।
वृतो दधिसमुद्रेण क्रमात्तद्द्विगुणेन च ॥ ८२ ॥
वकद्वीपाच्च द्विगुणः शाल्मलिद्वीप एव च ।
पूर्वस्माद्द्विगुणेनैव क्षीरोदेन समावृतः ॥ ८३ ॥
श्वेतद्वीपश्च क्षीरोदे चोपद्वीपो मनोहरः ।
तत्रैव भगवान् विष्णुः सेवितः सिन्धुकन्यया ॥ ८४ ॥

नारायणांशो वैकुण्ठः शुद्धः सत्त्वगुणाश्रयः ।
श्यामश्चतुर्भुजः शान्तो वनमालाविभूषितः ॥ ८५ ॥
चतुर्भुजैः श्यामवर्णैः पार्षदैः वरिवारितः ।
ब्रह्मादिभिस्तूयमानो मुनिभिः सनकादिभिः ॥ ८६ ॥
सुखदो मोक्षदः श्रीमान् प्रदाता सर्वसम्पदाम् ।
द्वीपश्च वर्तुलाकारो विशुद्धश्चन्द्रविम्बवत् ॥ ८७ ॥
योजनायुतविस्तीर्णो दैर्घ्ये च तत्समः सदा ।
अमूल्यरत्ननिर्माणो बभूव स्वेच्छया हरेः ॥ ८८ ॥
आत्मानं मन्यते तुच्छं विश्वकर्मा निरीक्ष्य यम् ।
समावृतं पार्षदानां शिविरैर्लक्षकोटिभिः ॥ ८९ ॥
उद्यानैः कल्पवृक्षाणां संसक्तं शतकोटिभिः ।
शतकोटिभिरष्टाभिः कामधेनुभिरावृतम् ॥ ९० ॥
पुष्पोद्यानैरावृतैश्च सरोभिः शतकोटिभिः ।
गन्धर्वैर्नर्तकैः सिद्धैर्योगेन्द्रैरप्सरोगणैः ॥ ९१ ॥
तस्मात् द्वीपाच्च द्विगुणः क्रौञ्चद्वीपो मनोहरः ।
पूर्वस्माद्द्विगुणेनैव जलोदेन समावृतः ॥ ९२ ॥
सप्त द्वीपाश्च कथिताः सरित्सागरकाननाः ।
शैलैर्बहुविधैर्युक्ताः सुन्दरैः कन्दरोदरैः ॥ ९३ ॥

हे मुने ! प्लक्ष द्वीप से आगे सुन्दर शाकद्वीप है। यह पहले से विस्तार में दूना और सुरासागर से वेष्टित है। यह सागर भी पूर्वसागर से दूना है। शाकद्वीप से कुशद्वीप विस्तार में दूना तथा अत्यन्त सुन्दर और पूर्वसागर से दूने बड़े घृतसागर से वेष्टित है। हे मुने ! कुशद्वीप से दूना वकद्वीप है। वह पूर्व समुद्र से दूने विस्तृत दधिसागर से वेष्टित है। वकद्वीप से दूना शाल्मलि द्वीप है। यह पूर्व सागर से दूने क्षीरसागर से वेष्टित है। इसी क्षीरसागर में मनोहर उपद्वीप श्वेतद्वीप है। उसी स्थान पर भगवान् विष्णु सिन्धुकन्या लक्ष्मी जी से सेवित हो

रहे हैं। वह नारायणांश, वैकुण्ठ, शुद्ध, सत्वगुणाश्रय, श्यामवर्ण, चतुर्भुज, शान्त, वनमाला विभूषित, चतुर्भुज, श्यामवर्ण वाले पार्षदों से परिवारित, ब्रह्मादिक तथा सनकादि मुनियों से स्तूयमान, सुखद, मोक्षप्रद तथा सर्वसम्पदाओं के दाता हैं। यह द्वीप विशुद्ध चन्द्रमा के बिम्ब के समान वर्तुलाकार, दस सहस्र योजन लम्बा तथा उतना ही चौड़ा सदा रहता है। हरि की स्वेच्छा से अमूल्य रत्नों द्वारा इसका निर्माण हुआ है जिसे देखकर विश्वकर्मा अपने आपको तुच्छ मानते हैं। वह द्वीप एक लक्ष कोटि पार्षदों के शिविरों से घिरा है। शतकोटि कल्पवृक्षों के उद्यानों तथा आठ सौ कोटि कामधेनुओं, गन्धर्वों, नर्तकों, सिद्धों, योगीन्द्रों, अप्सरोगणों से भरा पूरा है। उस द्वीप से दूना विस्तृत मनोहर क्रौञ्चद्वीप पूर्वसागर से दूने जलसागर से घिरा है। सरिताओं, सागरों, वनों और नाना प्रकार के सुन्दर कन्दराओं वाले पर्वतों से युक्त ये सात द्वीप मैंने बतला दिये हैं ॥ ८०-९३ ॥

तत्परा काञ्चनी भूमिः सर्वसत्त्वविवर्जिता ।
तेजःस्वरूपा परमा प्रज्वलन्ती दिवानिशम् ॥ ९४ ॥

एवं डिम्भोदरस्थं च विश्वं विश्वसृजा कृतम् ।
डिम्भस्तल्लोमकूपे च महाविष्णुश्च नारद ॥ ९५ ॥

यावन्ति रोमकूपाण्याविष्कृतानि हरेरहो ।
तावन्त्येव हि विश्वानि चासंख्यानि च नारद ॥ ९६ ॥

जले शेते महाविष्णुर्जलं तत्प्रतिलोमसु ।
जलोपरि महावायुर्वायोरुपरि कच्छपः ॥ ९७ ॥

कच्छपोपरि शेषश्च गजेन्द्रे मशको यथा ।
सहस्रमूर्ध्व शेषस्य मस्तकस्यैकदेशतः ॥ ९८ ॥

विश्वाधारश्च डिम्भश्च शूर्पे च सर्षपो यथा ।
स एव च महाविष्णुः कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ९९ ॥

षोडशांशो भगवतः परस्य प्रकृतेः परेः ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव नारद ।

भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात् परम् ॥ १०० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे द्वितीयरात्रे
भक्तिज्ञाननिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

उसके आगे स्वर्णमयी भूमि है जो समस्त प्राणियों से रहित है। वह परम तेजःस्वरूपिणी तथा रात दिन चमकती रहती है। इस प्रकार ब्रह्मा ने डिम्बोदरस्थ विश्व को बनाया। हे नारद! उनके रोम कूप में डिम्ब तथा महाविष्णु हैं। अहो! हरि के जितने रोमकूप अविष्कृत हैं, उतने ही असंख्य विश्व भी हैं। महाविष्णु जल में शयन करते हैं। जल उनके प्रत्येक लोम में है। जल के ऊपर महावायु है। महावायु के ऊपर कच्छप है। कच्छप के ऊपर शेष उसी प्रकार हैं, जैसे हाथी पर मच्छर। सहस्र सिर वाले शेष के मस्तक के एक भाग पर विश्वाधार डिम्ब उसी प्रकार स्थित है जैसे सूप में सरसों का एक दाना। वही प्रकृति से परे परमात्मा कृष्ण भगवान् के षोडशांश महाविष्णु हैं। हे नारद! ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी मिथ्या ही है। इसलिए तुम त्रिगुणातीत, सत्य तथा परब्रह्म राधेश का भजन करो। ॥ ९४-१०० ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
द्वितीय रात्र में भक्तिज्ञाननिरूपण नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय रात्रे तृतीयोऽध्यायः

अथ हरिभक्ति निरूपणम्

श्रीनारद उवाच ।

श्रुतं नाथ किममृतमपूर्वं परमाद्भुतं ।
भक्तिज्ञानं परं शुद्धममलं कोमलं विभो ॥ १ ॥
अतः परं यमपरं तीर्थकीर्त्तेर्गुणान्तरम् ।
ज्ञानामृतं रसं शुद्धं कथ्यतां श्रवणामृतम ॥ २ ॥

श्री नारद जी बोले : हे नाथ ! कितना परम अद्भुत, अपूर्व, शुद्ध, पवित्र तथा कोमल अमृतमय भक्तिज्ञान हमने सुना । हे विभो ! इसके बाद तीर्थकीर्ति श्रीकृष्ण के जो अन्य गुण शुद्ध रस श्रवणामृत स्वरूप ज्ञानामृत हैं, उन्हें आप कहें ॥ १-२ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

गुणान्तरं तीर्थकीर्त्तेः को वा वक्तुं क्षमो मुने ।
नाहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः सूर्यस्तथैव च ॥ ३ ॥
नारायणर्षिर्भगवान् नरर्षिः कपिलस्तथा ।
सनत्कुमारो वेदाश्चाप्यन्यः को वा न भारती ॥ ४ ॥
परमात्मा यथा दृष्टः सीमा च नभसस्तथा ।
यथा दृष्टं मनश्चापि बुद्धिर्ज्ञानं विवेचनम् ॥ ५ ॥
तथा गुणश्च कृष्णस्य सर्वा ज्ञातश्च नारद ।
तथापि वक्ति तज्ज्ञानं पण्डितश्च यथागमम् ॥ ६ ॥
कलाः कलांशास्तस्यापि ये ये सन्तश्च योगिनः ।
ते महान्तश्च पूज्याश्चाप्यंशं वक्तुं च कः क्षमः ॥ ७ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे मुने ! तीर्थकीर्ति भगवान् के अन्य गुणों

को कहने में कौन समर्थ है ? मैं, ब्रह्मा, शेष, धर्म, सूर्य, नारायण ऋषि, भगवान नर ऋषि, कपिल, सनत्कुमार, चारों वेद, भारती आदि—कोई भी उन गुणों का वर्णन नहीं कर सकते। परमात्मा उसी प्रकार है जैसे आकाश की सीमा दिखाई देती है—अर्थात् जितना दिखाई देता है उससे बहुत अधिक विस्तृत प्रायः निःसीम; जैसे बुद्धि, मन, ज्ञान तथा विवेचन दिखाई देते हैं, उसी प्रकार कृष्ण भगवान् के गुण हैं जिनका सब कुछ ज्ञात नहीं है। फिर भी, पण्डितजन आगम शास्त्रानुसार उसे कहने का प्रयास करते हैं। भगवान् के कला तथा कलांशरूप जो-जो सन्त तथा योगी हैं वे सब महान तथा पूज्य हैं; किन्तु वे भी उनके गुणों को कहने में समर्थ नहीं हैं ॥ ३-७ ॥

नैव कृष्णात्परो देवी नैव कृष्णात्परः पुमान् ।
नैव कृष्णात्परो ज्ञानी न योगी च ततः परः ॥ ८ ॥

नैव कृष्णात्परः सिद्धस्तत्परोऽपि नहीश्वरः ।
न तत्परश्च जनको विश्वेषां परिपालकः ॥ ९ ॥

न तत्परश्च बलवान बुद्धिमान् कीर्त्तिमांस्तथा ।
न तत्परः सत्यवादी दयावान् भक्तवत्सलः ॥ १० ॥

न तत्परश्च गुणवान् शुशीलश्च जितेन्द्रियः ।
शुद्धाश्रयश्च शुद्धश्च न तस्माद्भक्तवत्सलः ॥ ११ ॥

नहि तस्मात्परो धर्मी प्रदाता सर्वसम्पदाम् ।
नहि तस्मात्परः शान्तो लक्ष्मीकान्तात्परश्च कः ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण से भिन्न न कोई देवी है, न कोई श्रेष्ठ पुरुष। न कृष्ण से बड़ा कोई ज्ञानी है, न उनसे बड़ा कोई योगी है। न कृष्ण से बड़ा कोई सिद्ध है, न उनसे बड़ा कोई ईश्वर है। उनसे बड़ा न कोई सर्वजनक है और न कोई परिपालक। उनसे बड़ा न कोई बलवान है और न बुद्धिमान। उनसे बड़ा न कोई कीर्तिमान है, न सत्यवादी है, न दयावान है और न भक्तवत्सल है। उनसे बड़ा न कोई गुणवान है, न सुशील है, और न जितेन्द्रिय है। उनसे बढ़कर न कोई शुद्धाश्रय है, न शुद्ध है, और न कोई भक्तवत्सल है। उनसे बढ़कर न कोई धर्मी है,

न सर्वसम्पत्तिप्रदाता है और न कोई शान्त स्थान है। लक्ष्मीकान्त से बढ़कर कौन हो सकता है। ॥ ८-१२ ॥

अनन्तकोटिब्रह्माण्डो मोहितो मायया यया ।
सा चातिभीता पुरतो यमेव स्तोतुमक्षमा ॥ १३ ॥
सरस्वती जडीभूता यामेव स्तोतुमक्षमा ।
महालक्ष्मीश्चातिभीता पादपद्मं निषेवते ॥ १४ ॥
प्रत्येकं प्रतिविश्वेषु महाविष्णुश्च लोमसु ।
कोटिशः कोटिशः सन्ति देवा ब्रह्मादयो मुने ॥ १५ ॥
यथा रेणुरसंख्यश्च तथा विश्वानि नारद।
एतेषामीश्वरश्चैको राधेशः प्रकृतेः परः ॥ १६ ॥

जिनकी माया से अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड मोहित कर लिये गये हैं वह देवी भी अत्यन्त भयभीत होकर उनके सामने उनकी स्तुति करने में असमर्थ हैं। महालक्ष्मी भी अत्यन्त भयभीत होकर उनके चरण कमल की सेवा करती हैं। उनके प्रत्येक लोम में अनेक विश्व, तथा प्रति विश्व में महाविष्णु और, हे मुने ! कोटि-कोटि ब्रह्मादि देव हैं। हे नारद ! जिस प्रकार धूलिकण असंख्य हैं उसी प्रकार विश्व भी असंख्य है। इन सबके एक ही ईश्वर, प्रकृति से परे राधेश ही हैं ॥ १३-१६ ॥

इत्येवं कथितं किञ्चित् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
अनिरूप्यः कृष्णगुणो यथा विश्वं यथा रजः ॥ १७ ॥

यह मैंने थोड़ा ही वर्णन किया है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो। धूलिकणों तथा विश्वों के ही समान श्रीकृष्ण के गुण भी अनिरूप्य हैं ॥ १७ ॥

नारद उवाच ।

राधोद्भवं वद विभो श्रोतुं कौतूहलं मम ।
का वा सा कुत उत्पन्ना तत्प्रभावश्च कः शिव ॥ १८ ॥

नारद जी बोले : हे विभो ! आप राधा की उत्पत्ति का वर्णन करें। उसे सुनने की मुझे बहुत उत्कण्ठा है। वह कौन हैं ? कहाँ से उत्पन्न हुईं ? और हे शिव ! उनका प्रभाव क्या है ॥ १८ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

सर्वादिसर्ग पर्यन्तं शृणु नारद मन्मुखात् ।
एकोऽयं न द्वितीयश्च देहो मे तेजसोऽन्तरे ॥ १९ ॥
गोलोको नित्यवैकुण्ठो यथाकाशो यथादिशः ।
यथा स परमात्मा च सर्वेषां जगतामपि ॥ २० ॥
द्विभुजः सोऽपि गोलोके बभ्राम रासमण्डले ।
गोपवेषश्च तरुणो जलदश्यामसुन्दरः ॥ २१ ॥
कोटीन्दुसदृशः श्रीमांस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।
अतीवसुखदृश्यश्च कोटिकन्दर्प निन्दितः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा शून्यं सर्वविश्वं ऊर्ध्वं चाधोपि तुल्यकम् ।
सृष्ट्युन्मुखश्च श्रीकृष्णः सृष्टिं कर्त्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे नारद ! समस्त सृष्टि के आदि से सम्पूर्ण वर्णन मेरे मुख से तुम सुनो । मेरे तेज के भीतर मेरा एक यही देह था, दूसरा कुछ नहीं । जैसे गोलोक, वैकुण्ठ, आकाश तथा दिशायें नित्य हैं वैसे ही सारे संसार का परमात्मा भी नित्य है । वही परमात्मा द्विभुज, तरुण, नवमेघ के समान सुन्दर श्यामवर्ण और गोपवेश में रासमण्डल में भ्रमण करने लगे । करोड़ों चन्द्रमा के समान श्रीमान्, तेज से प्रज्वलित, अतीव सुदर्शन, करोड़ों कन्दर्पों को लज्जित करनेवाले वे श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्व को ऊपर से नीचे सर्वत्र एक समान शून्य देखकर सृष्टि करने के लिये उद्यत हुए ॥ १९-२३ ॥

एक ईशः प्रथमतो द्विधारूपो बभूव सः ।
एका स्त्री विष्णुमाया या पुमानेकः स्वयं विभुः ॥ २४ ॥
स च स्वेच्छामयः श्यामः सगुणो निर्गुणः स्वयम् ।
तां दृष्ट्वा सुन्दरीं लोलां रतिं कर्तुं समुद्यतः ॥ २५ ॥

तब प्रथमतः वह एक ईश्वर दो रूप में विभक्त हो गये । उनमें से एक तो स्त्री हुई जो विष्णुमाया कहलाती है, और दूसरा पुरुष हुआ जो स्वयं विभु हैं और स्वयं स्वेच्छामय, श्याम, सगुण होकर भी निर्गुण

कहलाते हैं। उस लीलामयी सुन्दरी स्त्री को देखकर वह भगवान रति करने के लिये उद्यत हुए॥ २४-२५॥

सा दधाव नचोवाच भीता मनसि कम्पिता।
तां धृत्वोरसि संस्थाप्य स उवाचातिलज्जिताम्॥ २६॥
स्त्रीजात्यधिष्ठातृदेवीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम्।
तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं तद्वामाङ्गसमुद्भवाम्॥ २७॥

तब वह नारी कुछ बोली नहीं और मन में भयभीत होकर कांपती हुई भागी। परन्तु विष्णु नें उस अत्यन्त लज्जिता नारी को पकड़ लिया। वह नारी स्त्री जाति की अधिष्ठातृ देवी, मूल प्रकृति, ईश्वरी, विष्णु का प्राण और विष्णु के वामाङ्ग से उत्पन्न हुई थी। उसे अपने वक्षःस्थल पर स्थापित कर वे उससे बोले॥ २६-२७॥

श्रीभगवानुवाच।

मम प्राणाधिदेवी त्वं स्थिरा भव ममोरसि।
अत्र स्थानं मया दत्तं तुभ्यं प्राणेश्वरि प्रिये॥ २८॥
प्राणेभ्योऽपि प्रियतमे परमाद्या सनातनि।
त्यज लज्जां क्षमाशीले नवसंगमलज्जिते॥ २९॥

श्री भगवान् बोले: तू मेरे प्राणों की अधिष्ठातृ देवी है। तू मेरे वक्षःस्थल पर स्थिर होकर रह। हे प्रिये, हे प्राणेश्वरि! मैंने ही तुझे यह स्थान दिया है। हे नवसंगमलज्जिते, सनातनि, क्षमाशीले, प्रियतमे! तू परमाद्या है; लज्जा को तू छोड़ दे॥ २८-२९॥

इत्येवमुक्त्वा तां देवीं प्रियां कृत्वा स्ववक्षसि।
चुचुम्ब गण्डं कठिनमाशिश्लेष स्तनं मुदा॥ ३०॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पयः फेननिभां शुभाम्।
सुगन्धिवायुसंयुक्तां पुष्पचन्दनचर्चिताम्॥ ३१॥
स रेमे रामया सार्द्धं यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
विदग्धया विदग्धेन बभूव संगमः शुभः॥ ३२॥

इस प्रकार उस देवी से कहकर और उसे अपने वक्षःस्थल पर

स्थापित करके उन्होंने उसके कपोलों का चुम्बन लिया और प्रसन्नतापूर्वक उसके कठिन स्तनों का आलिंगन किया। तदुपरान्त जल के फेन के समान श्वेत एक शय्या तैयार की जो सुगन्धित वायु से संयुक्त और पुष्प तथा चन्दन से चर्चित थी। उस पर उन्होंने उस नारी के साथ ब्रह्मा की आयु पर्यन्त रमण किया। इस प्रकार एक विदग्ध का एक विदग्धा के साथ शुभ सङ्गम हुआ ॥ ३०-३२ ॥

एतदन्ते तदुदरे वीर्याधानं चकार सः।
गर्भं दधार सा देवी यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ३३ ॥
भूरिश्रमेण कृष्णस्य गात्रे घर्मो बभूव ह।
अधः पपात तद्बिन्दुकणमेव च नारद ॥ ३४ ॥
दधार तज्जलं शून्ये नित्यवायुश्च योगतः।
तदेव प्लावयामास विश्वे चोरसि सर्वतः ॥ ३५ ॥

इसके बाद उसके उदर में उन्होंने वीर्याधान किया और उस स्त्री ने उस गर्भ को ब्रह्मा की एक आयु पर्यन्त धारण किया। अत्यधिक श्रम के कारण कृष्ण के शरीर में गर्मी से पसीना निकल आया और हे नारद! कुछ स्वेदबिन्दु भूमि पर गिर पड़े। तब नित्य वायु के योग से उन जल बिन्दुओं को शून्य ने धारण किया। फिर वहाँ से नीचे गिरकर उस जल ने विश्व को सर्वत्र आप्लावित कर दिया ॥ ३३-३५ ॥

रासे सम्भूय तरुणीमादधार हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिश्च नारद ॥ ३६ ॥
कृष्णवामांशसम्भूता बभूव सुन्दरी पुरा।
यस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः ॥ ३७ ॥

हे नारद! रासमण्डल में हरि ने उस तरुणी को अपने सम्मुख धारण किया इसलिये पुराविद् उसे राधा कहते हैं। पूर्व समय में वह सुन्दरी श्रीकृष्ण के वामभाग से उत्पन्न हुई थी और उसी के अंशांश कला से देवपत्नियाँ उत्पन्न हुई ॥ ३६-३७ ॥

राशब्दोच्चारणाद्भक्तो भक्तिं मुक्तिं च राति सः।
धाशब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरेः पदम् ॥ ३८ ॥

सुषाव डिम्भं सा देवी रासे वृन्दावने वने ।
दृष्ट्वा डिम्भं क्रुधा राधा प्रेरयामास पादतः ॥ ३९ ॥
पपात डिम्भस्तोये च द्विखण्डश्च बभूव सः ।
डिम्भान्तरे च यो बालो महाविष्णुः स एव हि ॥ ४० ॥

'रा' शब्द के उच्चारण से भक्त मुक्ति और भक्ति को पाता है। 'धा' शब्द के उच्चारण से वह हरिपद की ओर धावमान होता है। वृन्दावन में रास के समय उस देवी ने एक डिम्ब को उत्पन्न किया था किन्तु उसे देखकर वह राधा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी और उसने उसे ठोकर मारा। इससे वह डिम्ब जल में गिरकर दो भाग में विभक्त हो गया। उस डिम्ब से जिस बालक की उत्पत्ति हुई वही महाविष्णु हुआ। ॥ ३८-४० ॥

तल्लोमविवरेष्वेव ब्रह्माण्डानि पृथक् पृथक् ।
प्रत्येकं माययासंख्यडिम्भाश्चाप्यभवन् पुरा ॥ ४१ ॥
विश्वान्येवं हि भूरीणि तेषामभ्यन्तरं मुने ।
बभूवुरेवं क्रमतः प्रत्येकं च पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥
इत्येवं कथितं विप्र राधिकाख्यानमेव च ।
गोपनीयं पुराणेषु स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ ४३ ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरं मोक्षकरं परम् ।
हरिदास्यप्रदं तस्य भक्तिदं शुभदं शुभम् ॥ ४४ ॥
सर्वं ते कथितं वत्स यत्ते मनसि वाञ्छितम् ।
यथा श्रुतं कृष्णमुखात् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥

उसी महाविष्णु के रोमविवरों में ही पृथक्-पृथक् अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। प्राचीनकाल में प्रत्येक ब्रह्माण्ड में असंख्य डिम्ब हुए। हे मुने ! उनके अन्दर बहुत से विश्व हुए। इस प्रकार प्रत्येक विश्व पृथक्-पृथक् हो गये। हे विप्र ! इस प्रकार मैंने राधिका का आख्यान बता दिया। इसे गुप्त रखना चाहिये। पुराणों में यह पग-पग पर मधुर से मधुर वर्णनों से भरा है। यह वर्णन, जन्म, मरण, जरा तथा व्याधि

का हरण करने वाला, परम मोक्षकारक, हरिदास्यप्रद, भक्तिदायक, शुभदायक और शुभ है। हे वत्स! तुम्हारे मन में जो वाञ्छित था उसे मैंने जैसा कि कृष्ण के मुख से सुना था, उसी प्रकार कह दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो॥ ४१-४५॥

नारद उवाच।

किमपूर्वं श्रुतं शम्भो योगीन्द्राणां गुरोर्गरो।
समासेन सर्वमुक्तं व्यासेन वक्तुमर्हसि॥ ४६॥
पुरा त्वयोक्तं देवीनां देवानां चरितं शिव।
जगत्प्रसूं च पृच्छन्तीं पार्वतीं पुष्कराश्रमे॥ ४७॥
राधाख्यानं तत्र नोक्तं कथं वा विदुषां गुरो।
सर्वबीजेश्वरः सर्ववेदकारणकारणः॥ ४८॥
मां भक्तमनुरक्तं च वद वेदविदां वर।
कृपां कुरु कृपासिन्धो दीनबन्धो परात्पर॥ ४९॥

नारद जी बोले: हे देवदेव, योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु! आपसे मैंने कितना अभूतपूर्व वृत्तान्त सुना; किन्तु आपने यह सब कुछ अत्यन्त संक्षेप में बताया है; अतः अब आप विस्तारपूर्वक बताइये। हे शिव! प्राचीनकाल में जगत्प्रसू पार्वती के पूछने पर पुष्कराश्रम में आपने देवियों और देवों के चरित्र को कहा था। हे विद्वानों के गुरु! आप सबके ईश्वर हैं; आप सब वेदों के कारण हैं, उस समय आपने राधाख्यान क्यों नहीं बताया? हे कृपासिन्धो, दीनबन्धो, परात्पर, वेदविदांवर! आप मुझ अनुरक्त भक्त को उसे बताने की कृपा करें॥ ४६-४९॥

श्रीमहादेव उवाच।

अपूर्वं राधिकाख्यानं गोपनीयं सुदुर्लभम्।
सद्यो मुक्तिप्रदं शुद्धं वेदसारं सुपुण्यदम्॥ ५०॥
यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥ ५१॥
यथा स एव सगुणः काले कर्मानुरोधतः।
तथैव कर्मणा काले प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥ ५२॥

तस्यैव परमेशस्य प्राणेषु रसनासु च ।
बुद्धौ मनसि योगेन प्रकृतेः स्थितिरेव च ॥ ५३ ॥
आविर्भावस्तिरोभावस्तस्याः कालेन नारद ।
न कृत्रिमा च सा नित्या सत्यरूपा यथा हरिः ॥ ५४ ॥

श्री महादेव जी बोले : यह राधिकाख्यान अपूर्व, अत्यन्त दुर्लभ, गोपनीय, तत्काल मुक्तिदायक, शुद्ध, वेदसार, तथा सुपुण्यप्रद है। जैसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं, उसी प्रकार राधा भी ब्रह्मस्वरूपिणी, निर्लिप्ता तथा प्रकृति से परे हैं। जैसे कर्मानुरोध से समय पर वह भगवान् सगुण हो जाते हैं, वैसे ही कर्मानुरोध से वह राधा भी त्रिगुणात्मिका प्रकृति हो जाती हैं। उसी परमेश्वर के प्राणों में, रसनाओं में, बुद्धि में, मन में, योग से प्रकृति स्थित रहती है। हे नारद ! समय से उसका अविर्भाव तथा तिरोभाव होता है। वह राधा कृत्रिम नहीं है; वह नित्य है जैसे स्वयं श्रीहरि हैं ॥ ५०-५४ ॥

प्राणाधिष्ठात्री या देवी राधारूपा च सा मुने ।
रसनाऽधिष्ठात्री देवी स्वयमेव सरस्वती ॥ ५५ ॥
बुद्ध्याधिष्ठात्री या देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।
अधुना या हिमगिरेः कन्या नाम्ना च पार्वती ॥ ५६ ॥
सर्वेषामपि देवानां तेजःसु समधिष्ठिता ।
संहन्त्री सर्वदैत्यानां देववैरिविमर्दिनी ॥ ५७ ॥
स्थानदात्री च तेषां च धात्री त्रिजगतामपि ।
क्षुत्पिपासा दया निद्रा तुष्टि पुष्टिः क्षमा तथा ॥ ५८ ॥
लज्जा भ्रान्तिश्च सर्वेषामधिदेवी प्रकीर्त्तिता ।
मनोऽधिष्ठात्री देवी सा सावित्री विप्रजातिषु ॥ ५९ ॥
राधावामांशसम्भूता महालक्ष्मीः प्रकीर्त्तिता ।
ऐश्वर्याधिष्ठात्रीदेवीश्वरस्येव हि नारद ॥ ६० ॥
तदंशा सिन्धुकन्या च क्षीरोदमथनोद्भवा ।
मर्त्यलक्ष्मीश्च सा देवी पत्नी क्षीरोदशायिनः ॥ ६१ ॥

तदंशा स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रादीनां गृहे गृहे ।
स्वयं देवी महालक्ष्मीः पत्नी वैकुण्ठशायिनः ॥ ६२ ॥

हे मुने ! प्राणाधिष्ठातृ जो देवी है, वह राधा रूप है। रसनाधिष्ठातृ जो देवी है, वह स्वयं सरस्वती है। बुद्धयधिष्ठातृ जो देवी है, वह दुर्गतिनाशिनी दुर्गा है। इस समय वही हिमालय की कन्या पार्वती है। वह सभी देवों के तेजों में अधिष्ठित, सभी दैत्यों की संहारकर्त्री, समस्त देव वैरियों का विनाश करनेवाली, देवों को शरण देनेवाली, सम्पूर्ण जगत् की धात्री; क्षुधा, पिपासा, दया, निद्रा, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा तथा भ्रान्ति—सभी की अधिष्ठातृ देवी कही गई है। वही विप्रों में मनोधिष्ठातृ देवी सावित्री कही गई है। राधा की वामांशसम्भूता महालक्ष्मी ऐश्वर्य और सम्पत्ति की अधिष्ठातृ कही गई हैं। हे नारद ! महालक्ष्मी के एक अंश से उत्पन्न ऐश्वर्य की अधिष्ठातृ देवी समुद्रमन्थन से उत्पन्न सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मी कही गई हैं और वही क्षीरसागरशायी की पत्नी हैं। उन्हीं की अंश शक्र आदि की स्वर्गलक्ष्मी तथा घर-घर की लक्ष्मी है। स्वयं महालक्ष्मी देवी वैकुण्ठशायी की पत्नी हैं ॥ ५५-६२ ॥

सावित्री ब्रह्मणः पत्नी ब्रह्मलोके निरामये ।
सरस्वती द्विधाभूता पुरैव साज्ञया हरेः ॥ ६३ ॥

सरस्वती भारती च योगेन सिद्धयोगिनी ।
भारती ब्रह्मणः पत्नी विष्णोः पत्नी सरस्वती ॥ ६४ ॥

निरामय ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की पत्नी सावित्री हैं। सरस्वती सिद्धयोगिनी हैं और प्राचीनकाल में हरि की आज्ञा से वह योगबल से दो रूप में विभक्त होकर सरस्वती तथा भारती हो गईं। ब्रह्मा की पत्नी भारती तथा विष्णु की पत्नी सरस्वती हुईं ॥ ६३-६४ ॥

राधाधिष्ठात्री देवी च स्वयं रासेश्वरी परा ।
वृन्दावने च सा देवी परिपूर्णतमा सती ॥ ६५ ॥

रासमण्डलमध्ये च रासक्रीडां चकार सा ।
कृष्णचर्विततताम्बूलं चखाद राधिका सती ॥ ६६ ॥

राधा चर्विततांबूलं चखाद मधुसूदनः ।
एकाङ्गो हि तनोर्भेदो दुग्धधारण्ययोर्यथा ॥ ६७ ॥
भेदका नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
तयोर्भेदं करिष्यन्ति ये च निन्दन्ति राधिकाम् ॥
कुम्भीपाकेन पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ६८ ॥

रासाधिष्ठात्री ही स्वयं परारासेश्वरी देवी हैं। वृन्दावन में उन परिपूर्णतमा सती ने राधिका के रूप में रासक्रीडा किया तथा कृष्ण-चर्बित ताम्बूल को उन सती ने खाया था। मधुसूदन ने भी राधा चर्बित ताम्बूल खाया। वास्तव में ये दोनों एक ही हैं। दोनों में केवल शरीर भेद है जैसे स्तन और दूध। दोनों में भेद करनेवाले यावच्चन्द्र-दिवाकर नरक में वास करते हैं। जो श्रीकृष्ण और राधा में भेद करेंगे और राधा की निन्दा करेंगे वे ब्रह्मा की आयु-पर्यन्त कुम्भीपाक नरक में पकते रहेंगे ॥ ६५-६८ ॥

नारद उवाच ।

राधामन्त्रेषु यो मन्त्रः प्रधानः पूजितः सताम् ।
तन्मे ब्रूहि जगन्नाथ यद्ध्यानं कवचं स्तवम् ॥ ६९ ॥
पूजाविधानं तन्मन्त्रं यद्यत्पूजाफलं शिव ।
समासेन कृपासिन्धो मां भक्तमपि कथ्यताम् ॥ ७० ॥

नारद जी बोले : हे जगन्नाथ ! राधा मन्त्रों में जो प्रधान मन्त्र सज्जनों द्वारा पूजित हैं उन्हें और जो ध्यान तथा कवच हैं उन सब आप मुझे बतायें। हे शिव, हे कृपासिन्धो ! उनके मन्त्रों को, उनकी पूजा के विधान को और जो उनकी पूजा का फल हो वह सब भी आप मुझ भक्त को संक्षिप्त रूप से बतायें ॥ ६९-७० ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

नारायणर्षिणा दत्तं सुभद्रब्राह्मणाय च ।
कवचं यन्मुनिश्रेष्ठ तदेव कवचं परम् ॥ ७१ ॥
षडक्षरी महाविद्या श्रीकृष्णेनैव सेविता ।

सारभूता च मन्त्रेषु दास्यभक्तिप्रदा हरेः ॥ ७२ ॥
ध्यानं स्तोत्रं सर्वपूज्यं सामवेदोक्तमेव च ।
कार्त्तिकीपूर्णिमाप्राप्तं नराणां जन्मखण्डनम् ॥ ७३ ॥
परमानन्दसन्दोहकवचं तत्सुदुर्लभम् ।
यद्धृतं कण्ठदेशे च कृष्णेन परमात्मना ॥ ७४ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे मुनिश्रेष्ठ ! सुभद्र ब्राह्मण को नारायण ऋषि ने जो कवच दिया था वही परम कवच है। षडक्षरी महाविद्या श्रीकृष्ण के द्वारा ही सेवित है। वह मन्त्रों में सारभूत और हरि की दास्यभक्ति देनेवाली है। ध्यान और सर्वपूज्य स्तोत्र सामवेदोक्त ही है। कार्तिकी पूर्णिमा को प्राप्त किया गया ध्यान और स्तोत्र मनुष्यों के जन्म का खण्डन करने वाला होता है। वह परमानन्दसन्दोह कवच अत्यन्त दुर्लभ है, जिसे परमात्मा श्रीकृष्ण ने अपने कण्ठदेश में धारण कर रक्खा है ॥ ७१-७४ ॥

नारद उवाच।

षडक्षरीं महाविद्यां वद वेदविदां वर ।
केन केनोपासिता सा किं वा तत्फलमीश्वर ॥ ७५ ॥

नारद जी बोले : हे वेदविदांवर ! आप षडक्षरी महाविद्या को मुझे बतायें। हे ईश्वर ! उसके उपासक कौन हैं और उसका फल क्या है ? ॥ ७५ ॥

श्रीमहादेव उवाच।

षडक्षरी महाविद्या वेदेषु च सुदुर्लभा ।
निषिद्धा हरिणा पूर्वं वक्तुमेव हि नारद ॥ ७६ ॥
पार्वत्या परिपृष्टेन मया नोक्ता पुरा मुने ।
अस्माकं प्राणतुल्या च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ७७ ॥
सर्वसिद्धिप्रदा विद्या भक्तिमुक्तिप्रदा हरेः ।
वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृदां च मनसस्तथा ॥ ७८ ॥
सर्वं जानाति भक्तश्च विद्या सिद्धिर्भवेद्यदि ।

यदा नारायणक्षेत्रे दशलक्षं जपेच्छुचिः ॥ ७९ ॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य विष्णुतुल्यो भवेन्नरः ।
इत्येवं कथितं वत्स मन्त्रतन्त्रपराक्रमम् ॥ ८० ॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च नारद ।
पुत्रो देयः प्रिया देया धर्मं देयं सुदुर्लभम् ॥ ८१ ॥
ज्ञानं मृत्युञ्जयं नाम यदि देयं महामुने ।
तथापि गोपनीया च न देया सा षडक्षरी ॥ ८२ ॥

श्री महादेव जी बोले : षडक्षरी महाविद्या वेदों में भी अत्यन्त दुर्लभ है । हे नारद ! पूर्वसमय में श्रीहरि ने उसे प्रकट करने का निषेध कर दिया था । हे मुने ! पहले पार्वती द्वारा पूछे जाने पर भी मैंने उसे नहीं बताया था । परमात्मा कृष्ण के साथ मेरे भी प्राणों के समान ही वह हरि की सर्वसिद्धिप्रदा विद्या भक्ति और मुक्ति देनेवाली है । यदि विद्या सिद्ध हो जाय तो वह्निस्तम्भ, जलस्तम्भ, मृदास्तम्भ तथा मन:स्तम्भ—इन सबको भक्त जान लेता है । जब नारायण क्षेत्र में पवित्र होकर साधक इस विद्या का दस लाख जप करता है तो उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है और वह विष्णु के समान हो जाता है । हे वत्स ! इस प्रकार मन्त्र-तन्त्र के पराक्रम को मैंने तुम्हें बता दिया । हे नारद ! यदि राज्य देना पड़े, अपना सिर देना पड़े, अपना प्राण देना पड़े, पुत्र देना पड़े, प्रियजन को देना पड़े, धर्म देना पड़े और हे महा-मुने ! यदि मृत्युञ्जय नामक ज्ञान भी देना पड़े तो उसे दे दे किन्तु इस गोपनीय षडक्षरी विद्या को कभी न दे ॥ ७६-८२ ॥

ब्रह्मशापभयाद्विप्र तथापि कथयाम्यहम् ।
स्नातः शुद्धाम्बरधरो यती संयती एव च ॥ ८३ ॥
गृह्णीयाच्च महाविद्यां कामधेनुस्वरूपिणीम् ।
प्रदात्रीं कवितां विद्यां सर्वसिद्धिं च सम्पदाम् ॥ ८४ ॥
बलं पुत्रं महालक्ष्मीं निश्चलां शतपौरुषीम् ।
भक्तिं दास्यप्रदामन्ते गोलोके वासमीप्सितम् ॥ ८५ ॥

तो भी हे विप्र ! ब्रह्मशाप के भय से मैं उसे कहता हूं। स्नान

करके शुद्ध वस्त्र धारण कर यती और संयती होकर कामधेनु स्वरूपिणी इस महाविद्या को ग्रहण करना चाहिये। यह कविता, विद्या, सम्पदा और सर्वसिद्धियाँ, बल, पुत्र, निश्चला शतपौरुषी महालक्ष्मी, दास्यप्रदा भक्ति तथ अन्त में ईप्सित गोलोकवास देनेवाली है ॥ ८३-८५ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८६ ॥
पुरुषाणां शतं चैव लीलया च समुद्धरेत् ।
मातरं भ्रातरं पुत्रं पत्नीं च बान्धवांस्तथा ॥ ८७ ॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण सद्यः पूतो भवेन्नरः ।
यथा सुवर्णं वह्नौ च गङ्गातोये यथा नरः ॥ ८८ ॥
तस्यैव पादरजसो सद्यः पूता वसुन्धरा ।
पवित्राणि च तीर्थानि तुलसी चापि जाह्नवी ॥ ८९ ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ।
षडक्षरीं महाविद्यां यो गृह्णीयाच्च पुण्यदः ॥ ९० ॥

मन्त्रग्रहण मात्र से मनुष्य नारायण हो जाता है और करोड़ों जन्म के अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। वह सौ पीढ़ियों का तथा माता, भ्राता, पुत्र, पुत्री, पत्नी और बान्धवों का उद्धार कर देता है। मन्त्रग्रहण मात्र से मनुष्य उसी प्रकार पवित्र हो जाता है जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि से तथा मनुष्य गङ्गाजल से क्रमशः शुद्ध और पवित्र हो जाता है। उसके पादरज से तत्काल वसुन्धरा, तीर्थ, तुलसी तथा गङ्गा आदि सभी पवित्र हो जाते हैं। जो पुण्यप्रद मनुष्य षडक्षरी महाविद्या की दीक्षा लेता है वह पद-पद पर निश्चितरूप से अश्वमेध का फल प्राप्त करता है ॥ ८६-९० ॥

भूतवर्गात् पराद्वर्णोद्वितीयो दीर्घवान्मुने ।
चतुर्वर्गतुरीयश्च दीर्घवांश्च फलप्रदः ॥ ९१ ॥

भूतवर्गात्परो वर्णो वाणीवान् सर्वसिद्धिदः ।
सर्वशुद्धप्रियान्ता च तस्या बीजादिका स्मृता ॥ ९२ ॥

हे मुने ! भूतवर्ग, अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग के बाद द्वितीय वर्ण (अर्थात् पवर्ग के अन्तिम वर्ण 'म' के बाद द्वितीय वर्ण) अर्थात् र' जो दीर्घवान अर्थात् आं से संयुक्त=रां

चतुर्वर्गतुरीय का अर्थ 'मोक्षद:' है। इस अर्थ में 'ओं' बीज का प्रयोग होता है (देखिये रामकुमार राय का आंग्लानुवाद सहित तन्त्राभिधान) अतः = ओं

दीर्घवान्—आं (देखिये मन्त्राभिधान जो उक्त तन्त्राभिधान में संग्रहीत है) ।

भूतवर्गात् परोवर्णः = य, जो वाणीवान् अर्थात् अं से युक्त है = यं। (वाणीवान का अर्थ ऍं भी होता है) ।

सर्वशुद्ध प्रियान्ता अर्थात् सबको शुद्ध करनेवालेअग्नि की प्रिया 'स्वाहा' से अन्त होने वाला ।

इस प्रकार 'रां ओं आं यं स्वाहा' इन बीजों से युक्त इस मन्त्र को सर्वसिद्धिप्रद षडक्षरी महाविद्या कहा गया है ॥ ९१-९२ ॥

षडक्षरी महाविद्या कथिता सर्वसिद्धिदा ।

प्रणवाद्या महामाया राधा लक्ष्मी सरस्वती ॥ ९३ ॥

कृष्णप्राणाधिका ङेन्ताऽनलजायान्त एव च ।

कल्पवृक्षस्वरूपश्च मन्त्रोऽयं भुवनाक्षरः ॥ ९४ ॥

अब इसके बाद चतुर्दशाक्षर मन्त्र बताया जा रहा है : प्रणवाद्या (ॐ), महामाया (ह्रीं), राधा (रां), लक्ष्मी (श्रीं), सरस्वती (ऐं), ङेन्त कृष्णप्राणाधिका (कृष्णप्राणाधिकायै), तथा अन्त में अनलजाया (स्वाहा) लगाने से यह कल्पवृक्ष के समान भुवनाक्षर (१४ अक्षरों वाला) मन्त्र होता है। मन्त्र : ॐ ह्रीं रां श्रीं ऐं कृष्णप्राणाधिकायै स्वाहा ॥ ९३-९४ ॥

कुमारपदवीदाता सिद्धो यदि भवेन्नरः ।

कुमारेणार्चितो मन्त्रः पाद्मे पाद्मसुतेन च ॥ ९५ ॥

पाद्मेन दत्तः पुत्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि ।

सप्तलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ९६ ॥

सर्वस्तम्भं सर्वसिद्धिं लभते साधकः सदा ।

कृष्णेन दत्तो गोलोके ब्रह्मणे विरजातटे ॥ ९७ ॥

यदि मनुष्य यह मन्त्र सिद्ध कर ले तो वह दूसरे व्यक्ति को 'कुमार' की पदवी देनेवाला हो जाता है। ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पुत्र कुमार ने भी इस मन्त्र की अर्चना की थी। पुष्करक्षेत्र में ब्रह्मा ने सूर्यग्रहण के अवसर पर स्वयं अपने पुत्र को यह मन्त्र दिया था। सात लाख जप करने से मनुष्य का यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक सर्वसिद्धियाँ तथा सबको स्तम्भित करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। गोलोक में विरजा नदी के तट पर श्रीकृष्ण ने इसे ब्रह्मा को दिया था ॥९५-९७॥

तेन दत्तश्च मह्यं च तुभ्यं दत्तो महामुने ।
प्रणवाद्या च सर्वाद्या महामाया सरस्वती ॥ ९८ ॥
कृष्णप्रिया चतुर्थ्यन्ता चित्रभानुप्रियान्तका ।
एकादशाक्षरो मन्त्रो गङ्गयोपासितस्तथा ॥ ९९ ॥
मुक्तिप्रदश्च मन्त्रोऽयं तीर्थपूतश्चसिद्धिदः ।
मनोयायी भवेदत्र चान्ते याति परां गतिम् ॥ १००॥
दशलक्षजपैनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।

हे महामुने ! उन्होंने (ब्रह्मा ने) ही यह मन्त्र मुझे दिया और मैं इसे तुम्हे दूंगा। मन्त्र इस प्रकार है : प्रणवाद्या (ॐ), सर्वाद्या (रां), महामाया (ह्रीं), सरस्वती (ऐं), चतुर्थ्यन्त कृष्णप्रिया (कृष्णप्रियायै), चित्रभानुप्रियान्तका (स्वाहा) को अन्त में लगाने से मन्त्र इस प्रकार होगा : ॐ रां ह्रीं ऐं कृष्णप्रियायै स्वाहा। यह ग्यारह अक्षरों का मन्त्र गङ्गा द्वारा उपासित, मुक्तिप्रद, सभी सिद्धियों को देनेवाला तथा तीर्थपूत है। इस मन्त्र के प्रसाद से मनुष्य मन की गति के समान सर्वत्र जा सकता है और अन्त में वह परम गति को प्राप्त होता है। दश लाख जप करने से मनुष्य का यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। ॥ ९८-१००½ ॥

प्रणवाद्या च सर्वाद्या महालक्ष्मीः सरस्वती ॥ १०१ ॥
सर्वाद्या सा चतुर्थ्यन्ता वीतिहोत्रप्रियान्तका ।
दशाक्षरो महामन्त्रो दास्यभक्तिप्रदो हरेः ॥ १०२ ॥

योगीन्द्रश्च भवेदत्र मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यदि ।
नवलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ १०३ ॥

एक अन्य मन्त्र इस प्रकार है : प्रणवाद्या (ॐ), सर्वाद्या (रां), महालक्ष्मी (श्रीं), सरस्वती (ऐं), चतुर्थ्यन्त 'सर्वाद्या' (सर्वाद्यायै) और वीतिहोत्रप्रियान्तका (स्वाहा) लगाने से यह मन्त्र बनता है : ॐ रां श्रीं ऐं सर्वाद्यायै स्वाहा। यह दशाक्षर महामन्त्र हरि की दास्य भक्ति प्रदान करनेवाला है। यदि मन्त्र सिद्ध हो जाय तो साधक योगीन्द्र बन जाता है। नव लाख जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥१०१-१०३॥

सर्वमन्त्रेषु सारश्च मन्त्रराजः प्रकीर्त्तितः ।
तुलस्योपासितो मन्त्रश्चतुवर्गफलप्रदः ॥ १०४ ॥
व्यासेनोपासितोऽयं च तथा नारायणर्षिणा ।
सारभूतं मयोक्तन्ते परं मन्त्रचतुष्टयम् ॥
सुखदं भक्तिदं शुद्धं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १०५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे द्वितीयरात्रे
हरिभक्तिज्ञाननिरूपणं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

यह सब मन्त्रों का सार तथा मन्त्रराज कहा गया है। तुलसी द्वारा उपासित यह मन्त्र चतुर्वर्ग का फल देनेवाल है। व्यास ने और नारायण ऋषि ने भी इसकी उपासना की थी। इस प्रकार ये परम सारभूत चार मन्त्र मैंने तुम्हें बता दिया है। ये मन्त्र सुख देनेवाले, भक्ति देनेवाले, और शुद्ध हैं। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ १०४-१०५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
द्वितीय रात्र में हरिभक्तिज्ञाननिरूपण नामक
तृतीय अध्याय समाप्त ॥

द्वितीयरात्रे चतुर्थोऽध्यायः

अथ राधाप्रश्नकथनम्

श्रीनारद उवाच ।

मन्त्रोपयुक्तं ध्यानं च तथा पूजाविधानकम् ।
स्तवनं कवचं चैव वद वेदविदां वर ॥ १ ॥

श्री नारद जी बोले : हे वेदाविदांवर ! आप मन्त्र के उपयुक्त ध्यान, पूजा का विधान, स्तवन, तथा कवच हमें बतावें ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ध्यानं च श्रूयतां वत्स सामवेदोक्तमेव च ।
श्रीकृष्णेन कृतं पूर्वं सर्वेषामभिवाञ्छितम् ॥ २ ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् ।
बिभ्रतीं कवरीभारं मालतीमाल्यभूषिताम् ॥ ३ ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मस्वरूपां परमां कृष्णरामां मनोहराम् ।
कृष्णप्राणाधिकां देवीं कृष्णवक्षःस्थलस्थिताम् ॥ ५ ॥
कृष्णस्तुतां कृष्णकान्तां शान्तां सर्वप्रदां सतीम् ।
निर्लिप्तां निर्गुणां नित्यां सत्यां शुद्धां सनातनीम् ॥ ६ ॥
गोलोकवासिनीं गोप्त्रीं विधात्रीं धातुरेव ताम् ।
वृन्दां वृन्दावनचरीं वृन्दावनविनोदिनीम् ॥ ७ ॥
तुलस्यधिष्ठातृदेवीं गङ्गार्चितपदाम्बुजाम् ।
सर्वसिद्धिप्रदां सिद्धां सिद्धेशीं सिद्धयोगिनीम् ॥ ८ ॥

सुयज्ञयज्ञाधिष्ठात्रीं सुयज्ञाय महात्मने ।
वरदात्रीं च वरदां सर्वसम्पत्प्रदां सताम् ॥ ९ ॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः ।
रत्नसिंहासनस्थां च रत्नदर्पणधारिणीम् ॥ १० ॥
क्रीडापङ्कजहस्ताभ्यां परां कृष्णप्रियां भजे ।

श्री भगवान् बोले : हे वत्स ! ध्यान तो सामवेदोक्त ही है, जो सबका अभिप्रेत है तथा जिसे श्रीकृष्ण ने पहले बनाया था। श्वेतचम्पा के वर्ण के समान आभावाली, करोड़ों चन्द्रमा की प्रभावाली, मालती की मालाओं से विभूषित कबरीभार को धारण किये हुए, वह्निशुद्धांशुक पहने हुए, रत्नभूषणों से भूषित, ईषद्धास्य से प्रसन्न मुखवाली, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाली, ब्रह्मस्वरूपा, परमा, मनोहरा, कृष्णप्रिया, कृष्ण के प्राणों से अधिक, कृष्ण जी के वक्षःस्थल पर रहने वाली, कृष्ण के द्वारा स्तुता, कृष्णकान्ता, शान्ता, सर्वप्रदा, सती, निर्लिप्ता, निर्गुणा, नित्या, सत्या, शुद्धा, सनातनी, गोलोकवासिनी, गोप्त्री, ब्रह्मा की भी विधात्री, वृन्दा, वृन्दावनचरी, वृन्दावनविनोदिनी, तुलसी की अधिष्ठातृ देवी, गंगार्चित पादांबुजा, सर्वसिद्धिप्रदा, सिद्धा, सिद्धेशी, सिद्धयोगिनी, सुयज्ञ के यज्ञ की अधिष्ठात्री, महात्मा सुयज्ञ को वर देनेवाली, सज्जनों को समस्त सम्पत्तियों का वर देनेवाली, सुप्रिया गोपियों द्वारा श्वेत चामरों से सेवित, रत्नसिंहासन पर स्थित तथा रत्नदर्पण को धारण किये हुए, दोनों हाथों में क्रीडाकमलों को लिये हुए, परा, कृष्णप्रिया देवी राधा की मैं स्तुति करता हूं ॥ ३-१०½ ॥

ध्यात्वा शिरसि पुष्पं च दत्वा प्रक्षाल्य हस्तकम् ॥ ११ ॥
पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च दद्यात्तस्यै प्रसूनकम् ।
तां षोडशोपचारेण सम्पूज्य परमेश्वरीम् ॥ १२ ॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा स्तुत्वा च कवचं पठेत् ।

शिर पर पुष्प रखकर इस प्रकार ध्यान करने के बाद हाथ धोकर पुनः ध्यान करके उन्हें पुष्प समर्पित करे। उन परमेश्वरी देवी की षोडशोपचारों से पूजा करके तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर उनकी स्तुति करे और फिर कवच का पाठ करे ॥ ११-१२½ ॥

पूजाक्रमं परीहारं वत्स मत्तो निशामय ॥ १३ ॥

हे वत्स ! अब पूजाक्रम तथा त्रुटियों के परीहार को मुझसे सुनों। ॥ १३ ॥

मन्त्रं समुपचाराणां शृण्वनुक्रमणेन च।
पुनर्ध्यात्वा यथा देवीं पुष्पाञ्जलियुतो भवेत् ॥ १४ ॥
इमं मन्त्रं परीहारं कुरुते भक्तिपूर्वकम्।

अब क्रम से उपचारों के मन्त्रों को सुनो : देवी का पुनः ध्यान करके और पुष्पाञ्जलि से युक्त हो जाय। फिर साधक इन मन्त्रों से भक्तिपूर्वक परीहार करे ॥ १४-१४½ ॥

नारायणि महामाये विष्णुमाये सनातनि ॥ १५ ॥
प्राणाधिदेवि कृष्णस्य मामुद्धर भवार्णवात्।
संसारसागरे घोरे भीतं मां शरणागतम् ॥ १६ ॥
प्रपन्नं पतितं मातर्मामुद्धर हरिप्रिये।
असंख्ययोनिभ्रमणादज्ञानान्धतमोऽन्वितम् ॥ १७ ॥
ज्वलद्भिर्ज्ञानदीपैश्च मां सुवर्त्म प्रदर्शय।
सर्वेभ्योऽपि विनिर्मुक्तं कुरु राधे सुरेश्वरि ॥ १८ ॥
मां भक्तमनुरक्तं च कातरं यमताडनात्।
त्वत्पादपद्मयुगले पाद्मपद्मालयार्चिते ॥ १९ ॥
देहि मह्यं परां भक्तिं कृष्णेन परिसेविते।
स्निग्धदूर्वांकुरैः शुक्लपुष्पैः कुसुमचन्दनैः ॥ २० ॥
कृष्णदत्तार्घ्यशोभाढ्ये भक्तिमाध्वीकसंकुले।
आसनं भास्वदुत्तुङ्गममूल्यं रत्ननिर्मितम् ॥ २१ ॥
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि।

हे नारायणी ! हे महामाये ! हे विष्णुमाये ! हे सनातनि ! हे कृष्ण की प्राणाधिदेवी ! घोर संसार सागर में भयभीत मुझ शरणागत का भवार्णव से उद्धार करो। हे माता, हरिप्रिया ! मुझ शरणागत तथा

पतित का उद्धार करो। असंख्य योनियों में भ्रमण करने से मुझ अज्ञानान्धकार से युक्त को प्रज्वलित ज्ञानदीपों से तुम उत्तम मार्ग दिखाओ। हे सुरेश्वरि राधे! तुम मुझ कातर अनुरक्त भक्त को यमताडना से मुक्त करो। ब्रह्मा, लक्ष्मी और श्रीकृष्ण से परिसेवित तथा स्निग्ध दूर्वाओं से, शुक्ल पुष्पों से, कुसुम से और चन्दन से पूजित, श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये अर्घ्य की शोभा से विभूषित और भक्ति माध्वीक-संकुलित अपने दोनों चरणकमलों में मुझे परम भक्ति प्रदान करो। हे परमेश्वरि! मैं चमकता हुआ, उच्च, अमूल्य रत्नों से निर्मित आसन तुम्हें भक्तिपूर्वक देता हूं, उसे ग्रहण करो॥ १५-२१½॥

नानातीर्थोद्भवं पुण्यं शीतलं च सुनिर्मलम्॥ २२॥
मया निवेदितं भक्त्या पाद्यं च प्रतिगृह्यताम्।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित नाना तीर्थों के पुण्यदायक, शीतल, अत्यन्त निर्मल पाद्य को ग्रहण करो॥ २२-२२½॥

स्निग्धदूर्वाक्षतं शुक्लपुष्पकुंकुमचन्दनम्॥ २३॥
तीर्थतोयान्वितं देवि गृहाणार्घ्यं सुरेश्वरि।

हे सुरेश्वरि! स्निग्ध दूर्वा, अक्षत, शुक्लपुष्प, कुंकुम और चन्दनयुक्त तीर्थों से लाये गये अर्घ्य को, हे देवि! ग्रहण करो॥ २३-२३½॥

वह्निशुद्धं वस्त्रयुग्ममममूल्यमतुलं परम्॥ २४॥
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण जगदम्बिके।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित अमूल्य और परम अतुलनीय वस्त्रयुग्म को, हे जगदम्बिके! ग्रहण करो॥ २४-२४½॥

ग्रथितं सूक्ष्मसूत्रेण पारिजातविनिर्मितम्॥ २५॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरे माल्यं गृहाण मे।

सूक्ष्म सूत्रों से ग्रथित और पारिजात के फूलों से निर्मित माला को, हे जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिहरे! मुझसे ग्रहण करो॥ २५-२५½॥

कस्तूरीकुंकुमाक्तं च सुगन्धि स्निग्धचन्दनम्॥ २६॥
राधे मातर्निराबाधे मद्गृहाणानुलेपनम्।

कस्तूरी, कुंकुम और स्निग्ध चन्दन से सुगन्धित अनुलेपन को, हे निराबाधे ! हे राधे मातः ! मुझसे ग्रहण करो ॥ २६-२६½ ॥

शुक्लपुष्पसमूहं च सुगन्धि चन्दनान्वितम् ॥ २७ ॥
मया निवेदितं भक्त्या पुष्पं देवि प्रतिगृह्यताम् ।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित सुगन्धित चन्दन से युक्त शुक्ल पुष्पों के समूह को, हे देवि ! ग्रहण करो ॥ २७-२७½ ॥

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धवस्तुभिरन्वितः ॥ २८ ॥
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित गन्धवस्तुओं और वनस्पतियों के दिव्य रस से युक्त धूप को ग्रहण करो ॥ २८-२८½ ॥

अन्धकारभयध्वंसी माङ्गल्यो विश्वपावनः ॥ २९ ॥
मया निवेदितो भक्त्या दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।

अन्धकार के भय को दूर करनेवाले, मङ्गलमय, विश्वपावन मेरे द्वारा निवेदित इस दीप को ग्रहण करो ॥ २९-२९½ ॥

सुधापूर्णं रत्नकुम्भं शतकं च सुदुर्लभम् ॥ ३० ॥
माध्वीककुम्भलक्षं च नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ।
मिष्टान्नस्वस्तिकानां च लक्षपुञ्जं मनोहरम् ॥ ३१ ॥
शर्कराराशिलक्षं च नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ।

सुधा से पूर्ण अत्यन्त दुर्लभ सौ कुम्भों को, माध्वीक से पूर्ण एक लाख कुम्भों को, मिष्टान्न और स्वस्तिक के एक लाख मनोहर पुञ्जों को तथा एक लाख शर्कराराशिपिण्डों को, हे देवि ! नैवेद्य के रूप में ग्रहण करो ॥ ३०-३१½ ॥

संस्कृतं पायसं पिष्टं शाल्यन्नं व्यञ्जनान्वितम् ॥ ३२ ॥
शर्करादधिदुग्धाक्तं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ।

संस्कृत और पिष्टकयुक्त पायस, व्यञ्जनान्वित शाल्यन्न, शर्करा-मिश्रित दधि तथा दूध के नैवेद्य को, हे देवि ! ग्रहण करो ॥३२-३२½॥

फलानां च सुपक्वानामाम्रादीनां त्रिलक्षकम् ॥ ३३ ॥
राशीनां च मया दत्तं भक्त्या च देवि गृह्यताम् ।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित अच्छी तरह पके तीन लाख आम तथा अन्य फलों की राशि को, हे देवि ! ग्रहण करो ॥ ३३-३३½ ॥

दधिकुल्याशतं चैव मधुकुल्याशतं तथा ॥ ३४ ॥
घृतकुल्याशतं चैव गृहाण परमेश्वरि ।

एक सौ दधि से भरे पात्रों, एक सौ मधु से भरे पात्रों और एक सौ घृत से भरे पात्रों को, हे परमेश्वरि ! ग्रहण करो ॥ ३४-३४½ ॥

दुग्धकुल्या शतं रम्यं गुडकुल्या शतं तथा ॥ ३५ ॥
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।

हे परमेश्वरि ! मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित एक सौ दुग्ध से भरे पात्रों और एक सौ गुड से भरे पात्रों को ग्रहण करो ॥ ३५-३५½ ॥

नानातीर्थोद्भवं रम्यं सुगन्धिवस्तुवासितम् ॥ ३६ ॥
मया निवेदितं भक्त्या शीततोयं गृहाण मे ।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित तथा सुगन्धद्रव्यों से सुवासित नाना तीर्थों के शीतल और रम्य जल को ग्रहण करो ॥ ३६-३६½ ॥

पयःफेननिभा शय्या रत्नेन्द्रसारनिर्मिता ॥ ३७ ॥

मया निवेदिता भक्त्या तां गृहाण सुरेश्वरि ।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित, रत्नेन्द्रसार से निर्मित और जल के फेन के समान सफेद शय्या को, हे सुरेश्वरि ! ग्रहण करो ॥३७-३७½॥

भूषणानि च रम्याणि सद्रत्ननिर्मितानि च ॥ ३८ ॥
मया निवेदितान्येव गृहाण परमेश्वरि ।

मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित रम्य आभूषणों को, हे परमेश्वरि ! ग्रहण करो ॥ ३८-३८½ ॥

ताम्बूलं च परं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ३९ ॥

मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।

हे परमेश्वरि ! मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित कपूरादि से सुवासित परम रम्य ताम्बूल को ग्रहण करो ॥ ३९-३९½ ॥

सिन्दूरं शोभनं राधे योषितां सुप्रियं सदा ॥ ४० ॥
मया निवेदितं भक्त्या सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ।

हे राधे ! यह शोभन सिन्दूर स्त्रियों को सदा अत्यन्त प्रिय होता है । अतः मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित इस सिन्दूर को ग्रहण करो । ॥ ४०-४०½ ॥

परं सुपक्वतैलं च सुगन्धिवस्तुसंस्कृतम ॥ ४१ ॥
मया निवेदितं भक्त्या तैलं च प्रतिगृह्यताम् ।

परम सुपक्व तथा सुगन्धित वस्तु से संस्कृत तेल मैं भक्तिपूर्वक निवेदित कर रहा हूं, उसे तुम ग्रहण करो ॥ ४१-४१½ ॥

पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा दासीवर्गं प्रपूजयेत् ॥ ४२ ॥

तीन पुष्पाञ्जलियां देकर उनके (देवी के) दासी वर्ग का पूजन करना चाहिये ॥ ४२ ॥

पाद्यादिकं पृथग्दत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ।
मालतीं माधवीं रक्तां रत्नमालावतीं सतीम् ॥ ४३ ॥
चम्पावतीं मधुमतीं सुशीलां वनमालिकाम् ।
चन्द्रावलीं चन्द्रमुखीं पद्मां पद्ममुखीं शुभाम् ॥ ४४ ॥
कमलां कालिकां कृष्णप्रियां विद्याधरीं तथा ।
सम्पूज्य भक्त्या सर्वास्ता बटुवर्गं प्रपूजयेत् ॥ ४५ ॥

सबको अलग-अलग पाद्यादि देकर भूमि पर दण्डवत् हो प्रणाम करना चाहिये । मालती, माधवी, रक्ता, रत्नमालावती, सती, चम्पावती, मधुमती, सुशोला वनमालिका, चन्द्रावली, चन्द्रमुखी, पद्मा, पद्ममुखी, शुभा, कमला, कालिका तथा कृष्णप्रिया विद्याधरी आदि सबकी भक्तिपूर्वक पूजा करके बटुवर्ग की पूजा करे ॥ ४३-४५ ॥

सानन्दं परमानन्दं सुमित्रं सन्ततुं तथा ।
एतान् सम्पूज्य प्रत्येकं स्तोत्रं च कवचं पठेत् ॥ ४६ ॥
जपेत् षडक्षरीं विद्यां श्रीकृष्णेनैव सेविताम् ।
यथाशक्ति भक्तियुक्तो दण्डवत् प्रणमेत् सदा ॥ ४७ ॥
स्तोत्रं च सामवेदोक्तं प्रपठेद्भक्तिसंयुतः ।

सानन्द, परमानन्द, सुमित्र और सन्तनु—इनमें से प्रत्येक को पूजा करके स्तोत्र और कवच का पाठ करे। श्रीकृष्ण द्वारा सेवित षडक्षरी विद्या का यथाशक्ति जप करे और सदैव भक्तियुक्त होकर दण्डवत् प्रणाम करे। भक्तिसंयुक्त होकर सामवेदोक्त स्तोत्र का पाठ करना चाहिये ॥ ४६-४७½ ॥

राधा रासेश्वरी रम्या रामा च परमात्मनः ॥ ४८ ॥
रासोद्भवा कृष्णकान्ता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।
कृष्णप्राणाधिदेवी च महाविष्णोः प्रसूरपि ॥ ४९ ॥
सर्वाद्या विष्णुमाया च सत्या नित्या सनातनी ।
ब्रह्मस्वरूपा परमा निर्लिप्ता निर्गुणा परा ॥ ५० ॥
वृन्दा वृन्दावने सा च विरजातटवासिनी ।
गोलोकवासिनी गोपी गोपीशा गोपमातृका ॥ ५१ ॥
सानन्दा परमानन्दा नन्दनन्दनकामिनी ।
वृषभानुसुता शान्ता कान्ता पूर्णतमा च सा ।
काम्या कलावती कन्या तीर्थपूता सती शुभा ।
सप्तत्रिंशच्च नामानि वेदोक्तानि शुभानि च ॥ ५२ ॥

राधा, रासेश्वरी, परमात्मा की प्रिय भार्या रम्या, रसोद्भवा, कृष्णकान्ता, कृष्णवक्षःस्थलस्थिता, कृष्णप्राणाधिदेवी, महाविष्णु प्रसू, सर्वाद्या, विष्णुमाया, सत्या, नित्या, सनातनी, ब्रह्मस्वरूपा, परमा, निर्लिप्ता, निर्गुणा, परा, वृन्दावन में वृन्दा, विरजातटवासिनी, गोलोकवासिनी, गोपी, गोपीशा, गोपमातृका, सानन्दा, परमानन्दा, नन्दनन्दन-

कामिनी, वृषभानुसुता, शान्ता, कान्ता, पूर्णतमा, काम्या, कलावती, कन्या, तीर्थपूता, सती तथा शुभा—ये सैंतीस नाम वेदोक्त और शुभ हैं ॥ ४८-५३ ॥

सारभूतानि पुण्यानि सर्वनामसु नारद ।
यः पठेत् संयतः शुद्धो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ५४ ॥

इहैव निश्चलां लक्ष्मीं लब्ध्वा याति हरेः पदम् ।
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभते नात्रसंशयः ॥ ५५ ॥

भक्तो लक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धो भवेद्ध्रुवम् ।
सिद्धस्तोत्रो यदि भवेत् सर्वसिद्धेश्वरो भवेत् ॥ ५६ ॥
वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं मनस्तनम्भं हृदस्तया ।
मनोयायित्वमिष्टं च लभते नात्रसंशयः ॥ ५७ ॥

स्तोत्रस्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ५८ ॥

कोटिजन्मार्जितात् पापात् ब्रह्महत्याशतादपि ।
स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्रसंशयः ॥ ५९ ॥

हे नारद ! सब नामों में से उक्त नाम सारभूत तथा पुण्य हैं । जो संयत, शुद्ध, जितेन्द्रिय तथा विष्णु की भक्तिपूर्वक इनका पाठ करता है वह इस संसार में ही स्थिर लक्ष्मी को पाकर हरि के स्थान, हरि की भक्ति और हरि के दास्य को प्राप्त करता है—इसमें कोई संशय नहीं है। स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है और पग-पग पर निश्चित रूप से अश्वमेध का फल पाता है। कोटिजन्मार्जित पाप और सैकड़ों ब्रह्महत्या के पापों से भी स्तोत्र के स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है ॥ ५४-५६ ॥

मृतवत्सा काकवन्ध्या महावन्ध्या प्रसूयते ।
शृणोति वर्षमेकं या शुद्धा स्विन्नान्नभोजिनी ॥ ६० ॥
शृणोति मासमेकं यः सर्वाभीष्टं लभेन्नरः ।

सामवेदकुमारं तमित्याह कमलोद्भवः ॥ ६१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे द्वितीयरात्रे
शिवनारदसंवादे भक्तिज्ञानकथने राधाप्रश्नकथनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

मृतवत्सा, काकबन्ध्या तथा महाबन्ध्या शुद्ध होकर उबले हुए अन्न का आहार करते हुए यदि एक वर्ष तक इसका श्रवण करें तो उन्हें अवश्य प्रसव होता है। जो मनुष्य एक मास तक इसका श्रवण करता है वह समस्त अभीष्टों को प्राप्त कर लेता है और ब्रह्मा उसे सामवेदकुमार कहते हैं ॥ ६०-६१ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
द्वितीय रात्र के शिवनारदसंवादोक्त भक्तिज्ञान
कथन में राधाप्रश्न कथन नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय रात्रे पञ्चमोऽध्यायः

अथ राधिकाकवचम्

श्रीनारद उवाच ।

सर्वं श्रुतं जगन्नाथ यद्यन्मनसि वाञ्छितम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाकवचं परम् ॥ १ ॥

श्री नारद जी बोले : हे जगन्नाथ ! मेरे मन में जो कुछ अभीष्ट था उस सबको मैंने सुन लिया । अब मैं परम राधिका कवच को सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

क्षमस्व ब्रह्मणः पुत्र देवर्षे मुनिपुङ्गव ।
यन्निषिद्धं भगवता कृष्णेन परमात्मना ॥ २ ॥
कथं वक्ष्यामि हे वत्स सुगुप्तं कवचं मुने ।
कण्ठे दधार भगवान् भक्त्या रत्नपुटेन यत् ॥ ३ ॥
परमानन्दसन्दोहवकचं च सुदुर्लभम् ।
षडक्षरीं महाविद्यां नित्यभक्त्या जपेद्धरिः ॥ ४ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे ब्रह्मपुत्र, हे मुनिपुङ्गव, हे देवर्षि ! भगवान् परमात्मा श्रीकृष्ण द्वारा जो निषिद्ध हो चुका है; जिसे भगवान् ने भक्तिपूर्वक रत्नगुटिका में अपने कण्ठ में धारण कर रक्खा है; जो कवच परमानन्दसन्दोह और अत्यन्त दुर्लभ है उस कवच को, हे मुने ! हे वत्स ! मैं कैसे बताऊँ? भगवान् श्रीहरि भी षडक्षरी महाविद्या का नित्य ही भक्तिपूर्वक जप करते हैं ॥ २-४ ॥

नित्यं प्रपूजयेन्नित्यं नित्यः सत्यः परात्परः ।
सा पूजयेत् प्रभुं नित्यं जपेदेकादशाक्षरम् ॥ ५ ॥
मह्यं च कवचं दत्त्वा निषिद्धं परमात्मना ।

राधा जिन नित्य, सत्य और परात्पर स्वरूप की पूजा और एका दशाक्षरी मन्त्र का जप करती हैं; उन्हीं परमात्मा ने मुझे वह कवच देकर निषेध कर दिया है ॥ ५-५½ ॥

इदमेवेति कवचं दत्तं तेनैव ब्रह्मणे ॥ ६ ॥

धर्माय ब्रह्मणा दत्तं तेन नारायणाय च।
नारायणेन कण्ठस्थं सुभद्राय ददे पुरा ॥ ७ ॥

उसी कवच को उन्होंने ब्रह्मा को दिया; ब्रह्मा ने उसे धर्म को दिया; धर्म ने नारायण को दिया; और प्राचीनकाल में नारायण ने उसे सुभद्र को कण्ठ में बांधने के लिये दे दिया था ॥ ६-७ ॥

क्षमस्व कथितुं नालं क्षमस्व भगवन्मुने।
गुरुणा च निषिद्धं च न वक्तव्यं कदाचन ॥ ८ ॥

अतः हे मुने! हे भगवन्! मुझे क्षमा करो। मैं उसे कहने में समर्थ नहीं हूं। जो गुरु द्वारा निषिद्ध हो उसे कभी नहीं कहना चाहिये ॥८॥

श्रीनारद उवाच।

मां भक्तमनुरक्तं च नाथ मा कुरु वञ्चनाम्।
त्वमेव कृष्णस्त्वं शम्भुर्द्वयोर्भेदो न साम्नि च ॥ ९ ॥

श्री नारद जी बोले: हे नाथ! मुझ भक्त और अनुरक्त की वञ्चना न करें। आप ही कृष्ण हैं और आप ही विष्णु हैं। सामवेद के अनुसार भी आप दोनों में भेद नहीं है ॥ ९ ॥

परतन्त्रो निषिद्धं च वाक्यं कथितुमक्षमः।
शृणोति कस्य वा वाक्यं यः स्वतन्त्रः स्वयं प्रभुः ॥ १० ॥

यदि मां कवचं नाथ न वक्ष्यसि सुदुर्लभम्।
देहं त्यक्त्वा ब्रह्महत्यां दास्यामि तुभ्यमीश्वर ॥ ११ ॥

जो परतन्त्र है वही निषिद्ध वाक्य कहने में अक्षम होता है। जो स्वयं स्वतन्त्र और प्रभु है वह किसके वाक्य को सुनता है? हे नाथ! हे ईश्वर! यदि आप अत्यन्त दुर्लभ कवच को मुझे नहीं बतायेंगे तो मैं देहत्याग करके, हे ईश्वर! आपको ब्रह्महत्या का पाप दूंगा ॥१०-११॥

श्रीमहादेव उवाच ।

सद्वंशजातः शिष्यश्च शुद्धः सुब्राह्मणः सुधीः ।
मन्यते कृष्णतुल्यं च गुरुं परमधार्मिकः ॥ १२ ॥
देवमन्यं कृष्णतुल्यं यो ब्रवीति नराधमः ।
ब्रह्महत्यां च लभते महामूर्खो न संशयः ॥ १३ ॥

श्री महादेव जी बोले : जो सद्वंश में उत्पन्न, शुद्ध, उत्तम ब्राह्मण और सुधी शिष्य गुरु को कृष्णतुल्य मानता है वह परम धार्मिक है। जो अन्य देवों को कृष्णतुल्य कहता है वह मनुष्यों में अधम है और ऐसा महामूर्ख ब्रह्महत्या का पाप प्राप्त करता है—इसमें संशय नहीं है। ॥ १२-१३ ॥

परमात्मा स्वयं कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
ततो देवास्तदंशाश्च सगुणाः प्राकृताः स्मृताः ॥ १४ ॥
सर्वे जन्याः कृत्रिमाश्च पुरा ब्रह्मादयः सुराः ।
सर्वेषां जनकः कृष्णः परमाद्यः परात्परः ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण स्वयं परमात्मा हैं, निर्गुण हैं और प्रकृति से परे हैं। सभी देव उन्हीं से और उनके अंश से उत्पन्न हुए हैं तथा सगुण और प्राकृत कहे जाते हैं। प्राचीनकाल में ब्रह्मा आदि जो देव हुए हैं उन सबका जन्म कृत्रिम है। उन सबके जनक परात्पर और परमाद्य श्रीकृष्ण ही हैं ॥ १४-१५ ॥

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र राधिकाकवचं शुभम् ।
परमानन्दसन्दोहाभिधमिष्टं सुदुर्लभम् ॥ १६ ॥
कृष्णेन दत्तं मह्यं च शतशृङ्गे च पर्वते ।
निरामये च गोलोके पुण्ये वृन्दावने वने ॥ १७ ॥
राधिकासन्निधाने च शोभने रासमण्डले ।
गोपगोपीकदम्बैश्च वेष्टिते समभीप्सिते ॥ १८ ॥
अहं तुभ्यं प्रदास्यामि प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।
यद्धृत्वा पठनाद्भक्तो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ १९ ॥

ब्रह्महत्यालक्षपापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
कोटिजन्मार्जितात् पापादुपदेशात् प्रमुच्यते ॥ २० ॥
अश्वमेधसहस्रं च राजसूयशतं तथा ।
विप्रेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ २१ ॥
शिष्याय विष्णुभक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ।
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युं लभेन्नरः ॥ २२ ॥

हे विपेन्द्र ! सुनो, राधिका का परमसंदोह नामक कवच इष्ट और अत्यन्त दुर्लभ है। उसे श्रीकृष्ण नें शतशृङ्ग पर्वत पर निरामय गोलोक में, पुण्य वृन्दावन के वन में, राधिका के तथा शोभन गोप-गोपी समूहों से वेष्टित और समभीप्सित रासमण्डल में मुझे दिया था। मैं उस कवच को तुम्हें दे रहा हूं किन्तु तुम उसे किसी से न कहना। इसके पढ़ने और धारण करने से भक्त निश्चित रूप से जीवनमुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्या आदि लाखों पापों से वह मुक्त हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है। इसके उपदेश से कोटिजन्मार्जित पापों से मुक्ति प्राप्त होती है। हे विपेन्द्र ! सहस्रों अश्वमेध और राजसूय यज्ञ भी इसकी सोलहवीं कला को नहीं प्राप्त कर सकते। विष्णुभक्त साधक शिष्य को ही इसे बताना चाहिये। शठ तथा परशिष्य को देनें से मनुष्य मृत्यु को प्राप्त करता है ॥ १६-२२ ॥

विप्रेन्द्र कवचस्यास्य ऋषिर्नारायणः स्वयम् ।
कृष्णस्य भक्तिदास्ये च विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ २३ ॥

हे विपेन्द्र ! इस कवच के ऋषि स्वयं नारायण हैं। श्रीकृष्ण की भक्ति तथा उनके दास्य में इनका विनियोग कहा गया है ॥ २३ ॥

सर्वाद्या मे शिरः पातु केशं केशवकामिनी ।
भालं भगवती पातु लीला लोचनयुग्मकम् ॥ २४ ॥
नासां नारायणी पातु सानन्दा चाधरौष्ठकम् ।
जिह्वां पातु जगन्माता दन्तं दामोदरप्रिया ॥ २५ ॥
कपोलयुग्मं कृष्णेशा कण्ठं कृष्णप्रियाऽवतु ।

कर्णयुग्मं सदा पातु कालिन्दीकूलवासिनी ॥ २६ ॥
वसुन्धरेशा वक्षो मे परमा सा पयोधरम् ।
पद्मनाभप्रिया नाभिं जठरं जाह्नवीश्वरी ॥ २७॥
नित्या नितम्बयुग्मं मे कङ्कालं कृष्णसेविता ।
परात्परा पातु पृष्ठं सुश्रोणी श्रोणिकायुगम् ॥ २८ ॥
परमाद्या पानयुग्मं नखरांश्च नरोत्तमा ।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु सर्वेशा सर्वमङ्गला ॥ २९ ॥
पातु रासेश्वरी राधा स्वप्ने जागरणे च माम् ।
जले स्थले चान्तरीक्षे सेविता जलशायिनी ॥ ३० ॥
प्राच्यां मे सततं पातु परिपूर्णतमप्रिया ।
वह्नीश्वरी वह्निकोणे दक्षिणे दुःखनाशिनी ॥ ३१ ॥
नैर्ऋते सततं पातु नरकार्णवतारिणी ।
वारुणे वनमालीशा वायव्यां वायुपूजिता ॥ ३२ ॥
कौबेरे मां सदा पातु कूर्मेण परिषेविता ।
ऐशान्यामीश्वरी पातु शतशृङ्गनिवासिनी ॥ ३३ ॥
वने वनचरी पातु वृन्दावनविनोदिनी ।
सर्वत्र संततं पातु सर्वेशा विरजेश्वरी ॥ ३४ ॥
प्रथमे पूजिता या च कृष्णेन परमात्मना ।
षडक्षर्या विद्यया च सा मां रक्षतु कातरम् ॥ ३५ ॥
द्वितीये पूजिता देवी शम्भुना रासमण्डले ।
नानासंभृतसंभारैर्माया प्रकृतिरीश्वरी ॥ ३६ ॥
सप्ताक्षर्या विद्यया च पूज्यया प्रणवाद्यया ।
तृतीये पूजिता देवी ब्रह्मणा परमादरम् ॥ ३७ ॥
श्रीबीजयुक्तया भक्त्या चाष्टाक्षर्या च विद्यया ।

चतुर्थे पूजिता देवी शेषेण विघ्ननाशिनी ॥ ३८ ॥

तेनैव सेविता विद्या मायायुक्ता नवाक्षरी ।
विद्या सा चापि धर्मेण सेविता परमेश्वरी ॥ ३९ ॥

राधिका कवच

सर्वाद्या देवी मेरे शिर की रक्षा करें। केशवकामिनी मेरे केश की रक्षा करें। भगवती भाल की रक्षा करें। लीला मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करें। नारायणी मेरी नासिका की रक्षा करें। सानन्दा मेरे अधरोष्ठ की रक्षा करें। जगन्माता मेरी जिह्वा की रक्षा करें। दामोदर प्रिया दाँतों की रक्षा करें। कृष्णेशा मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करें। कृष्णप्रिया कण्ठ की रक्षा करें। कालिन्दीकुलवासिनी मेरे दोनों कानों की रक्षा करें। वसुन्धरेशा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करें। परमा पयोधर की रक्षा करें। पद्मनाभप्रिया नाभि की रक्षा करें। जाह्नवीश्वरी जठर की रक्षा करें। नित्या दोनों नितम्बों की रक्षा करें। कृष्णसेविता मेरे कंकाल की रक्षा करें। परात्परा पीठ की रक्षा करें। सुश्रोणी दोनों श्रोणियों की रक्षा करें। परमाद्या पानयुग्म की रक्षा करें। नरोत्तमा नखों की रक्षा करें। सबकी सर्वमङ्गला मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करें। रासेश्वरी राधा स्वप्न तथा जागरण में मेरी रक्षा करें। जल, स्थल तथा अन्तरिक्ष में सेविता जलशायिनी मेरी रक्षा करें। परिपूर्णतम प्रिया पूर्व में मेरी सदा रक्षा करें। वह्निकोण में वह्नीश्वरी तथा दक्षिण में दुःख-नाशिनी रक्षा करें। नरकार्णवतारिणी नैर्ऋत दिशा में सदा मेरी रक्षा करें। वारुणदिशा में वनमालीशा मेरी रक्षा करें। वायव्य दिशा में वायु-पूजिता मेरी रक्षा करें। कौवेरी दिशा में कूर्म से परिसेविता मेरी सदा रक्षा करें। शतभृङ्गनिवासिनी ईश्वरी ऐशानी दिशा में मेरी रक्षा करें। वनचरी वृन्दावन विनोदिनी वन में मेरी रक्षा करें। सर्वशा विरजेश्वरी सर्वत्र सदा मेरी रक्षा करें। जो पहले परमात्मा कृष्ण द्वारा षडक्षरी विद्या से पूजित हुई थीं, वह मुझ कातर की रक्षा करें। दूसरी बार रासमण्डल में शम्भु के द्वारा नाना प्रकार के संभृत संभारों से वह माया प्रकृति, ईश्वरी देवी सप्ताक्षरी प्रणवाद्या विद्या से पूजित हुई थीं। तीसरी बार ब्रह्मा के द्वारा भक्तिपूर्वक श्रीं-बीजयुक्त अष्टाक्षरी विद्या से परम आदरपूर्वक पूजित हुई थी। चौथी बार विघ्ननाशिनी देवी शेष के

द्वारा ह्रीं-युक्त नवाक्षरी विद्या से पूजित हुई थी। वह परमेश्वरी उसी विद्या से तब धर्म द्वारा सेवित हुई ॥ २४-३९ ॥

धर्मेण दत्ता सा विद्या पुत्र नारायणर्षये।
नराय शुद्धभक्ताय सा च विद्या मनोहरा ॥ ४० ॥
नवाक्षरी महाविद्या कामदेवेन सेविता।
तदधीनं सर्वविश्वं पूज्यया विद्यया यया ॥ ४१ ॥
सम्प्राप दाहिकां शक्तिं वह्निश्च विद्यया यया।
नवाक्षरी महाविद्या वायुना परिषेविता ॥ ४२ ॥
विश्वेषां प्राणरूपश्च पूज्यया विद्यया यया।
सर्वाधारश्च पूज्यश्च बलवान् सर्वतोऽभवत् ॥ ४३ ॥

हे वत्स ! धर्म ने उस विद्या को अपने पुत्र नारायण ऋषि को दिया और उनसे उस मनोहर विद्या को शुद्ध भक्त नर ने प्राप्त किया। नवाक्षरी महाविद्या की कामदेव ने पूजा की जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व उनके अधीन हो गया। इसी विद्या के प्रभाव से अग्नि ने दाहिका शक्ति प्राप्त की। इस नवाक्षरी महाविद्या की वायु ने पूजा की और इसके प्रभाव से वे विश्व के प्राणरूप, सर्वाराध्य सबके पूज्य और बलवान् हो गये ॥ ४०-४३ ॥

शेषाधारश्च कूर्मश्च पूज्यया विद्यया यया।
विश्वाधारश्च शेषश्च तया च विद्यया यया ॥ ४४ ॥
धराधरा च सर्वेषां तया च विद्यया सदा।
तयैव विद्यया शुद्धा गङ्गा भुवनपावनी ॥ ४५ ॥
तयैव तुलसी शुद्धा तीर्थपूता बभूव सा।
तया स्वाहा वह्निजाया पितृणां कामिनी स्वधा ॥ ४६ ॥

हे मुने ! इसी विद्या की पूजा के प्रभाव से कूर्म शेष को धारण करते हैं। पुनः इसी के प्रभाव से शेष सदा विश्वाधार बने हैं तथा पृथिवी सबको धारण किये हुए है। इसी विद्या के प्रभाव से भुवनपावनी गङ्गा शुद्ध हुई। इसी से तुलसी शुद्ध और तीर्थपूत हुई। इसी से स्वाहा वह्निजाया और स्वधा पितरों की पत्नी हुई ॥ ४४-४६ ॥

लक्ष्मीर्माया कामवाणी सर्वाद्या प्रणवादिका ।
रासेश्वरी राधिका सा ङेन्ता वह्निप्रियान्तका ॥ ४७ ॥

तत्षोडशी महाविद्या परिपूर्णतमा श्रुतौ ।
कामधेनुस्वरूपा सा सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ४८ ॥

प्रणवादिका (ॐ), लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), काम (क्लीं), वाणी (ऐं), सर्वाद्या (रां), रासेश्वरी, ङेन्ता राधिका (राधिकायै), वह्नि-प्रियान्तका (स्वाहा) से यह मन्त्र बनता है : ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं रां रासेश्वरी स्वाहां । यही षोडशी महाविद्या है जिसे वेदों में परिपूर्णतमा कहा गया है। यह कामधेनुस्वरूपा और सर्वसिद्धिप्रदायिनी है। ॥ ४७-४८ ॥

पुरा सनत्कुमारेण षोडशी परिसेविता ।
सनकेन सनन्देन तथा सनातनेन च ॥ ४९ ॥

शुक्रेण गुरुणा पूज्या सिद्धा व्यासेन सेविता ।
पपौ समुद्रं सोऽगस्त्यः पूज्यया विद्यया यया ॥ ५० ॥

प्राचीनकाल में सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातन द्वारा यह षोडशी विद्या सेवित हुई थी। इसी पूज्या विद्या की सेवा करके दैत्यगुरु शुक्र सिद्ध हो गये। व्यास ने भी इसकी सेवा की थी और इसी के प्रभाव से अगस्त्य ने समुद्र का पान किया था ॥ ४९-५० ॥

रासेश्वरी ङेन्तहीना षोडश्या मुनिपुङ्गव ।
दधीचिना सेविता सा विद्या च द्वादशाक्षरी ॥ ५१ ॥

तया तदस्थि चाव्यर्थमन्त्रमेव बभूव ह ।
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं मुनिरासीन्निरापदः ॥ ५२ ॥
स्वेच्छामृत्युर्मुनिश्चैव जितः कालोऽपि विद्यया ।
देवानां प्रार्थनेनैव तत्याज स कलेवरम् ॥ ५३ ॥
मत्तो मन्त्रं गृहीत्वा च जजाप पुष्करे मुनिः ।
शतवर्षं तपस्तप्त्वा ददर्श परमेश्वरीम् ॥ ५४ ॥

दत्त्वा सा स्वपदं तस्मै गोलोकं च जगाम सा ।
देहं त्यक्त्वा च स मुनिर्गोलोकं प्रययौ पुरा ॥ ५५ ॥

हे मुनिपुङ्गव ! द्वादशाक्षरी विद्या, षोडशी के ङेन्त 'राधिका' शब्द के पूर्व 'रासेश्वरी' से हीन है। इस प्रकार इस विद्या का यह स्वरूप है : 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं रां राधिकायै स्वाहा।' यह द्वादशाक्षरी विद्या दधीचि से सेवित हुई और इसी से उनकी (दधीचि की) अस्थियाँ अव्यर्थ मन्त्र वाली बन गईं और वे मुनि चौदह इन्द्रों का पतन हो जाने की अवधि तक निरापद बने रहे। इसी विद्या के प्रभाव से वे मुनि स्वेच्छामृत्यु की शक्ति प्राप्त कर कालजयी हो गये थे और उन्होंने देवों की प्रार्थना से ही अपने कलेवर का त्याग किया था। उन मुनि ने मुझसे मन्त्रग्रहण करके पुष्कर तीर्थ में उसका जप किया। सौ वर्षों तक तपस्या करने के बाद उन्हें देवी परमेश्वरी का दर्शन प्राप्त हुआ। देवी ने पहले उन्हें अपना लोक प्रदान किया और स्वयं गोलोक चली गईं। इस प्रकार वह मुनि भी पूर्वसमय में देहत्याग करके गोलोक चले गये ॥ ५१-५५ ॥

इत्येवं कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् ।
परमानन्दसन्दोहं वेदेषु च सुदुर्लभम् ॥ ५६ ॥

श्रीकृष्णेनैव कथितं मह्यं भक्ताय भक्तितः ।
मया तुभ्यं प्रदत्तं च प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥ ५७ ॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिना वस्त्रालंकारचन्दनैः ।
नमस्कृत्य परं भक्त्या कवचं धारयेत् सुधीः ॥ ५८ ॥

पठित्वा कवचं दिव्यं परमादरपूर्वकम् ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा लभेत्तस्य शुभाशिषम् ॥ ५९ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार मैंने उस परम अद्‌भुत कवच को बता दिया जो परमानन्द प्रदान करनेवाला और वेदों में भी अत्यन्त दुर्लभ है। इसे श्रीकृष्ण ने मुझ भक्त के लिये भक्ति से कहा था। मैंने इसे तुम्हें दे दिया है परन्तु तुम किसी से मत कहना। विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार

तथा चन्दन से गुरु की पूजा और भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार करके सुधी साधक को कवच धारण करना चाहिये। परम आदरपूर्वक दिव्य कवच का पाठ करके गुरु को दक्षिणा देकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करे। ॥ ५६-५९ ॥

महामूढो नोपदिष्टः कवचं धारयेत् पठेत् ।
निष्फलं तद्भवेत् सर्वं शतलक्षं जपेद्यदि ॥ ६० ॥

उपदिष्टो यदि पठेत् धारयेत् कण्ठदेशतः ।
जले वह्नौ च शस्त्रास्ते मरणं नो भवेद्ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
अनेन कवचेनैव शङ्खचूडः प्रतापवान् ॥ ६२ ॥

युयुधे स मया सार्धं वर्षं च नर्मदातटे ।
न विद्धो मम शूलेन दत्त्वा च कवचं मृतः ॥ ६३ ॥

जो महामूढ बिना उपदिष्ट हुए कवच को धारण करता या पढ़ता है उसका वह सब कृत्य निष्फल जाता है भले ही वह एक करोड़ जप क्यों न करे। उपदिष्ट होकर जो इसका पाठ और कण्ठ देश में इसे धारण करता है उसका जल में, अग्नि में और शस्त्रास्त्र द्वारा भी कभी मरण नहीं होता यह निश्चित है। कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है। इस कवच से ही शङ्खचूड अत्यन्त प्रतापवान हुआ और नर्मदातट पर उसने मुझसे एक वर्ष तक युद्ध किया। मेरे शूल से भी वह विद्ध नहीं हुआ और कवच मुझे दे देने पर ही मृत्यु को प्राप्त हो सका ॥ ६०-६३ ॥

सर्वाण्येव हि दानानि व्रतानि नियमानि च ।
तपांसि यज्ञाः पुण्यानि तीर्थान्यनशनानि च ॥ ६४ ॥

सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः परमेश्वरीम् ॥ ६५ ॥

शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ।

इत्येवं कथितं सर्वं राधिकाकवचं मुने ॥ ६६ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे द्वितीयरात्रे
भक्तिज्ञानकथने कवचप्रकाशनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सभी दान, व्रत, नियम, तप, यज्ञ, पुण्य, तीर्थ तथा अनशन इस कवच की सोलहवीं कला के भी योग्य नहीं हैं। इस कवच को बिना जाने जो परमेश्वरी का भजन करता है उसके लिये एक करोड़ जप से भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता। हे मुने! इस प्रकार मैंने राधिका कवच का सब कुछ बता दिया ॥ ६४-६६ ॥

**इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
द्वितीय रात्र में भक्तिज्ञानकथनोक्त कवच-
प्रकाशन नामक पञ्चम अध्याय समाप्त।**

द्वितीयरात्रे षष्ठोऽध्यायः

अथ राधाप्रशंसा

श्रीमहादेव उवाच ।

जगन्मातुरुपाख्यानं तुभ्यं च कथितं मया ।
सुदुर्लभं सुगुप्तं च वेदेषु च चतुर्षु च ॥ १ ॥
पुराणेष्वितिहासेषु पञ्चरात्रेषु पञ्चसु ।
अतीव पुण्यदं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥
संक्षेपेणैव कथितं राधाख्यानं मनोहरम् ।
कापिलेये पञ्चरात्रे विस्तीर्णमतिसुन्दरम् ॥ ३ ॥

श्री महादेव बोले : जगन्माता का उपाख्यान मैंने तुम्हें बता दिया। यह अत्यन्त दुर्लभ और चारों वेदों में अत्यन्त गुप्त है। यह पुराणों में, इतिहासों में तथा पाँचों पञ्चरात्रों में अत्यन्त पुण्यप्रद, शुद्ध और सम्पूर्ण पापों का नाशक है। इस मनोहर राधाख्यान को मैंने संक्षेप में ही कहा है। कपिल के पञ्चरात्र में इसे अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक तथा अधिक विस्तार से कहा गया है ॥ १-३ ॥

नारायणेन कथितं मुनये कपिलाय च ।
सिद्धक्षेत्रे पुण्यतमे प्रत्यक्षं मम सन्निधौ ॥ ४ ॥
तत्रोक्तं हरिणा सार्द्धं सुश्राव कमलोद्भवः ।
शुश्रुवुर्मुनयः सर्वे चेदमेव परं वचः ॥ ५ ॥

श्रीनारायण ने कपिल मुनि को इसे मेरे सामने ही पुण्यतम सिद्ध-क्षेत्र में बताया था। ब्रह्मा ने भी हरि के साथ वहाँ कही गई इस कथा को सुना था। अन्य सब मुनियों ने भी इस परम कवच को सुना था। ॥ ४-५ ॥

आदौ समुच्चरेद्राधां पश्चात् कृष्णं च माधवम् ।

विपरीतं यदि पठेत् ब्रह्महत्यां लभेद्‌ध्रुवम् ॥ ६ ॥
श्रीकृष्णो जगतां तातो जगन्माता च राधिका ।
पितुः सद्गुणे माता वन्द्या पूज्या गरीयसी ॥ ७ ॥
दैवदोषेण महता ये च निन्दन्ति राधिकाम् ।
वामाचाराश्च मूर्खाश्च पापिनश्च हरिद्विषः ॥ ८ ॥
कुम्भीपाके तप्ततैले तिष्ठन्तिब्रह्मणः शतम् ।
इहैव तद्वंशहानिः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ९ ॥
भवेद्रोगी च पतितो विघ्नस्तस्य पदे पदे ।
हरिणोक्तं ब्रह्मक्षेत्रे मया च ब्रह्मणा श्रुतम् ॥ १० ॥

आदि में राधा का उच्चारण करना चाहिये। उसके बाद 'माधव' या 'कृष्ण' का उच्चारण करना चाहिये। जो इसके विपरीत पढ़ता है उसे निश्चित रूप से ब्रह्महत्या का पाप लगता है। श्रीकृष्ण जगत के पिता और राधिका जगन्माता हैं। पिता से माता सौगुनी अधिक महत्त्वपूर्ण, पूजनीय और वन्दनीय है। यदि दैवदोष (पूर्वकर्मों के दोष) से कोई राधिका की निन्दा करता है तो वह वाममार्गी, मूर्ख, पापी तथा हरिद्वेषी है। ऐसा व्यक्ति कुम्भीपाक नरक के तप्त तेल में सौ ब्रह्माओं की आयु पर्यन्त पकता रहता है; उसके वंश की हानि होती है और उसका सर्वनाश हो जाता है। वह रोगी और पतित होकर पग-पग पर विघ्न प्राप्त करता है। हरि ने ब्रह्मक्षेत्र में ब्रह्मा से यह कहा था और मैंने ब्रह्मा से सुना है ॥ ६-१० ॥

त्रैलोक्यपावनीं राधां सन्तोऽसेवन्त नित्यशः ।
यत्पादपद्मे भक्त्याऽर्घ्यं नित्यं कृष्णो ददाति च ॥ ११ ॥
यत्पादपद्मनखरे पुण्ये वृन्दावने वने ।
सुस्निग्धालक्तकरसं प्रेम्णा भक्त्या ददौ परा ॥ १२ ॥
राधाचर्विततताम्बूलं चखाद मधुसूदनः ।
द्वयोश्चैको न भेदश्च दुग्धधावल्ययोर्यथा ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण जिनके पादपद्म में भक्तिपूर्वक नित्य अर्घ्य देते हैं उन्हों

त्रैलोकपावनी राधा की सन्तजन भी नित्थ सेवा करते हैं। पूर्वसमय में पुण्य वृन्दावन के वनों में श्रीकृष्ण ने अत्यन्त प्रेम और भक्तिपूर्वक राधा के चरणकमल के नखों में अलक्तक लगाया था। उन मधुसूदन ने राधा द्वारा चर्वित ताम्बूल भी खाया था। अत: दोनों में उसी प्रकार कोई भेद नहीं है जिस प्रकार दूध और उसकी धवलता अविभेद्य हैं। ॥ ११-१३ ॥

श्रीकृष्णोरसि या राधा यद्वामांशेन सम्भवा ।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे सा च नारायणोरसि ॥ १४ ॥
सरस्वती सा च देवी विदुषां जननी परा ।
क्षीरोदसिन्धुकन्या सा विष्णोरुरसि मायया ॥ १५ ॥
सावित्री ब्रह्मणो लोके ब्रह्मवक्षःस्थलस्थिता ।
पुरा सुराणां तेजःसु साविर्भूत्वा दया हरेः ॥ १६ ॥
स्वयं मूर्तिमती भूत्वा जघान दैत्यसङ्घकान् ।
ददौ राज्यं महेन्द्राय कृत्वा निष्कण्टकं पदम् ॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण के वक्ष:स्थल पर जो राधा हैं और जो उनके वामांश से उत्पन्न हुई हैं, वही महालक्ष्मो हैं जो वैकुण्ठ में श्रीनारायण के वक्ष:स्थल पर रहती हैं। वही विद्वानों की परम जननी देवी सरस्वती हैं जो माया से समुद्रकन्या के रूप में उत्पन्न होकर विष्णु के वक्ष:स्थल पर निवास करती हैं। प्राचीनकाल में श्रीहरि की दया से तथा देवों के तेज से आविर्भूत हो उन्हीं ने स्वयं मूर्तिमती होकर दैत्यदलों का संहार और महेन्द्र को निष्कण्टक राज्यपद प्रदान किया था॥ १४-१७ ॥

कालेन सा भगवती विष्णु माया सनातनी ।
वभूव दक्षकन्या च परं कृष्णाज्ञया मुने ॥ १८ ॥
त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे ममैव निन्दया मुने ।
पितॄणां मानसी कन्या मेना कन्या बभूव सा ॥ १९ ॥
आविर्भूता पर्वते सा तेनेयं पार्वती सती ।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ २० ॥

बुद्धिस्वरूपा परमा कृष्णस्य परमात्मनः ।
सम्पद्रूपेन्द्रगेहे सा स्वर्गलक्ष्मीस्वरूपिणी ॥ २१ ॥
मर्त्ये लक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ।
पृथक्पृथक् च सर्वत्र ग्रामेषु ग्रामदेवता ॥ २२ ॥
जले सत्यस्वरूपा सा गन्धरूपा च भूमिषु ।
शब्दरूपा च नभसि शोभारूपा निशाकरे ॥ २३ ॥
प्रभारूपा भास्करे सा नृपेन्द्रेषु च सर्वतः ।
वह्नौ सा दाहिका शक्तिः सर्वशक्तिश्च जन्तुषु ॥ २४ ॥
सृष्टिकाले च सा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
माता भवेन्महाविष्णोः स एव च महान्विराट् ॥ २५ ॥
यस्य लोमसु विश्वानि तेन वासुः प्रकीर्त्तितः ।
तस्य देवोऽपि श्रीकृष्णो वासुदेव इतीरितः ॥ २६ ॥

हे मुने ! समय आने पर श्रीकृष्ण की आज्ञा से वही सनातनी भगवती विष्णुमाया दक्ष प्रजापति की कन्या हुई । हे मुने ! अपने पिता के यज्ञ में मेरी निन्दा के कारण वही देहत्याग करके पितरों की मानसी कन्या मेना के रूप में उत्पन्न हुई । वह पर्वत पर आविर्भूत हुई इसी कारण वह सती पार्वती कहलायीं । वही सर्वशक्तिस्वरूपा और दुर्गतिनाशिनी दुर्गा हैं । वही परमात्मा श्रीकृष्ण की परमबुद्धिस्वरूपा; इन्द्र गृह में सम्पत्तिस्वरूपा स्वर्गलक्ष्मीस्वरूपिणी, मृत्युलोक के राजगृहों में लक्ष्मी और घर-घर में गृहलक्ष्मी हैं । सर्वत्र ग्रामों में वही पृथक्-पृथक् ग्राम देवता हैं । जल में वह सत्यस्वरूपा, भूमि पर गन्धरूपा, नभ में शब्दरूपा, चन्द्रमा में शोभारूपा और सूर्य तथा नृपेन्द्रों में सर्वत्र प्रभारूपा हैं । वही अग्नि में दाहिका शक्ति के रूप में और समस्त प्राणियों में सर्वशक्ति के रूप में स्थित हैं । सृष्टिकाल में वही देवी मूल प्रकृति ईश्वरी तथा उन महाविष्णु की माता हैं जो स्वयं महान् और विराट हैं । महाविष्णु के प्रत्येक रोम में अनेक विश्व निवास करते हैं अतः उन्हें वासु कहते हैं और उनके भी देव होने के कारण श्रीकृष्ण को वासुदेव कहते हैं ॥ १८-२६ ॥

महतो वै सृष्टिविधौ चाहङ्कारोऽभवन्मुने ।
ततो हि रूपतन्मात्रं शब्दतन्मात्र इत्यतः ॥ २७ ॥
ततो हि स्पर्शतन्मात्रमेवं सृष्टिक्रमो मुने ।
सृष्टिबीजस्वरूपा सा नहि सृष्टिस्तया विना ॥ २८ ॥
विना मृदं घटं कर्तुं कुलालश्च न च क्षमः ।
विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ॥ २९ ॥

हे मुने ! सृष्टि के आरम्भ में महत्तत्व उत्पन्न हुआ । फिर महत् से अहंकार, अहंकार से रूपतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा से शब्दतन्मात्रा, और शब्द तन्मात्रा से स्पर्शतन्मात्रा उत्पन्न हुए । यही सृष्टिक्रम है । वह देवी ही सृष्टि की बीजस्वरूपा है । उसके बिना सृष्टि हो हो नहीं सकती—जैसे मिट्टी के बिना कुम्हार घड़ा बनाने में समर्थ नहीं हो सकता । स्वर्ण के बिना कुम्हार भी कुण्डल बनाने में असमर्थ होता है ॥२७-२९॥

एवं ते कथितं सर्वमाख्यानमतिदुर्लभम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकदुःखहरं परम् ॥ ३० ॥
आराध्य सुचिरं कृष्णं यद्यत्कार्यं भवेन्नृणाम् ।
राधोपासनया तच्च भवेत् स्वल्पेन कालतः ॥ ३१ ॥

यह सब मैंने अतिदुर्लभ आख्यान बताया है । यह आख्यान जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा दुःखों का परम निवारक है । अत्यधिक काल तक श्रीकृष्ण की आराधना करने से मनुष्यों के जो कार्य बनते हैं वही कार्य स्वल्प काल में ही राधा की उपासना से सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३०-३१ ॥

तस्यापि मायया सार्धं सर्वं विश्वं महामुने ।
विष्णुमाया भगवती कृपां यं यं करोति च ॥ ३२ ॥
स च प्राप्नोति कृष्णं च तद्भक्तिदास्यमीप्सितम् ॥ ३३ ॥

हे महामुने ! उन्हीं (राधा) की माया से यह सम्पूर्ण विश्व बना है ।

भगवती विष्णुमाया जिस-जिस पर कृपा करती हैं वह कृष्ण को, तथा अभीष्ट उनकी भक्ति और उनके दास्य को प्राप्त करता है ॥३२-३३॥

इत्येवं कथितं सर्वं परं च सुखमोक्षदम् ।
नीतिसारं च शुभदं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे द्वितीयरात्रे
शिवनारदसंवादे भक्तिज्ञानकथने राधाप्रशंसा
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार मैंने परम सुख और मोक्षदायक, शुभद और नीतिसार सब ज्ञान तुम्हें बता दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो। ॥ ३४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
द्वितीय रात्र में शिवनारद संवादोक्त
भक्तिज्ञानकथन में राधाप्रशंसा
नामक षष्ठ अध्याय समाप्त।

द्वितीयरात्रे सप्तमोऽध्यायः

श्रीनारद उवाच ।

भक्तिज्ञानं श्रुतं नाथ परमाद्भुतमीप्सितम् ।
मुक्तिज्ञानविधानं च विस्तीर्णं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

श्री नारद बोले : हे नाथ ! मैंने परम ईप्सित और अद्‌भुत भक्ति-ज्ञान को सुना । अब आप विस्तारपूर्वक मुक्तिज्ञान के विधान को कहिये ॥ १ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

लीनता हरिपादाब्जे मुक्तिरित्यभिधीयते ।
इदमेव हि निर्वाणं वैष्णवानामसम्मतम् ॥ २ ॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यमित्यतः क्रमात् ।
भोगरूपं च सुखदमिति मुक्तिचतुष्टयम् ॥ ३ ॥

श्री महादेव बोले : हरि के चरण कमल में लीनता को ही मुक्ति कहा जाता है । किन्तु इस प्रकार की मुक्ति को वैष्णवों की सम्मति प्राप्त नहीं है । मुक्ति क्रमशः सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य और सारूप्य—इन चार वर्गों से युक्त है । मुक्ति चतुष्टय के ये चारों विभाग उत्तरोत्तर क्रमशः एक दूसरे से अधिक सुखद और भोगरूप हैं ॥ २-३ ॥

श्रीहरेर्भक्तिर्दास्यं च सर्वमुक्तेः परं मुने ।
वैष्णवानामभिमतं सारात्सारं परात्परम् ॥ ४ ॥
काश्यां च मरणं पुत्र परं निर्वाणकारणम् ।
दक्षकर्णे मृत्युकाले मयोक्तं मन्त्रमेव च ॥ ५ ॥
निर्वाणमोक्षदं वत्स कर्ममूलनिकृन्तनम् ।
निर्वाणमोक्षमेवेदं मोक्षविद्भिः प्रकीर्त्तितम् ॥ ६ ॥

हे मुने ! श्रीहरि की भक्ति और उनका दास्य सब मुक्तियों से श्रेष्ठ

और वैष्णवों के मत से वही परात्पर सारों का सार है। हे पुत्र ! काशी में मरण परम निर्वाणकारक है। जो यहाँ (काशी में) मरता है उसके मृत्युकाल के समय मैं उसके दाहिने कान में मन्त्र देता हूं और वही मन्त्र निर्वाण तथा मोक्षप्रद और कर्मों के मूल का नाश करनेवाला है। मोक्षविद् इसी को निर्वाण मोक्ष कहते हैं ॥ ४-६ ॥

गङ्गायां च जले मुक्तिः क्षेत्रे नारायणे मुने ।
ज्ञानतश्चेत् त्यजेत् प्राणान् कृष्णस्मरणपूर्वकम् ॥
जले स्थले चान्तरीक्षे गङ्गासागरसंगमे ॥ ७ ॥

हे मुने ! यदि कोई ज्ञानपूर्वक कृष्ण का स्मरण करता हुआ प्राण त्याग करता है तो चाहे वह गङ्गाजल में, या नारायण क्षेत्र में अथवा गङ्गासागर संगम, जल, स्थल या अन्तरिक्ष में कहीं भी क्यों न हो उसकी मुक्ति अवश्य होती है ॥ ७ ॥

नारद उवाच ।

प्राणिनां येन मन्त्रेण मुक्तिर्भवति शाश्वती ।
वाराणस्यां त्वयोक्तं च तन्मां कथितुमर्हसि ॥ ८ ॥

अन्यथाऽहं कृपासिन्धो सद्यस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ।
मां भक्तमनुरक्तं च नाथ मा कुरु वञ्चनाम् ॥ ९ ॥

नारद जी बोले : वाराणसी में आपके जिस मन्त्र के कहने से प्राणियों को शाश्वती मुक्ति प्राप्त होती है वह मन्त्र कृपा कर मुझे बतायें। हे कृपासिन्धो ! अन्यथा मैं सद्यः देहत्याग कर दूंगा। हे नाथ ! मुझ अनुरक्त भक्त की आप वञ्चना न करें ॥ ८-९ ॥

अथ मुक्तिज्ञान कथनम् ।
श्रीमहादेव उवाच ।

गुप्तं वेदपुराणेषु चेतिहासेषु नारद ।
पञ्चरात्रेषु सर्वेषु कथं वक्ष्यामि मां वद ॥ १० ॥

अहं हत्याभयेनैव वक्ष्यामि गोपनं परम् ।
श्रूयतां दक्षकर्णे च न वक्तव्यं कदाचन ॥ ११ ॥

मुक्तिज्ञान कथन

श्री महादेव जी बोले : हे नारद ! तुम्हीं कहो कि जो वेद, पुराण, इतिहास तथा पञ्चरात्र में भी गुप्त है उसे मैं कैसे बताऊँ ? यह तो मैं हत्या के भय से ही इस परम गोपनीय विषय को बता रहा हूँ। इसे तुम दाहिने कान में सुनो और कभी किसी अन्य से न कहना ॥१०-११॥

मन्त्रोऽयं मन्त्रसाराद्यः सर्वाद्यबीजमध्यमः ।
पञ्चवर्गाद्द्वितीयश्च वर्णश्च गुरुमान् भवेत् ॥ १२ ॥

पञ्चमे पञ्चमो वर्णो विष्णुमान् ङेन्त एव सः ।
जगत्पूतप्रियान्तश्च मन्त्रः सप्ताक्षरो मुने ॥ १३ ॥

मन्त्र इस प्रकार है : मन्त्रसार आदि में (ॐ), सर्वाद्यबीज मध्य में (रां), पञ्चम वर्ग (पवर्ग) के बाद द्वितीय वर्ण 'र', गुरुमान सहित (रा), पञ्चम (पवर्ग) का पञ्चम वर्ण 'म' विष्णुमान और ङेन्त (माय) और अन्त में जगत्पूतप्रिया (स्वाहा) लगाने से, हे मुने ! यह सप्ताक्षर मन्त्र बनता है : ॐ रां रामाय स्वाहा ॥ १२-१३ ॥

प्रयागे मुण्डनं चैव परं निर्वाणकारणम् ।
दोलायमानं गोविन्दं पुण्ये वृन्दावने वने ॥ १४ ॥

दृष्टिमात्रेण विप्रेन्द्र परं निर्वाणकारणम् ।
निर्वाणं दृष्टिमात्रेण मञ्चस्थं मधुसूदनम् ॥ १५ ॥

रथस्थं वामनं चैव निर्वाणं दृष्टिमात्रतः ।
कार्त्तिकीपुर्णिमायां च राधार्चादृष्टिपूजनम् ॥ १६ ॥

यत्र तत्र न नियमो परं निर्वाणकारणम् ।
परं शिवचतुर्दश्यां शिवं संस्थाप्य पूजनम् ॥ १७ ॥
तद्दिनेऽनशनं विप्र परं निर्वाणकारणम् ।
शुभाशुभं च यत्कर्म तत्तत्कर्मनिकृन्तनम् ॥ १८ ॥

हे विपेन्द्र ! प्रयाग में मुण्डन कराना परम निर्वाणकारक है। पुण्य वृन्दावन के वनों में झूला झूलते हुए गोविंद के दर्शन मात्र से परम निर्वाण

हो जाता है। मञ्च पर बैठे मधुसूदन के दर्शनमात्र से निर्वाण हो जाता है। इसी प्रकार रथस्थ वामन के दर्शन मात्र से निर्वाण हो जाता है। कार्तिकी पूर्णिमा को राधा की अर्चा, पूजा और दर्शन, चाहे वह किसी भी स्थान पर किया जाय, परम निर्वाणकारक होता है। शिव चतुर्दशी को शिव की स्थापना करके पूजन करना और उस दिन व्रत रखना, हे विप्र! परम निर्वाणकारक और शुभाशुभ जो कर्म हों उन सबका नाश करनेवाला होता है॥ १४-१८॥

स्मरणं श्रीहरेः पादपद्मं निर्वाणकारणम् ।
वैशाख्यां पुष्करस्नानं परं निर्वाणकारणम् ॥ १९ ॥

गङ्गासागरतोये च मृत्युर्निर्वाणकारणम् ।
कार्त्तिक्यां च शिलादानं पृथ्वीविपुलदानकम् ॥ २० ॥

कार्त्तिके तुलसीदानं परं निर्वाणकारणम् ।
ब्रह्मसंस्थापनं चैव परं निर्वाणकारणम् ॥ २१ ॥

कन्यादानं वैष्णवाय परं निर्वाणकारणम् ।
परं निर्वाणबीजं च वैष्णवोच्छिष्टभक्षणम् ॥ २२ ॥

विष्णुमन्त्रोपासकानां द्विजानां च द्विजर्षभ ।
तत्पादोदकभक्षं च परं निर्वाणकारणम् ॥ २३ ॥

श्रीहरि के पादपद्म का स्मरण निर्वाणकारक है। वैशाख मास में पुष्कर तीर्थ में स्नान निर्वाणकारक है। गङ्गासागर संगम पर मृत्यु निर्वाणकारक है। कार्तिक मास में अन्न, शिला और भूमि का दान तथा तुलसी का दान निर्वाणकारक है। ब्रह्म संस्थापन भी परम निर्वाणदायक है। वैष्णव को कन्या का दान करना परम निर्वाणकारक है। वैष्णव का उच्छिष्ट खाना परम निर्वाणकारक है। हे द्विजश्रेष्ठ! विष्णु के मन्त्र के उपासक द्विज के पादोदक का पान करना परम निर्वाणकारक है। ॥ १९-२३ ॥

स्वर्णशृङ्गनिबद्धानां गवां लक्षप्रदानकम् ।
पृथ्वीदानं च विप्रेन्द्र परं निर्वाणकारणम् ॥ २४ ॥

परे नारायणक्षेत्रे लक्षनाम हरेर्जपेत् ।
नाशनं सर्वपापानां परं निर्वाणकारणम् ॥ २५ ॥

शिवलक्ष्यार्चनं भक्त्या क्षेत्रे नारायणे मुने ।
विधिवद्दक्षिणादानं परं निर्वाणकारणम् ॥ २६ ॥

परं राधेशयोर्मन्त्रग्रहणं वैष्णवाद्द्विजात् ।
शुद्धे नारायणक्षेत्रे परं निर्वाणकारणम् ॥ २७ ॥

हे विपेन्द्र ! एक लाख गायों की सींघों को स्वर्ण में मढ़वा कर दान करना और पृथिवी का दान करना परम मोक्षप्रद है। श्रेष्ठ नारायण क्षेत्र में हरि के नाम का एक लाख जप सर्व पापों का विनाशक और मोक्षदायक होता है। हे मुने ! नारायण क्षेत्र में भक्तिपूर्वक श्री शिव तथा लक्ष्मी की अर्चना करना और विधिवत् दक्षिणा देना परम मोक्षदायक है। वैष्णव द्विज से शुद्ध नारायण क्षेत्र में श्री राधाकृष्ण के मन्त्र को ग्रहण करना परम मोक्षदायक है ॥ २४-२७ ॥

ग्रन्थाष्टादशसाहस्रं द्वादशस्कन्धसम्मितम् ।
शुकप्रोक्तं भागवतं श्रुत्वा निर्वाणतां व्रजेत् ॥ २८ ॥

पुरा भगवता प्रोक्तं कृष्णेन ब्रह्मणे मुने ।
पुराणसारं शुद्धं तत्तेन भागवतं विदुः ॥ २९ ॥

बारह स्कन्धों में विभक्त और अट्ठारह हजार श्लोकों से युक्त शुकप्रोक्त श्रीमद्भागवत का श्रवण करने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। हे मुने ! प्राचीनकाल में भगवान् कृष्ण ने समस्त पुराणों के शुद्धसार-स्वरूप इस पुराण को ब्रह्मा को बताया था और इसी कारण इसको भागवत कहा जाता है ॥ २८-२९ ॥

ब्रह्मवैवर्त्तश्रवणं परं निर्वाणकारणम् ।
यत्रैव विवृतं ब्रह्म शुद्धनिर्गुणमीप्सितम् ॥ ३० ॥

ब्राह्मप्रकृतिगाणेशकृष्णाविर्भाववर्णनम् ।
चतुःखण्डपरिमितं ब्रह्मवैवर्त्तमीप्सितम् ॥ ३१ ॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का श्रवण भी परम निर्वाणकारक है। इसमें शुद्ध,

निर्गुण और सबका ईप्सित ब्रह्म विवृत है। इसमें चार खण्डों में क्रमशः ब्रह्मा, प्रकृति, गणेश और कृष्ण के आविर्भाव का वर्णन है और इसी से इसे ईप्सित ब्रह्मवैवर्त्त कहते हैं ॥ ३०-३१ ॥

पराशरकृतं पुण्यं धन्यं विष्णुपुराणकम् ।
भक्त्या तच्छ्रवणं वत्स परं निर्वाणकारणम् ॥ ३२ ॥

पराशर कृत विष्णुपुराण पुण्य और धन्य है। हे वत्स ! इसका भक्तिपूर्वक श्रवण परम निर्वाणकारक है ॥ ३२ ॥

यत्र तत्र दिने वत्स हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ।
परं निर्वाणबीजं च श्रीकृष्णव्रतपूजनम् ॥ ३३ ॥

हे वत्स ! किसी भी दिन हरिनाम का कीर्तन, श्रीकृष्ण का व्रत तथा पूजन परम निर्वाणकारक है ॥ ३३ ॥

यद्यत्कृतं सतां कर्म कृष्णे भक्त्या तदर्पणम् ।
कर्मनिर्मूलनं तच्च स्मरणं मुक्तिकारणम् ॥ ३४ ॥

सज्जनों का जो जो कृतकर्म है उस सबको भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण को अर्पण करना कर्ममूलविनाशक, और श्रीकृष्ण का स्मरण मुक्तिकारक है ॥ ३४ ॥

यदेकशब्दश्रवणं पञ्चरात्रेषु पञ्चसु ।
उपदिष्टं ब्राह्मणाच्च परं निर्वाणकारणम् ॥ ३५ ॥

पतिव्रतानां भक्त्या च भर्तुश्चरणसेवनम् ।
द्विजार्चनं च शूद्राणां परं निर्वाणकारणम् ॥ ३६ ॥

चतुर्णामपि वर्णानां गुरुकृष्णार्चनं परम् ।
द्विजानां वैष्णवानां च सेवनं मुक्तिकारणम् ॥ ३७ ॥

पाँचों पञ्चरात्रों में से किसी के भी एक शब्द का ब्राह्मण द्वारा उपदेश रूप में श्रवण परम निर्वाणकारक है। पतिव्रताओं के लिये पति के चरणों की भक्तिपूर्वक सेवा करना मुक्तिदायक है। शूद्रों के लिये ब्राह्मण की अर्चना करना निर्वाणदायक है। चारों वर्णों के परम गुरु श्रीकृष्ण

की अर्चना करना मुक्तिदायक है। ब्राह्मणों और वैष्णवों की सेवा करना भी मुक्तिकारक है॥ ३५-३७॥

आषाढीकार्त्तिकीमाघीवैशाखीपूर्णिमासु च।
तीर्थस्नानं प्रदानं च परं निर्वाणकारणम्॥ ३८॥

पितृमातृगुरुणां च सेवनं मुक्तिकारणम्।
निग्रहश्च हृषीकाणां केवलं मुक्तिकारणम्॥ ३९॥

स्वधर्माचरणं शुद्धं विधर्माच्च निवर्तनम्।
वेदोक्ताचरणं विप्र परं निर्वाणकारणम्॥ ४०॥

दानं हिंसाविहीनं च कृतं चानशनं मुने।
निर्लिप्तं शोभनं कर्म परं निर्वाणकारणम्॥ ४१॥

देवानां सात्त्विकी पूजा शुभदा मुक्तिदा मुने।
अहिंसा परमो धर्मः परं निर्वाणकारणम्॥ ४२॥

आषाढी, कार्तिकी, माघी और वैशाखी पूर्णिमा को तीर्थस्नान और दान परम निर्वाणकारक है। पिता, माता तथा गुरु का सेवन मुक्तिकारक है। इन्द्रियों का निग्रह करना मात्र भी मुक्तिकारक है। विधर्म से विमुख होकर स्वधर्म का पालन तथा वेदोक्त आचरण करना, हे विप्र! परम मुक्तिदायक है। हे मुने! दान देना, हिंसाविहीन होना, व्रत करना और निर्लिप्त भाव से शुभकारक कर्म करना परम निर्वाणकारक है। हे मुने! देवों की सात्विकी पूजा शुभकारक और मुक्तिकारक है। अहिंसा का पालन परम धर्म और परम निर्वाणकारक है॥ ३८-४२॥

सत्यत्रेताद्वापरेषु संन्यासग्रहणं सताम्।
दण्डग्रहणमात्रेण परं निर्वाणकारणम्॥ ४३॥

कलौ दण्डग्रहेणैव परं निर्वाणकारणम्।
परं वेदविरुद्धं च विपरीताय कल्पते॥ ४४॥

पुत्रबन्धुविहीनानां पालनं च स्वयोषिताम्।
परस्त्रीवर्जनं चैव परं निर्वाणकारणम्॥ ४५॥

तत्पालने लभेन्मोक्षं ब्रह्महत्यां च वर्जनम् ।
अनाथाभगिनीकन्यावधूना परिपालनम् ॥ ४६ ॥
केवलं मोक्षबीजं च तत्त्यागे नरकं ध्रुवम् ।
शिशूनामपि पुत्राणां भ्रातॄणां च तथैव च ॥ ४७ ॥
परित्यागे च नरकं पालनं मोक्षकारणम् ।
मन्त्रं कन्याप्रदानं च सुविप्रे मोक्षकारणम् ॥ ४८ ॥
जीवाभयप्रदानं च शरणागतरक्षणम् ।
अज्ञानाय ज्ञानदानं परं निर्वाणकारणम् ॥ ४९ ॥

सतयुग, त्रेता और द्वापर युगों में सन्तों द्वारा संन्यासी बनकर दण्ड ग्रहण करना मात्र परम निर्वाणकारक है। इस कलियुग में दण्ड-ग्रहण मात्र ही परम निर्वाणकारक है; किन्तु वेद विरुद्ध जो कार्य होता है वह विपरीत फलदायक होता है। पुत्र तथा बन्धुविहीन अपनी पत्नी का पालन करना और परस्त्रीवर्जन परम निर्वाणकारक है। ब्रह्महत्या का वर्जन और ब्राह्मणों का पालन परम मोक्षदायक है। अनाथ भगिनी कन्या और वधु का पालन मोक्षदायक और इनका त्याग करना निश्चित-रूप से नरक का कारण होता हैं। शिशु, पुत्र और अपने छोटे भाई का परित्याग करने से नरक तथा इनका पालन करना मोक्षदायक होता है। श्रेष्ठ ब्राह्मण को कन्या और मन्त्र प्रदान करना मोक्षकारक है। जीवों को अभयदान, शरणागत का रक्षण और अज्ञानी को ज्ञानदान परम निर्वाणदायक है ॥ ४३-४९ ॥

मुक्तिज्ञानं च कथितं संक्षेपेण यथागमम् ।
कापिले पञ्चरात्रेषु कृष्णेनोक्तं सुविस्तरम् ॥ ५० ॥

यह मैंने आगम के अनुसार संक्षेप में मुक्तिज्ञान बता दिया है। कपिल कृत पञ्चरात्र में श्रीकृष्ण ने अधिक विस्तार से कहा है ॥ ५० ॥

आध्यात्मिकं च कथितं प्रथमं ज्ञानमीप्सितम् ।
भक्तिज्ञानं द्वितीयं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ५१ ॥
मुक्तिज्ञानं तृतीयं च कथितं तद्यथाक्रमम् ।

ज्ञानद्वयं चावशिष्टं यौगिकं मायिकं मुने ॥ ५२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे शिवनारदसंवादे
द्वितीयरात्रे मुक्तिज्ञानकथने
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

प्रथमतः मैंने तुम्हें ईप्सित आध्यात्मिक ज्ञान के सम्बन्ध में बताया था। द्वितीयताः मैंने श्रीकृष्ण की भक्ति का ज्ञान बताया। तृतीयतः, अभी मैंने तुम्हें मुक्तिज्ञान भी यथाक्रम बता दिया। अब मैं तुम्हें योगिक और मायिक—इन दोनों ज्ञानों के सम्बन्ध में बताऊँगा। ॥ ५१-५२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में शिवनारद-
संवादोक्त द्वितीय रात्र में मुक्तिज्ञान कथन
नामक सप्तम अध्याय समाप्त।

द्वितीयरात्रे अष्टमोऽध्यायः

अथ योगज्ञान कथनम्

श्रीमहादेव उवाच ।

योगज्ञानं च दुर्बोधमसतां विषमं परम् ।
श्रूयतामिदमेवेति वक्ष्यामि च यथागमम् ॥ १ ॥

श्री महादेव जी बोले : योगज्ञान दुर्बोध है और दुर्जनों के लिए तो यह अत्यन्त विषम है । मैं आगम के अनुसार इसे कहूंगा, तुम सुनो ॥१॥

अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥ २ ॥
दूरश्रवणमिष्टार्थसाधनं सृष्टिपत्तनम् ।
मनोयायित्वमेवेदं परकायप्रवेशनम् ॥ ३ ॥
प्राणिनां प्राणदानं च तेषां प्राणापहारकम् ।
कायव्यूहं च वाक्सिद्धं सिद्धं सप्तदश स्मृतम् ॥ ४ ॥
कृष्णभक्तिव्यवहितं भक्तानां नाभिवाञ्छितम् ।
कृष्णवेतनभुग्भोक्तुं करोति दासनां मुने ॥ ५ ॥

अणिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व, कामावसायिता, दूरश्रवण, इष्टार्थसाधन, सृष्टिपत्तन, मनोयायित्व, परकायप्रवेशन, प्राणियों को प्राणदान, प्राणियों का प्राणहरण, कायव्यूह, वाक्सिद्धि—ये सत्रह सिद्धियां कही गई हैं । ये सब कृष्णभक्ति में व्यवधान डालने वाली हैं, अतः भक्तों के लिगे अभीष्ट नहीं हैं । हे मुने ! कृष्णभक्त तो कृष्ण की भक्ति और उनके दास्य भाव को ही चाहता है ॥ २-५ ॥

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् ।
विशुद्धमपि चाज्ञाख्यं षट्चक्रं परिकीर्त्तितम् ॥ ६ ॥

शक्तिकुण्डलिनीयुक्तं स्वे स्वे स्थाने स्थितं मुने ।
योगोपयुक्तं नियतं योगविद्भिः प्रकीर्त्तितम् ॥ ७ ॥

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, तथा आज्ञा—ये षट्चक्र कहे गये हैं। हे मुने ! ये चक्र कुण्डलिनी शक्ति से युक्त होकर स्व-स्व स्थान पर स्थित हैं। योग के विद्वानों नें इन्हें नियत योगोपयुक्त कहा है ॥ ६-७ ॥

मेध्या सा मनसा युक्ता सुनिद्राजननी नृणाम् ।
इडा सा मनसा युक्ता प्राणिनां क्षुद्विवर्धिनी ॥ ८ ॥
पिङ्गला मनसा युक्ता तृष्णा माता च प्राणिनाम् ।
सुषुम्णा मनसा युक्ता निद्राभङ्गाय कल्पते ॥ ९ ॥
चञ्चला मनसा युक्ता सम्भोगेच्छाविवर्द्धिनी ।
सुस्थिरा मनसा युक्ता नृणामेव विचेतनी ॥ १० ॥
मनश्च नाडीषट्केषु क्रमेणैव भ्रमेदहो ।
अत्र नास्ति यथासंख्यं स्वेच्छाधीनं च चञ्चलम् ॥ ११ ॥

मेध्या नाडी वह है जो मन से युक्त होकर प्राणियों में श्रेष्ठ निद्रा उत्पन्न करती है। ईडा वह है जो मन से युक्त होनें पर प्राणियों में तीव्र क्षुधावर्धन करती है। पिङ्गला मन से युक्त होकर प्राणियों में तृष्णा की जननी होती है। सुषुम्णा मन से युक्त होकर निद्राभङ्ग कर देती है। चञ्चला मन से युक्त होकर सम्भोगेच्छा की वृद्धि करतो है। सुस्थिरा मन से युक्त होकर मनुष्य में विचेतना उत्पन्न करती है। मन इन छः नाडियों में क्रम से भ्रमण करता रहता है; परन्तु इसमें कोई यथा संख्या व्यवस्था नहीं है—अर्थात् मन किसमें कितनी देर भ्रमण करेगा इस विषय में कोई नियम नहीं है। मन तो स्वेच्छाधीन और चञ्चल है ॥ ८-११ ॥

योनिशिश्नोपरिस्थानं मूलाधारस्य नारद ।
स्वाधिष्ठानं नाभिदेशे मणिपूरं च वक्षसि ॥ १२ ॥
अनाहतं तदूर्ध्वं च विशुद्धं कण्ठदेशतः ।
आज्ञाख्यं चक्षुषोर्मध्ये चक्रस्थानं प्रकीर्त्तितम् ॥ १३ ॥

चक्रों की स्थिति का वर्णन

हे नारद ! योनि और शिश्न के ऊपर मूलाधार का स्थान है। स्वाधिष्ठान नाभि देश में और मणिपूर वक्ष:स्थल में स्थित है; उसके ऊपर अनाहत का स्थान है। विशुद्ध चक्र कण्ठदेश में स्थित है। दोनों चक्षुओं के मध्य आज्ञाचक्र का स्थान कहा गया है ॥१२-१३॥

मूलाधारीकसीडा सा स्वाधिष्ठाने च पिङ्गला।
सुषुम्णा मणिपूरे सा सुस्थिरा साप्यनाहते ॥ १४ ॥
चञ्चला सा विशुद्धे च मेध्याख्या परिकीर्त्तिता।
नाडिस्थानं च कथितं योगविद्भिः प्रकीर्त्तितम् ॥ १५ ॥

नाडियों का स्थान

इडानडी मूलाधार में और पिङ्गला स्वाधिष्ठान में स्थित है। सुषुम्णा मणिपूर में और सुस्थिरा अनाहत चक्र में स्थित है। चञ्चला और मध्या विशुद्ध चक्र में स्थित कही गई हैं। योगविदों ने इस प्रकार नाडियों की स्थितियों को कहा है ॥ १४-१५ ॥

नाडीयुक्तेषु चक्रेषु शश्वद्वायुश्चरेदहो।
बद्धो भवति स्वाज्ञाख्ये ततो मृत्युश्च प्राणिनाम् ॥ १६ ॥
योगी च बद्धनिश्वासो वायुधारणया मुने।
तस्य मृत्युश्च न भवेत् साध्यवायुर्महान् वशी ॥ १७ ॥

अहो ! नाडीयुक्त चक्रों में वायु निरन्तर विचरता रहता है; किन्तु जब वह आज्ञा चक्र में बद्ध हो जाता है तब प्राणियों की मृत्यु हो जाती है। हे मुने ! योगी इस वायु को निश्वासवद्ध कर धारण कर लेता है अत: वायु पर इस प्रकार नियन्त्रण कर लेने से उसको मृत्यु नहीं होती। वायु को इस प्रकार नियन्त्रित करना भी चाहिये ॥ १६-१७ ॥

वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृदां च मनसस्तथा।
वायुस्तम्भं बहुविधं योगी जानाति नारद ॥ १८ ॥

हे नारद ! वह्निस्तम्भ, जलस्तम्भ, मृदास्तम्भ, मन:स्तम्भ तथा वायुस्तम्भ आदि अनेक प्रकार के स्तम्भनों को योगी जानता है ॥१८॥

सहस्रदलपद्मं च सर्वेषां मस्तके मुने।

तत्रैव तिष्ठति गुरुः सूक्ष्मरूपेण संततम् ॥ १९ ॥
तद्गुरोः प्रतिविम्बश्च सर्वत्र नररूपकः ।
गुरुरूपो स्वयं कृष्णः शिष्याणां हितकाम्यया ॥ २० ॥

हे मुने ! सहस्रदल पद्म सभी के मस्तक में स्थित है और वहीं सूक्ष्मरूप से गुरु भी सदैव स्थित रहता है। नर सर्वत्र उसी गुरु का प्रतिबिम्ब स्वरूप होता है। शिष्यों को हितकामना के लिये स्वयं कृष्ण ही गुरु रूप में रहते हैं ॥ १६-२० ॥

गुरौ तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे जगत्त्रयम् ।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ २१ ॥
गुरुदेवः परं ब्रह्म गुरु पूज्यः परात्परः ।
हरौ रुष्टे गुरौ तुष्टे गुरु रक्षितुमीश्वरः ॥ २२ ॥
सर्वे तुष्टा गुरौ रुष्टे न कोऽपि रक्षितुं क्षमः ।
गुरुश्च ज्ञानाद्गिरणाज्ज्ञानं तन्मन्त्रतन्त्रयोः ॥ २३ ॥

गुरु के सन्तुष्ट होने पर हरि सन्तुष्ट होते हैं और हरि के सन्तुष्ट होने पर तीनों लोक सन्तुष्ट होते हैं। गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव हैं; गुरुदेव ही परम ब्रह्म हैं; गुरु ही परात्पर और पूज्य हैं। यदि हरि रुष्ट हों और गुरु सन्तुष्ट हैं तो गुरु रक्षा करने में समर्थ होते हैं। परन्तु सबके सन्तुष्ट होने पर भी यदि गुरु रुष्ट हों तो फिर कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होगा। गुरु द्वारा ज्ञान देने पर ही शिष्य को मन्त्र-तन्त्र का ज्ञान होता है ॥ २१-२३ ॥

तत्तन्त्रं स च मन्त्रः स्यात् कृष्णभक्तिर्यतो भवेत् ।
स एव बन्धुः स पिता सा मैत्री जननी च सा ॥ २४ ॥
स च भ्राता पतिः पुत्रो यः कृष्णवर्त्म दर्शयेत् ।
जलबुद्बुदवत् सर्वं विश्वं च सचराचरम् ॥ २५ ॥
भज राधेश्वरं विप्र श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ।
स गुरुः परमो वैरी भ्रष्टं वर्त्म प्रदर्शयेत् ॥ २६ ॥
तज्जन्मनाशं कुरुते शिष्यहत्यां भवेद्ध्रुवम् ।

सहस्रदलपद्मे च हृदयस्थो हरिः स्वयम् ॥ २७ ॥
सर्वेषां प्राणिना विप्र परमात्मा निरञ्जनः ।
इति ते कथितं सर्वं योगज्ञानं चतुर्थकम् ॥
यथागमं च संक्षेपं किं भूयं श्रोतुमिच्छसि ॥ २८ ॥

तन्त्र वही है और मन्त्र भी वही है जिससे कृष्णभक्ति उत्पन्न होती है। वही बन्धु है, वही पिता है, वही मित्र है, वही माता है, वही भ्राता है, वही पति है तथा वही पुत्र है जो कृष्ण के मार्ग का दर्शन कराये। यह सब चराचर विश्व जल के बुलबुले के समान है। इसलिये, हे विप्र! प्रकृति से परे राधेश्वर श्रीकृष्ण का भजन करो। वह गुरु वैरी है जो भ्रष्ट मार्गदशर्शन करता है। इससे उसके जन्म का निश्चित रूप से नाश होता है और गुरु को शिष्य हत्या का पाप लगता लगता है। सहस्रदल पद्म में स्वयं हरि ही निवास करते हैं। हे विप्र! निरञ्जन परमात्मा सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हैं। इस प्रकार मैंने आगम के अनुसार चौथे योगज्ञान का सब कुछ संक्षेप में बता दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो!॥ २४-२८ ॥

नारद उवाच ।

भक्तिज्ञानं च भक्तानां योगज्ञानं च योगिनाम् ।
केषां वर्त्म प्रशस्तं च तन्मां कथितुमर्हसि ॥ २९ ॥

नारदजी बोले : भक्तों के भक्तिज्ञान और योगियों के योगज्ञान में से कौन सा मार्ग अधिक प्रशस्त है यह मुझे बतायें ॥ २६ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

ध्यायन्ते योगिनः सर्वे ज्योतिरूपं सनातनम् ।
निर्गुणस्य शरीरं च न मन्यन्ते च योगिनः ॥ ३० ॥
शरीरं प्रकृतं सर्वं निर्गुणः प्रकृते परः ।
गुणेन सज्जते देहो निर्गुणस्य कुतो भवेत् ॥ ३१ ॥
इति सर्वं योगशास्त्रं योगविद्भिः प्रकीर्त्तितम् ।
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते कुमाराद्या वयं द्विज ॥ ३२ ॥

श्री महादेव बोले : सभी योगी सनातन ज्योतिरूप का ध्यान करते हैं। निर्गुण का शरीर योगिजन नहीं मानते क्योंकि शरीर प्रकृति से बना होता है और निर्गुण ब्रह्म प्रकृति से परे है। देह तो गुणों से बना होता है फिर निर्गुण के देह कहाँ से सम्भव है ? योग के विद्वानों ने इसी सबको योगशास्त्र कहा है। परन्तु हे द्विज ! कुमार तथा अन्य वैष्णव और हमलोग इसे स्वीकार नहीं करते ॥ ३०-३२ ॥

वदन्ति वैष्णवाः सर्वे तेजस्तेजस्विनां वरम् ।
क्व सम्भवेद्वा क्व भवेदिति दुर्नयमेव च ॥ ३३ ॥
कृष्णो नित्यः शरीरी च तस्य तेजो हि वर्त्तते ।
तेजोऽभ्यन्तर एवाह कृष्णमूर्त्तिः सनातनः ॥ ३४ ॥

सभी वैष्णव यह कहते हैं कि तेजस्वियों का तेज ही सब कुछ है। यह कह सकना अत्यन्त कठिन है कि यह तेज कहाँ प्रकट होता है और कहाँ से उत्पन्न होता है। कृष्ण नित्य शरीरी हैं और उनमें भी तेज है। उसी तेज में कृष्ण की सनातन मूर्ति स्थित है—ऐसा वैष्णवों का मत है ॥ ३३-३४ ॥

ध्यायन्ते योगिनः सर्वे तत्तेजो भक्तिपूर्वकम् ।
सुपक्वभक्त्या कालेन योगी च वैष्णवो भवेत् ॥ ३५ ॥
तेजोऽभ्यन्तररूपं च ध्यायन्ते वैष्णवाः सदा ।
दासानां च कुतो दास्यं विना देहेन नारद ॥ ३६ ॥

सभी योगिजन भक्तिपूर्वक उसी तेज का ध्यान करते हैं। कालान्तर में अपनी भक्ति की परिपक्वता से योगी भी वैष्णव हो जाते हैं। वैष्णवजन सदा तेज के आभ्यन्तर स्वरूप का ध्यान करते हैं। हे नारद ! यदि देह ही न हो तो दासों का दास्य कैसे सम्भव हो सकता है ॥ ३५-३६ ॥

वैष्णवानां मतं शस्तं सर्वेभ्योऽपि च नारद ।
न वैष्णवात् परो ज्ञानी ब्रह्माण्डेषु च ब्रह्मणः ॥ ३७ ॥

हे नारद ! वैष्णवों का ही मत सबसे अधिक प्रशस्त है। ब्रह्मा के इस ब्रह्माण्ड में वैष्णवों से अधिक ज्ञानी कोई नहीं है ॥ ३७ ॥

इति ते कथितं वत्स संक्षेपेण यथागमम् ।
को वा जानाति कात्स्न्र्येन कृष्णमाहात्म्यमीप्सितं ॥ ३८ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे शिवनारदसंवादे
द्वितीयरात्रे योगज्ञानकथनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इति द्वितीयरात्रं सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार, हे वत्स ! आगम के अनुसार मैंने सब कुछ संक्षेप में बता दिया। कौन है जो कृष्ण के ईप्सित माहात्म्य को सम्पूर्ण रूप से जान सकता है ! ॥ ३८ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में शिवनारद
संवादोक्त द्वितीय रात्र में योगज्ञान कथन
नामक अष्टम अध्याय समाप्त ।

इति द्वितीय रात्र सम्पूर्ण

तृतीयरात्रे प्रथमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।

श्रृणु नारद वक्ष्यामि मन्त्रयन्त्रक्रियादिकान् ।
पुरा व्यासेन ये प्रोक्ताः शुकं प्रति महामते ॥ १ ॥

श्री शिवजी बोले : हे नारद ! व्यास ने पहले समय में महामति शुक को मन्त्र-तन्त्रादि के सम्बन्ध में जो बताया था उसे ही मैं कहूँगा, तुम सुनो ॥ १ ॥

प्रातःकृत्यविधिर्योऽत्र तथा स्नानविधिर्मुने ।
तथा पूजादिकं सर्वं मन्त्राक्षरसमुद्भवम् ॥ २ ॥

मन्त्रार्थश्च यथा येन ज्ञायते पुरुषेण हि ।
पुरा कैलासशिखरे सुखसेव्ये निरन्तरम् ॥ ३ ॥

पार्वती मां पुरा भक्त्या परिपप्रच्छ यत् शिवम् ।
तत्तत् श्रृणु महाबाहो ममैकाग्रमना मुने ॥ ४ ॥

प्रातःकृत्य, स्नानादि की विधि, पूजादि विधान और सब मन्त्राक्षरों के उद्भव की विधि जिससे मनुष्य उनके अर्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकें—इन सब विषयों के सम्बन्ध में पूर्वकाल में निरन्तर सुखद और सुन्दर कैलास शिखर पर पार्वती ने भक्तिपूर्वक मुझसे जो कुछ पूछा था उन सभी शुभदायक बातों को, हे महाबाहो, हे मुने ! एकाग्र मन से सुनो ॥ २-४ ॥

पार्वत्युवाच ।

देव देव महादेव संसारार्णवतारक ।
वक्तुमर्हसि देवेश मन्त्रतन्त्रविधिं गुरो ॥ ५ ॥

श्रीराधायाश्च कृष्णस्य तथा पूजाविधिं मम ।

मन्त्रार्थं च तथा योगान् नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥ ६ ॥

सहस्रं च तथा नाम्नां प्रब्रूहि मम साम्प्रतम् ।
यद्यस्ति मयि कारुण्यं यद्यस्ति मयि दोहदम् ॥ ७ ॥

पार्वती जी बोलीं : हे देवदेव ! महादेव ! संसारार्णवतारक ! हे देवेश ! हे गुरो ! आप ही मुझे तन्त्र-मन्त्र विधि बताने में समर्थ हैं। यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो मुझे श्रीराधा और श्रीकृष्ण की पूजाविधि, मन्त्रार्थ, योगप्रकरण, अष्टोत्तर शतनाम तथा सहस्रनाम आदि मुझे बतायें ॥ ५-७ ॥

तदा प्रब्रूहि राधाया नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
सहस्रं च तथा देव मन्त्रयन्त्रविधिं मम ॥ ८ ॥

हे देव ! आप राधा के अष्टोत्तर शतनाम, सहस्रनाम तथा उनकी मन्त्र-यन्त्र विधि भी मुझे बतायें ॥ ८ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मन्त्रतन्त्रविधिं प्रिये ।
शुकं प्रति पुरा प्रोक्तं वेदव्यासेन धीमता ॥ ९ ॥

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये ।
यावतो मन्त्रवर्णास्तु श्रीकृष्णस्य परात्मनः ॥ १० ॥

श्री महादेव जी बोले : हे प्रिये ! मन्त्र और तन्त्र की विधियाँ, जिन्हें पूर्वकाल में धीमान वेदव्यास ने अपने पुत्र को बताया था, हे प्रिये ! उन्हें ही तुम्हें बताऊँगा । मैं परमात्मा श्रीकृष्ण के मन्त्र के सभी वर्णों को भी कहूँगा । तुम यह सब एकाग्र मन से सुनो ॥ ९-१० ॥

व्यास उवाच ।

कला तु माया नरकान्तमूर्त्तिः कलक्वणद्वेणुनिनादरम्यः ।
श्रितोहृदि व्याकुलयंस्त्रिलोकींश्रियेऽस्तुगोपीजनवल्लभो वः ॥११॥

गुरुचरणसरोरुहद्वयोत्थान्महितरजःकणकान् प्रणम्य मूर्ध्ना ।
गदितमिहविवेच्य नारदाद्यैर्यजनविधिं कथयामि शार्ङ्गपाणेः ।१२।

श्री व्यास जी बोले : माया श्रीकृष्ण की कला मात्र है। वेणु के मधुर स्वरों से त्रिलोकी को व्याकुल करनेवाली हृदयस्थ उन गोपीजनवल्लभ की नरकान्तक मूर्ति तुम्हारा कल्याण करे। गुरु के दोनों चरणकमलों से उत्थित पूजित धूलिकणों को मूर्द्धा से प्रणाम करके नारद आदि से इस विषय में जो कुछ कहा गया है उसी का विवेचन करके मैं शार्ङ्गपाणि की यजनविधि को कहता हूं ॥ ११-१२ ॥

सर्वेषु वर्णेषु तथाश्रमेषु नारीषु नानासु यजन्मखेषु ।
दाता फलानामभिवाञ्छितानां द्रागेव गोपालकमन्त्र एषः ॥१३॥

सभी आश्रमों में सभी वर्णों को और कुछ विशेष दशाओं में स्त्रियों को यज्ञ तथा मखोत्सव में गोपाल मन्त्र (ग्लौं अथवा क्लीं) अत्यन्त शीघ्र वाञ्छित फल देने वाला है ॥ १३ ॥

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पूजनं शार्ङ्गधन्वनः ।
यन्नारदाय कथितं ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ १४ ॥

पद्मयोनि ब्रह्मा ने शार्ङ्गपाणि का जो पूजन नारद को बताया था उसे ही मैं कहता हूँ। हे वत्स ! तुम सुनो ॥ १४ ॥

प्रातःकृत्यादिकं वक्ष्ये तथा पूजाविधिं सुत ।
जगत्कल्पतरोर्वत्स शृणुष्व गदतो मम ॥ १५ ॥

हे सुत ! अब मैं प्रातःकृत्यआदि तथा जगत्कल्पतरु श्रीकृष्ण की पूजाविधि कहता हूँ, उसे मुझसे सुनो ॥ १५ ॥

नूनमच्युतकटाक्षपातने कारणं भवति भक्तिरञ्जसा ।
तच्चतुष्टयफलाप्तये ततो भक्तिमानधिकृतो गुरौ हरौ ॥ १६ ॥

अच्युत के कृपाकटाक्ष को प्राप्त करने के लिये श्रेष्ठ भक्ति ही एक मात्र साधन है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का फल प्राप्त करने के लिये गुरुभक्ति रखने वाला ही श्रीहरि की भक्ति का अधिकारी है। ॥ १६ ॥

स्नातो निर्मलसूक्ष्मशुद्धवसनो धौतांघ्रिपाण्याननः
साचान्तः सपवित्रमुद्रितकरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रोज्ज्वलः ।

प्राचीदिग्वदनो निबध्य सुदृढं पद्मासनं स्वस्तिकं
वाऽऽसीनः स्वगुरून् गणाधिपमथो वन्देत बद्धाञ्जलिः ॥ १७ ॥

स्नान करने के बाद निर्मल शुद्ध रेशमी वस्त्र धारण कर, हाथ-मुँह धो कर, और आचमन कर मस्तक तथा हाथों पर श्वेत, उज्ज्वल तथा पवित्र ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। फिर पद्मासन या स्वस्तिकासन में पूर्वाभिमुख बैठकर अपने गुरु और गणाधिप देवों की हाथ जोड़कर बन्दना करे ॥ १७ ॥

ततोऽस्त्रमन्त्रेण विशोध्य पाणी त्रितालदिग्बन्धहुताशशालान् ।
विधाय भूतात्मकमेतदङ्गं विशोधयेच्छुद्धमतिः क्रमेण ॥ १८ ॥

तदुपरान्त 'फट्' मन्त्र से दोनों हाथों को शुद्ध करके तीन चुटकी (या ताली) बजाकर दिग्बन्धन करे, और विभिन्न हुताश शालाओं से युक्त देह के भूतात्मक होने की भावना करके शुद्धमति साधक तत्तदङ्गों का यथाक्रम विशोधन करे ॥ १८ ॥

इडा वक्त्रे धूम्रं सततगतिबीजं सलवकं
स्मरेत्पूर्वं मन्त्री सकलभुवनोच्छोषणकरम् ।
स्वकं देहं तेन प्रततवपुषाऽऽपूर्य सकलं
विशोध्य व्यामुञ्चेत् पवनमथ मार्गेण खमणेः ॥ १९ ॥

पहले मन्त्री वायु को धूम्रवर्ण और सकलभुवन-शोषणकर मानकर वामनासिका (इडा नाडी) से वायु बीज 'सलवकम्' का ध्यान करते हुए उस वायु को भीतर खींचे। उससे अपने सम्पूर्ण शरीर को पूर्ण करके कुम्भक करते हुए स्वयं के शुद्ध होने की भावना करे; फिर उस वायु को दाहिनी नासिका से धीरे-धीरे बाहर निकाल दे ॥ १९ ॥

तेनैव मार्गेण विलीनमारुतं बीजं विचिन्त्यारुणमाशुशुक्षणेः ।
आपूर्य देहं परिदह्य वामतो मुञ्चेत् समीरं सह भस्मना बहिः २०

फिर साधक उस नासिका (दाहिनी नासिका) रन्ध्र में रक्तवर्ण अग्नि बीज 'रं' का ध्यान करते हुए शरीर को वायु से पूर्ण करके यह

भावना करे कि शरीरस्थ पाप-पुरुष उस वायु से भस्मीभूत हो गया है। फिर 'उस पापपुरुष को भस्म वाम नासिका से बाहर निकल रही है' यह भावना करके रेचन करे ॥ २० ॥

उपरमतीव शुद्धममृतांशुपथेन विधुं
नयतु ललाटचन्द्रममृतः सकलार्णमयीम् ।
लपरजपान्निपात्य रचयेच्च तथा सकलं
वपुरमृतौघवृष्टिमथ वक्त्रकराद्यमिदम् ॥ २१ ॥

फिर सर्वबीजरूपा कुण्डलिनी को आधार से उठाकर वामनासिका के ऊपर अमृत से पूर्ण ललाटस्थ चन्द्रमण्डल में ले जाय । तदनन्तर 'ल प र' मन्त्र के उच्चारण स्वरूप जब कुण्डलिनी पुनः नीचे आने लगे तो श्वास को बाहर निकाल कर साधक अपने शरीर, मुख, हाथों तथा अन्य अङ्गों के अमृत से परिपूर्ण हो गये होने की भावना करे ॥ २१ ॥

शिरोवदनवृत्तदृक्श्रवणघोणगण्डौष्ठकद्वयेषु
सशिरोमुखेषु च इति क्रमात् विन्यसेत् ।
हलश्च करपादसंधिषु तदग्रकेष्वादरात्
सपार्श्वयुगपृष्ठनाभ्युदरकेषु याद्यानथ ॥ २२ ॥
हृदयकक्षककुत्करमूलदोःपद्युगोदरवक्त्रागतान् बुधः ।
हृदयपूर्वमनेनपथाऽन्वहं न्यसतुशुद्धकलेवरसिद्धये ॥ २३ ॥

न्यासविधि

शिर, मुख, दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, दोनों नासापुट, दोनों कपोल, दोनों ओष्ठ, दोनों दन्तपंक्ति, मूर्द्धा तथा मुखवृत्त—इन स्थानों पर क्रमशः स्वर वर्णों का न्यास करे । फिर दक्षिण बाहुमूल, दक्षिणकूर्पर, दक्षिणमणिबन्ध, दक्षिणहस्तांगुलिमूल और दक्षिणहस्तांगुल्यग्र में क्रमशः कवर्ग का न्यास करे । वामबाहुमूल, वामकूर्पर, वाममणिबन्ध, वामहस्तांगुलिमूल और वामहस्तांगुल्यग्र में क्रमशः चवर्ग का न्यास करे । दक्षिणपादमूल, दक्षिणजानु, दक्षिणगुल्फ, दक्षिणपादांगुलिमू और दक्षिण पादांगुल्यग्र में क्रमशः टवर्ग का न्यास करे । वामपादमूल, वामजानु, वामगुल्फ, वामपादांगुलिमूल, और वामपादांगुल्यग्र में क्रमशः

तवर्ग का न्यास करे। दक्षिणपार्श्व, वामपार्श्व, पृष्ठ, नाभि और उदर में क्रमशः पवर्ग का न्यास करे। हृदय, दक्षांस, ककुद, वामांस, हृदयादि-दक्षहस्तान्त पर्यन्त, हृदयादि वामहस्तान्त पर्यन्त, हृदयादि दक्षपादान्त पर्यन्त, हृदयादि वामपादान्त पर्यन्त, जठर और मुख में क्रमशः य, र, ल, व, आदि से ह, ल, क्ष, पर्यन्त वर्णों का न्यास करे। शुद्ध कलेवर की सिद्धि के लिये ये न्यास आवश्यक हैं और बुद्धिमान व्यक्ति प्रतिदिन इन्हें करते हैं॥ २२-२३॥

टिप्पणी : प्रयोगविधि : ॐ अं नमः ललाटे। ॐ आं नमः मुखवृत्ते। ॐ इं नमः दक्षनेत्रे। ॐ ईं नमः वामनेत्रे। ॐ उं नमः दक्षकर्णे। ॐ ऊं नमः वामकर्णे। ॐ ऋं नमः दक्षनासायाम्। ॐ ॠं नमः वामनासायाम्। ॐ ऌं नमः दक्षगण्डे। ॐ ॡं नमः वामगण्डे। ॐ एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे। ॐ ऐं नमः अधरोष्ठे। ॐ ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ। ॐ औं नमः अधोदन्तपंक्तौ। ॐ अं नमः मूर्ध्नि। ॐ अः नमः मुखे। ॐ कं नमः दक्षबाहुमूले। ॐ खं नमः दक्षकूर्परे। ॐ गं नमः दक्ष मणिबन्धे। ॐ घं नमः दक्ष हस्तांगुलिमूले। ॐ ङं नमः दक्ष हस्तांगुल्यग्रे। ॐ चं नमः वामबाहुमूले। ॐ छं नमः वामकूर्परे। ॐ जं नमः वाममणिबन्धे। ॐ झं नमः वाम हस्तांगुलिमूले। ॐ ञं नमः वाम हस्तांगुल्यग्रे। ॐ टं नमः दक्षिण पादमूले। ॐ ठं नमः दक्षिण जानुनि। ॐ डं नमः दक्षिण गुल्फे। ॐ ढं नमः दक्षिण पादांगुलिमूले। ॐ णं नमः दक्षिण पादांगुल्यग्रे। ॐ तं नमः वाम पादमूले। ॐ थं नमः वाम जानुनि। ॐ दं नमः वाम गुल्फे। ॐ धं नमः वाम पादांगुलिमूले। ॐ नं नमः वाम पादांगुल्यग्रे। ॐ पं नमः दक्षिणपार्श्वे। ॐ फं नमः वामपार्श्वे। ॐ बं नमः पृष्ठे। ॐ भं नमः नाभौ। ॐ मं नमः उदरे। ॐ यं त्वगात्मने नमः हृदि। ॐ रं असृगात्मने नमः दक्षांसे। ॐ लं मांसात्मने नमः ककुदि। ॐ वं मेदात्मने नमः वामांसे।

ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्षहस्तान्तम्। ॐ षं मज्जात्मने नमः हृदयादि वामहस्तान्तम्। ॐ सं शुक्रात्मने नमः हृदयादिदक्ष-पादान्तम्। ॐ हं आत्मने नमः हृदयादिवामपादान्तम्। ॐ लं परमात्मने नमः जठरे। ॐ क्षं प्राणात्मने नमः मुखे।

इत्यारचय्य वपुरर्णशतार्द्धकेन
सार्द्धक्षपेशसविसर्गकशोभनैस्तैः।

विन्यस्य केशवपुरःसरमूर्त्तियुक्तैः
कीर्त्यादिशक्तिसहितैर्न्यसतु क्रमेण ॥ २४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतायरात्रे
प्रातःकृत्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार ५८ मातृका वर्णों का शरीर के विभिन्न अंगों में न्यास करने के बाद केशव-कीर्त्यादि के लिये चन्द्रविन्दु और विसर्गान्वित बोजों से न्यास करे (देखिये अगला अध्याय)। इस केशव-कीर्त्तिन्यास कहते हैं ॥ २४ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
तृतीय रात्र में प्रातःकृत्य विषयक
प्रथम अध्याय समाप्त।

तृतीयरात्रे द्वितीयोऽध्यायः

अथ प्रातःकृत्यम्

व्यास उवाच ।

अथ कथयाम्यर्णानां मूर्त्तीः शक्तीः सकलभुवनमयीः ।
केशवकीर्त्तीर्नारायणकान्तीर्माधवस्तथा तुष्टिः ॥ १ ॥
गोविन्दः पुष्टियुतो विष्णुधृती सूदनश्च मध्वाद्यः ।
शान्तिस्त्रिविक्रमश्च क्रिया पुनर्वामनो दयाऽच्युतः ॥ २ ॥
श्रीधरयुता च मेधा हृषीकनाथश्च हर्षया युक्तः ।
अम्बुजनाभ श्रद्धा दामोदरसंयुता पुनर्लज्जा ॥ ३ ॥
लक्ष्मी सवासुदेवा संकर्षणयुता सरस्वती प्रोक्ता ।
प्रद्युम्नः प्रीतियुतोऽनिरुद्धको रतिरिमाः स्वरोपेताः ॥ ४ ॥
चक्रिजये गदिदुर्गे शार्ङ्गी प्रभयान्वितस्तथा स्वङ्गी ।
सत्या शंखी चण्डा हलिवाण्यौ मुषलियुद्विलासिनिका ॥ ५ ॥
शूली विजया पाशी विरजा विश्वान्वितोऽङ्कुशोः भूयः ।
विनदा मुकुन्दयुक्ता नन्दजसुनन्दे स्मृतिश्च नन्दियुता ॥ ६ ॥
नव ऋद्धिर्नवकयुतासमृद्धिरधशुद्धियुक् हरिः कृष्णो ।
भक्तियुतः सत्ययुताबुद्धिर्मतियुक् च शाश्वतः शौरिः ॥ ७ ॥
क्षमया शूरो रमया जनार्दनोमे च भूधरः ।
क्लेदिनी विश्वादिमूर्त्तियुक्ता क्लिन्ना वैकुण्ठा
पुरुषोत्तमश्च तथा वसुधा बलिना च परायणा ॥ ८ ॥
सूजोपेता भूयः परायणाख्या बलेः सूक्ष्मा वृषप्रसन्ध्ये च ।
सवृषा प्रज्ञा हंसप्रभा वराहो निशा च विमलो मेधा ॥ ९ ॥

नरसिंहविद्युते च प्रणिगदिता मूर्त्तयोऽलं शक्तियुताः ।
वर्णानुक्त्वा सार्द्धचन्द्रान् पुरस्तात्
मूर्त्तीः शक्तीर्ङेऽवसाना रतिं च ॥ १० ॥
उक्त्वा न्यस्ये आदिभिः सप्त धातूनऽथ
वसुदा प्राणबीजं क्रोधमप्यात्मने स्वान् ॥ ११ ॥

व्यास जी बोले : अब मैं मातृका वर्णों की सकलभुवनमयी मूर्तियों और शक्तियों को कहूँगा :

केशव-कीर्ति, नारायण-कान्ति, माधव-तुष्टि, गोविन्द-पुष्टि, विष्णु-धृति, मधुसूदन-शान्ति, त्रिविक्रम-क्रिया, वामन-दया, श्रीधर-मेधा, हृषिकेश-हर्षा, पद्मनाभ-श्रद्धा, दामोदर-लज्जा, वासुदेव-लक्ष्मी, संकर्षण-सरस्वती, प्रद्युम्न-प्रीति, अनिरुद्ध-रति—ये सब स्वर वर्ण युक्त हैं। चक्री-जया, गदाधर-दुर्गा, शार्ङ्गी-प्रभा, खड्गी-सत्या, शङ्खी-चण्डा, हली-वाणी, मुसली-विलासिनी, शूली-विजया, वरुण (पाशी)-विरजा, अंकुशी-विश्वा, मुकुन्द-विनदा, नन्दज-सुनन्दा, नन्दी-सत्या, नर-ऋद्धि, नरकजित-समृद्धि, हरि-शुद्धि, श्रीकृष्ण-बुद्धि, सत्य-मुक्ति, सात्वत-मति, सौरी-क्षमा, शूर-रमा, जनार्दन-उमा, भूधर-क्लेदिनी, विश्वमूर्ति-क्लिन्ना, वैकुण्ठ-वसुधा, पुरुषोत्तम-वसुदा, बली-परा, बलानुज-परायणा, बाल-सूक्ष्मा, वृषघ्न-सन्ध्या, वृष-प्रज्ञा, हंस-प्रभा, वराह-निशा, विमल-अमोघा, नृसिंह-विद्युता—ये सभी व्यञ्जन् वर्णों से युक्त हैं।

इस प्रकार सभी मूर्त्तियों और शक्तियों का वर्णन किया गया। इनका प्रयोग इस प्रकार करना चाहिये : अं केशवाय कीर्त्यै नमः। अर्थात् पहले बिन्दु सहित मातृकावर्ण, फिर पञ्चमी विभक्तियुक्त मूर्त्ति और शक्ति का न्यास करने के बाद सप्तधातुओं (त्वक्, असृग्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) और प्राणात्मा, जीवात्मा, तथा क्रोधात्मा, में 'आत्मने' लगाकर यह सम्पूर्ण न्यास समाप्त करना चाहिये ॥१-११॥

टिप्पणी : केशव कीर्त्यादिन्यास : ॐ अं केशवाय कीर्त्यै नमः ललाटे। ॐ आं नारायणाय कान्त्यै नमः मुखे। ॐ इं माधवाय तुष्ट्यै नमः दक्षनेत्रे। ॐ ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः वामनेत्रे। ॐ उं विष्णवे धृत्यै नमः दक्षकर्णे। ॐ ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः वामकर्णे। ॐ ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः दक्षनासायां। ॐ

ॠं वामनाय दयायै नमः वामनासायां। ॐ लृं श्रीधराय मेधाय नमः दक्षगण्डे। ॐ लॄं हृषीकेशाय हर्षायै नमः वामगण्डे। ॐ ऐं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः ओष्ठे। ॐ ऐं दामोदराय लज्जायै नमः अधरे। ॐ ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ। ॐ औं सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमः अधोदन्तपंक्तौ। ॐ अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः मस्तके। ॐ अः अनिरुद्धाय रत्यै नमः मुखे। ॐ कं चक्रिणे जयायै नमः दक्षकरमूले। ॐ खं गदिने दुर्गायै नमः दक्ष कूर्परे। ॐ गं शार्ङ्गिणे प्रभायै नमः दक्ष मणिबन्धे। ॐ घं खड्गिने सत्यायै नमः दक्षहस्तांगुलिमूले। ॐ ङं शङ्खिने चण्डायै नमः दक्षहस्तांगुल्यग्रे। ॐ चं हलिने वाण्यै नमः वामकरमूले। ॐ छं मुसलिने विलासिन्यै नमः वाम कूर्परे। ॐ जं शूलिने बीजायै नमः वाम मणिबन्धे। ॐ झं पाशिने विरजायै नमः वामहस्तांगुलिमूले। ॐ ञं अंकुशिने विश्वायै नमः वामांगुल्यग्रे। ॐ टं मुकुन्दाय विनदायै नमः दक्षपादमूले। ॐ ठं नन्दजाय सुनन्दायै नमः दक्ष-जानुनि। ॐ डं नन्दिने स्मृत्यै नमः दक्षपादगुल्फे। ॐ ढं नराय ऋद्ध्यै नमः दक्षपादांगुलिमूले। ॐ णं नरकजिते समृद्ध्यै नमः दक्षपादांगुल्यग्रे। ॐ तं हरये शुद्ध्यै नमः वामपाद-मूले। ॐ थं कृष्णाय बुद्ध्यै नमः वाम जानुनि। ॐ दं सत्याय मुक्त्यै नमः वामपादगुल्फे। ॐ धं सात्वताय मत्यै नमः वाम पादांगुलिमूले। ॐ नं शौरये क्षमायै नमः वामपादांगुल्यग्रे। ॐ पं शूराय रमायै नमः दक्षपार्श्वे। ॐ फं जनार्दनाय उमायै नमः वामपार्श्वे। ॐ बं भूधराय क्लेदिन्यै नमः पृष्ठे। ॐ भं विश्व-मूर्तये क्लिन्नायै नमः नाभौ। ॐ मं वैकुण्ठाय वसुदायै नमः उदरे। ॐ यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमः हृदि। ॐ रं असृगात्मने बलिने परायै नमः दक्षांसे। ॐ लं मांसात्मने बलानुजाय परायणायै नमः ककुदि। ॐ वं मेदात्मने बलाय सूक्ष्मायै नमः वामांसे। ॐ शं अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै नमः हृदयादि दक्ष हस्तान्तम्। ॐ षं मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमः हृदयादि वाम-हस्तान्तम्। ॐ सं शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै नमः हृदयादि दक्ष-पादान्तम्। ॐ हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नमः हृदयादि वाम पादान्तम्। ॐ ळं जीवात्मने विमलाय अमोघायै नमः हृदयादि उदरा न्तम्। ॐ क्षं क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमः हृदयादि मुखान्तम्।

उद्यत्प्रद्योतनशयरुचिं तप्तहेमावदातम् ।
पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतयाविश्वधात्र्या च जुष्टम्
नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रम् ।
विष्णुं वन्दे दरकमलगदाकौमुदीचक्रपाणिम् ॥ १२ ॥

उक्त न्यास करने के बाद इस प्रकार ध्यान करे : उदित होते हुए सैकड़ों सूर्य की कान्ति के समान और तप्तसुवर्ण की आभा के समान देह वाले, दोनों पार्श्वों में लक्ष्मी और विश्वधाता से सेवित, नाना रत्नों और विविध मणियों से विभूषित, पीताम्बर धारण किये हुए, तथा चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, कौमोदकी गदा और पद्म लिये हुए विष्णु की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १२ ॥

ध्यात्वैवं परमाक्षरैर्यो विन्यसेद्दिनमनु केशवादियुक्तैः ।
मेधायुःस्मृतिधृतिकीर्त्तिकान्तिलक्ष्मी-
सौभाग्यैश्चिरमुपबृंहितो भवेत् सः ॥ १४ ॥

इस प्रकार ध्यान करके जो प्रतिदिन परमाक्षरों से युक्त केशवादि न्यास करता है वह मेधावी, स्मृतिवान, धृतिमान् कीर्त्तिवान, दीर्घायु, कान्तिवान्, लक्ष्मी से युक्त, सौभाग्यशाली तथा ऐश्वर्यवान् हो जाता है। ॥ १४ ॥

अमुमेव रमापुरःसरं प्रभजेद्यो मनुजो बिधिं बुधः ।
समुपेत्य रमां प्रथीयसी पुनरन्ते हरितां व्रजत्यसौ ॥ १५ ॥

जो बुद्धिमान व्यक्ति रमाबीज (श्रीं) को पहले लगाकर श्रीहरि का भजन करता है वह महती लक्ष्मी प्राप्त करके अन्त में श्रीहरि के समान हो जाता है ॥ १५ ॥

इत्यच्युतीकृततनुर्विधिवत्तु तत्त्वन्यासं नपूर्वमपराक्षरनत्युपेतम् ।
भूयः पराय च तदाह्वयमात्मने च
नत्यन्तमुद्धरतु तत्त्वमनून् क्रमेण ॥ १६ ॥

सकलवपुषि बीजं प्राणमायोज्य मध्ये
न्यसतु मतिमहङ्कारं मनश्चेति मन्त्री ।

कमुखहृदयगुह्यांघ्रिष्वथो शब्दपूर्वं
गुणगणमथ कर्त्ताऽऽदिस्थितं श्रोत्रपूर्वम् ॥ १७ ॥
वागादीन्द्रियवर्गमात्मनिलयेष्वाकाशपूर्वं गणं
मूर्ध्न्यास्ये हृदये शिरे चरणयोर्हृत्पुण्डरीकं हृदि ।
बिम्बानि द्विषडष्टयुग्दशकलाव्याप्तानि सूर्योडुराड्
वह्नीनां च यतस्तु भूतवसुमुष्यन्त्याक्षरैर्मन्त्रवित् ॥ १८ ॥

अपने शरीर को अच्युतवत् मानकर साधक को नियमानुसार तत्त्वन्यास करना चाहिये । यहाँ आदि में 'नमः' का प्रयोग नहीं करना चाहिये । पहले 'पराय', फिर तत्त्वनाम के साथ 'आत्मने नमः' लगाकर तत्त्वमन्त्र का उद्धार करना चाहिये । यथा : 'पं पराय मनस्तत्त्वात्मने नमः', 'नं पराय शब्दतत्त्वात्मने नमः' आदि । इनका क्रमशः ललाटादि पर न्यास करना चाहिये । इसके बाद साधक को बीज और प्राण के साथ सर्वाङ्ग का मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त में; शब्दबीज के साथ मुख, वक्षःस्थल, गुदा और पैरों में; तथा तत्तत् बीजों का सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण और श्रोत्र में न्यास करना चाहिये । पुनः, बुद्धिमान साधक को यथाक्रम आकाशादि का मूर्द्धा, मुख, हृदय, शिर, पाँव, हृत्पुण्डरीक और हृदय में अन्त्यक्षरों से न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार वागादि इन्द्रियों, द्वादशकलात्मक सूर्य, षोडशकलात्मक चन्द्रमा, तथा दशकलात्मक अग्नि का, भूतों का तथा अष्टवसुओं का भी अन्त्यक्षरों से न्यास करे । यथा ङं बीज से मूर्द्धा पर आकाश तत्त्व का; घं बीज से मुख पर वायुतत्त्व का; गं बीज से हृदय पर तेजस्तत्त्व का; खं बीज से शिश्न पर जलतत्त्व का; कं बीज से दोनों पैरों पर पृथिवी तत्त्व का, आदि ॥ १६-१८ ॥

अथ परमेष्ठिपुमांसौ विश्वनिवृत्ती सर्वहत्युपनिषदं
न्यसेदाकाशादिस्थानस्थानषोयबलवार्थिः सलावः ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नाश्चानिरुद्धकः
नारायणश्च क्रमशः परमेष्ठ्यादिभिर्युतः ॥ १९ ॥

इसके बाद साधक को उपनिषदों के अनुसार परमेष्ठी और पुरुष,

विश्वनिवृत्ति और सर्वहृति (प्रकृति) देवो का आकाशादि स्थानों पर क्रमशः स, य, व, ल, व, स, ल, अ, और व से न्यास करना चाहिये। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और नारायण के साथ 'परमेष्ठी' जोड़कर यथाक्रम न्यास करने से सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १९ ॥

ततः कोपतत्त्वं क्षरौ विन्दुयुक्तं
नृसिंहं न्यसेत् सर्वगात्रेषु तज्ज्ञः ।
क्रमेणेति तत्त्वात्मको न्यास उक्तः
स्वासान्निकृद्विश्वमूर्त्यादिषु स्यात् ॥ २० ॥

इसके बाद साधक को 'क्ष्रौं कोपतत्त्वाय' से नृसिह देव का सर्वाङ्ग पर न्यास करना चाहिये। इस प्रकार तत्त्व न्यास बतलाये गये। इन न्यासों और केशव मूर्त्यादिन्यासों को प्रतिदिन यथाक्रम करना चाहिये। ॥ २० ॥

इतिकृतोऽधिकृतो भवति ध्रुवं सकलवैष्णवमन्त्रजपादिषु ।
पवनसंयबलतत्त्वमनुना चरेत् तत्त्वमिह जप्तुमसौ मनुच्छति ॥२१॥
अथवाखिलेषु हि विधिमन्त्रजपविधिषु मूलमन्त्रतः ।
संयमनममलधीर्मरुतो विधिनाभ्यसंश्चरतु तत्त्वसंख्यया ॥ २२ ॥
पुरतो जपस्य परतोऽपि विहितमथ तत्त्रितयं बुधैः ।
षोडश य इह चरेद्दिनेशः परिपूयते स खलु मासतो हंसः ॥२३॥
अयवाङ्गजन्ममुनानुसुसंयमं सकलेषु कृष्णमनुजापकर्मसु ।
सहितैकसप्तकृतिवारमभ्यसेत् तनुयात् समस्तदुरितापहारिणा ।२४।

इन न्यासों को प्रतिदिन करने से साधक सभी वैष्णव मन्त्रों का जप करने का अधिकारी हो जाता है। तत्त्वमन्त्र का जप करते समय साधक को 'य, व, ल' तत्त्व मन्त्रों से (य = वायुतत्त्व; व = जलतत्त्व; ल = पृथिवी तत्त्व) वायु पर नियन्त्रण करना चाहिये, अर्थात् उसे मन्त्र प्राणायाम और योगिक प्राणायाम करना चाहिये। अथवा मूल-मन्त्र के जप से प्राणायाम करना चाहिये; अर्थात् शास्त्रों में लिखित अनुपात के अनुसार मूलमन्त्र का जप करते हुए पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम करना चाहिये। जप के आरम्भ में, अन्त में और मध्य में मात्रा के अनुसार पूरक, कुम्भक और रेचक ये प्राणायाम के तीन अंग

कहे गये हैं। जो साधक प्रतिदिन १६ प्राणायाम करता है वह एक मास में हंसवत् शुद्ध और पवित्र हो जाता है। अथवा, समस्त आपदाओं और बाधाओं के निवारण के लिये सभी कृष्ण मन्त्रों के संयमन द्वारा प्राणायाम के अंगों को नियन्त्रित करना चाहिये, अर्थात् मन्त्र का तत्तत् संख्या में जप करते हुए प्राणायाम के विविध अंगों को संयमित करना चाहिये ॥ २१-२४ ॥

टिप्पणी : उपरोक्त योगिक प्राणायाम में पूरक अर्थात् वायु से शरीर को पूर्ण करना, कुम्भक अर्थात् वायु को भीतर रोकना, और रेचक अर्थात् वायु को शरीर से बाहर निकालना—इन तीनों क्रियाओं की मात्रा का शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन मिलता है : बायीं नासिका से ३२ मात्रा तक वायु से शरीर को पूर्ण करे; फिर ६४ मात्रा तक वायु को भीतर रोके और उसके बाद १६ मात्रा तक वायु को दाहिनी नासिका से बाहर निकाले। यहाँ मात्रा की गणना मन्त्राक्षर की संख्या अथवा समयमान द्वारा निर्धारित की जा सकती है।

अष्टाविंशतिसंख्यमिष्टफलदं मन्त्रं दशार्णं जपन्
नायच्छेत् पवनं सुसंयतमतिस्त्वष्टौ दशार्णेन चेत् ।
अभ्यस्यन्नविवारमन्यमनुभिर्वर्णानुरूपं जपन्
कुर्याद्रेचकपूर्वकर्मनिपुनः प्राणप्रयोगं नरः ॥ २५ ॥
रेचयेन्मारुतं दक्षया दक्षिणः पूरयेद्वामया मध्यनाड्या पुनः ।
धारयेदीरितं रेचकादित्रयं स्यात् कलादन्तविद्याख्यमन्त्राच्युकम् २६

यदि साधक चित्त को नियन्त्रित करने के लिये वायु को दशाक्षर मन्त्र के २८ जपपर्यन्त भीतर रोकने में असमर्थ हो अथवा उसके ८ जप-पर्यन्त भी न रोक सकता हो तो पहले केवल रेचक का ही अभ्यास करना चाहिये। उसे दाहिनी नासिका से रेचक करने के बाद पुनः वामनासिका से पूरक करके मध्य नाडी में मन्त्र का क्रमशः १६, ६४ ३२ जप करते हुए तीनों स्थितियों में वायु का नियन्त्रण करना चाहिये। इस प्रकार पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम का नियमन पूरा करना चाहिये ॥ २५-२६ ॥

प्राणायामं विधायेत्यथनिजवपुषा कल्पयेद्योगपीठम् ।

न्यस्येदाधरशक्तिप्रकृतिकमठक्ष्माक्षीरसिन्धून् ।
श्वेतद्वीपञ्च रत्नोज्ज्वलमहितमहामण्डपं कल्पवृक्षम् ।
हृद्देशेंऽशद्वयोरूद्वयवदनकटीपार्श्वयुग्मेषु भूयः ॥ २७ ॥
धर्माद्यधर्मादि च पादगात्रचतुष्टयं ह्यथ शेषमन्त्रम् ।
सूर्येन्दुवह्नीन् प्रणवांशयुक्तानाद्यक्षरैः सत्त्वरजस्तमांसि ॥ २८ ॥
आत्मादित्रयमात्मबीजसहितं व्योमाग्निमायालवै-
र्ज्ञानात्मानमथाष्टदिक्षु परितो मध्ये च शक्तीर्नव ।
न्यस्त्वा पीठमनुं च तत्र विधिवत्तत्कर्णिकामध्यगं
नित्यानन्दचितिप्रकाशममृतं संचिन्तयेन्नाम तत् ॥ २९ ॥

प्राणायाम समाप्त करने के बाद अपने शरीरस्थ योगपीठ में इस प्रकार पीठन्यास करना चाहिये : आधारशक्तिचक्र पर मण्डूक का, स्वाधिष्ठान पर कालाग्नि रुद्र का, नाभि में कच्छप का, हृदय में आधार शक्ति से हेमपीठ-पर्यन्त (आधार शक्ति, प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीरसागर, रत्नदीप, मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका, हेमपीठ) का न्यास करनी चाहिये। फिर दाहिने कन्धे, बायें कन्धे, वामऊरु, दक्षिण ऊरु, पर यथाक्रमेण धर्म, ज्ञान, वैराग्य, एवं ऐश्वर्य का न्यास करना चाहिये। मुख, वामपार्श्व, नाभि एवं दक्षिणपार्श्व पर अधर्म आदि (अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य) का न्यास करना चाहिये। इसके बाद हृदय में अनन्त से पद्म तक (अर्थात् तल्पाकार अनन्त, आनन्दमय कन्द, संविन्नाल, पद्म, प्रकृतिमय पत्र, विकारमय केसर तथा रत्नमय पञ्चाशद्बीजाढ्य कर्णिका) का न्यास कर पद्म पर सूर्यमण्डल की तपिनी आदि १२ कलाओं, चन्द्रमण्डल की अमृता आदि १६ कलाओं, तथा वह्निमण्डल की धूम्रार्चिषि आदि १० कलाओं का नाम के आदि वर्ण को प्रारम्भ में लगाकर न्यास करना चाहिये। फिर अपने नामादि वर्ण सहित सत्त्व, रज एवं तमोगुण का न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने नाम के आदिवर्ण सहित आत्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा का तथा आदि में परा (ह्रीं) लगाकर ज्ञानात्मा का न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर मायातत्त्व, कलातत्त्व, विद्यातत्त्व एवं परतत्त्व का भी उनके नाम के आदि वर्ण सहित न्यास करना चाहिये। इसके बाद पीठ शक्तियों का न्यास कर अपने पीठमन्त्र का न्यास करना चाहिये। (हृदय में अनन्त आदि देवों को उत्तरोत्तर एक दूसरे का आधार माना गया है)। इस प्रकार अमृतमय श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये जो नित्यानन्दप्रकाशक हैं ॥ २७-२९ ॥

टिप्पणी : पीठन्यास विधि : अपने अपने कल्पोक्त करन्यास, अङ्गन्यास एवं वर्णन्यासों को करने के बाद अपने शरीर को इष्टदेवता का पीठ मानकर शरीर के विविध अंगों में निम्नलिखित रीति से पीठ देवताओं का न्यास करना चाहिए, यथा :

ॐ मण्डूकाय नमः मूलाधारे। ॐ कालाग्नि रुद्राय नमः स्वाधिष्ठाने। ॐ कच्छपाय नमः नाभौ। ॐ आधारशक्तये नमः हृदि। ॐ प्रकृतये नमः हृदि। ॐ कूर्माय नमः हृदि। ॐ अनन्ताय नमः हृदि। ॐ पृथिव्यै नमः हृदि। ॐ क्षीरसागराय नमः हृदि। ॐ रत्नदीपाय नमः हृदि। ॐ मणिमण्डपाय नमः हृदि। ॐ कल्पवृक्षाय नमः हृदि। ॐ मणिवेदिकायै नमः हृदि। ॐ हेमपीठाय नमः हृदि।

फिर धर्म आदि एवं अधर्म आदि का निम्नलिखित अङ्गों पर न्यास करना चाहिये, यथा :

ॐ धर्माय नमः दक्षिणस्कन्धे। ॐ ज्ञानाय नमः वामस्कन्धे। ॐ वैराग्याय नमः वामोरौ। ॐ ऐश्वर्याय नमः दक्षिणोरौ। ॐ अधर्माय नमः मुखे। ॐ अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे। ॐ अवैराग्याय नमः नाभौ। ॐ अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे।

तत्पश्चात् हृदय में अनन्त आदि देवताओं का निम्नलिखित मन्त्रों से न्यास करना चाहिये, यथा :

ॐ तल्पाकारायानन्ताय नमः। ॐ आनन्दकन्दाय नमः। ॐ संविन्नालाय नमः। ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः। ॐ प्रकृतमयपत्रेभ्यो नमः। ॐ विकारमय केसरेभ्यो नमः। ॐ पञ्चाशद्बीजाढ्य कर्णिकायै नमः। ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः।

तत्रैव ॐ कं भं तपिन्यै नमः। ॐ खं बं तापिन्यै नमः। ॐ गं फं धूम्रायै नमः। ॐ घं पं मरीच्यै नमः। ॐ ङं नं ज्वालिन्यै नमः। ॐ पं बं रुच्यै नमः। ॐ छं दं सुषुम्णायै नमः। ॐ जं थं भोगदायै नमः।

ॐ झं तं विश्वायै नमः । ॐ ञं णं बोधिन्यै नमः । ॐ टं ढं धारिण्यै नमः । ॐ ठं डं क्षमायै नमः ।

तत्रैव ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः । ॐ अं अमृतायै नमः । ॐ आं मानदायै नमः । ॐ इं पूषायै नमः । ॐ ईं तुष्ट्यै नमः । ॐ उं पुष्ट्यै नमः । ॐ ऊं रत्यै नमः । ॐ ऋं धृत्यै नमः । ॐ ॠं शशिन्यै नमः । ॐ ऌं चण्डिकायै नमः । ॐ ॡं कान्त्यै नमः । ॐ एं ज्योत्स्नायै नमः । ॐ ऐं श्रियै नमः । ॐ ओं प्रीत्यै नमः । ॐ औं अङ्गदायै नमः । ॐ अं पूर्णायै नमः । ॐ अः पूर्णामृतायै नमः ।

तत्रैव ॐ रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः । ॐ यं धूम्रार्चिषे नमः । ॐ रं ऊष्मायै नमः । ॐ लं ज्वलिन्यै नमः । ॐ वं ज्वालिन्यै नमः । ॐ शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः । ॐ षं सुश्रियै नमः । ॐ सं स्वरूपायै नमः । ॐ हं कपिलायै नमः । ॐ ळं हव्यवाहायै नमः ।

तत्रैव ॐ सं सत्त्वाय नमः । ॐ रं रजसे नमः । ॐ तं तमसे नमः । ॐ आं आत्मने नमः । ॐ अं अन्तरात्मने नमः । ॐ पं परमात्मने नमः । ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

तत्रैव ॐ मां मायातत्त्वाय नमः । ॐ कं कलातत्त्वाय नमः । ॐ विं विद्यातत्त्वाय नमः । ॐ पं परतत्त्वाय नमः ।

विमलोत्कर्षणी ज्ञाना क्रिया योगेति शक्तयः ।
प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रा नवमी तथा ॥ ३० ॥

विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—इन्हें नव शक्तियाँ कहा गया है ॥ ३० ॥

एवं हृदयं भगवान् विष्णुः सर्वान्वितश्च भूतात्मा ।
ङेन्ताः सवासुदेवाः सर्वात्मयुतं च संयोगम् ॥ ३१ ॥

योगावधश्च पद्मं पीठा ङेयुतो नतिश्चान्ते ।
पीठमहामनुर्व्यक्तः पर्याप्तोऽयं सपर्यासु ॥ ३२ ॥

इस प्रकार नव शक्तियों का न्यास करने के बाद 'नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय'—इस महामन्त्र का हृदय में सर्वान्वित न्यास करना चाहिये । इसके बाद 'सर्वात्म योगपद्मपीठात्मने नमः'

इस पीठमहामन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार न्यास पूरा होता है॥ ३१-३२॥

करयोर्युगलं विधाय मन्त्रात्मकमभ्यानभिराम्यमानमार्गात्।
सकलं विदधीत मन्त्रवर्णैः परमं ज्योतिरनुत्तमं हरेस्तत्॥ ३३॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतीयरात्रे
प्रातःकृत्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

साधक को हाथ जोड़कर और अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने हृदय में मन्त्रवर्णात्मक श्रीहरि के अनुत्तम परमज्योतिरूप चिदानन्द का अनुभव करना चाहिये॥ ३३॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
तृतीय रात्र में प्रातःकृत्य नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त।

तृतीयरात्रे तृतीयोऽध्यायः

व्यास उवाच ।

अथ वक्ष्ये महामन्त्रं शृणुष्वावहितो मुने ।
यं लब्ध्वा न पुनर्गच्छेत् संसृतिं पामरोऽपि हि ॥ १ ॥

व्यास जी बोले : हे मुने ! मैं वह महामन्त्र कह रहा हूं जिसे प्राप्त कर पामर भी संसार में पुनर्जन्म नहीं लेता । तुम एकाग्र होकर सुनो ! ॥ १ ॥

वक्ष्ये मनुं त्रिभुवनप्रथितात्मभावमक्षीणपुण्यनिचयैर्मुनिभिर्विमृग्यम् ।
पक्षीन्द्रकेतुविषयं वसुधर्मकाममोक्षप्रदं सकलकर्मणि कर्मदक्षम् ।२।

जिसका प्रभाव तीनों भुवनों तक विस्तृत है, जो मुनियों का अभीप्सित है, जिसका पुण्य कभी क्षीण नहीं होता, जो सभी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का देने वाला है, जो ईश्वर का विषयस्वरूप है और जो सम्पूर्ण कर्मों में कर्मदक्षता को उत्पन्न करता है, मैं उसी महामन्त्र को कहूँगा ॥ २ ॥

अतिगुह्यमबोधतूलराशिज्वलनंवागधिपत्यदं नराणाम् ।
दुरितापहरं विषापमृत्युग्रहरोगादिनिवारणैकहेतुम् ॥ ३ ॥
जयदं प्रधनेऽभयदं विपिने सलिलप्लवने सुखतारणदम् ।
नरसन्निरथद्विपवृद्धिकरं सुतगोधरणीधनधान्यकरम् ॥ ४ ॥
बलवीर्यशौर्यनिचयप्रतिभास्वरवर्णकान्तिसुभगत्वकरम् ।
ब्रह्माण्डकोटिमणिमादिगुणाष्टकदं किमत्र बहुनाखिलदम् ॥ ५ ॥

यह मन्त्र अतिगुह्य तथा, मनुष्यों के पाप और अज्ञान को रूई की राशि के समान जला देनेवाला है । यह विष, अपमृत्यु, रोग और ग्रहबाधाओं आदि का निवारण करनेवाली एकमात्र औषधि है । यह मन्त्र युद्ध में विजय, वनों में अभय तथा जलप्लावन के समय सुरक्षा प्रदान करता है ।

यह साधक को अश्वादि, रथ, हाथी, गायें, धन, भूमि, सम्पत्ति, और अन्नादि सब कुछ देता है। यह बल, वीर्य, शौर्य, देवोपम देह-सौन्दर्य, समृद्धि, अणिमादि अष्टसिद्धियाँ, अनेक ब्रह्माण्ड तथा अन्य क्या कुछ नहीं दे सकता ? ॥ ३-५ ॥

शार्ङ्गी सोतुरदन्तः परो रामाक्षियुक् द्वितीयार्णम् ।
शूली शौरिर्बालो बलानुजद्वयमथाक्षर चतुष्टयम् ॥ ६ ॥
शूरतुरीयः सानन आवृत्तः स्यात् सशुमोऽष्टमोऽग्निसखः ।
तद्दयिताक्षरयुग्मं तदुपरिगस्त्वेवमुद्धरेन्मन्त्रम् ॥ ७ ॥
प्रकाशितो दशाक्षरो मनुस्त्वयं मधुद्विषः ।
विशेषतः पदारविन्दयुग्मं भक्तिवर्धनः ॥ ८ ॥

शार्ङ्गी+सोतुरदन्तः = ग + ओ = गो; परो रामाक्षियुक् = प+ई = पी; शूली = ज; शौरिर्बालो = न व; बलानुजद्वयं = ल्ल; शूर तुरीय (प से चौथा वर्ण) = भ; सानन आवृत्त स्यात् = आ = भा; साशुमोऽष्टमोऽग्निसखः = य; तद्दयिताक्षरयुग्मम् = स्वाहा। इस प्रकार यह मन्त्र बनता है : 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' यह मधुसूदन का दशाक्षर मन्त्र बताया गया जो श्रीकृष्ण के चरणकमलों में भक्ति की वृद्धि करनेवाला है ॥ ६-८ ॥

नारदोऽस्य मुनिरत्र कीर्त्तितश्छन्द उक्तमृषिभिर्विराडपि ।
देवतासकललोकमङ्गलो नन्दगोपतनयः समीरितः ॥ ९ ॥

इस मन्त्र के ऋषि नारद हैं, छन्द विराट् है और सकल लोक-मङ्गलकारी नन्दगोप के पुत्र श्रीकृष्ण देवता कहे गये हैं ॥ ९ ॥

अङ्गानि पञ्च हुतभुग्दयितासमेतै-
श्चक्रैरमुष्य मुखवृत्तविभूपपन्नैः ।
त्रैलोक्यरक्षणसुजाप्यसुरान्तकाख्यपूर्वेण
चेह कथितानि विभक्तियुक्तैः ॥ १० ॥
हृदये नतिः शिरसि पावकप्रिया
सवषट्शिखाहुमितिवर्मणि स्थितम् ।

सकृदस्त्रमित्युदितमङ्गपञ्चकं
सचतुर्थिवौषडुदितं दृशोर्यदि ॥ ११ ॥

साधक को इसका इस प्रकार पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिये : आचक्राय से हृदय; विचक्राय से शिर; सुचक्राय से शिखा, फिर त्रैलोक्य-रक्षण एवं चक्राय से कवच, तथा असुरान्त शब्द के बाद चक्राय से अस्त्र पर न्यास करना चाहिये ॥ १०-११ ॥

टिप्पणी : पञ्चाङ्ग न्यासविधि : आचक्राय हृदयाय नमः । विचक्राय शिरसे स्वाहा । सुचक्राय शिखाये वषट् । त्रैलोक्यरक्षण चक्राय कवचाय हुम । असुरान्तक चक्राय अस्त्राय फट् ।

कराङ्ग न्यास : आचक्राय स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः । विचक्राय स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः। सुचक्राय स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः । त्रैलोक्य रक्षण चक्राय स्वाहा अनामिकाभ्यां नमः। असुरान्तक चक्राय कनिष्ठाभ्यां नमः ।

मन्त्रार्णैर्दशभिरुपेतचन्द्रखण्डैरङ्गानां दशकमुदीरितं नमोऽन्तम् ।
हृच्छीर्षं तदनु शिखातनुत्रमन्त्रं पार्श्वद्वन्द्वसकटिपृष्ठमूर्द्धयुक्तम् ।।१२।

इसके बाद मूलमन्त्र के सानुस्वार वर्णों से १. हृदय, २. शिर ३. शिखा, ४. कवच, ५. अस्त्र, ६-७. पार्श्वद्वय, ८. कटि, ९. पृष्ठ, और १०. मूर्द्धा में, अन्त में नमः लगाकर न्यास चाहिये ॥ १२ ॥

टिप्पणी : गं हृदयाय नमः । पीं शिरसे नमः इत्यादि ।

मन्त्रमहोदधि में इस मन्त्र का वर्णन्यास इस प्रकार बताया गया है : गों नमः मस्तके । पीं नमः नेत्रयोः । जं नमः कर्णयोः । नं नमः नसोः । वं नमः मुखे । ल्लं नमः हृदि । भां नमः जठरे । यं नमः लिङ्गे । स्वां नमः जान्वोः । हां नमः पादयोः । यहाँ मन्त्रवर्णों को प्रणव से भी सम्पुटित किया जा सकता है, यथा ॐ गों ॐ नमः मस्तके, आदि ।

रक्षे मन्त्रस्यास्य बीजं च शक्तिचक्री शक्री वामनेत्रप्रदीप्तः ।
सप्रद्युम्नो बीजमेतत्प्रदीप्तं मन्त्रः प्रद्युम्नो जगन्मोहनोऽयम् ।।१३।।
हंसो मेदो वक्रवृत्ताभ्युपेतः पोत्री नेत्राद्यन्वितोऽसौ युगार्णा ।
प्रोक्ता शक्तिः सर्वगीर्वाणवृन्दैर्वन्दस्याग्नेर्वल्लभा कामदेयम् ।।१४।।

अब दूसरे बीजमन्त्र को बताते हैं : चक्री = क; शक्री (शक्र) = ल; वामनेत्रे = ई; प्रद्युम्न = अनुस्वार। इस प्रकार 'क्लीं' बीज मन्त्र बनता है। फिर हंस = ह; मेदः = ऋ; वक्रवृत्त और पोत्री = चन्द्रविन्दु। इस प्रकार 'ह्रीं' बीज बनता है। इसमें अग्निवल्लभा 'स्वाहा' लगाने से 'क्लीं ह्रीं स्वाहा' यह चतुराक्षर मन्त्र बनजाता है॥ १३-१४॥

विनियोगस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये।
कृष्णं प्रकृतिरित्युक्तो दुर्गाधिष्ठातृदेवता ॥ १५ ॥

इसका पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में विनियोग तथा कृष्ण को प्रकृति और दुर्गा को अधिष्ठातृ देवता बताया गया है।१५।

गोपायति सकलमिदं गोपायति परं पुमांसमिति गोपी।
प्रकृतेस्तस्या जातं जन इति नदादिकं पृथिव्यन्तम् ॥ १६ ॥

'गोपी' शब्द का इसलिये प्रयोग किया गया है क्योंकि यह इस सकल जगत को और परम पुरुष की भी रक्षा करता है। 'जन' शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि गोपी की प्रकृति से उत्पन्न हैं॥१६॥

अनयोर्गोपीजनयोः समीरणादाश्रितो व्याप्त्या।
वल्लभ इत्युपदिष्टं सान्द्रानन्दं निरञ्जनं ज्योतिः ॥ १७ ॥

परम पुरुष ही गोपी और जन का प्राण है और इनमें व्याप्त है, अतः उसके लिये सान्द्र आनन्द और निरञ्जन ज्योति स्वरूप 'वल्लभ' शब्द का प्रयोग किया गया है॥ १७॥

स्वाहेत्यात्मानं गमयामीत्यतेजसे तस्मै।
यः कार्यकारणेशः परामात्मेत्यच्युतैकतास्य मनोः ॥ १८ ॥

और अन्त में 'स्वाहा' का प्रयोग बताता है कि जीवात्मा चारों ओर से उन परमात्मा श्रीकृष्ण के तेज से आवृत्त है जो अच्युत, अद्वितीय और कार्यकारणेश हैं॥ १८॥

अथवा गोपीजन इति समस्त जगदवनशक्ति-
समुदायस्तस्य आनन्यस्य स्वामीवल्लभइत्युपदिष्टः।
अथवा व्रजयुवतीनांदयिताय जुहोमि मां मदीय-
मपीत्यर्पयेत् समस्तंब्रह्मणिसुगणेसमस्तसम्पत्त्यै ॥ १९ ॥

अथवा 'गोपी' समस्त जगत् का दिव्य शक्तिसमुदाय है और 'वल्लभ' उस शक्तिसमुदाय का स्वामी है। अथवा 'गोपी' व्रज की स्त्रियाँ और श्रीकृष्ण उनके स्वामी हैं; और मैं अपने को वृन्दावन की गोपियों के पति श्रीकृष्ण को अर्पित करने का होम कर रहा हूँ॥ १९॥

कृष्शब्दः सत्तार्थो णश्चानन्दात्मकस्ततः।
कृष्णो भक्ताघकर्षणादर्पितद्वर्णत्वाच्चमन्त्रमयवपुषः॥ २०॥

'कृष्' शब्द सत्तार्थी है और उसके बाद 'ण' आनन्दवाची है। 'कृष्ण' शब्द भक्तों के सभी पापों का हरण करता है। कृष्ण का वर्ण इस बात का द्योतक है कि उनका (कृष्ण का) सम्पूर्ण शरीर मन्त्रमय है॥ २०॥

गोः शब्दवाचत्वज्ज्ञानं तेनोपलभ्यत इति गोविन्दः
वेत्तीति शब्दराशिं गोविन्दो गोविचारणदपि।
एतेऽभिख्येऽनुक्रमतस्तूर्यविभक्त्या
मन्त्रात् पूर्वं मन्मथबीजादथ पश्चात्
स्यातां चेदष्टादशवर्णो मनुवर्यो
गुह्यात् गुह्यो वाञ्छितचिन्तामणिरेषः॥ २१॥

'गो' शब्द ज्ञानवाची है; ज्ञान से ही गोविन्द की उपलब्धि होती है। वह (कृष्ण) सम्पूर्ण शब्दराशि (भक्तों द्वारा उच्चरित स्तुतियों आदि) को जानते हैं; अतः भक्तों की आन्तरिक भावना ही गोविन्द हैं। अथवा जो गायों को चराते और उनकी सेवा करते हैं वही श्रीकृष्ण गोविन्द हैं। इसलिये अष्टदशाक्षर महामन्त्र इस प्रकार कहा गया है : 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा।' यह गुह्यतिगुह्य मन्त्र वाञ्छित चिन्तामणि है। ॥ २१॥

पूर्वप्रदिष्टे मुनिदेवतेऽस्य छन्दस्तु गायत्रमुशन्ति सन्तः।
अङ्गानि मन्त्राणंचतुष्कैर्वर्मावसानानियुगार्णमस्त्वं
बीजं शक्तिः प्रकृतिः विनियोगश्चापि पूर्ववदमुष्य॥ २२॥

इस मन्त्र का ऋषि नारद, देवता श्रीकृष्ण और छन्द गायत्री है।

हृदय से कवच पर्यन्त चतुर्वर्णात्मक अङ्गन्यास करना चाहिये। इस मन्त्र के बीज, शक्ति, प्रकृति और विनियोग आदि सब पूर्ववत् हैं ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥ २२ ॥

पूर्वतरस्य मनोरथ कथयामि न्यासमखिलसिद्धिकरम्।
व्यापय्याथो हस्तयोर्मस्तवाह्ये पार्श्वे तानरुद्धं बुधेन॥
न्यासो वर्णिस्तारयुग्मान्तरस्थैर्विन्दूस्तंसौहार्द्दकृत्यैर्विधेयः॥ २३ ॥

अब सर्वमनोरथों की सिद्धि करनेवाला उक्त मन्त्र का न्यास बताया जा रहा है : हस्त, पाद, मस्तक, बाह्य अंग और दोनों पार्श्वों में व्यापक न्यास करना चाहिये। आन्तरिक सौहार्द्र के लिये विन्दु और तारयुग्म (ॐ ॐ) से इस मन्त्र का न्यास करना चाहिये ॥ २३ ॥

शाखासु त्रीणि पूर्वाण्यधि दशसु
पृथग्दक्षिणांगुष्ठपूर्वं वामांगुष्ठावसानं
न्यस्तु विशदधीः सृष्टिरुक्ता करस्था।
अङ्गद्वन्द्वपूर्वा स्थितिरुभयकरे
संहृतिर्वामपूर्वो दक्षांगुष्ठान्तिके तत्
त्रयमपि सृजति स्थित्युपेतं च कार्यम्॥ २४ ॥

धैर्य और बुद्धि से युक्त साधक को उक्त मन्त्र से दश शाखाओं (करांगुलियों) में न्यास करना चाहिये। दाहिने करन्यास में सृष्टिक्रम और बायें करन्यास में संहारक्रम का अनुसरण करना चाहिये ॥ २४ ॥

टिप्पणी : उक्त मन्त्र के आदि में ॐ और अन्त में नमः लगाकर साधक को दक्षांगुष्ठ से आरम्भ करके वामांगुष्ठ पर समाप्त करना चाहिये। इसे सृष्टिन्यास कहते हैं। इसी प्रकार वामांगुष्ठ से आरम्भ कर दक्षांगुष्ठ पर्यन्त मन्त्र के न्यास को संहार न्यास कहते हैं। इसी प्रकार मध्यमा से आरम्भ न्यास को स्थिति न्यास कहते हैं।

ततः स्थितिक्रमाद्बुधो दशाङ्गकानि विन्यसेत्।
तदङ्गपञ्चकं तथा विधिः समीरितः करे॥ २५ ॥
पुटितैर्मनुनाथ मातृकार्णैरभिविन्यस्य सबिन्दुभिः पुरावत्।

अणुसंकृतिसृष्टिमार्गभेदा कृशानवानि च मन्त्रवर्णभाञ्जि ॥ २६ ॥
संहृतावनुगतो मनुवर्यः सृष्टिवर्त्मनि भवेत् प्रतियातः ।
उद्धृतिः खलुः पुरोक्तवदेषां न्यासकर्म कथयाम्यधुनाहम् ॥ २७ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

बुद्धिमान साधक को स्थिति, दशाङ्ग न्यास, अङ्गपञ्चक न्यास और करन्यास करना चाहिये । मातृका वर्णों से सम्पुटित उक्त मन्त्र के प्रत्येक वर्ण पर अनुस्वार लगाकर मार्गभेद से संहार, स्थिति और सृष्टिन्यास करे । अब न्यासक्रिया बतायी जायगी ॥ २५-२७ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र के तृतीय रात्र में
तृतीय अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे चतुर्थोऽध्यायः

अथ मुद्रा कथनम्

व्यास उवाच ।

महीसलिलपावकानिलवियन्ति गर्वो महान्
पुनः प्रकृतिपूरुषौ पर इमानि तत्त्वान्यथ ।
पदान्धुहृदयास्यकान्यधि पञ्चमध्ये द्वयं
त्रयं सकलगं ततो न्यसतु तद्विपर्यासितः ॥ १ ॥

व्यास जो बोले : पृथिवी, जल, तेज (पावक), वायु, आकाश; पुनः अहंकार, महत्, प्रकृति, पुरुष और परमात्मा ये कुल दस तत्त्व कहे गये हैं। प्रथम पाँच तत्त्वों का क्रमशः पैरों में, लिङ्ग में, हृदय में, मुख में और शिर में न्यास करना चाहिये। शेष पाँच तत्त्वों में प्रथम दो का हृदय में, और शेष तीन का सर्वगात्र में व्यापक न्यास करना चाहिये। यह संहार क्रम हुआ। इसके बाद सृष्टिक्रम से भी यही न्यास करना चाहिये॥ १॥

टिप्पणी : गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि गोपाल मन्त्र की सिद्धि के लिये दश तत्त्व न्यास अवश्य करना चाहिये। इसके करने से मन्त्र सद्यः सिद्ध हो जाता है। अतः काम्य उपासना में यह न्यास आवश्यक है। यह पहले संहारक्रम से और उसके बाद सृष्टिक्रम से करना चाहिये। यथा :

(१) संहारक्रम : गों नमः पराय पृथिवी तत्त्वात्मने नमः पादयो। पीं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः लिङ्गे। जं नमः पराय तेजतत्त्वात्मने नमः हृदि। नं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः मुखे। बं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमः शिरसि। ल्लं नमः पराय अहंकार तत्त्वात्मने नमः हृदि। भां नमः पराय महत् तत्त्वात्मने नमः हृदि। यं नमः पराय प्रकृति तत्त्वात्मने नमः सर्वगात्रे। स्वां नमः पराय पुरुष तत्त्वात्मने नमः सर्वगात्रे। हां नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः सर्वगात्रे।

(२) सृष्टिक्रम : ह्रां नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः सर्वगात्रे। स्वां नमः पराय पुरुष तत्त्वात्मने नमः सर्वगात्रे। यं नमः पराय प्रकृति तत्त्वात्मने नमः सर्वगात्रे। भां नमः पराय महत् तत्त्वात्मने नमः हृदि। ल्लं नमः पराय अहंकार तत्त्वात्मने नमः हृदि। बं नमः पराय आकाश तत्त्वात्मने नमः शिरसि। नं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः मुखे। जं नमः पराय तेजतत्त्वात्मने नमः हृदि। पीं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः लिङ्गे। गों नमः पराय पृथिवी तत्त्वात्मने नमः पादयोः।

गुप्ततमोऽयं न्यासः सम्प्रोक्तस्तत्त्वदशकपरिक्लृप्तः।
कार्योऽन्येष्वपि गोपालमनु झटिति फलसिद्ध्यै॥ २॥

यह न्यास अत्यन्त गुप्त, सद्यः फलसिद्धिकारक और दश तत्त्वों से परिष्कृत है। गोपाल मन्त्र के अन्य न्यास भी करने चाहिये क्योंकि वे भी शीघ्र सिद्धिप्रद हैं॥ २॥

आकेशादापादं दोर्भ्यां ध्रुवपुटितमनु-
वरं न्यसेद्वपुर्भिश्चापि पूर्ववदमुष्य।
मूर्द्धन्यक्ष्णः श्रुत्योर्घ्राणे मुखहृदय-
शिरजानुजठरपत्सु तथाक्षराणि॥ ३॥
न्यसेद्व्यक्ता सृष्टिः स्थितिरपि मुनिभि-
रभिहिता हृदादिमुखान्तिका।
संहारोङ्घ्र्यादिमूर्द्धान्तस्त्रितय-
मिति विरचयतु सृष्टिपूर्व
मनुस्थितिं न्यासः संहारान्तो-
मक्षाववैखानसेषु विहितोऽयम्॥ ४॥

आकेश-पादपर्यन्त (मस्तक, नेत्र, कान, नासिका, मुख, हृदय, उदर, लिङ्ग, जानु एवं पैर) प्रणव से सम्पुटित और अन्त में 'नमः' सहित सानुस्वार मन्त्र के वर्णों का क्रमशः न्यास करना चाहिये। इस न्यास को सृष्टि, स्थिति और संहार क्रमों से सम्पन्न करना चाहिये, ऐसा वैखानसों ने कहा है॥ ३-४॥

टिप्पणी : (१) सृष्टिक्रम : ॐ गों ॐ नमः मस्तके। ॐ पीं ॐ नमः

नेत्रयोः। ॐ जं ॐ नमः कर्णयोः। ॐ नं ॐ नमः नसोः। ॐ बं ॐ नमः मुखे। ॐ ल्लं ॐ नमः हृदि। ॐ भां ॐ नमः जठरे। ॐ यं ॐ नमः लिङ्गे। ॐ स्वां ॐ नमः जानुनोः। ॐ हां ॐ नमः पादयोः।

(२) **स्थितिक्रम :** ॐ गों ॐ नमः हृदि। ॐ पीं ॐ नमः जठरे। ॐ जं ॐ नमः लिङ्गे। ॐ नं ॐ नमः जानुनो। ॐ बं ॐ नमः पादयोः। ॐ ल्लं ॐ नमः मस्तके। ॐ भां ॐ नमः नेत्रयोः। ॐ यं ॐ नमः कर्णयोः। ॐ स्वां ॐ नमः नसोः। ॐ हां ॐ नमः मुखे।

(३) **संहारक्रम :** ॐ गों ॐ नमः पादयोः। ॐ पीं ॐ नमः जानुनोः। ॐ जं ॐ नमः लिङ्गे। ॐ नं ॐ नमः जठरे। ॐ वं ॐ नमः हृदि। ॐ ल्लं ॐ नमः मुखे। ॐ भां ॐ नमः नसोः। ॐ यं ॐ नमः कर्णयोः। ॐ स्वां ॐ नमः नेत्रयोः। ॐ हां ॐ नमः मस्तके।

स्थित्यन्तो गृहमेधिषु सृष्ट्यन्तो वर्णिनामिति प्राहुः।
वैराग्ययुजि गृहस्थे संहारं केचिदाहुराचार्याः॥ ५॥

गृहस्थों को स्थिति न्यास तथा विद्यार्थियों को सृष्टिन्यास करना चाहिये। कुछ आचार्यों का मत है कि वैरागी गृहस्थों को संहार न्यास करना चाहिये॥ ५॥

सहजानौ वनवासिनिस्थितिं च विद्यार्थिनां सृष्टिम्।
शिरसि निहिता मध्यासैराक्षितर्जनिकान्विता॥
शिरसि रहितांगुष्ठाज्येष्ठान्वितोपरनिष्ठिकानेसि च॥ ६॥

विद्यार्थियों को सृष्टि और स्थिति न्यास करना चाहिये। यतियों और वनवासियों को केवल सृष्टि, स्थिति एवं संहार न्यास ही करना चाहिये। न्यास करते समय अंगुलि-नियम इस प्रकार हैं : मस्तक में मध्यमा से; नेत्रों में मध्यमा एवं तर्जनी से; कानों में तर्जनी, मध्यमा, अनामा एवं कनिष्ठा से; नाक में अंगुष्ठ एवं अनामिका से; मुख में सब अंगुलियों से; हृदय में अंगुष्ठ एवं तर्जनी से; उदर एवं लिङ्ग में अंगुष्ठ एवं मध्यमा से; जानु में अंगुष्ठ रहित अंगुलियों से तथा पैरों में सब अंगुलियों से न्यास करना चाहिये॥ ६॥

मनोऽनुरञ्जनं हरिचरणाब्जभक्तिवर्धनम्।
स्फूर्त्तियेऽथास्य कीर्त्यते मूर्त्तिपञ्जरम्॥

आर्तिग्रहविषादिघ्नं कीर्त्तिश्रीकान्तिपुष्टिदम् ॥ ७ ॥

अब मूर्त्ति-पञ्जर न्यास बताया जा रहा है जो मन को प्रसन्न करने-वाला; हरि के चरणाब्जों में भक्ति की वृद्धि करनेवाला; कष्ट, विष और ग्रहबाधा को नष्ट करनेवाला; तथा कीर्त्ति, श्री, कान्ति और पुष्टि प्रदान करनेवाला है ॥ ७ ॥

केशवादियुगषट्कमूर्तिभिर्द्धाःपूर्वामिहिरानुमोन्तिकान् ।
द्वादशाक्षरभवाक्षरैः सुरैः क्लीववर्णरहितैश्च क्रमाद्न्यासेत् ॥८॥
भालोदरहृद्गभतूपतले वामे तव पार्श्वभुजान्तगले
वामत्रयपृष्ठककुत्सु तथा मूर्द्धन्यनुषट्घगावन्तु मनुम् ।
चैतन्यामृतवपुरर्ककोटितेजा मूर्ध्निस्थो वपुरखिलं स वासुदेवः ।९।

अब केशव आदि १२ मूर्तियों से न्यास करना चाहिये । प्रणव सहित विन्दुयुक्त मन्त्राक्षर, विन्दुसहित और क्लोव वर्ण रहित स्वर वर्ण, केशवादि द्वादश नाम, सूर्यादि के नाम और अन्त में नमः लगाकर ललाट, कुक्षि, हृदय, कण्ठ, दक्षपार्श्व, दक्षिणांस, गलदक्षिणभाग, वाम-पार्श्व, वामांस, गलवामभाग, पृष्ठ और ककुद में न्यास करके पूरे मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का मूर्धा में न्यास करना चाहिये। इसके साथ ही अखिल जगत को व्याप्त करने वाले, करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी, तथा चैतन्यामृतमय शरीर वाले श्री वासुदेव का साधक को मूर्धा में ध्यान करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

टिप्पणी : प्रयोगविधि : ॐ ॐ अं केशवाय धात्रे नमः ललाटे। ॐ नं आं नारायणायार्य्यम्णो नमः कुक्षौ । ॐ मों इं माधवाय मित्राय नमः हृदि । ॐ भं ईं गोविन्दाय वरुणाय नमः कण्ठे । ॐ गं उं विष्णवेंऽशवे नमः दक्षपार्श्वे । ॐ वं ऊं मधुसूदनाय भगाय नमः दक्षिणांसे । ॐ तें एं त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः गलदक्षिणभागे। ॐ वां ऐं वामनायेन्द्राय नमः वामपार्श्वे । ॐ सं ओं श्रीधराय पूष्णे नमः वामांसे । ॐ द्रें औं हृषिकेशाय पर्जन्याय नमः गलवामभागे । ॐ वां अं पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः पृष्ठे। ॐ यं अः दामोदराय विष्णवे नमः ककुदि । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मूर्ध्नि ।

ऊधस्य विमलपाथसीव सिक्तं व्याप्नोति प्रकटितमन्त्रवर्णकीलम् ।

सृष्टिस्थिती दशपश्चाङ्गयुग्मं न्यासादित्रितयकास्यहृत्सू ॥ १० ॥
विन्यस्यतु ग्रथयित्वा तु मुद्रां
भूयो दिशां दशकं बन्धनीयम् ।

उक्त प्रकार से ध्यान करते हुए साधक को यह भावना करनी चाहिये कि मन्त्रवर्णरूपी कीलक (सूर्य) का सम्पूर्ण शरीर क्षीरसागर के जल से सिञ्चित है। तदुपरान्त साधक को दश और पञ्चाङ्गयुग्म अर्थात् बीस अंगों में सृष्टि और स्थिति न्यास करना चाहिये ॥ १० ॥

न्यास और मुद्राबन्धन के बाद साधक को दशों दिशाओं में दिग्बन्धन करना चाहिये ।

तारं हार्दं विश्वमूर्त्तिश्च शार्ङ्गी
मासान्तं ते वायुमध्ये सुदेवाः ॥
षड्द्वन्द्वार्णो मन्त्रवर्यः स उक्तः
साक्षाद्द्वारं मोक्षपुर्या अगम्यम् ॥ ११ ॥

अब श्रेष्ठतम द्वादशाक्षर मन्त्र बताया जाता है जो अगम्य मोक्ष का साक्षात् द्वार है। तार (ॐ), हार्दं (नमो), विश्वमूर्ति (भ), शर्ङ्गी (ग), मासान्त (व), तें (ते), वा (वा), युमध्ये (सुदेवा), और अन्त में 'य' लगाने से 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह महामन्त्र बनता है ॥११॥

धात्रर्यममित्राख्या वरुणांशुभगा विवस्वदिन्द्रयुताः ।
पूषाह्वयपर्ज्जन्यो त्वष्टा विष्णुश्च भानवः प्रोक्ताः ॥ १२ ॥

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंशुमान्, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, आह्वय, पर्जन्य, त्वष्टा और विष्णु ये द्वादश भानु कहे गये हैं ॥१२॥

अथ तु युगरन्ध्रार्णस्य मनोर्न्यसनं ब्रुवे
रचयतु करद्वन्द्वेऽङ्गुलिपञ्चकेष्वङ्गपञ्चकम् ।
तन्मन्त्रमन्धं व्यापय्याथ त्रिशः प्रणवं सकृन्-
मनुजलिपयो न्यस्या भूयः पदानि च सादरम् ॥ १३ ॥
कचभुवि ललाटभ्रूयुग्मान्तरश्रवणाक्षिणो-
र्युगलवदनग्रीवाहृन्नाभिकट्युभयांघ्रिषु ।

न्यस्तगुशिरग्रोजान्वंघ्र्योरक्षराणि शिरसि ध्रुवं
नयनमुखहृद्गुह्यांघ्रिष्वर्पयेत् पदपञ्चकम् ॥ १४ ॥

अब उक्त द्वादशाक्षर मन्त्र का न्यास बताते हैं। पहले पाँचों अंगुलियों में न्यास करना चाहिये। फिर पञ्चाङ्ग (हृदय, शिर, शिखा, कवच, और अस्त्र) में न्यास करना चाहिये। फिर प्रणव सहित मन्त्र के द्वादश वर्णों का मूर्धा, भाल, नेत्र, मुख, गले, बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, जानु और पैरों में न्यास करना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

करन्यास : ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः। नमो तर्जनीभ्यां नमः। भगवते मध्यमाभ्यां नमः। वासुदेवाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

पञ्चाङ्गन्यास : ॐ हृदयाय नमः। नमो शिरसे स्वाहा। भगवते शिखायै वषट्। वासुदेवाय कवचाय हुं। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अस्त्राय फट्।

मन्त्रवर्ण न्यास : ॐ ॐ नमः मूर्ध्नि। ॐ नं नमः भाले। ॐ मों नमः नेत्रयोः। ॐ भं नमः मुखे। ॐ गं नमः गले। ॐ वं नमः बाह्वोः। ॐ तें नमः हृदये। ॐ वां नमः कुक्षौ। ॐ सुं नमः नाभौ। ॐ दें नमः लिङ्गे। ॐ वां नमः जान्वोः। ॐ यं नमः पादयोः।

पञ्चाङ्गानि न्यसेद्भूयो मुन्यादीनप्यन्यत् सर्वम् ।

फिर साधक को पूर्ववत् ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ॥१४½॥

टिप्पणी : प्रयोगविधि : ऋषिन्यास : ॐ प्रजापति ऋषये नमः शिरसि। गायत्री छन्दसे नमः मुखे। वासुदेवायपरमात्मदेवतायै नमः हृदि। विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

तुल्यं पूर्वेणाथो वक्ष्ये मुद्रा बध्या मन्त्रोर्या स्युः ॥ १५ ॥

अब मुद्राबन्धन बताते हैं ॥ १५ ॥

अनंगुष्ठा ऋजवो दक्षहस्तशाखा भवेन्मुद्रा हृदये शीर्षके च ।
अधोऽङ्गुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां करद्वन्द्वांगुलयो वर्मणिस्युः १६

अंगूठे को छोड़कर अपनी हथेली को हृदय पर और शीर्ष पर रक्खें। इस प्रकार क्रमशः हृदय और शिरो मुद्रायें बनती हैं। मुट्ठी

बांधकर और अंगूठे को अधोमुख शिखा पर रखने से शिखा मुद्रा बनती है। दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर फैलाने से कवच मुद्रा बनती है ॥ १६ ॥

नाराचमुष्ट्युद्धृतबाहुयुग्मं व्यंगुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु ।
विश्वग्विषक्ता कथिताऽस्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे तु ।१७।

दोनों हाथों की तर्जनियों और अंगूठों को बाणवत् फैलाकर उन्हें परस्पर रगड़ते हुए ध्वनि उत्पन्न करने को अस्त्रमुद्रा कहते हैं ॥ १७ ॥

ओष्ठे वामकरांगुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका ।
दक्षिणांगुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता ॥ १८ ॥
तर्जनीमध्यमाऽनामाः किञ्चित् संकुच्य चालिताः ।
वेणुमुद्रेह कथिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ॥ १९ ॥

बायें हाथ के अंगूठे से होठों का स्पर्श करे, बायीं कनिष्ठा को दाहिने अंगूठे से मिलाये; दाहिनी कनिष्ठा को फैला दे। अब, दाहिने हाथ की शेष तीन अंगुलियों (तर्जनी, मध्यमा और अनामा) को थोड़ा झुकाकर ऊपर-नीचे इस प्रकार चलाये मानो वेणु बजा रहे हों। यह वेणु मुद्रा है जो अत्यन्त गुप्त और श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है ॥१८-१९॥

नोच्यन्तेऽत्र प्रसिद्धत्वान्मालाश्रीवत्सकौस्तुभाः ।

माला, श्रीवत्स और कौस्तुभ मुद्रायें प्रसिद्ध हैं अतः उन्हें नहीं बता रहे हैं ॥ १९½ ॥

टिप्पणी : दोनों हाथों की तर्जनियों और अंगूठों से कण्ठ से पादपर्यन्त मालावत् देह का स्पर्श करे। यह माला मुद्रा है। (स्पृशेत् कण्ठादि पादान्तं तर्जन्यांगुष्ठनिष्ठया। करद्वयेनमालावन्मुद्रेयं वनमालिका)।

दोनों हाथ की हथेलियों को मिलायें; मध्यमाओं और अनामिकाओं को थोड़ा मोड़कर उन्हें तत्तद अंगूठों से दबायें। अब दोनों हाथों की तर्जनियों को तत्तद कनिष्ठामूलों से मिलायें। यह श्रीवत्स मुद्रा है (अन्योन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमानामिकांगुलीः । अंगुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंस्थिते । तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिका)।

दाहिने हाथ की मध्यमा और कनिष्ठा को अंगूठे से मिलाकर बायें

हाथ की कनिष्ठा से बांधे। दाहिनो तर्जनी से बाईं अनामिका को बांधें। बायें अंगूठे और मध्यमा को दाहिने अंगूठे के मूल में लगायें। शेष अंगुलियों को सीधा रक्खें। सभी चारों अंगुलियों के अग्रभाग को परस्पर मिला रक्खें। यह कौस्तुभ मुद्रा है। (अनामिकापृष्ठलग्नां दक्षस्य कनिष्ठिकाम्। कनिष्ठांऽन्यया बध्वा तर्जन्या दक्षया तथा। वामामनामां बध्नीयद्दक्षिणांगुष्ठके॥ अंगुष्ठमध्यमे वामे संयोज्य सरला पराः चतस्रोऽप्यग्रसंलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका॥)

उच्यतेऽच्युतमुद्राणां भद्रा विल्वफलाकृतिः॥ २०॥

अंगुष्ठं वाममुद्दण्डितमितरकरांगुष्ठकेनाथ बद्ध्वा
तस्याग्रं पीडयित्वांगुलिभिरपि च तां वामहस्तांगुलीभिः।
बद्ध्वा गाढं हृदि स्थापयतु बिमलधीर्व्याहरेन्मारबीजं
विल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह कथिता गोपनीया विधिज्ञै॥२१॥

परन्तु बिल्ववत् भद्रामुद्रा को आगे बता रहे हैं। बायें हाथ के अंगूठे को ऊपर उठायें और उसे दाहिने अंगूठे से मिलायें। अब दोनों अंगूठों को दाहिने हाथ की शेष चारों अंगुलियों से दबायें और उसे वक्षःस्थल पर स्थापित करें। अब बायें हाथ को सभी अंगुलियों से दाहिने हाथ की पहले से बद्ध उँगलियों को दबायें। साथ-साथ कामबीज (क्लीं) का उच्चारण करें। इसे गुह्यातिगुह्य बिल्व मुद्रा कहते हैं। ॥ २०-२१॥

मनोवाणीदेहैर्यदिह च दिवारात्रविहितं
अमत्या मत्या वा तदखिलमसौ दुष्कृतचयम्।
इमां मुद्रां जानन् क्षपयति नरस्तं सुरगणा
नमन्त्यस्याधीना भवति सततं सर्वजनता॥ २२॥

मन, वचन और देह से साधक रात-दिन इनको (मुद्राओं को) समझने का प्रयास करे और इस प्रकार अपने को ज्ञात या अज्ञात रूपों से किये गये पापों से मुक्त करे। इनके अभ्यास से सभी देवता और मनुष्य साधक के आधीन हो जाते हैं॥ २२॥

प्रणवहृदोरवसाने च चतुर्थीसुदर्शनं तथास्त्रपदम्।

उक्त्वाफडन्तममुना ग्रथयेन् मनुमस्त्रमुद्रया हरितः ॥ २३ ॥

तदुपरान्त साधक को हरिभक्ति प्राप्त करने के लिये 'ॐ हृदये सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए अस्त्रमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये ॥ २३ ॥

इति विधाय समस्तजगज्जनिस्थितिविनाशविधानविशारदम् ।
श्रुतिविधानकरं मनुविग्रहं स्मरतु गोपवधूजनवल्लभम् ॥ २४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे ज्ञानामृतसारे
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार नन्दनन्दन गोपीवल्लभ, जगत के स्थिति, विनाश और विधान के विशारद श्रीकृष्ण के विग्रह का ध्यान करना चाहिये । यह मन्त्रविग्रह मुनियों द्वारा विहित है ॥ २४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र में तृतीय रात्र के ज्ञानामृतसार
का चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे पञ्चमोऽध्यायः

मन्त्रपूजा प्रकरणम्

श्रीव्यास उवाच ।

अथ प्रकटसौरभोत्कलितफुल्लमाध्वीकसत्-
प्रसूननवपल्लवप्रकरनम्रशाखैर्द्रुमैः ।
प्रफुल्लनवमञ्जरीललितवल्लरीवेष्टितैः
स्मरेच्छिशिरितं शिवं क्षितुमतिस्तु वृन्दावनम् ॥ १ ॥

विकासिसुमनोरसास्वदनमञ्जुलैः सञ्चर-
च्छिलीमुखमुखोद्गतैर्मुखरितान्तरं झांकृतैः ।
कपोतशुकसारिकापरभृतादिभिः पत्रिभि-
र्विराजितमितस्ततो भुजगशत्रुनृत्याकुलम् ॥ २ ॥

श्री व्यास जी बोले : अब भक्त को सुन्दर वृन्दावन का स्मरण करते हुए यह ध्यान करना चाहिये कि वहाँ नवपल्लवों से युक्त वृक्षों की शाखायें मधुर सुगन्ध से व्याप्त पूर्णरूप से पुष्पित पुष्पों के भार से झुक गई हैं और नवपुष्पित मञ्जरियाँ तथा सुन्दर वल्लरियाँ वृक्षों से लिपट कर अपने ऊपर एकत्र ओसविन्दुओं से उन्हें शीलता प्रदान कर रही हैं। पुष्पों के मधुर रसों का आस्वादन करते हुए उनके चारों ओर मण्डराते बड़े-बड़े काले भ्रमरों का गुञ्जन, शुक और कपोतों का कलरव, सारिकाओं (पक्षी विशेष) का मधुर संगीत, कोयल की कूक, तथा नृत्य करते हुए मोर उस स्थान की मनोहरता में वृद्धि कर रहे हैं ॥ १-२ ॥

कलिन्ददुहितुश्चलल्लहरिविप्रुषां वाहिभि-
र्विनिद्रसरसीरुहोदररजश्चयोत्पिञ्जरैः ।

प्रदीपितमनोभवव्रजविलासिनीवाससां
विलोलनपरैर्निषेवितमनारतं मारुतैः ॥ ३ ॥

यह ध्यान करना चाहिये कि वायु का वेग कालिन्दी (यमुना) के जल के प्रवाह को तीव्र कर रहा है जिससे उसमें लहरें और भवरें उठ रही हैं। मारुति का वेग कमलपुष्पों की रज को उड़ाता हुआ व्रज की स्त्रियों के वस्त्रों को भी अस्त-व्यस्त करके उनके मनोभावों को उद्दीप्त कर रहा है ॥ ३ ॥

प्रवालनवपल्लवं मरकतच्छद वज्रमौ-
क्तिकप्रसवकोरकं कमलरागनानाफलम् ।
स्थविष्ठमखिलर्त्तु भिः सततसेवितं कामदं
तदन्तरपि कल्पकांघ्रिपमुदञ्चितं चिन्तयेत् ॥ ४ ॥

सहेमशिखरावनेरुदितभानुवद्भास्वरा-
मधोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरं वारिणः ।
प्रदीप्तमणिकुट्टिमां कुसुमरेणुपुञ्जोज्ज्वलां
स्मरेत् पुनरतन्द्रितो विगतषट्तरङ्गो बुधः ॥ ५ ॥

यह ध्यान करना चाहिये कि वहाँ सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला विशाल कल्पतरु स्थित है। प्रवाल के समान नवपल्लवों, मरकत जैसे पत्तों, हीरों जैसे पक्षियों और मधुर रस से पूर्ण मोतियों जैसे स्वादिष्ट फलों से वह स्थान सभी ऋतुओं में व्याप्त रहता है। पुनः बुद्धिमान् साधक को यह ध्यान करना चाहिये कि हेम शिखरों और वनों से सुशोभित और उदित होते सूर्य के समान प्रदीप्त कुसुमों की रेणु से परिपूर्ण उस सम्पूर्ण प्रदेश में मणियों की अनेक खानें हैं। ॥ ४-५ ॥

तद्रत्नकुट्टिमनिविष्टमहिष्ठयोग-
पीठेऽष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य ।
उद्यद्विरोचनसरो चिरमुष्य मध्ये
संचिन्तयेत् सुखनिविष्टमथो मुकुन्दम् ॥ ६ ॥

सद्यामरत्नदलिताञ्जनमेघपुञ्ज-
प्रत्यग्रनीलजलजन्मसमानभासम् ।
सुस्निग्धनीलघनकुञ्चितकेशजालं
राजन्मनोज्ञशितिकण्ठशिखण्डचूडम् ॥ ७ ॥
रोलम्बलालितसुरद्रुमसूनक्लृप्तो-
त्तंसं समुत्कचनवोत्पलकर्णपूरम् ।
लोलालकस्फुरितभालतलप्रदीप्तं
गोरचनातिलकमुज्ज्वलचित्रमालम् ॥ ८ ॥
आपूर्णशारदगताङ्कशशाङ्कबिम्ब-
कान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रम् ।
रत्नस्फुरत्कनककुण्डलरश्मिदीप्त-
गण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम् ॥ ९ ॥
सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्द-
मन्दारमन्दहसितद्युतिदीपिताशम् ।
वन्यप्रवालकुसुमप्रचयावक्लृप्त-
ग्रैवेयकोज्ज्वलमनोहरकम्बुकण्ठम् ॥ १० ॥

साधक को वहाँ वृहत् योगपीठ में उज्ज्वल अरुणवर्ण अष्टदल कमल का ध्यान करते हुए यह भावना करनी चाहिये कि उद्यद्विरोचन (सूर्य के उदय होनेवाले) सरोवर में स्थित होकर वह मुक्तिदाता श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहा है। उनके सुस्निग्ध नीलमेघ के समान और श्रेष्ठ रत्नों से विभूषित नीले घुँघराले केश तथा उनमें लगी सुन्दर मोर शिखा अपनी आभा से उनके सौन्दर्य की वृद्धि कर रहे हैं। कल्पवृक्ष के पुष्पों तथा सद्यः तोड़े गये कमलों से अलंकृत कुण्डल कानों में झूलते हुए उनके सौन्दर्य को अवर्णनीय सुन्दरता प्रदान कर रहे हैं। उनके कपोलों पर लगा उज्ज्वल गोरोचन का तिलक अनुपम प्रतीत हो रहा है और वक्षःस्थल पर सुन्दर वन्य पुष्पों की माला सुशोभित है।

उनका मुखमण्डल शरत्कालीन चन्द्रबिम्ब के समान प्रकाशित है। उनके विशाल नेत्र कमल के समान हैं। विविध मणियों और स्वर्णकुण्डल से उनके कपोल प्रदीप्त हो रहे हैं। उनकी उन्नत नासिका भी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही है। उनके अधर लाल सिन्दूर से भी अधिक सुन्दर हैं और मुस्कराहट कुन्द कलियों और मन्दार पुष्पों के खिलने से भी कहीं अधिक मनोहर है। उनके कण्ठाभूषण वन्य प्रवाल कुसुमों से अलंकृत और अत्यन्त सुन्दर हैं॥ ६-१०॥

मत्तभ्रमद्भ्रमरजुष्टविलम्बमान-
सन्तानकप्रसवदामपरिष्कृतांसम्।
हारवलीभगणराजितपीवरोरो-
व्योमस्थलीललितकौस्तुभभानुमन्तम्॥ ११॥

श्रीवत्सलक्षणसुलक्षितमुन्नतांस-
माजानुपीनपरिवृत्तसुजातबाहुम्।
आबन्धुरोदरमुदारगभीरनाभि
भृङ्गाङ्गनानिकरमञ्जुलरोमराजिम्॥ १२॥

नानामणिप्रघटिताङ्गदकङ्कणोर्मि-
ग्रैवेयसारकलनूपुरतुन्दबन्धम्।
दिव्याङ्गरागपरिपिञ्जरिताङ्गयष्टि-
मापीतवस्त्रपरिधीतनितम्बबिम्बम्॥ १३॥

चारूरुजानुमनुवृत्तमनोज्ञजङ्घ-
कान्तोन्नतप्रपदनिन्दितकूर्मकान्तिम्।
माणिक्यदर्पणलसन्नखराजिराज-
द्रक्तांगुलिच्छदनसुन्दरपादपद्मम्॥ १४॥

मत्स्याङ्कुशारिदवकेतुयवाब्जवज्र-
संलक्षितारुणतरांघ्रितलाभिरामम्।

लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्ग-
सौन्दर्यनिर्जितमनोभवदेहकान्तिम् ॥ १५ ॥

मँडराते हुए भ्रमरों से सेवित उनके कन्धों से लटक रहा कल्पवृक्ष के पुष्पों का हार, उनकी कण्ठमाला और वक्षःस्थल पर सुशोभित सूर्यकान्त मणि जटित कौस्तुभ हार उनके सर्वाङ्ग सौन्दर्य में अपार वृद्धि कर रहे हैं। उनके दोनों हाथों पर सुन्दर श्रीवत्स चिह्न अंकित है। उनके स्कन्ध उन्नत, बाहु जानुओं तक लम्बे, उदर वलययुक्त और नाभि भ्रमरों के समान काली रोमराशि से सुशोभित तथा गहरी है। उनकी ग्रीवा, भुजाएँ और मणिबन्ध सुन्दर बाजूबन्दों तथा अन्य रत्नजटित आभूषणों से अलंकृत हैं। उनका सर्वाङ्ग अनेक दिव्य अङ्ग-रागों से सुवासित है और कटि पर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है। उनके वक्षःस्थल अत्यन्त मनोहर, जानु गोल और घुटने किञ्चित उभरे हुए तथा सुन्दर हैं। पैरों की उँगलियाँ रक्तवर्ण और सुन्दर हैं तथा माणिक्य जैसे नख दर्पण की भाँति चमक रहे हैं। उनका सर्वाङ्ग सौन्दर्य तो अवर्णनीय है। उनके रक्तिम तलवों पर मत्स्य, अंकुश, ध्वज, वज्र और पद्म के चिह्न अंकित हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने उनके शरीर का निर्माण करने में अपने पास उपलब्ध सुन्दरता के सम्पूर्ण साधनों को व्यय कर दिया है जिससे उनकी देह की सुन्दरता, लावण्य और कान्ति कामदेव को भी लज्जित कर रही है ॥ ११-१५ ॥

आस्यारविन्दपरिपूरितवेणुरन्ध्र-
लोलत्करांगुलिसमीरितदिव्यरागैः ।
शश्वद्द्रवीकृतविकृष्टसमस्तजन्तु-
सन्तानसन्ततिमनन्तसुखाम्बुराशिम् ॥ १६ ॥

गोभिर्मुखाम्बुजविलीनविलोचनाभि-
रूधोभरस्खलितमन्थरमन्दगाभिः ।
दन्तायदष्टपरिशिष्टतृणांकुराभि-
रालम्बिबालधिलताभिरथाभिवीतम् ॥ १७ ॥

वह अपने कमल जैसे अधरों पर वेणु रखकर दिव्य रागिनियाँ बजा रहे हैं और उनकी उँगलियाँ वेणुरन्ध्रों पर क्रीड़ा कर रही हैं। वेणु के ललित स्वर को सुनकर लोगों का हृदय द्रवित हो अनन्त सुखराशि का अनुभव कर रहा है। सभी गायें मन्त्रमुग्ध होकर उनके मुखकमल को निहार रही हैं; उनके पयोधरों में दूध छलक रहा है और उनकी देह कुछ नत हो गई है। वालाधिलता से बँधी हुई वे अलसायी गायें हरे हरे कोमल तृणांकुरों को खा रही हैं और इसी कारण सभी को दृष्टि का केन्द्र बन गई है॥ १६-१७॥

सप्रस्रवस्तनविवर्षणपूर्णनिर्म-
लास्यावटक्षरितफेनिलदुग्धमुग्धैः।
वेणुप्रवर्त्तितमनोहरमन्दगीति-
दत्तोच्चकर्णयुगलैरपि नर्त्तकैश्च॥ १८॥

प्रत्यग्रश्रृङ्गयुगमस्तकसंप्रहार-
संरम्भवत्खलविलोलखुराग्रपातैः।
आमेदुरैर्बहलसास्नगलैरुदग्र-
पुच्छैश्च वत्सतरवत्सतरीनिकायैः॥ १९॥

दूध दुहते समय गायें यद्यपि प्रचुर दूध दे रही हैं, तथापि उनका ध्यान वंशी के मनोहर मन्द संगीत की ओर ही आकर्षित है और वे मुग्ध होकर उस मधुर संगीत को सुन रही हैं। अपनी सींगों को हिलाते हुए और खुरों को भी आगे पीछे करते हुए वे मानो वेणु की स्वर लहरी पर नृत्य कर रही हैं। साथ ही, वे पूँछ उठाकर अपने बछड़ों की ओर देखती हुई उनके बदन को प्यार से चाट रही हैं। ॥ १८-१९॥

हुङ्कारविक्षुभितदिग्वलयैर्महद्भि-
रप्युक्षभिः पृथुककुद्भरभारखिन्नैः।
उत्तम्भितश्रुतिपुटीपरिपीतवंश-
ध्वानामृतोद्धृतविकाशिविशालघोणैः॥ २०॥

गोपैः समानगुणशीलवयोविलास-
वेशैश्च मूर्च्छितकलस्वरवेणुवीणैः ।
मन्द्रोच्चतालपटुगानपरैर्विलोल-
दोर्वल्लरीललितलास्यविधानदक्षैः ॥ २१ ॥

जङ्घान्तपीवरकटीरतटीनिबद्ध-
व्यालोलकिङ्किणिघटाबलितैरटद्भिः
मुग्धैस्तरक्षुनखकल्पितकर्णभूषै-
रव्यक्तमञ्जुवचनैः पृथुकैः परीतम् ॥ २२ ॥

चारों दिशाओं को क्षुभित करते हुए गोपों के महान हुंकार से अविचलित वे गायें अपनी गर्दन उठाये वेणु के धवन्यामृत का ध्यान-पूर्वक पान कर रही हैं। गोपजन भी गुण, प्रकृति, वय, विलास और वेशभूषा में श्रीकृष्ण का अनुसरण करते हुए वंशी के संगीत के सुर पर अपने हाथों और चेहरों को हिलाते हुए अपनी कलादक्षता का परिचय दे रहे हैं। छोटी-छोटी घंटियाँ (किङ्किणी) उनके पैरों में बँधी हैं और कानों में व्याघ्रनख के समान आभूषण सुशोभित हैं। इन सब की मधुर रुन-झुन से सारा वातावरण व्याप्त है॥ २०-२२ ॥

अथ सुललितगोपसुन्दरीणां सुपृथुविशिष्टनितम्बमन्थराणाम् ।
गुरुकुचभंगुरावलग्नत्रिवलिजृम्भितरोमराजिभाजाम् ॥ २३ ॥

भारी कुचों और विशिष्ट नितम्बों के भार से मन्थर और ललित गति से चल रही गोपियों की नाभि के तीन वलय स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। वृन्दावन के वर्णन के अन्तर्गत इन सबका उल्लेख उपयुक्त ही है। ॥ २३ ॥

तदतिमधुरचारुवेणुवाद्यामृतरसपल्लविताङ्गजांघ्रिपाणाम् ।
मुकुलविसररम्यचारुरोमोद्गमसमलंकृतगात्रवल्लरीणाम् ॥ २४ ॥

तदतिरुचिरमन्दहासचन्द्रातपपरिजृम्भितरागवारिराशेः ।
तरलतरतरङ्गरम्यविप्रुट्प्रकरसमभ्रमविन्दुसंततानाम् ॥ २५ ॥

सभी वृक्षों और लताद्रुमों की शाखें उस मधुर और सुन्दर वेणु के वाद्यामृत से पूरी तरह सिक्त होकर अपने रोम रोम के सुन्दर कांटों से मानो अपने उल्लास को प्रकट कर रही हैं। आकाश में छाये मेघ यमुना के अत्यन्त उज्ज्वल जल पर मानो छत्र बन गये हैं। उन मेघों की छाया जल पर पड़ने से जलकणों की सुन्दरता अवर्णनीय हो गई है। ॥ २४-२५ ॥

तदतिललितमन्दचिल्लिचापच्युतनिशितेक्षणमारवाणवृद्ध्या ।
दलितसकलमर्मविह्वलांगप्रविसृतदुःसहवेपथव्यथानाम् ॥ २६ ॥

सुन्दर धनुषाकार श्रीकृष्ण की मनोहर भृकुटि मानो कामबाण छोड़कर देखने वालों के समस्त मानसिक संताप का हरण कर रही है। ॥ २६ ॥

तदतिसुभगकम्ररूपशोभाऽमृतरसपानविधानलालसानाम् ।
प्रणयसलिलपूरवाहिनीनामलसविलोलविलोचनाम्बुजानाम् ॥ २७ ॥
विस्रंसत्कवरीकलापविगतोत्फुल्लप्रसूनस्रवन्-
माध्वीलम्पटचञ्चरीकघटया संसेवितानां मुहुः ।
मारोन्मादमदस्खलन्मृदुगिरामालोलकांच्युच्छ्वस-
न्नीवीविश्लथमानचीनसिचयान्ताविर्नितम्बत्विषाम् ॥२८॥
स्खलितललितपादाम्भोजमन्दाभिघात-
क्वणितमणितुलाकोस्याकुलाशामुखानाम् ।
चलदधरकुलानां कुट्मलोत्पक्ष्मलाक्षि-
द्वयसरसिरुहाणामुल्लसत्कुण्डलानाम् ॥ २९ ॥
द्राघिष्ठश्वसनसमीरणाभिताप-
प्रम्लानीभवदरुणोष्ठपल्लवानाम् ।
नानोपायनविलसत्कराम्बुजाना-
मालीभि सततनिषेवितं समन्तात् ॥ ३० ॥
तासामायतलोलनीलनयनव्याकोषनीलाम्बुज-
स्रग्भिः संपरिपूरिताखिलतनूनानाविनोदास्यपदम् ।

तन्मुग्धाननपङ्कजप्रविगलन्माध्वीरसास्वादिनीं
विभ्राणं प्रणमोन्मदाक्षिमधुकृन्मालां मनोहारिणीम् ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण के अत्यन्त सुन्दर और सौभाग्यशाली सौन्दर्यामृत का पान करती हुई गोपिमों का प्रेम उनके अलस लोल लोचनों से अश्रुधारा के रूप में उमड़ रहा है। उनके केश और वेणियां अस्तव्यस्त हैं जिससे उनमें लगे पूर्णपुष्पित पुष्प गिर पड़े हैं और उनकी मधुर सुगन्ध चारों ओर फैल रही है। उस सुगन्ध से उनका मन मदोन्मत्त हो उठा है और वे उन्मादित होकर मधुर किन्तु विशृङ्खल वचन बोल रही हैं। उनकी कञ्चुकियाँ भी खुल गई हैं जिससे उनके मनोहर कुच दिखाई पड़ रहे हैं। उनकी चाल भी लड़खड़ा रही है जिससे उनके रत्नजटित आभूषण आपस में टकराते हुए मधुर ध्वनि उत्पन्न कर उनके मन में विचित्र उन्माद भर रहे हैं। उनके अधर कम्पित हो रहे हैं और नीलकमल जैसे नेत्र चञ्चल हो गये हैं। उनके झूलते हुए कुण्डल भी उनके आह्लाद को व्यक्त कर रहे हैं। धूप में भी लहराने वाले हरे-हरे पत्ते उन गोपियों की गरम-गरम निःश्वासों से मुरझा गये हैं। विविध उपहारों से सुशोभित उन गोपकन्याओं के मुख कमलवत प्रतीत हो रहे हैं और उन पर निरन्तर भ्रमर मँडरा रहे हैं। जब उनके नीललोचन रूपी नीलकमलों की सुगन्ध से उनका सम्पूर्ण शरीर व्याप्त था तब उन गोपियों के मुखकमलों से उच्चरित शब्द परस्पर अत्यन्त मधुर लग रहे थे॥ २७-३१ ॥

गोपीगोपपशूनां बहिः स्मरेदग्रतोऽस्य गीर्वाणघटाम् ।
वित्तार्थिनीं विरिञ्चित्रिनयनशतमन्युपूर्विकां स्तोत्रपराम् ॥ ३२ ॥

उक्त पीठ के वाह्य भाग में साधक को गोपियों, उनकी गायों तथा अन्य पशुओं द्वारा उच्चारित परम स्तोत्र का तथा वित्तार्थी ब्रह्मा, शिव और इन्द्र के स्तोत्रों का ध्यान करना चाहिये॥ ३२ ॥

तद्दक्षिणतो मुनिजननिकरवसुधर्मानादाय परम् ।
योगीद्रानथ पृष्ठे मुमुक्षुमालान् समाधिना सनकाद्यान् ॥ ३३ ॥

उसके (उक्त पीठ के) दक्षिण में मुनिसमुदाय, वसुओं, धर्म, और योगीन्द्रों का ध्यान करना चाहिये। पृष्ठभाग में गहन समाधि में स्थित मोक्षार्थी नागों और ऋषियों का ध्यान करना चाहिये॥ ३३ ॥

सव्ये सकान्तानथ सिद्धयक्षगन्धर्वविद्याधरचारणांश्च ।
सकिन्नरानप्सरसश्च मुख्यान् कामार्थिनो नर्त्तनगीतवाद्यैः ॥३४॥

वामभाग में सपत्नीक सिद्धों, नृत्य और गायन करते हुए यक्षों, गन्धर्वों, चारणों, विद्याधरों, मुख्य किन्नरों और अप्सराओं का ध्यान करना चाहिये ॥ ३४ ॥

शंखेन्दुकुन्दधवलं सकलागमज्ञं
सौदामिनीततिपिशङ्गजटाकलापम् ।
तत्पादपङ्कजगतामचलां च भक्तिं
वाञ्छन्तमुज्झिततरान्यसमस्तसङ्गम् ॥ ३५ ॥
नानाविधश्रुतिगणान्वितसप्तराग-
ग्रामत्रयीगतमनोहरमूर्च्छनाभिः ।
संप्रीणयन्तमुदिताभिरमुं महत्या
सञ्चिन्तयेन्नभसि धातृसुतं मुनीन्द्रम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे द्वितीयरात्रे
मन्त्रपूजाप्रकरणे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शङ्ख, चन्द्रमा तथा कुन्दकुसुम के समान धवल, आगमों और तन्त्रों के ज्ञाता, विद्युच्छटा के समान जटाजूट धारी, श्रीकृष्ण के पादाम्बुज में अचल भक्ति के लिये उत्सुक, सबका साथ छोड़कर सप्तसुरों के आरोह अवरोह और मनोहर मूच्छनाओं से युक्त त्रिताल में अत्यन्त मधुर तानों से श्रीहरि को सन्तुष्ट करने के लिये स्तुतिगायन करते हुए ब्रह्मपुत्र मुनिश्रेष्ठ नारद का आकाश में ध्यान करना चाहिये ॥ ३५-३६ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
तृतीय रात्र के मन्त्रपूजा प्रकरण में
पञ्चम अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे षष्ठोऽध्यायः

व्यास उवाच ।

इति ध्यात्वाऽऽत्मानं पटुविशदधीर्नन्दतनयं
पुरो बुद्ध्यैवार्घ्यप्रभृतिभिरनन्तोपहृतिभिः ।
यजेद्भूयो भक्त्या स्ववपुषि बहिष्ठैश्च विभवै-
र्विधानं तद्ब्रूमो वयमतुलसान्निध्यदमथ ॥ १ ॥

व्यास जी बोले : अब अतुल सान्निध्य (सामीप्य मुक्ति) को बताते हैं। दृढमति साधक को सर्वप्रथम नन्दतनय परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यात करके भक्ति और बुद्धिपूर्वक विविध विधानों से अपने शरीर में उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ १ ॥

आरचय्य भुवि गोमयाम्भसा स्थण्डिलं निजसमुद्रविष्टरम् ।
न्यस्य तत्र विहितास्पदोऽम्भसा शङ्खमन्त्रमनुना विशोधयेत् ॥२॥
तत्र गन्धसुमनोऽक्षतान्यथो निःक्षिपेद्धृदयमन्त्रमुच्चरन् ।
पूरयेद्विमलपाथसा सुधीरक्षरैः प्रतिगतैः शिरोऽन्तकैः ॥ ३ ॥

तदुपरान्त एक स्थण्डिल बनाकर उसे गोबर से लोपकर उस पर बालू बिछा देना चाहिये। फिर शङ्खमन्त्र का उच्चारण करते हुए उस पर कुश रखकर उसका विशोधन करना चाहिये। फिर हृदयमन्त्र का उच्चारण करते हुए गन्ध, पुष्प और अक्षत छिड़क कर मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के साथ बुद्धिमान साधक को अपने सभी अंगों पर शुद्ध जल छिड़कना चाहिये ॥ २-३ ॥

पीठशङ्खसलिलेषु मन्त्रवित् वह्निवासरनिशाकृतां क्रमात् ।
मण्डलानि चषकश्रवोक्षरैरर्चयेद्वदनपूर्वदीपितैः ॥ ४ ॥
तत्र तीर्थमनुनाभिराह्वयेत् तीर्थमुष्णरुचिमण्डलात्ततः ।
स्वीयहस्तकमलतो हरिं तथा गालिनीं च शिखया प्रदर्शयेत् ॥ ५ ॥

मन्त्रविद् साधक को पीठशङ्ख के जल से क्रमानुसार अग्नि, इन्द्र और चन्द्रमा की पूजा कर उन्हें यथाक्रम दीप दिखाना चाहिये। फिर तीर्थमन्त्र द्वारा सौरमण्डल से तीर्थों का आवाहन करके अपने हृदय कमल में श्रीहरि को तथा शिखा को गालिनी मुद्रा दिखानी चाहिये। ॥ ४-५ ॥

तज्जलं नयनमन्त्रवीक्षितं वर्मणा समवगुण्ठ्या दोर्युजा।
मूलमन्त्रसकलीकृतं न्यसेदङ्गकैश्च कलयेद्दिशोऽस्त्रतः ॥ ६ ॥
अक्षतादियुतमच्युतीकृतं सस्पृहं जपतु मन्त्रमष्टशः।
किञ्चन क्षिपतु वर्धनीजले प्रोक्षयेन्निजतनुं ततोऽमुना ॥ ७ ॥

फिर नेत्रमन्त्र से उस जल का वीक्षण कर उसे हाथ से ढँक कर वर्ममन्त्र से अवगुण्ठन तथा मूलमन्त्र से सकलीकरण करना चाहिये। इसके बाद अक्षतादि से पवित्र होकर धीरे-धीरे आठ बार इष्टमन्त्र का जप करके सामग्रियों को उस जल में डालकर उससे अपने शरीर का प्रोक्षण करना चाहिये ॥ ६-७ ॥

त्रिःकरेण मनुनाऽखिलं तथा साधनं कुसुमचन्दनादिकम्।
शङ्खपूरणविधिः समीरितो गुप्त एष यजनाग्रणीरिह ॥ ८ ॥

पूजा आरम्भ करने के पहले साधक को पुष्प-चन्दन आदि का संग्रह करना चाहिये। अब अत्यन्त गुप्त होते हुए भी शङ्ख में जल भरने की विधि बताते हैं ॥ ८ ॥

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ ९ ॥
एष तीर्थमनुः प्रोक्तो दुरितौघविनाशनः।
कनिष्ठांगुष्ठकौ शक्तौ करयोरितरेतरम् ॥ १० ॥
तर्जनीमध्यमाऽनामाः संहताऽऽभुग्नवर्जिताः।
मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरि चालिता ॥ ११ ॥

'गङ्गे च यमुने····सन्निधिं कुरु' इस इस सकल दुरितौघविनाशक तीर्थमन्त्र का उच्चारण करके गालिनी मुद्रा बनाना चाहिये : दोनों हाथों को मिलाकर दोनों की कनिष्ठाओं और अंगूठों को थोड़ा मोड़े।

एक हाथ की तर्जनी, मध्यमा और अनामा को दूसरे हाथ की तत्तद उँगलियों से मिलाकर सीधा रक्खें। यह गालिनी मुद्रा है जिसे शङ्ख के ऊपर घुमाना चाहिये ॥ ९-११ ॥

अथ मूर्धनि मूलचक्रमध्ये निजनाथं गणनायकं समर्च्य ।
न्यसनक्रमतनुः पीठमन्त्रैर्जलगन्धाक्षतधूपपुष्पदीपैः ॥ १२ ॥

फिर मूर्धा में और मूलचक्र में अपने परमात्मा तथा गणनायक की अर्चना करके पीठमन्त्र से शरीर में न्यास करे और फिर अर्घ्य, चन्दन, अक्षत, पुष्प, सुगन्ध, धूप तथा दीपादि समर्पित करे ॥ १२ ॥

प्रयजेदथ मूलमन्त्रतेजो निजमूले हृदये भ्रुवोश्च मध्ये ।
त्रितयं स्मरत स्मरेत्तदेकीकृतमानन्दघनं तडिल्लताभम् ॥ १३ ॥

तत्ते यज्ञैः सावयवीकृत्य विभूत्या-
ध्यङ्कान्तं विन्यस्य यजेदासनपूर्वैः ।
भूषान्तैर्भूयो जलगन्धादिभिरर्चा
कुर्याद्भूत्याद्यङ्गविधानावधि मन्त्री ॥ १४ ॥

फिर मूलमन्त्र से तेज की पूजा करने के बाद विद्युत के समान आभावाले, सच्चिदानन्द परमात्मा श्रीकृष्ण का मूलाधार, हृदय और भ्रूमध्य—इन तीन स्थानों में तीन बार ध्यान करे। इसके बाद तत्त्व-याग द्वारा विभूति से अंकपर्यन्त यज्ञ के सभी अवयवों का विन्यास करके विभिन्न उपकरणों, यथा गन्ध, जल, आभूषणादि को पुन: अर्चना करे ॥ १३-१४ ॥

भूयो वेणुं वदनस्थं वक्षोदेशे वनमालाम् ।
वक्षोजोर्ध्वं प्रयजेच्च श्रीवत्सं कौस्तुभरत्नम् ॥ १५ ॥

फिर श्रीकृष्ण के मुख पर स्थित वेणु, वक्ष:स्थल पर स्थित वनमाला की तथा उसके ऊपर स्थित श्रीवत्स चिह्नाङ्कित कौस्तुभ मणि की पूजा करे ॥ १५ ॥

श्रीखण्डनिस्यन्दविचर्चिताङ्गो मूलेन भालादिषु चित्रकाणि ।
लिख्यादथो पञ्जरमूर्तिमन्त्रैरनामयो दीपशिखाकृतीनि ॥ १६ ॥

पुष्पाञ्जलिं वितनुयादथ पञ्चकृत्वो
मूलेन पादयुगले तुलसीद्वयेन ।
मध्ये हयारियुगलेन च मूर्ध्नि पद्म-
द्वन्द्वेन षड्भिरपि सर्वतनौ च सर्वैः ॥ १७ ॥

फिर माला, चन्दन तथा अन्य बहुमूल्य अनुलेपनों से चित्रादि बनाकर भाल पर अनाभय पञ्जर मूर्तिमन्त्र लिखे। विद्वान साधक को इसके बाद हृदय में दीपशिखा के समान नारायण के बीजमन्त्र का ध्यान करना चाहिये। फिर पुष्पाञ्जलि देकर मूलमन्त्र से उनके दोनों पैर पर दो तुलसी दल, वक्षःस्थल पर दो सुगन्धित करवीर, और मूर्धा पर दो कमल रखकर सर्वाङ्ग पर छः पुष्प रखते हुए पूजन सम्पन्न करना चाहिये ॥ १६-१७ ॥

श्वेतानि दक्षभागेऽपि तच्चन्दनपङ्किलानि कुसुमानि
रक्तानि वामभागेऽरुणचन्दनपङ्कसिक्तानि ॥ १८ ॥
तद्वच्च धूपदीपौ समर्प्य विनयात् सुधारसैः कृष्णम्
मुखवासाद्यं दत्त्वा समर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः ॥ १९ ॥
ताम्बूलेनर्त्तनगीतवाद्यैः संताप्य चूर्णकसालनेन ।
ब्रह्मार्पणाख्यमनुना कुर्यात् स्वात्मार्पणं मन्त्री ॥ २० ॥

दाहिने भाग में चन्दन से परिष्कृत श्वेतपुष्प तथा वामभाग में उसी प्रकार लाल पुष्प समर्पित करना चाहिये। उसी प्रकार भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण को धूप और दीप निवेदित करने के बाद सुधारस अर्पित करना चाहिये। फिर मुख पोछने के लिये सुवासित वस्त्र तथा पुष्प देकर उनकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद ताम्बूल देकर नृत्य, गायन तथा वादन के साथ उन्हें प्रसन्न करने के लिये नैवेद्य अर्पित कर मन्त्री को ब्रह्मार्पण मन्त्र से स्वात्मा को भी उन्हें समर्पित कर देना चाहिये ॥ १८-२० ॥

अथवा संकुचितधिया लयविधिमूर्त्तिपञ्जरावचरुः ।
यद्यष्टादशलिपिना स्वान्तपादाङ्गैश्च बेणूपूर्वैः प्रोक्तः ॥ २१ ॥
सुप्रसन्नमथ नन्दतनुजं भावयन् जपतु मन्त्रमनन्यः ।

सानुसंस्मृति यथाविधि संख्यापूरणे स्वयं मनो विदधीत ॥ २२ ॥

यदि साधक संक्षेप में कार्य सम्पन्न करना चाहता है तो उसे मूर्तिपञ्जरलयविधि से कार्य करते हुए अष्टादशाक्षर मन्त्र का उच्चारण करके यौगिक पूजा पूर्ण करना चाहिये। फिर नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का ध्यान करके उस मन्त्र को जपते हुए उतनी ही बार पूरक आदि प्राणायाम करना चाहिये जितनी बार साधक मन्त्र का जप करता है। ॥ २१-२२ ॥

प्रणवपुटितं बीजं जप्त्वा शतं सहिताष्टकं
निजगुरुमुखादाप्तान् योगान् पुनक्तु महामतिः।
सदमृतचिदानन्दात्मायं जपं च समापये-
दिति जपविधिः सम्यक् प्रोक्तो मनुद्वयमाश्रितः ॥ २३ ॥
त इमं भजते विधिं नरो भविताऽसौ दयितः शरीरिणाम्।
आपराकक्रमलैकमन्दिरं परमन्ते समुपैति तन्महः ॥ २४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

आरम्भ में ॐ से सम्पुटित बीजमन्त्र का आठ बार जप करते हुए बुद्धिमान साधक को गुरुमुख से प्राप्त योग सम्पन्न करना चाहिये। उसके बाद सच्चिदानन्दमय परमात्मा का जप करते हुये उपरोक्त दोनों मन्त्रों का भी जप करना चाहिये। जो इस प्रकार श्रीकृष्ण का पूजन करता है वह मनुष्यों में सम्मान और श्री लक्ष्मी देवी की कृपा प्राप्त करके अन्त में मुक्ति लाभ करता है ॥ २३-२४ ॥

इति श्री नारदपञ्चरात्र में तृतीय रात्र का
षष्ठ अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे सप्तमोऽध्यायः

व्यास उवाच।

कथ्यते खलु मन्त्रवर्ययोः साधनं सकलसिद्धिसाधनम्।
यद्विधाय मुनयो महीयसीं सिद्धिमापुरिह नारदादयः॥ १॥

श्री व्यास जी बोले : अब मैं दोनों प्रमुख मन्त्रों को सिद्ध करने के साधन को बताऊंगा। इन मन्त्रों के विधान से ही नारद आदि मुनियों ने जगत में सिद्धि प्राप्त की थी॥ १॥

विप्रं प्रध्वस्तकालप्रभृतिरिपुघटानिर्मलाङ्गं गरिष्ठं
भक्तिंकृष्णांघ्रिपङ्केरुहयुगलरजोरागिणीमुद्वहन्तम्।
वेत्तारंवेदशास्त्रागमविमलपथां संमतं सत्सु विद्वां-
संयोभक्त्या विवित्सुः प्रवणतनुमना देशिकं संश्रयेत॥ २॥

श्रीकृष्ण का उपासक बनने के लिये व्यक्ति को हर प्रयास करके ऐसे मुनिश्रेष्ठ विप्र का आश्रय लेना चाहिये जो स्वयं भी जितेन्द्रिय होकर श्रीकृष्ण के पादाम्बुजों की विशुद्ध भक्ति प्राप्त कर चुका हो; जो वेदों और आगमों में पारङ्गत हो; जो सत्पथ को जानता हो; जिसकी विद्वान, बुद्धिमान और ज्ञानवान व्यक्ति के रूप में ख्याति हो; और जो एकान्तवासी हो॥ २॥

संतोषयेदकुटिलार्द्रतरात्मना तं
स्वैः स्वैर्धनैश्च वपुषाप्यनुकूलवाण्या।
अब्दत्रयं कमलनाभधियाऽथ धीर-
स्तुष्टे विवक्षतु गुरावथ मन्त्रदीक्षाम्॥ ३॥

बुद्धिमान भक्त को आस्था और निष्कपटता के साथ आध्यात्मिक साधना करनी चाहिये। उसे मन्त्र देनेवाले दीक्षागुरु को ब्रह्मज्ञानी समझ कर उनकी आज्ञा का पालन करते हुए तीन वर्ष तक अनुकूल

आचरण और वचन से उनकी सेवा करनी चाहिये। इसके बाद ही गुरु को ऐसे शिष्य को मन्त्रदीक्षा देनी चाहिये ॥ ३ ॥

प्रपञ्चसारप्रथिताऽत्र दीक्षा संस्मार्यते सम्प्रति सर्वसिद्धैः ।
ऋते यया संततजापिनोऽपि सिद्धिं न यद्दास्यति मन्त्रपूगः ॥४॥

अब मन्त्रदीक्षा को बताते हैं जो इस प्रपञ्चमय संसार में सर्वसिद्धिप्रद है। दीक्षित हुए बिना कोई भी साधक एक अथवा अनेक मन्त्रों के निरन्तर जप से भी वाञ्छित सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ४ ॥

अथ पुरो विदधीत स्तवस्थलीमविषमामधिवास्तु बलिं बुधः ।
अचलदोर्मितपत्रभु मण्डपं मसृणवेदिकमारचयेत्ततः ॥ ५ ॥
त्रिगुणतन्तुयुजा कुशमालया परिवृतं प्रकृतिध्वजभूषितम् ।
मुखचतुष्कपयस्तरुतोरणं सितवितानविराजितमुज्ज्वलम् ॥ ६ ॥

वसुत्रिगुणितांगुलिप्रमितखातवातायनं
वसोर्वसुपतेरथो ककुभि विष्ठमस्मिन् बुधः ।
करोतु वसुमेखलं वसुगणार्धकोणं प्रति
जवस्थितगजध्वनिप्रतिमयोनिसंलक्षितम् ॥ ७ ॥

साधक को अपने सामने स्तवस्थली बनाकर उसके एक भाग को समतल करके सात हाथ मान की वेदिका तैयार करनी चाहिये। वहाँ प्रकृति के प्रतीक स्वरूप एक उज्ज्वल ध्वजा गाड़कर वेदी के बाह्य द्वार पर एक मण्डप बनाकर उसे कुश से निर्मित तीन रस्सियों से घेर कर चार द्वार बना देना चाहिये। अब वहाँ पूजा की तैयारी करनी चाहिये। पहले खात और वातायन सहित २४ अंगुल की वेदी बनाना चाहिये। फिर उसमें उचित अनुपात में प्रमुख स्थान पर वासु और वासुपति का स्थान निर्धारित करना, तथा कोनों और सीमा रेखाओं (मेखलाओं) को योनिवत बनाना चाहिये ॥ ५-७ ॥

ततो मण्डपे गव्यगन्धमधुसिक्ते लिखेन्मण्डलं सम्यगच्छदाब्दम् ।
सुवृत्तत्रयं राशिपीठाद्धि वीथीचतुर्धावशोभोपशोभायुक्तम् ॥ ८ ॥
ततो देशिक स्नानपूर्वं विधानी विधायात्मपूजावसानां विधिज्ञः ।
स्ववामाग्रतः शङ्खमप्यर्घ्यपाद्याचमाद्यानि पात्राणि सम्पूरितानि ।९।

विधायान्यतः पुष्पगन्धाक्षताद्यं करक्षालने पृष्ठतश्चापि पात्रम् ।
प्रदीपावलीदीपिते सर्वमन्यत् स्वतोऽगाचारसाधनं चादधीत ।१०।

मण्डप के भीतर पञ्चगव्य, चन्दन और मधु से एक पत्र पर यथाविधि सम्पूर्ण यन्त्र को लिखना चाहिये, जिसमें तीन वृत्त, राशिपीठ तथा चार दिशाओं में समुद्र दिखाना चाहिये । फिर विधानवित् साधक को आत्मपूजा का विधान करना चाहिये । उसे अपने वामभाग में शङ्ख, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय आदि के पात्रों को रखना चाहिये । अपने दक्षिण भाग में साधक को पुष्प, चन्दन और अक्षत रखना चाहिये । पृष्ठभाग में अपना हाथ धोने का पात्र रखना चाहिये । इसके बाद उसे दीप को प्रज्वलित करके अन्य सब कृत्य स्वयं और अपने निर्देशन में सम्पन्न करना चाहिये ॥ ८-१० ॥

वायव्याशादीशपर्यन्तमर्च्या
पीठस्योदग्गौरवी पंक्तिरादौ ।
पूज्योऽन्यत्राप्याखिवक्रेयः कराब्जैः
पाशं दण्डं पुष्ट्याभीती दधानः ॥ ११ ॥
आराध्याऽऽधारशक्त्याद्यमरचरणयारप्यथो मध्यभागे
धर्मादीन् वह्नियक्षःपवनशिवगतान्दिक्ष्वधर्मादिकांश्च ।
मध्ये शेषाब्जतेजस्त्रितयगुणगणानात्मजान् केशराणां
मध्येत्वाकीर्णवासादिकमभियजते पीठमन्त्रेण भूयः ॥ १२ ॥

वायव्य कोण से आरम्भ करके पहले साधक को वेदी के उत्तर में स्थित गौरवी देवपंक्ति की पूजा समाप्त करनी चाहिये । फिर हाथों में पाश, दण्ड, पुष्टि और अभय धारण किये हुए गणेश का पूजन करना चाहिये । आधारशक्ति आदि का चरणों में, अग्नि का मध्य में, वायु का उत्तर में, धर्मादि का उत्तर पूर्व में पीठ मन्त्र से पूजन करना चाहिये । फिर अन्तिम पद्मदल में त्रिगुणात्मक का तथा केसरों में आकीर्णवासादि का पूजन करे ॥ ११-१२ ॥

ततः शालीन्मध्ये कमलममलांस्तण्डुलवरा-
नपि न्यस्येत् दर्भांस्तदुपरि च दूर्वाक्षतयुतान् ।

न्यसेत् प्रादक्षिण्यात्तदुपरि कृशानोर्दश कला
यकाराद्यार्णाद्या यजतु च सुगन्धादिभिरिमाः ॥ १३ ॥

इसके बाद अक्षत सहित दूर्वा, श्रेष्ठ तन्दुल, कुश, धान तथा कमल-पुष्प वेदी पर छिड़क कर पूजास्थल की परिक्रमा करे। फिर यकार से आरम्भ और अकारान्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए सुगन्धादि से अग्नि की दश कलाओं की पूजा करे ॥ १३ ॥

न्यसेत्कुम्भं तत्र त्रिगुणितलसत्तन्तुकलितं
जपंस्तारं धूपैः सुपरिमलितं जोङ्कमयैः
कभाद्यैः कुन्तिस्मिष्ठउवसितिभिर्वर्णयुगलै-
स्तथान्यस्याभ्यर्चास्तदनु खमणेर्द्वादश कलाः ॥ १४ ॥

फिर तीन सूत्रों से वेष्ठित कर कलश स्थापन करे; धूपादि जलाये और 'कभाद्यै कुन्तिस्मिष्ठ उवस्तिभिः' मन्त्र का उच्चारण करते हुए अन्य देवों की तथा सूर्य की द्वादश कलाओं की पूजा करे ॥ १४ ॥

एवं संकल्प्याग्निमाधाररूपं भानुं तद्वत्कुम्भरूपं विधिज्ञः ।
न्यसेत्तस्मिन्नक्षताद्यैः समेते कूर्चं स्वर्मं रत्नवर्यैः प्रदीप्तम् ॥ १५ ॥

अथ क्वाथतोयैः क्षकारादिवर्णैर्वकारावसानैः समापूरयेत्तम् ।
स्वमन्त्रत्रिजापावसानं पयोभिर्गवां पञ्चगव्यैर्जलैः केवलैर्वा ॥१६॥

इसी प्रकार प्रदीप्त कूर्च बीज (हुं) का उच्चारण तथा स्वर्ण, रत्न और अक्षतादि समर्पित करते हुए बुद्धिमान साधक संकल्प-पूर्वक आधाररूपी अग्नि और कुम्भरूपी सूर्य का आवाहन करे। फिर उन कुम्भों को 'क्ष' से आरम्भ और 'व' से अन्त होनेवाले मन्त्र का उच्चारण करते हुए क्वाथोदक से पूर्ण करे और जितनी देर में मन्त्र का तीन जप पूर्ण हो उतनी देर तक गाय का दूध अथवा पञ्चगव्य उन घटों में डालकर उन्हें भर दे ॥ १५-१६ ॥

सकलजनस्मिथसुयुगसंख्याः सुरगणपूर्वा न्यसतु तथैव ।
तदुपकलास्ता सलिलसुगन्धाः स तु सुमनोभिस्तदनु यजेच्च ।१७।

अब सभी भक्तों को उपरोक्त देवों के षोडशाङ्गों का न्यास करना

चाहिये। फिर अपने ऊपर सुवासित जल छिड़क कर अंश और उपांश देवों की पूजा करे ॥ १७ ॥

उदीच्यकुष्ठकुंकुमाम्बुलोहसज्जटासुरैः ।
सशीतमित्युदीरितं हरेः प्रियाष्टगन्धकम् ॥ १८ ॥

क्वाथतोयपरिपूरितोदरे संविलंघ्या विधिमाऽष्टगन्धकम् ।
सोमसूर्यशिखिनां पृथक् कलासेवकर्म विनियोजयेत् सुधीः ॥१९॥

तद्वदक्षरभवास्तु कादिभि-
स्तादिभिः पुनरुकारजाः कलाः ।
पादिभिर्मलिजास्तु विन्दुजा-
यादिभिः सुरगणेन नादजाः ॥ २० ॥

उदीच्य, कुष्ठ, कुंकुम, जल, लौह, सज्जटा, आसुर और सशीत ये हरि के प्रिय गन्धाष्टक कहे गये हैं। बुद्धिमान साधक को चाहिये कि वह पूजा के लिये प्रतिदिन क्वाथ से भरे पात्रों में इस गन्धाष्टक को डाले और फिर चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि को पृथक् पृथक् उनका अंश देवे। इसी प्रकार कादि अक्षरों से उनकी अकारजा कलाओं की पूजा करे। फिर तादि अक्षरों से उकारजा कलाओं की पूजा करे। पादि अक्षरों से अलिपिज कलाओं की, यादि अक्षरों से विन्दुजाकलाओं की और सुरगणों से नादजा कलाओं की पूजा करे ॥ १८-२० ॥

समावाहनान्ते सुसंस्थापनात् प्राक्
ऋचस्तत्र तत्रातिजप्या बुधेन ।
समभ्यर्च्य तास्ताः पृथक् तच्च पाथो-
ऽर्पयेन्मूलमन्त्रेण कुम्भे यथावत् ॥ २१ ॥

सहकारबोधपनसस्तवकैः शतमन्युकण्ठिकलितैः कलशम् ।
पिदधातुपुष्पफलतण्डुलकैरभिपूर्णया च शुभचक्रिकया ॥ २२ ॥

अभिवेष्टयेत्तदनु कुम्भमुखं नवनिर्मलांशुकयुगेन बुधः ।
सकलंकृतेऽत्र कुसुमादिभिरप्यभिवाहयेत् परतरं च महः ॥२३॥

देवता का आवहन करके उनकी सुस्थापना करने से पहले साधक

को ऋचास्तव करना तथा आहूत देवताओं की मूलमन्त्र से पृथक् पृथक् यथावत पूजा करके कुम्भ को भर देना चाहिये। फिर आम, पनस या अन्य किसी की सात पत्तियोंयुक्त टहनी से उस कलश को ढँक कर उस पर पुष्प, फल, अक्षत, स्वर्ण या अन्य शुभ वस्तु रख दे। इसके बाद उक्त कलश को नूतन स्वच्छ वस्त्र से वेष्टित कर पुष्पादि से अलंकृत कर दे और उसमें परमात्मा के सार का आवाहन करे ॥ २१-२३ ॥

सकलीविधाय कलशस्थमसुं हरिमस्तु तत्त्वमनुविन्यसनैः ।
परिपूजयेद्गुरुमथावहितः परिवारयुक्तमुपचारगणैः ॥ २४ ॥
दत्तासनं स्वागतमप्युदीर्य तथार्घ्यपाद्याचमनीयकानि ।
स्नानं च वासश्च विभूषणानि साङ्गाय तस्मै विनियोज्य मन्त्री २५

फिर तत्त्वमन्त्र का उच्चारण करते हुए श्रीहरि का उस कलश में विन्यास करके साधक को उनका सपरिवार विविध उवचारों से समाहित होकर पूजन करना चाहिये। इसके बाद आसन देकर स्वागत करे। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र और आभूषण देवे तथा मन्त्रवित् साधक उनका सांगपूजन करे ॥ २४-२५ ॥

गात्रे पवित्रैरथगन्धपुष्पैः पूर्वं यजेन्न्यासविधानतोऽस्य ।
सृष्टिस्थितिस्वाङ्गयुगं च वेणुं मालामभिज्ञानवराश्ममुख्यौ ॥
मूलेन चार्घ्यार्चनवत् प्रपूज्य समर्चयेदावरणानि भूयः ॥ २६ ॥
दिक्ष्वथ दामसुदामौ वसुदामः किङ्किनी च सम्पूज्याः ।
तेजोरूपास्तद्वद्बहिरङ्गानि केशरेषु सुमतिर्यजेत ॥ २७ ॥
हुतवहनिर्ऋतिसमीरणशिवदिक्षु हृदादिवर्मपर्यन्तम् ।
मुक्तेन्दुकान्तकुवलयहारिनीलहुताशप्रभाः प्रमदाः ॥ २८ ॥

तदुपरान्त, न्यास विधानपूर्वक साधक उनके शरीर के प्रत्येक अङ्ग का पवित्र गन्ध और पुष्प से पूजन करे। फिर उनके दोनों हाथों पर स्थित वेणु का तथा उनके सृष्टि और स्थिति रूपों का पूजन करके मूल मन्त्र से उन्हें माला और अलंकार देवे। इसके बाद आवरण देवताओं को पूजा करे। दिशाओं में दाम, सुदाम, वसुदाम और किङ्किणी की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद बुद्धिमान साधक तेजरूप वहिरङ्गों

का केसरों में पूजन करे। आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोणों में चन्द्रकान्तमणि के समान नीलाग्नि प्रभावाले स्त्रीमण्डल की हृदादि (नमः) से वर्मं (हुं) पर्यन्त मन्त्रों से पूजा करनी चाहिये ॥ २६-२८ ॥

अभयवरस्फुरितकराः प्रधानतनवोऽङ्गदेवताः स्मर्याः ।
रुक्मिण्याद्या महिषीरष्टौ सम्पूजयेद्दलेषु ततः ॥ २९ ॥
दक्षिणकरधृतकमलावसुभरितसुपात्रमुद्रितान्यकराः ।
रुक्मिण्याख्या सत्या लग्नाजित्याह्वया सुनन्दा च ॥ ३० ॥
भूयश्च मित्रविन्दा सुलक्षणाप्यृक्षजा सुशीला च ।
तपनीयमरकताभाः सुसितविचित्राम्बरास्त्वेताः ।
पृथुकुचभरालसाङ्ग्यो विविधमालप्रकरविलसिताभरणाः ॥ ३१ ॥

जिनके कर सदैव अभय और वर मुद्रा में तत्पर रहते हैं उन प्रमुखतः नव अङ्गदेवताओं का स्मरण करके रुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण की आठ महिषियों की अष्टदलों में पूजा करे : इस प्रकार दाहिने हाथ में पद्म और बायें हाथ में स्वर्ण से भरा पात्र लिये हुए रुक्मिणी, सत्या, नग्नजिती, सुनन्दा (कालिन्दी), मित्रविन्दा, सुलक्षणा, ऋक्षजा (जाम्बवती), और तप्त मरकतमणि के समान प्रभावाली, सुन्दर श्वेतवस्त्र और विविध आभूषण धारण किये हुए, कुचभार से अलसाङ्ग, विविध मालाओं तथा अलंकार को धारण किये सुशीला की पूजा करे। ॥ २९-३१ ॥

ततो यजेद्दलाग्रेषु वसुदेवं च देवकीम् ।
नन्दगोपं यशोदां च बलभद्रं सुभद्रिकाम् ॥ ३२ ॥
गोपालगोपीस्तद्वक्त्रे विलीनमितलोचनाः ।
ज्ञानमुद्राभयकरौ पितरौ पीतपाण्डुरौ ॥ ३३ ॥
दिव्यमालाम्बरालेपभूषणे मातरौ पुनः ।
धारयन्त्यौ च वरदं पायसापूपपात्रकम् ॥ ३४ ॥
अरुणश्यामले हारमणिकुण्डलमण्डिते ।
बलः शंखेन्दुधवलो मुसलं लाङ्गलं दधत् ॥ ३५ ॥

हालालोलानीलवासा हेलावानेककुण्डलः ।
कलायश्यामला भद्रा सुतदा भद्रभूषणा ॥ ३६ ॥
वराभययुता पीतवसना रूढयौवना ।
वेणुवीणावेत्रयष्टिशङ्खश्रृङ्गादिपाणयः ॥ ३७ ॥
गोपा गोप्यश्च विविधौपायनात्तकराम्बुजाः ।
मन्दारादींश्च तद्बाह्ये पूजयेत् कल्पपादपान् ॥ ३८ ॥
मन्दारसंतानकपारिजातकल्पद्रुमाख्यान् हरिचन्दनं च ।
मध्ये चतुर्दिक्ष्वभिवाञ्छितार्थदानैकदीक्षान्वितनम्रशाखान् ॥ ३९ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

फिर दलाग्रों में वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा, गोपाल तथा श्रीहरि के मुखारविन्द के ध्यान में विलीन नमितलोचना गोपियों की पूजा करे। तदनन्तर कर में ज्ञान और अभयमुद्रा धारण किये पीतवर्ण पितरों की पूजा करे। इसके बाद दिव्यमाला, अनुलेपन, अलंकार और आभूषणों, अपूप तथा खीर से मातृकाओं की पूजा करे। फिर चन्द्रमा और शङ्ख के समान श्वेतवर्ण, हाथों में गदा और हल धारण किये हुए, तथा हल और कुण्डल से अलंकृत अरुण-श्यामल बलदेव की पूजा करे। फिर चञ्चल, नीलवस्त्रधारी, अनेक कुण्डल पहने हुए नीलवर्ण और सुन्दर अलंकार धारण किये हुए भद्रा तथा सुभद्रा की पूजा करनी चाहिये। फिर हाथों में वेणु, वीणा, वेत्र, यष्टि, शङ्ख तथा श्रृङ्ग लिये, पीतवस्त्र पहने, रूढयौवन, अभय और वरमुद्रा धारण किये गोपालों और गोपियों को विविध उपहार समर्पित करके उनकी पूजा करे। फिर उसके बाहर मन्दारादि कल्पवृक्षों की पूजा करनी चाहिये : चारों दिशाओं में और मध्य में मन्दार, सन्तानक, पारिजात, हरिचन्दन और नम्र शाखावाले तथा समस्त मनोवाञ्छितार्थ प्रदान करनेवाले अद्वितीय कल्पवृक्ष की पूजा करे ॥३२-३९॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र में तृतीय रात्र का
सप्तम अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे अष्टमोऽध्यायः

व्यास उवाच ।

हरिहव्यवाट्तरणिजक्षपाटना-
प्पतिवायुसोमशिवशेषपद्मजान् ।
प्रयजेत् स्वदिक्ष्वमलधीः स्वजा-
त्यधीश्वरहेतिपत्रपरिवारसमेतान् ॥ १ ॥

कपिशकपिलनीलश्यामलश्वेतधूम्रा-
मलसितशुचिरक्तवर्णतो वासवाद्याः ।
करकमलविराजत्स्वायुधा दिव्यवेषा
विविधमणिगणोग्रप्रस्फुरद्भूषणाढ्याः ॥ २ ॥

व्यास जी बोले : शुद्धहृदय साधक दिशाओं में श्रीहरि, अग्नि, सूर्य, क्षपाट, सागर, वायु, चन्द्रमा, शिव और लक्ष्मी की तत्तद् दिशाओं में उनके, आयुधों, पारिवारों, और वाहनों सहित पूजा करे। इन देवताओं का वर्ण क्रमशः कपिश (भूरा), कपिल (लाल), नीला, श्याम, श्वेत, धूम्र-वर्ण, मलिन श्वेत, और शुचि है, जो सभी रक्ताभा लिये हुए हैं। सभी अपने हाथों में अपने आयुध लिये, दिव्य वस्त्र धारण किये, तथा विभिन्न रत्नाभूषणों से अलंकृत हैं। इन सबका इन्हीं रूपों में पूजन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

दम्भोलिशाक्त्यभिधदण्डकृपाणपाश-
चण्डांकुशार्द्धगदात्रिशिखारिपद्माः ।
अर्च्यावह्निनिजसुलक्षणलक्षितमौलियुक्ताः
स्वस्वायुधाभयसमुद्यतपाणिपद्माः ॥ ३ ॥

हाथों में वज्र, शक्ति, दण्ड, कृपाण, पाश, चण्डांकुश, शार्द्धगदा, त्रिशिखरि आदि आयुधों, सुलक्षण लक्षित मस्तकों और करमकलों

द्वारा अभयमुद्रा प्रदर्शित करते हुए इन देवों का ध्यान करके साधक को निर्भय होकर पूजा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

कनकरजततोयदाभ्रचम्पारुणहिमनीलजवाप्रवालभासः ।
क्रमत इति रुचात्तवज्रपूर्वा रुचिरविलेपनवस्त्रमाल्यभूषाः ॥ ४ ॥

विभिन्न देव और देवियाँ सुवर्ण, रजत, मेघ, चम्पा, उदित होते सूर्य (कमल), हिम, नील, जवा और प्रवाल जैसे सुन्दर आभावाले हैं। उनका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित है। वे श्रेष्ठ वेशभूषा और पुष्पमाला धारण करते हैं, तथा इस प्रकार उनका सौन्दर्य कामदेव को भी लज्जित करता है ॥ ४ ॥

कथितमावृतिसप्तकमच्युतार्चनविधावति सर्वसुखावहम् ।
प्रयजेदथवाङ्गपुरन्दराशनिमुखैस्त्रितयावरणं त्विदम् ॥ ५ ॥
हुत्वा जपित्वा जलगन्धपुष्पैः कृष्णाष्टकेताप्यथ कृष्णपूजाम् ।
कुर्याद्बुधस्तानि समाह्वयानि वक्ष्यामि तारादिनमोऽन्तिकानि ।६।
श्रीकृष्णो वासुदेवश्च नारायणसमाह्वयः ।
देवकीनन्दनो यदुश्रेष्ठो वार्ष्णेय इत्यपि ॥ ७ ॥
असुराक्रान्तशब्दान्ते भारहारीति सप्तमः ।
धर्मसंस्थापकश्चैव चतुर्थ्यन्ताः क्रमादिमे ॥ ८ ॥
एभिरेवाथ वा कार्या पूजा वै कंसवैरिणः ।
संसारसागरोत्तीर्थै सर्वकामाप्तये बुधैः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण की उपासना के सन्दर्भ में उनकी स्तुति करनेवाले सात अत्यन्त सुन्दर श्लोकों का पाठ करना चाहिये। उनकी त्रिविध आवरण पूजा, अङ्गपूजा, पुरन्दराशनि अथवा मुख द्वारा करनी चाहिये। अपने हित के लिये साधक को श्रीकृष्ण की जल, गन्ध, पुष्प, तथा कृष्णाष्टक से पूजा करनी चाहिये। अब इसका नियम बताते हैं। 'ॐ श्रीकृष्णाय नमः' आदि मन्त्रों से पूजा करना चाहिये। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त वासुदेव, नारायण, देवकीनन्दन, यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय, असुरान्तक भारहारी और धर्मसंस्थापक—इन सभी आठ नामों का क्रम से चतुर्थ्यन्त रूप में उच्चारण करना चाहिये। इन सब नामों से कंस के वैरी श्रीकृष्ण की

उपासना करने से साधक संसारसागर से पार होकर सभी कामनाओं को प्राप्त करता है ॥ ५-९ ॥

सारासारद्युतधिलुलितैर्जर्जरैः संविकीर्णैः-
जुंग्गुल्वाद्यैर्घनपरिमलैर्धूपमासाद्य मन्त्री ।
दद्यान्नीचैर्दनुजमथ मायाप्रवेणाथ दोष्णा
घण्टां गन्धाक्षतसुमनकैरर्चितां वादयानः ॥ १० ॥
तदुद्दीप्तं सुरभिघृतसंसिक्तकर्पूररक्तं
दीपं दृष्ट्या स्तुतिविशदधीः पद्मपर्यन्तमुच्चैः ।
दत्त्वा पुष्पाञ्जलिमपि विधायार्पयित्वा च पाद्यं
साचासंकल्पयेत्तद्विपुलमपि तदास्वर्णपात्रेनिवेद्यम् ॥११॥
सुरभितरेण दुग्धहविषा सुशृतेन शिता
समुदंशकैरुचिरकृत्य विचित्रवासैः ।
दधिनवनीतनूतनसितोपलपूपनिका-
घृतगुडनारिकेलकदलीफलपुष्परसैश्च ॥ १२ ॥

मन्त्रविद् साधक को सुगन्धित धूप जलाकर भक्तिपूर्वक घण्टा बजाते हुए गन्ध, अक्षत, इत्यादि श्रीकृष्ण को समर्पित करना चाहिये। उसे अपनी दृष्टि श्रीकृष्ण के पैरों पर केन्द्रित रखते हुए उन्हें उक्त धूप दिखानी चाहिये। इसी प्रकार उन्हें कर्पूर अथवा घी का दीप दिखाना चाहिये। शुद्धहृदय साधक को यह दीप ऊपर से नीचे पादपर्यन्त दिखाने के बाद पुष्पाञ्जलि और पाद्य, आचमनीय तथा सुवर्णपात्रों में रखकर नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। विशुद्ध दूध, घी शर्करा इत्यादि विविध आभूषण, दधि, नवनीत, अपूप, गुड, नारियल, केले और मधु आदि भी उन्हें अर्पित करना चाहिये ॥ १०-१२ ॥

अस्त्रोक्षितं तदरिमुद्रिकयाऽतिरक्ष्य
वायव्यतापपरिशोषितमग्निदोष्मा ।
संदह्य वामकरसौधरसाभिपूर्णं
मन्त्रामृतीकृतमथाभिमृशन् प्रजप्येत् ॥ १३ ॥

मनुमष्टशः सुरभिमुद्रिकया परिपूर्णमर्चयतु गन्धपुष्पैः ।
हरिमर्थयेदथ कृतप्रसराञ्जलिरास्यतोऽस्य विसरेच्च महः ॥ १४ ॥

वीतिहोत्रदयितान्तमुच्चरन् मूलमन्त्रमथ निःक्षिपेज्जलम् ।
अर्पयेत्तदमृतात्मकं हविर्दोर्मजासकुसुमं समुद्धरन् ॥ १५ ॥

निवेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हविः ।
निवेद्यार्पणमन्त्रोऽयं सर्वार्चासु निजाख्यया ॥ १६ ॥

ग्रासमुद्रां वामदोष्णा विकचोत्पलसन्निभाम् ।
प्रदर्शयन् दक्षिणेन प्राणादीनां च दर्शयेत् ॥ १७ ॥

फिर अस्त्र और संरक्षण मुद्रा उक्त वस्तुओं को दिखाये। हाथ से ढँक कर नैवेद्य के समस्त दोषों को अग्नि और वायु से दग्ध और शोषित कर देना चाहिये। फिर उसे सुधा से प्लावित करने के लिये हाथों से ढँककर अमृतीकरण मन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र का जप करते समय सुरभि मुद्रा प्रदर्शित करना चाहिये। फिर गन्ध और पुष्प समर्पित कर हाथ जोड़कर श्रीहरि की प्रार्थना करते हुए उन्हें अपने तेज और दर्प को संकुचित करने का अवसर देना चाहिये। फिर स्वाहान्त मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए जल छिड़क कर हाथ के पुष्पों से अमृतीकृत घी से उन्हें हवि समर्पित करना चाहिये। फिर अपने नाम का उच्चारण करते हुए घृत सहित इन सब वस्तुओं को श्रीभगवान को समर्पित करना चाहिये। बायें हाथ से कमल के समान ग्रासमुद्रा और दाहिने हाथ से प्राणमुद्रा दिखाना चाहिये। ॥ १३-१७ ॥

स्पृशेत् कनिष्ठोपकनिष्ठिके द्वे सांगुष्ठमूर्ध्ना प्रथमेह मुद्रा ।
तथापरा तर्जनिमध्यमे स्यादनामिकामध्यमिके च मध्या ॥ १८ ॥
अनामिकातर्जनिमध्यमाः स्यात् तद्वच्चतुर्थी सकनिष्ठिकास्ताः ।
स्यात् पञ्चमी तद्वदिति प्रदिष्टाः प्राणादिमुद्रा निजमन्त्रयुक्ताः ।१९।
प्राणापानव्यानसमानोदानाः क्रमाच्चतुर्थ्या युक्ताः ।
ताराधारबद्धा चेद्धा कृष्णाध्वनस्ततो मनवः ॥ २० ॥

ततो निवेद्य मुद्रिकां प्रधानया करद्वये।

स्पृशत्वनामिकां निजां मनुं जपन् प्रदर्शयेत् ॥ २१ ॥

अंगुष्ठ, अनामिक और कनिष्ठा को मिलाकर पहले यह (ग्रासमुद्रा) मूर्धा को दिखाना चाहिये। फिर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को मिलाकर मध्य मुद्रा दिखाना चाहिये। अँगूठा, अनामा, तर्जनी, और कनिष्ठा को मिलाकर अपने मन्त्र के साथ प्राणमुद्रा दिखाना चाहिये। चतुर्थ्यन्त प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान के साथ स्वाहा लगाकर श्रीकृष्ण के पथ का अनुसरण करनेवाले मन्त्र बनाने चाहिये। फिर अपने हाथों से मुद्रायें दिखाकर अनामा का स्पर्श करते हुए मन्त्र का जप करना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

नन्दजोऽम्बुमनुबिन्दयुङ्नतिर्वामपार्श्वउदरात्मनि च।

रुद्ध आत्मनि निवेद्यमात्मभूर्मां स पार्श्वमनिलस्तथा नियुक् ॥२२॥

मण्डलमभितो मन्त्रीबीजांकुरभाजनानि विन्यस्य।

पिष्टमयानपि दीपान् घृतपूर्णान् विनस्येत् सुदीप्तशिखान् ॥ २३ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पूजा और मण्डल को जानकर साधक को बीजांकुर जनित पत्रों सहित यन्त्रादि बनाकर उपकरणों सहित घृत से पूर्ण सुदीप्त दीपक जलाना चाहिये। फिर जल समर्पित करके नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को प्रणाम करना और यह ध्यान करना चाहिये कि नैवेद्यादि वामपार्श्व में, उदर में और आत्मा के प्रति समर्पित किये जा रहे हैं ॥ २२-२३ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के तृतीय रात्र में अष्टम अध्याय समाप्त

तृतीयरात्रे नवमोऽध्यायः

श्रीव्यास उवाच।

अथ संस्कृते हुतवहे विमलधीरभिवाद्य सम्यगभिपूज्य।
हरिं जुहुयात् सिताघृतयुतेन पयःपरिसाधितेन सितदीदिविना ॥१॥
अष्टोत्तरसहस्रं समाप्य होमं पुनर्बलिं दद्यात्।
वसिष्ठाधिनाथेभ्यो नक्षत्रेभ्यस्ततश्च करणेभ्यः ॥ २ ॥

व्यास जी बोले : फिर शुद्धमति साधक को वाद्यादि के साथ घी सहित दूध, शर्करा और अन्य पदार्थों का संस्कृत अग्नि में देवों के लिये होम करना चाहिये। इस प्रकार उसे १००८ आहुतियाँ देने के बाद नक्षत्रादि और करण के अधिष्ठाता वसिष्ठादि को बलि देना चाहिये ॥ १-२ ॥

सम्पाद्य पाणी च सुधां समर्प्य दत्त्वाम्भ उद्वास्य मुखार्चिरास्ये।
नैवेद्यमुद्धृत्य निवेद्य विश्वक्सेनाय पृथ्वीमुपलिप्य भूयः ॥ ३ ॥

गण्डूषदन्तधवनाचमनास्यहस्त-
सूक्त्यानुलेपमुखवासकमाल्यभूषाः।
ताम्बूलमप्यतिनिवेद्य सुराद्यनृत्य-
गीतैः सुद्मर्मभिपूजयतात् पुरेव ॥ ४ ॥

भूमि को अच्छी तरह लीपकर उस पर यथास्थान ईंटे रक्खे। फिर आग्नेय कोण की ओर जल गिराकर श्रीकृष्ण को नैवेद्य अर्पित करे तथा पुनः स्थान को गोबर से लीप दे। फिर गण्डूष, दन्तधावन, आचमन तथा मुख और हाथ धोने के लिये तत्सम्बन्धी वैदिक मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल दे। इसके बाद चन्दन, हाथ पोछने के लिये उत्तम

कपड़ा, माला, आभूषण, ताम्बूल और गन्ध आदि देकर नृत्य गायन करे और फिर पूर्ववत् पूजा करे ॥ ३-४ ॥

गन्धादिभिः सपरिवारमथार्घ्यमस्मै
दत्त्वा विधाय कुसुमाञ्जलिमादरेण ।
स्तुत्वा प्रणम्य शिरसा चुलकोदकेन
आत्मानमर्पयतु तच्चरणारविन्दे ॥ ५ ॥

इति पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यावस्थासु मनसा वाचा ॥ ६ ॥
कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतम् ।
यदुक्तं यत् कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा ॥ ७ ॥
मां मदीयं च सकलं हरयेऽहं समर्पये ।
ओं तत्सदिति सम्प्रोक्तो मन्त्रः स्वात्मार्पणे शुभः ॥ ८ ॥

फिर सपरिवार श्रीहरि को गन्ध सहित अर्घ्य देकर अत्यन्त भक्ति और प्रेमपूर्वक पुष्पाञ्जलि दे, स्तोत्रपाठ करे और प्रणाम करे। तदुपरान्त चुल्लू में जल लेकर 'इति पूर्वं प्राणबुद्धि····स्वात्मार्पणे शुभः'—इन श्लोकों का पाठ करते हुए अपने को उनके चरणारविन्द में समर्पित करे ॥ ५-८ ॥

अनुस्मरन् कलशमच्युतं जपन् सहस्रकं बुधो वपुष्य-
थोदितोज्झितः समा चितीविनाप्यतस्तदपि नयेत् सुधात्मताम् ।९।

कलश में अच्युत का स्मरण करते हुए मन्त्र का एक सहस्र जप करे और शरीरस्थ आत्मा का ध्यान करके अपने को सुधा का अधिकारी माने ॥ ९ ॥

ध्वजतोरणदिक् कलशादिगता-
मपि मण्डपमण्डलकुण्डलताम् ।
अभियोज्य चितिं कलशे कुसुमैः
परिपूज्य जपेत् पुनरष्टशतम् ॥ १० ॥

ध्वज, तोरण और कलशादि तथा मण्डप की अन्य वस्तुओं को एकत्र करके कलश की पुष्पों से पूजा करे तथा पुनः १००८ बार जप करे ॥ १० ॥

अथ शिष्य उपोषितः प्रभाते
कृतनित्यः सुसिताम्बरः सुवेशः ।
धरणीधनधान्यगोबहुलै-
र्विनयाद्विप्रवरान् हरेः प्रसाद्य ॥ ११ ॥

फिर व्रत के अन्त में शिष्य इस प्रकार प्रातःकृत्य समाप्त करके स्वच्छ श्वेत वस्त्र और आभूषण धारण कर भूमि, धन, धान्य तथा प्रचुर गायें आदि हरिभक्त ब्राह्मणों को दान देकर उन्हें सन्तुष्ट करे। ॥ ११ ॥

भूयः परीत्य प्रणिपत्य देशिकं
तस्मै परस्मै पुरुषाय देहिने ।
तां वित्तशाठ्यं परिहृत्य दक्षिणां
दत्त्वा तनुं स्वां च समर्पयेत् सुधीः ॥ १२ ॥

अपने गुरु की प्रदिक्षणा करने के बाद उन्हें प्रणाम करके अपने शरीर में परमात्मा की दिव्य उपस्थिति की भावना करते हुए सुधी साधक धन-कार्पण्य छोड़कर गुरु को दक्षिणा दे तथा अपने को उन्हीं की सेवा में समर्पित कर दे ॥ १२ ॥

अथाभिषेकमण्डपे सुखोपविष्टमासने ।
गुरुर्विशोधयेदमुं पुरेव शोषणादिभिः ॥ १३ ॥

पीठन्यासावसानं वपुषि विमलधीर्न्यस्य तस्यासिकाया
मन्त्रेणाभ्यर्च्य दूर्वाक्षतकुसुमयुतां रोचनां के निधाय ।
आशीर्वादैर्द्विजानां विशदपटुरवैर्गीतवादित्रघोषै-
र्मङ्गल्यैरानयेत्तं कलशमभिवृतस्तत्समीपं प्रतीतः ॥ १४ ॥

तेनाभिलीनमणिमन्त्रमहौषधेन
धाम्ना परेण परमामृतरूपभाजा ।

सम्पूरयन् वपुरमुष्य ततो वितन्वन्
तत्सामवर्ण्यमभिषेचयतात् यथावत् ॥ १५ ॥

क्षाद्यैराऽन्तिमवर्णैरद्भिश्च पूर्णतनुस्त्रिव्यक्तमन्त्रान्तैः ।
परिधृतसिततरवसनद्वितयो वाचम्यमः समाचान्तः ॥ १६ ॥

बहुशः प्रणम्य देशिकनामानं हरिमथोपसम्पूज्य ।
तद्दक्षिणतस्तिष्ठेदभिमुख एकाग्रमानसः शिष्यः ॥ १७ ॥

तब अभिषेक-मण्डप में सुखासीन हो गुरु को अपने शिष्य का शोषणादि विधि से विशोधन करना चाहिये। देहपीठ में देवों का न्यास करने के बाद शुद्धमति साधक उनकी मन्त्रों से अर्चना करके दूर्वा, अक्षत, पुष्प तथा गोरोचन समर्पित करे और ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करे। फिर गायन-वादन के साथ आरती करके देव के कलश के समीप आने की भावना करे। तब मणिमन्त्र का उच्चारण और महौषधियों को रखकर परमात्मरूप देव की परमधाम से आकर कलश में स्थित होने का आवाहन करके उनका कलश में अभिषेक करे। फिर 'क्ष' से अन्तिम वर्ण पर्यन्त मन्त्र के उच्चारणपूर्वक कलश को जल से भरने के बाद साधक श्वेतवस्त्र धारण कर मौनपूर्वक दो बार आचमन करे। गुरु को हरिवत् प्रणाम और पूजन करके शिष्य तब एकाग्रचित्त होकर उनके दाहिनी ओर सुखपूर्वक आसन ग्रहण करे। ॥ १३-१७ ॥

न्यासैर्यथाविधि तमच्युतसाद्विधाय
गन्धाक्षतादिभिरलंकृतवर्ष्मणोऽस्य ।
ऋष्यादियुक्तमथ मन्त्रवरं यथावत्
ब्रूयात् त्रिशो गुरुरनर्घ्यमवाकमन्ते ॥ १८ ॥

यथाविधि न्यास करके और अपने को श्रीकृष्ण में विलीन मानकर साधक अपने शरीर को गन्ध, पुष्पादि से अलंकृत करे। फिर ऋष्यादि के नामयुक्त मन्त्र को यथावत बोलकर मौनपूर्वक अर्घ्य समर्पित करे। ॥ १८ ॥

गुरुणा विधिवत् प्रसाधितं मनुमष्टोत्तरशतं प्रजप्य बुधः ।

अभिवन्द्या ततः शृणोति सम्यक्
समयान् भक्तिभरेण नम्रमूर्त्तिः ॥ १९ ॥

गुरु द्वारा विधिवत प्रसाधित मन्त्र का १०८ बार जप करके उनका अभिवादन करे और विनम्र भाव से गुरु के उपदेश का भक्तिपूर्वक श्रवण करे ॥ १६ ॥

दत्त्वा शिष्याय मनुं न्यस्त्वाथ गुरुः कृतात्मयजनविधिः ।
अष्टोत्तरसहस्रं स्वशक्तिहानानवाप्तये जप्यात् ॥ २० ॥

शिष्य को मन्त्र, न्यास और यजनविधि देने के बाद अपनी शक्ति प्राप्ति के लिये (गुरु) १००८ बार मन्त्र का जप करे ॥ २० ॥

कुम्भादिकं च सकलं गुरवे निवेद्य
सम्पूजयेत् द्विजवरानपि भोज्यजातैः ।
कुर्वन्त्यनेन विधिना य इहाभिषेकं
ते सम्पदां निलयनं हि त एव धन्याः ॥ २१ ॥

शिष्य को चाहिये कि वह कुम्भादि सभी वस्तुएं गुरु को समर्पित कर दे और फिर ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें श्रेष्ठ भोजन कराये । इस संसार में जो भी इस विधि से अभिषिक्त होता है वह धन्य होकर सभी सम्पत्तियों का आगार बन जाता है ॥ २१ ॥

संक्षिप्य किञ्चिदुदिता समर्प्य दीक्षा संस्मरणाय विषमधियाम् ।
एनां प्रविश्य मन्त्री सर्वान् मन्त्रान् जपेत् जुहुयात् यजेत ॥२२॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतीयरात्रे नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विषम बुद्धि वालों के स्मरणार्थ इन नियमों को संक्षेप में बताया गया । इससे मन्त्री मन्त्र प्राप्त कर जप, होम और पूजा का अधिकारी हो जाता है ॥ २२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में तृतीय
रात्र का नवम अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे दशमोऽध्यायः

श्रीव्यास उवाच ।

चैत्रेन्दुतन्मासि तमिस्रपक्षे
पुण्यक्षेत्रे देशिकात् प्राप्य दीक्षां ।
तेनाज्ञप्तः पूर्वसेवां द्वितीये
मासि द्वादश्यामारभेतामलायाम् ॥ १ ॥

श्री व्यास जी बोले : चन्द्रमास चैत्र के कृष्णपक्ष में पुण्यक्षेत्र में अपने गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये । फिर इसके द्वितीय मास के शुक्लपक्ष में आदेशानुसार प्रारम्भिक सेवा आरम्भ करनी चाहिये ॥ १ ॥

कृत्वा स्नानाद्यं कर्म देहार्चनान्तं
वर्त्माश्रित्य प्रागीरितं मन्त्रिमुख्यः ।
शुद्धो मौनी ब्रह्मचारी निशाशी
जप्याच्छान्तात्मा शुद्धपद्माक्षदाम्ना ॥ २ ॥

स्नानादि कर्म और देहार्चन समाप्त करने के बाद श्रेष्ठ साधक को उक्त विधियों का आश्रय लेकर शुद्ध, मौनी, ब्रह्मचारी, एक समय रात्रि-भोजी, और शान्तचित्त होकर कमल के बीजों की माला से जप करना चाहिये ॥ २ ॥

तन्वन् शुश्रुषां गोषु ताभ्यः प्रयच्छन्
ग्रासं भूतेषु प्रोद्वहंश्चानुकम्पाम् ।
मन्त्राधिष्ठात्रीं देवतां वन्दमानो
दुर्गां दुर्बोधध्वान्तभानुं गुरुं च ॥ ३ ॥

गायों की सुश्रूषा और उन्हें भोज्यपदार्थ देना, सब प्राणियों के प्रति दया, मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा की और गुरु तथा वरिष्ठों की वन्दना करते हुए अपने मन के परमान्धकार को नष्ट करना चाहिये । ॥ ३ ॥

कुर्वन्नात्मीयं कर्म वर्णाश्रमस्थं
मन्त्रं जप्त्वाऽद्भिः स्नानकारिणीभिः सिंचेत् ।
आचमेन पार्थस्तत्त्वसंख्यं प्रजप्तं
भुञ्जानश्चानु सप्तजप्तान् जनाढ्यः ॥ ४ ॥

अद्रेः शृङ्गे नद्यास्तटे बिल्वमूल
तोये ह्रद्घ्ने गोकुले विष्णुगेहे ।
अश्वत्थादधस्तादम्बुधेश्चापितीरे
स्थानेष्वेतेष्वासीनास्त्वेकैकशस्त ॥ ५ ॥

प्रजपेदयुतचतुष्कं दशाक्षरं मनुवरं पृथक् क्रमशः ।
अष्टादशाक्षरं चेदयुतद्वयमीरिता संख्या ॥ ६ ॥

अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन और मूलमन्त्र का जप करते हुए स्नान से अपना अभिसिञ्चन करे। आचमन के लिये पहले २४ बार और फिर ७ बार जप करे। इस प्रकार साधक सुखी होकर, गोशाला में, विष्णुमन्दिर में, अश्वत्थ या उदुम्बर के नीचे पृथक् क्रम से दशाक्षर मन्त्र का चालीस हजार तथा अष्टादशाक्षर मन्त्र का बीस हजार जप करे॥ ४-६ ॥

शाकं मूलं फलं गोस्तनभवदधिनीभैक्षमन्नं च शक्तून्
दौग्धान्नं चाददानः क्षितिधरशिखरादौ क्रमात् स्थानभेदे ।
एकं वै पानशक्तौ गदितमिति मया पूर्वसेवाविधानं
निवृत्तेऽस्मिन् भूयः प्रजपतु विधिवत् सिद्धये साधकेन्द्रः ।७।

स्थानभेद के अनुसार पर्वत के शिखरादि पर साधक को शाक, कन्दमूल, फल, दूध, दही, भक्ष्यान्न, सत्तू, दौग्धान्न (खीर) आदि की व्यवस्था कर लेनी चाहिये। पानशक्ति के सम्बन्ध में सेवाविधान के अन्तर्गत पहले ही बता चुका हूँ। इस प्रकार आवश्यक वस्तुओं की चिन्ता से निवृत्त होकर श्रेष्ठ साधक को सिद्धि के लिये मन्त्र का जप करना चाहिये॥ ७॥

देहार्चनान्ते दिनशो दिनादौ
दीक्षोक्तमार्गद्वितयं विधानम् ।
आश्रित्य कृष्णं प्रयजेद्विविक्त-
गेहेषु निष्ठो हुतशिष्टभोजी ॥ ८ ॥

दशलक्षमक्षयफलदं मनुं
प्रतिजप्य निर्मलमतिर्दशाक्षरम् ।
जुहुयाद्गुडाज्यमधुसंयुतैर्नवै-
र्वरुणाद्युजैर्हुतवहे दशायुतम् ॥ ९ ॥

शुषिलयुगलवर्णं चेन्मनुं पञ्चलक्षं
प्रजपतु जुहुयाच्च प्रोक्तक्लृप्तार्द्धलक्षम् ।
अमलमतिरलाभे पायसैरम्बुजानां
घृतसहितसिताभैरारभेद्धोमकर्म ॥ १० ॥

साधक को प्रतिदिन प्रातःकाल अपने देह को स्वच्छ करना चाहिये। फिर दीक्षोक्त द्वितीय मार्ग के अनुसार भक्तिपूर्वक एकान्त गृह में स्थित होकर श्रीकृष्ण का पूजन करने के बाद हविष्यान्न का भक्षण करना चाहिये। निर्मलमति साधक को प्रत्येक आहुति के साथ दशाक्षर मन्त्र का जप करते हुए एक लाख मधु और घी से होम करना चाहिये। इससे निश्चित रूप से अक्षय फल प्राप्त होता है ॥ ८-१० ॥

अशक्तानां होमे निगमरसनागेन्द्रगुणितो
जपः कार्यश्चेति द्विजनृपविशामाहुरपरे ।
स होमश्चेदेषां सम इह जपो होमवलितो
य उक्तो वर्णानां स खलु विहितस्तच्च न दृशाम् ।११।

अष्टादशाक्षर मन्त्र का पाँच लाख जप और ५० हजार होम करना चाहिये। यदि पायस (चावल, दूध और शर्करादि) न प्राप्त हो सके तो साधक को केवल घी से होम करना चाहिये। यदि उपरोक्त संख्या में होम करने में साधक असमर्थ हो तो उसे बारह गुना अधिक जप

करना चाहिये। ऐसा भी कहा गया है कि मन्त्र में जितने वर्ण हों उतने गुना अधिक जप और होम करना चाहिये॥ ११॥

यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रः स च तनुनां ध्रुवं विहितम्।
विदधीत जपं विधिवत् श्रद्धावान् भक्तिभवावनम्रतनुः ॥ १२ ॥

वर्णाश्रमाश्रित होकर शूद्र अपने अनुकूल जितने भी अक्षरों के मन्त्र का जप करेगा उसमें उसे भक्ति, श्रद्धा और नम्रतापूर्वक कर्म करने से सफलता मिलेगी॥ १२॥

पुनरभिषिक्तो गुरुणा विधिवत् विश्राण्य दक्षिणां तस्मै।
अभ्यवहार्य च विप्रान् विभवैः सम्प्रीणयेच्च भक्तियुतः ॥ १३ ॥

गुरु द्वारा पुनः अभिषिक्त होने पर शिष्य को उन्हें पुनः दक्षिणा देकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को दान करना चाहिये॥ १३॥

इति मन्त्रवरं द्वितयान्यवरं परिबाध्यजपादिभिरच्युतधीः।
प्रयजेत् सवनत्रितये दिनशी विधिनाथ मुकुन्दममन्दमतिः ॥१४॥

अथ श्रीमदुद्यानसंव्रात हेम-
स्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मण्डपान्तः।
लसत्कल्पवृक्षाध उद्दीप्तरत्न-
स्थलाधिष्ठिताम्भोजपीठाधिरूढम् ॥ १५ ॥

महानीलनीलाभमत्यन्तबालं
गुडस्निग्धवक्रान्तविस्रस्तकेशम्।
अनिर्भ्रांतपर्याकुलोत्फुल्लपद्म-
प्रमुग्धाननं श्रीमदिन्दीवराक्षम् ॥ १६ ॥

चलत्कुण्डलोल्लासिसोत्फुल्लगण्डं
सुघोणं सुशोणाधरं सुस्मितास्यम्।
अनेकाश्मरश्म्युल्लसत्कण्ठभूषं
लसन्तं वहन्तं नखं पौण्डरीकम् ॥ १७ ॥

समुद्भूसरोरःस्थलं वेणुधून्या
सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम् ।
कटीरस्थले चारुजङ्घान्तयुग्मे
पिनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना ॥ १८ ॥
हसन्तं हसद्बन्धुजीवप्रसून-
प्रभं पाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते
दधानं नवं शुद्धहैयङ्गवीनम् ॥ १९ ॥
महीभारभूतामरारातियूथा-
ननःपूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम् ।
प्रभुं गोपिकागोपवृन्दैः परीतं
सुरेन्द्रादिभिर्वन्दितं देववृन्दैः ॥ २० ॥

द्वितीय मन्त्रश्रेष्ठ को जपादि से बाध्य करके अमन्दमति साधक को तीन दिन तक निरन्तर मुक्तिदाता श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिये। तदुपरान्त साधक को यह भावना करनी चाहिये कि श्रीकृष्ण समस्त सम्पत्तियों और सुन्दरताओं के साथ उद्यान में पद्मपीठ पर सुवर्ण और रत्नों की छटा बिखेरते हुए कल्पवृक्ष और रत्नस्थल के समान स्थित हैं। उनका वर्ण नीला है, बाल स्वभाव है, उनके घुँघराले बाल माथे पर लटक रहे हैं, उनके नेत्र नीलकमल के समान हैं और पूर्णविकसित कमल के समान उनका मुख है। उनके कपोलों पर लटक रही लटें और लटकते हुए कुण्डल अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं। उनकी नासिका मनोहर और मुखकमल सुस्मित है। उनके गले और वक्ष पर चमकते हुए रत्न और मोती सुशोभित हैं ओर उनके नख कमल के समान प्रतीत हो रहे हैं। उनका वक्षःस्थल वेणु की संगीतमय ध्वनि से प्रकाशित हो रहा है और उनका शरीर विविध अलंकारों से सुशोभित है। उनके कटि में और सुन्दर जांघों पर छोटी-छोटी घण्टियों की माला बजती हुई लटक रही है। उनकी मधुर मुस्कान बन्धुजीव पुष्प के समान प्रतीत हो रही है और हाथ तथा पाँव अत्यन्त सुन्दर हैं।

वे दाहिने हाथ में खीर और बायें में मक्खन से भरे पात्र लिये हुए हैं। उन्होंने संसार का भार उतारने और देवशत्रु पूतनादि का वध करने के लिये अवतार लिया है। वे गोप-गोपियों से घिरे हैं तथा इन्द्रादि देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं॥ १४-२०॥

प्रगे पूजयित्वेत्यनुस्मृत्य कृष्णं
तदङ्गेन्द्रवज्रादिभिर्भक्तिनम्रः।
सिताभे च हैयङ्गवीनैश्च दध्ना
विमिश्रेण दौग्धेन सम्प्रीणयेत्तम्॥ २१॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे दशमोऽध्यायः॥ १०॥

भक्त को अत्यन्त भक्ति और नम्रतापूर्वक ताजे मक्खन, दही और शर्करामिश्रित दूध से श्रीकृष्ण की प्रातःकाल पूजा और इन्द्रवज्रा श्लोकों से स्तुति करना चाहिये। इस प्रकार उनका स्मरण करके उसे उनकी (श्रीकृष्ण की) कृपा प्राप्त करनी चाहिये॥ २१॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के तृतीय रात्र का
दशम अध्यय समाप्त॥

तृतीयरात्रे एकादशोऽध्यायः

व्यास उवाच ।

इति प्रातरर्चयेदच्युतं यो
नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः ।
लभेत् सोऽचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रा-
मिह प्रेत्य शुद्धिं परं धाम भूयात् ॥ १ ॥

श्री व्यास जी बोले : जो व्यक्ति प्रतिदिन आस्तिकतापूर्वक श्रीकृष्ण को पूजा करता है वह इसी संसार में अत्यन्त अल्पकाल में प्रचुर लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है और अन्त में शुद्ध हो परमधाम को चला जाता है ॥ १ ॥

अह्नो मुखेऽनुदिनमित्यभिपूज्य शौरिं
दध्नाथवा गुडयुतेन निवेद्य तोयैः ।
श्रीमन्मुखे समतितर्प्य तद्धिया तं
जप्यात् सहस्रमथ साष्टकमादरेण ॥ २ ॥

मध्यंदिने जपविधानविशिष्टरूपं
वन्द्यां सुरर्षियतिखेचरमुख्यवृन्दैः ।
गोगोपवनितानिकरैः परीतं
सान्द्राम्बुदच्छविसुजातमनोहराङ्गम् ॥ ३ ॥

मायूरपत्रपरिक्लृप्तवतंसरम्यं
धम्मिल्लमुल्लसितचिल्लिकमम्बुजाक्षम् ।
पूर्णेन्दुबिम्बवदनं मणिकुण्डलश्री-
गण्डं सुनासमतिसुन्दरमन्दहासम् ॥ ४ ॥

प्रतिदिन श्रीकृष्ण की पूजा करे तथा गुड और जल के साथ नैवेद्य समर्पित करते हुए यह भावना करे कि ये वस्तुयें उनके मुख में अर्पित की जा रही हैं। फिर अत्यन्त आदरपूर्वक अपने मन्त्र का १००८ बार जप करे। मध्याह्न जप के समय श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करे : वह नारदादि देवर्षियों, ऋषियों और देवों से सुशोभित, तथा गायों और गोपियों से घिरे हुए हैं। घने मेघ की छवि के समान मनोहर उनकी देह, मोरपंख से बने अलंकारों से सुसज्जित उनके केश, कमल के समान उनके नेत्र, पूर्णचन्द्रमा के समान उल्लसित उनका मुख, सुन्दर रत्नालङ्कारों से सुशोभित कपोल, सुन्दर नासिका और उनकी मन्द मुस्कान—इन सबका ध्यान करना चाहिये ॥ २-४ ॥

पीताम्बरं रुचिरनूपुरहारकाञ्ची-
केयूरकार्मिकटकादिभिरुज्ज्वलाङ्गम् ।
दिव्यानुलेपनविषङ्गितमंसराज-
दम्लादचित्रवनमालमनङ्गदीप्तम् ॥ ५ ॥

वेणुं धमन्तमथवामकरे दधानं
सव्येतरे पशुपयष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे मणिप्रवरमीप्सितदानदक्षं
ध्यात्वैवमर्चयतु नन्दजमिन्दिराप्त्यै ॥ ६ ॥

वह पीताम्बर धारण किये हुए है। उनके सुन्दर नूपुर, कमर में लटकती छोटी-छोटी घण्टियों की माला, उनके केयूर, उनके विविध आभूषण, और उनका बदन अत्यन्त मनोहर हैं। उनका शरीर दिव्य अनुलेपनों से सुन्दर है तथा उनकी अम्लान वनमाला उन्हें कामदेव के समान शोभा प्रदान कर रही है। उनके बायें हाथों में मधुर ध्वनि उत्पन्न करती वेणु अथवा पशुओं को हाँकने की लकड़ी है और दाहिना हाथ सभी वाञ्छित इच्छाओं को पूर्ण करने में दक्ष है। भक्तिपूर्वक साधक इस प्रकार श्रेष्ठतम रत्नालङ्कारों को धारण किये हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करके समृद्धिप्राप्ति के लिये उनकी पूजा करे ॥ ५-६ ॥

दामातिकाङ्गदयितासुहृदंघ्रिपेन्द्र-
वज्रादिभिः समभिपूज्य यथा विधानम् ।

दीक्षाविधानकथितं च निवेद्यजातं
हैमे निवेदयतु पात्रवरे यथावत् ॥ ७ ॥

इस प्रकार ध्वजचिह्न, वज्र और अंकुशादि लिये हुए श्रीकृष्ण की दीक्षा के नियमों के अनुसार पूजा करने के बाद साधक को उन्हें सुवर्णपात्रों में रखकर नैवेद्यादि समर्पित करना चाहिये ॥ ७ ॥

अष्टोत्तरशतमथो जुहुयात्पयोऽन्नैः
सर्पिर्युतैः सुशितशर्करया विमिश्रैः ।
दद्याद्बलिं च निजदिक्षु सुरर्षियोगि-
रक्षोपदैवतगणेभ्य उदारचेताः ॥ ८ ॥

उदार चेता साधक को खीर, घी और शर्करा से १०८ होम करना और देवर्षियों, योगियों, राक्षसों और उपदेवताओं को उनकी अपनी-अपनी दिशाओं में बलि देना चाहिये ॥ ८ ॥

नवनीतमिलितपायसधियार्चनान्ते जनैर्मुखं तस्य ।
संतर्प्य जपतु मन्त्री सहस्रमष्टोत्तरशतं वापि ॥ ९ ॥

यह भावना करना चाहिये कि उनका (श्रीकृष्ण का) मुख ताजे मक्खन और खीर से तृप्त हो गया है। फिर अपने मन्त्र का १०८ बार अथवा १००० बार जप करना चाहिये ॥ ९ ॥

अह्नो मध्ये बल्लवीवल्लभं तं नित्यं भक्त्याभ्यर्चयेद्यो नराग्र्यः ।
देवाः सर्वे तं नमस्यन्ति शश्वद्वर्त्तेरन् वै तद्वशे सर्वलोकाः ॥१०॥

मेधायुःश्रीकान्तिसौभाग्ययुक्तः
पुत्रैर्मित्रैर्गोमहीरत्नजातैः ।
भोगैश्चान्यैर्भूरिभिः सन्निहाढ्यो
भूयाद्धामाऽन्ते च तस्याच्युताख्यम् ॥ ११ ॥

जो मनुष्य नित्य गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण की भक्तिपूर्वक अर्चना करता है उसे सभी देवता नमस्कार करते हैं और सभी लोक उसके वश में हो जाते हैं। वह मेधा, श्री, कान्ति और सौभाग्य से युक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है तथा पुत्रों, मित्रों, पशुओं, भूमि, और अन्यान्य भोगों को प्राप्त करके अन्त में श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त होता है ॥ १०-११ ॥

तृतीयकालपूजायामस्ति कालविकल्पना ।
सायाह्ने निशि वेत्यत्र वदन्त्येके विपश्चितः ॥ १२ ॥
दशाक्षरेण चेद्रात्रौ सायाह्नेऽष्टादशं ततः ।
उभयोमुभयेनैव कुर्यादित्यपरे जगुः ॥ १३ ॥

कुछ पण्डितों का कहना है कि तृतीयकाल सन्ध्या अथवा रात्रि में ही श्रीकृष्ण की अर्चना करनी चाहिये । यदि दशाक्षर मन्त्र का रात के समय जप किया जाय तो अष्टादशाक्षर मन्त्र का सन्ध्या के समय जप करना चाहिये—ऐसा भी कुछ साधकों का कथन है ॥ १२-१३ ॥

सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रोद्यानोपशोभिते ।
द्व्यष्टसाहस्रसंख्यातैर्भवनैरभिसंवृते ॥ १४ ॥

सन्ध्या के समय साधक को श्रीकृष्ण की पूजा विविध सुन्दर उद्यानों और सोलह सहस्र भवनों से सुशोभित द्वारावती (द्वारका) में करनी चाहिये ॥ १४ ॥

हंससारससंकीर्णैः कमलोत्पलशालिभिः ।
सरोभिरमलाम्भोभिः परीते भवनोत्तमे ॥ १५ ॥
उद्यत्प्रद्योतनोद्योतसद्युतौ मणिमण्डपे ।
मृद्वास्तरे सुखासीनं हेमाम्भोजासने हरिम् ॥ १६ ॥

हंस, सारस तथा अन्याय पक्षी जहाँ क्रीडा करते हैं, विविध प्रकार के कमल पुष्पों से जहाँ के सरोवर सुशोभित हैं, वहाँ नानारत्नों से अलंकृत कक्ष में स्वर्णपद्म पर सुखपूर्वक पद्मासन में विराजमान और उदित होते हुए सूर्य के समान स्मितानन श्रीकृष्ण को पूजा करनी चाहिये ॥ १५-१६ ॥

नारदाद्यैः परिवृतमात्मतत्त्वविनिर्णये ।
तेभ्यो मुनिभ्यः स्वं धाम दिशन्तं परमक्षरम् ॥ १७ ॥

नारदादि मुनियों से परिवृत श्रीकृष्ण उन मुनियों को आत्मतत्त्व निर्णय और स्वयं अपने परम अक्षयधाम के सम्बन्ध में उपदेश दे रहे हैं ॥ १७ ॥

इन्दीवरनिभं सौम्यं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।

स्निग्धकुन्तलसंभिन्नकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ १८ ॥
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ १९ ॥
काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवाससम् ।
हारकेयूरकटकरशनाद्यैः परिष्कृतम् ॥ २० ॥
हृतविश्वम्भराभूरिभारं मुदितमानसम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मराजद्भुजचतुष्टयम् ॥ २१ ॥

उनके नेत्र नीलकमल के समान सौम्य और पद्मपत्रों के समान विस्तृत हैं। उनके केश अत्यन्त स्निग्ध और उनके किरीट तथा मुकुट अत्यन्त उज्ज्वल हैं। उनका प्रसन्न मुख अत्यन्त सुन्दर है। उनके सुन्दर कुण्डल मकर के समान हैं, उनका वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभ मणि और वनमाला से सुशोभित है। उनके वक्ष का वर्ण कपिश (भूरा अथवा सुवर्ण वर्ण) है तथा वह पीत कौशेय धारण किये हुए हैं। उनके शरीर पर हार, केयूर और बाजूबन्द आदि सुशोभित हैं। वे प्रसन्नमन से पृथिवी का भार हरण करने वाले हैं और अपने करकमलों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं ॥ १८-२१ ॥

एवं ध्यात्वाऽर्चयेन्मन्त्री स्यादङ्गैः प्रथमाऽऽवृतिः ।
द्वितीया महिषीभिस्तु तृतीयायां समर्चयेत् ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करते हुए मन्त्री (साधक) को पहले अङ्गपूजा, आवरणपूजा, और फिर उनकी महिषियों सहित द्वितीयावरण पूजा करनी चाहिये; फिर उसके बाद तृतीयावरण की पूजा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकान् ।
विश्वक्सेनं च शैनेयं दिक्ष्वग्रे विनतासुतम् ॥ २३ ॥
लोकेशैस्तत्प्रहरणैः पुनरावरणद्वयम् ।
इति सम्पूज्य विधिवत् पायसेन निवेदयेत् ॥ २४ ॥
तर्पयित्वा खण्डमिश्रदुग्धबुद्ध्या जलैर्हरिम् ।
जपेदष्टशतं मन्त्री भावयन् पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥

दिशाओं के अग्रभाग में नारद, पर्वत, विष्णु, शठतारहित उद्धव, विश्वक्सेन, विष्णु, शैनेय (कार्त्तिकेय) और गरुड की पूजा करनी चाहिये। फिर इन्द्रादि दिक्पालों और उनके आयुधों की दो आवरणों में विधिवत पूजा करके खीर निवेदित करे। तदुपरान्त शर्करा मिश्रित दुग्ध की भावना से जल द्वारा हरि का तर्पण करके साधक को पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का ध्यान करना और अर्थज्ञानपूर्वक मन्त्र का १०८ जप करना चाहिये ॥ २३-२५ ॥

पूजासु होमं सर्वासु कुर्यान्मध्यन्दिनेऽथवा ।
आसनाद्यर्घ्यपर्यन्तं कृत्वा स्तुत्वा नमेत् सुधीः ॥ २६ ॥

सभी पूजा और होम मध्याह्न के समय करना चाहिये अथवा उनका आसनादि से लेकर अर्घ्यपर्यन्त पूजन करके स्तुति और नमस्कार करे। ॥ २६ ॥

समर्प्यात्मानमुद्धास्य तं स्वहृत्सरसीरुहे ।
विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत् ॥ २७ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतीयरात्रे
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

आत्मा को हृदय में लाकर उसे भगवान को अर्पित करे। जब इस प्रकार आत्मार्पण किया जाता है और साधक तन्मय होता है तब उसे पुनः परमात्मा की पूजा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
तृतीय रात्र में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे द्वादशोऽध्यायः

व्यास उवाच ।

सायाह्ने वासुदेवं यो नित्यमेवं यजेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्यान्ते स याति परमां गतिम् ॥ १ ॥

श्री व्यास जी बोले : प्रतिदिन जो सन्ध्या समय इस प्रकार नित्य वासुदेव की पूजा करता है उसकी सभी मनोकामनायें पूरी हो जाती हैं और अन्त में वह परम गति प्राप्त करता है ॥ १ ॥

रात्रौ चेन्मन्मथाक्रान्तमानसं देवकीसुतम् ।
यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम् ॥ २ ॥
पृथुं सुवृत्तं मसृणं वितस्तिमात्रोन्नतं कौ विलिखन्नशङ्कम् ।
आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरा तु हस्तैर्भ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी ॥ ३ ॥
स्थलनीरजमसृणपरागभृता लहरीकणजालभरेण सता ।
मरुता परितापकृताध्युषिते सुषिते यमुनापुलिने विपुले ॥ ४ ॥
अशरीरनिशातशरोन्मथितप्रमदाशतकोटिभिराकुलिते ।
उडुनाथकरैर्विशदीकृतसुप्रसरे विचरद्भ्रमरीनिकरे ॥ ५ ॥
विद्याधरकिन्नरसिद्धसुरैर्गन्धर्वभुजङ्गमचारणकैः ।
द्वारोपहितैः सुविमानगतैः खस्थैरतिवृष्टसुपुष्पचये ॥ ६ ॥
इतरेतरबद्धतरप्रमदागमकल्पितरासविहासविधौ ।
मणिशंकुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम् ॥ ७ ॥

यह ध्यान करना चाहिये कि रम्य यमुना तट पर बहता हुआ मन्द पवन स्थलपद्मों के उज्ज्वल रेणु को इधर-उधर उड़ा रहा है। वहीं दिव्य शरीर में अपनी प्रिय गोपियों के साथ परस्पर प्रेम से आकृष्ट हो रासमण्ड़ल में श्रीकृष्ण विविध प्रकार की क्रीडायें करते हुए कभी

हँस रहे हैं और कभी परिहास द्वारा दूसरों का मनोरंजन कर रहे हैं। कामबाण से उन्मत्त सैकड़ों गोपियों से यमुना तट भरा है। सभी सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से सुशोभित हैं। आकाश में चमकते हुए चन्द्रमा की ज्योतस्ना में सम्पूर्ण क्षेत्र प्रकाशित है जिससे वह स्थान एक श्वेतमण्डल बन गया है जहाँ भ्रमर क्रीडा कर रहे हैं। वह स्थान विद्याधरों, किन्नरों, सिद्धों, देवों, गन्धर्वों, नागों और जङ्गम चारणों का प्रियस्थल बन गया है। आकाश में सुन्दर यानों पर स्थित होकर देव कन्यायें वहाँ की शोभा का अवलोकन कर रही हैं॥ २-७॥

सुदृशामुभयोः पृथगन्तरगं दयिताकुलबद्धभुजद्वितयम् ।
निजसङ्गविजृम्भदनङ्गशिखिज्वलिताङ्गलसत्पुलकालियुजाम् ॥८॥
विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतया स्वरसप्तकमूर्च्छनतानगणैः ।
भ्रममाणमलुभिरुदारमणिस्फुटमन्त्रनसिञ्चितचारुतरम् ॥ ९ ॥

यद्यपि वे सबसे पृथक् थे, तथापि सभी गोपियों के हाथों में उनका हाथ था। इस प्रकार वे सबके अन्तरंग बने हुए थे। भ्रमर उन गोपियों के नेत्रों को नोलकमल समझ कर उनके लिये व्यवधान उत्पन्न कर रहे थे। इसी समय एक आश्चर्यमय घटना होती है। सभी गोपियों को लगता है कि उनका प्रिय उनसे वियुक्त हो रहा है। अतः अपने प्रिय के वियोग के कारण सभी व्यथित हो उठती हैं॥ ८-९॥

इति भिन्नतनुं मणिभिर्मनितं तपनीयमयैरिव मारकतम् ।
मणिनिर्मितमध्यगशंकुलसद्विपुलारुणपङ्कजमध्यगतम् ॥ १० ॥

पुनः जब उन सब ने सप्तस्वरों, मूर्च्छनाओं और तानों सहित संगीत रागिनी सुना तब सबके मन में मधुर भावनाएँ उठने लगीं। इस प्रकार उन गोपियों की शारीरिक दशा उनकी मनोदशा से सर्वथा भिन्न थी। वे सभी मरकतमणि तथा सूर्योदयकालीन कमल के समान प्रतीत हो रही थीं॥ १०॥

अतसीकुसुमावतनुं तरुणं तरुणारुणपद्मपलाशदृशम् ।
नवपल्लवचित्रगुलुच्छुलसच्छिखिपिच्छपिनद्धकरप्रचयम् ॥ ११ ॥

गोपियों का वर्ण अतसी पुष्प के समान लाल था। उनके नेत्र

सूर्योदयकालीन नीलकमल और पलाशपत्र के समान थे। उनके केश नवपल्लवयुक्त गुलुच की लता और मोरपुच्छ के समान थे; और उनके हाथ अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे ॥ ११ ॥

चटुलभ्रुवमिन्दुसमानमुखं मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगम् ।
शशिवक्त्रसदृग्वदनच्छदनं मणिराजदनेकविधाभरणम् ॥ १२ ॥

कपोलों पर लटकते रत्नजटित कुण्डलों से सुशोभित ये कुटिल भृकुटियों वाली गोपियाँ रत्नों से निर्मित अनेक अलंकार धारण किये हुए थीं और उनका मुख आँचलों से ढँका था ॥ १२ ॥

असनप्रसवच्छदनोज्ज्वलसद्वसनं सुविलासनिवासभुवम् ।
नवविद्रुमभद्रकरांघ्रितलं भ्रमराकुलदामविराजभुजम् ॥ १३ ॥

भूमि पर उनका आसन अनेक विलास की सामग्रियों से भरा था और वे नवपल्लवयुक्त शाखों के समान अपने हाथों से गुञ्जन कर रहे भ्रमरों को उन पदार्थों से दूर भगाने का प्रयास कर रही थीं ॥१३॥

तरुणीकुचयुक्परिरम्भमिलन्मसृणारुणवक्षसमुक्षगतिम् ।
शिवधेनसमीरितगोपवरं स्मरविह्वलितं भुवनैकगुरुम् ॥ १४ ॥

इन तरुणियों के कुचों का आलिङ्गन किये हुए सम्पूर्ण भुवनों के एकमात्र गुरु, गोपश्रेष्ठ श्रीकृष्ण कामविह्वल प्रतीत हो रहे हैं और स्वयं उनका वक्ष उदित होते हुए सूर्य के समान लाल हो गया है ॥१४॥

प्रमदेति पीठवरे विधरं प्रयजेदिति रूपमरूपमजम् ।
प्रथमं परिपूज्य तदङ्गवृतिं मिथुनानि यजेद्रसशालिमतः ॥ १५ ॥
दलषोडशके स्मरमूर्त्तिगणं सहशक्तिकमुत्तमरासगतम् ।
सरमासदनं स्वकलासहितं मिथुनाङ्गमथेन्द्रपरिप्रमुखान् ॥ १६ ॥
इति सम्यगमुं परिपूज्य हरिं चतुरावृतिसंवृतमार्द्रमतिः ।
रजतारचिते चषके सशितं सवृतं सुपयोऽस्य निवेदयतात् ॥१७॥
विभवे सति कांस्यमयेषु पृथक् स्वकरेषु च षोडशसु क्रमशः ।
मिथुनेषु निवेद्य पयः सशितं विदधीत पुरोवदथो सकलम् ॥१८॥

सकलभुवनमोहनं विधिं यो
नियतमसुंनिशि निश्युदारचेता ।
भवति स खलु सर्वलोकपूज्यः
श्रियमतुलां समवाप्य यात्यनन्तम् ॥ १९ ॥
निशि वा दिनान्तसमये प्रपूज्ययेन्नित्यशो हरिं भक्त्या ।
समफलमुभयं हि ततः संसाराब्धि समुत्तितीर्षति यः ॥ २० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतीयरात्रे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार पीठ पर उन गोपियों को स्थित करके उपासना करे जहाँ रासमण्डल में मिथुन रूप से अद्वितीय और अज श्रीकृष्ण के साथ सभी गोपियाँ उन्हीं के शरीर का अंग बन गई हैं। इस प्रकार ध्यान करते हुए पहले श्रीकृष्ण का पूजन करे। फिर षोडशदलों में केशवादि स्मरमूर्तियों का और उनकी शक्तिकलाओं का मिथुन रूप से पूजन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक साधक को श्रीहरि का पूजन करके उन्हें घी, मधु, दूध तथा अन्यान्य वस्तुओं को चार आवरणों से युक्त पत्रों पर रखकर निवेदित करे। यदि भक्त सम्पन्न हो तो मिथुनों को पृथक्-पृथक् यथाक्रम घृतादि सहित नैवेद्य से भरे सोलह कांस्यपात्र निवेदित करे। जो उदार मति भक्त इस प्रकार प्रत्येक पक्ष में सकल भुवनमोहन की उपासना करता है वह सर्वलोकपूज्य होकर अन्त में अनन्त श्री प्राप्त करता है। जो प्रतिदिन रात को या सन्ध्या को श्रीहरि की इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजा करता है वह भी इसी जीवन में समान फल प्राप्त कर अन्त में भवसागर से पार हो जाता है। ॥ १५-२० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के तृतीय
रात्र में द्वादश अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे त्रयोदशोऽध्यायः

व्यास उवाच ।

इत्येवं मनुविग्रहं मधुरिपुं यो रात्रिकालं यजेत्
तस्यैवाखिलजन्तुजातदयितस्याम्भोधिजा वेश्मनः ।
हस्ते धर्मसुखार्थमोक्षविभवाः सद्वर्गसम्प्रार्थिताः
सान्द्रानन्दमहारसद्रवमुचो येषां फलश्रेणयः ॥ १ ॥

श्री व्यास जी बोले : मधु दैत्य के रिपु, मन्त्रविग्रह श्रीकृष्ण का रात में पूजन करने से भक्त सभी प्राणियों का प्रेम और सखत्व प्राप्त कर लेता है। उसकी लक्ष्मी स्थिर हो जाती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि सभी वाञ्छित इच्छायें पूर्ण होकर उसे सुख तथा आनन्द प्राप्त होता है। वह कर्मों के प्रभाव से भी मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

अथोच्यते पूर्वसमीरितानां पूजावसाने परमस्य पुंसः ।
कल्पस्तु काम्येष्वपि तर्पणानां विनापि पूजां खलु यैः फलं स्यात् ।२।

अब पूजा के बाद किये जाने वाले परमात्मा के पूर्वोक्त तर्पण को बताते हैं जो सकाम कर्मों में उपासना के बिना भी सभी मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है ॥ २ ॥

सन्तर्प्य पीठमन्त्रं शक्तीः सकृत् प्रथममुच्यते तत्र ।
आवाह्य पूजयेत्तं तोयैरेवार्थितैः समुपचारैः ॥ ३ ॥
बद्ध्वाथ धेनुमुद्रां तोयैः सम्पाद्य तर्पणद्रव्यम् ।
तद्बद्धाञ्जलिना तं सुवर्णचषकीकृतेन तर्पयतु ॥ ४ ॥

पीठमन्त्र का तर्पण करने के बाद श्रीकृष्ण की शक्तियों का उस पीठ में आवाहन करके श्रीकृष्ण का जल तथा अन्य वाञ्छित वस्तुओं से उपचारपूर्वक तर्पण करना चाहिये। इसके बाद धेनु मुद्रा प्रदर्शित करके तर्पणद्रव्यों पर जल छिड़क कर हाथ जोड़कर श्रीहरि को प्रसन्न करे ॥ ३-४ ॥

विंशतिरष्टोपेता कालत्रयतर्पणेषु संख्योक्ता ।
भूयः स कालविहितान् सकृत् सकृत्तर्पयेच्च परिवारान् ॥ ५ ॥

एक बार में २८ तर्पण करते हुए दिन में तीन बार तर्पण करना चाहिये । पुनः प्रत्येक बार देव के सम्पूर्ण परिवार का भी पूजन और तर्पण करना चाहिये ॥ ५ ॥

प्रातर्दधिगुडमिश्रं मध्याह्ने पायसं सनवनीतम् ।
क्षीरं तृतीयकाले ससितोपलमित्युदीरितं द्रव्यम् ॥ ६ ॥

प्रातःकाल के समय दधि और गुड़ मिलाकर, मध्याह्न के समय खीर और मक्खन मिलाकर तथा सायङ्काल (तृतीयकाल) में दुग्ध और शर्करादि द्रव्यों से तर्पण करे ॥ ६ ॥

तर्पयामि पदं योज्यं मन्त्रान्तेष्वेषु नामसु ।
द्वितीयान्तेषु तु पुनः पूजाशेषं समापयेत् ॥ ७ ॥
अभ्युक्ष्य तत्प्रसादाद्भिरात्मानं प्रपिबेदपः ।
तज्जसांस्त्वम्भसोद्वास्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम् ॥ ८ ॥

नाम और मन्त्र का द्वितीयान्त रूप प्रयोग करते हुए अन्त में 'तर्पयामि' शब्द लगाना चाहिये । इस प्रकार जब तक पूजा समाप्त न हो जाय तब तक पुनः पुनः इसी प्रकार द्वितीयान्त रूप का प्रयोग करते हुए कर्म करना चाहिये । फिर प्रसन्नचित्त होकर स्वयं अपने ऊपर थोड़ा जल छिड़क कर थोड़ा जल पी लेना चाहिये तथा उस जल पर मूलमन्त्र का जप करे । फिर एकाग्रचित्त होकर मन्त्र का जप करना चाहिये ॥ ७-८ ॥

अथ द्रव्याणि काम्येषु वक्ष्यन्ते तर्पणेषु यत् ।
तानि प्रोक्तविधानानामाश्रित्यान्यतमं यजेत् ॥ ९ ॥

अब तर्पण के द्रव्यों को बताते हैं जो काम्य कर्म में प्रयुक्त द्रव्यों से भिन्न हैं । उनका इस प्रकार चयन करना चाहिये ॥ ९ ॥

द्रव्यैः षोडशभिरमुं तर्पयेदेकशश्चतुर्वारम् ।
स चतुः क्षीराद्यन्तैः सकृज्जलाद्यन्तमच्युतं भक्त्या ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण को सोलह द्रव्यों से प्रसन्न करना चाहिये। ग्यारहवां द्रव्य प्रस्तुत करते समय प्रारम्भ में दूध और अन्त में एक बार जल समर्पित करके भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण की पूजा करे ॥ १० ॥

पायसदाधिककृसरं गौडान्नं पयो दधीनि नवनीतम् ।

आज्यं कदलीमोचाचोचाढ्यामोदकापूपम् ॥ ११ ॥

पृथुका लाजसमेता द्रव्याणां कथितमिह षोडशकम् ।

लाजान्तेऽन्त्यक्षीरा प्राक्समर्प्यं सितोपलापुञ्जम् ॥ १२ ॥

खीर, दही से बना पदार्थ, कृसर, गौडान्न, दूध, दही, मक्खन, घी, केला, मोचा, चोचा, आमोद, मोदक, अपूप, पृथुका और लाजा—ये सोलह द्रव्य कहे गये हैं। लाजा के अन्त में क्षीर और पहले मिष्ठान्न अर्पित करना चाहिये ॥ ११-१२ ॥

प्रगे चतुःसप्ततिवारमित्थं
प्रतर्पयेद्योऽनुदिनं नरो हरिम् ।
अनन्यधीस्तस्य समाप्तसम्पदः
करस्थिता मण्डलतोऽभिवाञ्छिताः ॥ १३ ॥

जो प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीहरि का एकाग्र भक्तिपूर्वक इस प्रकार ३४ तर्पण करता है उसको सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और मण्डल से जो चाहता है वह सब उसे मिलता है ॥ १३ ॥

धारोष्णपक्वपयसी दधिनवनीते घृतं च दौग्धान्नम् ।

मत्स्यण्डी मध्वमृतं द्वादशशस्तर्पयेन्नवभिरेभिः ॥ १४ ॥

तर्पणविधिरयमपरः पूर्वोदित समफलोऽष्टशतसंख्यः ।

कर्मणि कर्मणि विकृतौ जनसंवलनैर्विशेषतो विहितः ॥ १५ ॥

धारोष्णदूध, खीर, दही, नवनीत, घी, दूध से बना पदार्थ, खण्ड, शर्करा, मधु—इन नव द्रव्यों से बारह बार तर्पण करना चाहिये। तर्पण ८०० बार करना चाहिये किन्तु कर्म-कर्म के अनुसार इसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है ॥ १४-१५ ॥

सखण्डधारोष्णधिया मुकुन्दं व्रजन् पुरं ग्राममपि प्रतर्प्य ।

लभेत भोज्यं सरसं सभृत्यैर्वासांसि धान्यानि धनानि मंत्री ।१६।

इन सबको अमृत मानकर श्रीकृष्ण की पुरी में जाकर तर्पण करने से भक्त हर प्रकार के सरस भोज्य पदार्थ, वस्त्र, धन, अन्न और सेवक आदि प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

यावत्सन्तर्पयेन्मन्त्री तावत्संख्यं जपेन्मनुम् ।
तर्पणेनैव साध्यानि साधयेदखिलान्यपि ॥ १७ ॥

जितने बार साधक तर्पण करे उतने बार उसे मन्त्र का भी जप करना चाहिये क्योंकि तर्पण से ही सकल मनोरथों की सिद्धि होती है। ॥ १७ ॥

द्विजो भिक्षावृत्तिर्य इह दिनशो नन्दतनयः ।
स्वयं भूत्वा भिक्षामटति हसनो गोपसुदृशाम् ।
असावेताभिः स्वैर्ललितललितैर्नर्मविधिभि-
र्दधिक्षोराज्याभ्यां प्रचुरतरभिक्षां स लभते ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण और सूर्य का भक्त होकर ब्राह्मण को स्वयं भिक्षाटन के लिये जाना चाहिये और घी, दूध तथा दही से नन्दनन्दन गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार यदि कोई कामना न भी हो तो भी उसे प्रचुर भिक्षा प्राप्त होगी ॥ १८ ॥

मध्ये कोणेषु षट्स्वप्यनलपुरपुटस्यालिखेत्कर्णिकायां
कन्दर्पासाध्ययुक्तं विवरगतषडर्णं द्विशः केशरेषु ।
शक्तिः श्रीपूर्वकालिद्विनवलिपिमनोरक्षवाणीच्छदानां
मध्ये वर्णान्दशानांदशलिपिमनुवर्यस्य चैकैकशोऽब्जम् ॥१९॥

पूजा करते समय साधक को षड्दलों में षडक्षर मन्त्र और कर्णिका में शक्ति, श्री और रक्षण लगाकर बना दशाक्षर मन्त्र लिखना चाहिये। केसरों में षडक्षर मन्त्र का एक-एक वर्ण लिखना चाहिये ॥ १९ ॥

टिप्पणी : 'क्लीं कृष्णाय नमः' यह षडक्षर मन्त्र है। शक्ति 'ह्रीं', श्री (श्रीं) और रक्षण लगाने से यह दशाक्षर मन्त्र बनता है : 'ह्रीं श्रीं रक्षण कृष्णाय नमः'। 'ह्रीं श्रीं क्लीं रक्ष कृष्णाय नमः' यह दूसरा दशाक्षर मन्त्र है।

भूपत्रनाभिवृतमसृणमन्मथेन
गोरोचनाभिलिखितं तपनीयसूच्या ।

पट्टे हिरण्यरचिते गुलिकीकृतं तं
गोपालमन्त्रमखिलार्थदमेतदुक्तम् ॥ २० ॥
सम्पातसिक्तमभिजप्तमिदं महद्भि-
र्धार्यं जगत्त्रयवशीकरणैकदक्षम् ।
रक्षायशःसुतमहीधनधान्यलक्ष्मी-
सौभाग्यलिप्सुभिरजस्रमनर्घ्यवीर्यम् ॥ २१ ॥

इसके बाद नाभियुक्त एक सुन्दर पद्म बनाकर उसमें गोरोचन से सोने की कलम द्वारा गोपाल मन्त्र लिखना चाहिये। यह मन्त्र तीनों लोकों का वशीकरण करता है अतः भक्तश्रेष्ठ को इसका जप करना चाहिये। इससे आत्मरक्षा, यश, पुत्र, भूमि, धन, धान्य, लक्ष्मी, वीर्य, सौभाग्य आदि सब कुछ प्राप्त होता है ॥ २०-२१ ॥

भूतोन्मादापस्मृति विषमूर्च्छाविभ्रमज्वरार्त्तानाम् ।
ध्यायन् शिरसि प्रजपेन्मन्त्रमिदं झटिति शमयितुं विकृतीः ॥२२॥

इस मन्त्र का ध्यान और जप करने से भूतोन्माद, स्मृतिह्रास, मूर्च्छा, विष, विभ्रम, ज्वर आदि सभी विकृतियों का तत्काल शमन हो जाता है ॥ २२ ॥

स्मरस्त्रिविक्रमाक्रान्तः कृष्णाय हृदिमित्यसौ ।
षडक्षरोऽयं सम्प्रोक्तः सर्वसिद्धिकरो मनुः ॥ २३ ॥

'क्लीं कृष्णाय नमः' इसे सर्वसिद्धिदायक षडक्षर मन्त्र कहा गया है जिसे सदा हृदय में धारण करना चाहिये ॥ २३ ॥

क्रीडासुदीप्तो मायावी नवलाञ्छितमस्तकः ।
सैषा शक्तिः परासूक्ष्मा नित्या संवित्स्वरूपिणी ॥ २४ ॥

परा सूक्ष्मा, नित्या, संवितस्वरूपिणी शक्तियां क्रीडा में अत्यन्त प्रवीण, मायावी और नवलाञ्छित मस्तक हैं ॥ २४ ॥

अस्थ्यग्निगोविन्दनवैर्लक्ष्मीबीजं समीरितम् ।
आद्यामष्टादशा लिपिः स्याद्विशत्यक्षरो मनुः ॥ २५ ॥

अस्थि (श), अग्नि (र) और गोविन्द (ई) इनसे लक्ष्मी बीज श्रीं बनता है। इसी से पहले अष्टादशाक्षर मन्त्र और फिर विंशत्यक्षर मन्त्र बनता है ॥ २५ ॥

शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च।
नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले ॥ २६ ॥

श्रीहरि की नित्यपूजा शालिग्राम में, मणि में, यन्त्र में और मण्डल में ही करना चाहिये। भूमि पर कभी पूजा नहीं करना चाहिये। ॥ २६ ॥

इति जपहुतपूजातर्पणाद्यैर्मुकुन्दं
य इह भजति मन्त्रोरेकमाश्रित्य नित्यम्।
स तु सुचिरमयत्नात् प्राप्य भोगानशेषान्
पुनरमलतरं तद्धाम विष्णोः प्रयाति ॥ २७ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतीयरात्रे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जो किसी एक मन्त्र का आश्रित होकर श्रीकृष्ण का जप, होम, पूजा और तर्पण इत्यादि करता है वह अत्यन्त सरलता से समस्त योगों को प्राप्त करके अन्त में शुद्ध होकर विष्णुधाम को चला जाता है ॥२७॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में तृतीय
रात्र का त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे चतुर्द्दशोऽध्यायः

श्रीव्यास उवाच।

विनियोगानथो वक्ष्ये मन्त्रयोरुभयोः समान्।
तदर्थकारिणोऽनन्तवीर्यान्मन्त्रांश्च कांश्चन॥ १॥

श्री व्यास जी बोले! अब उक्त दोनों मन्त्रों का विनियोग बताते हैं। मैं उनके अर्थकारी अनन्त शक्ति तथा अन्य मन्त्रों के सम्बन्ध में भी बताऊँगा॥ १॥

वन्दे तं देवकीसूनुः सद्योजातं द्युसप्रभम्।
पीताम्बरं करलसच्चक्रशङ्खगदाम्बुजम्॥ २॥

सद्यः जात सूर्य को प्रभा के समान देवकी पुत्र, पीताम्बरधारी और हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ॥ २॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षं ब्राह्मये मुहूर्त्तके।
स्वादुप्लुतैश्च कुसुमैः पलाशैरयुतं हुनेत्॥ ३॥

इस प्रकार ध्यान करके साधक को ब्राह्ममुहूर्त में एक लाख जप, तथा स्वयं लाये पलाश के फूलों से दस हजार होम करना चाहिये।॥ ३॥

मन्वोरन्यतरेणैव कुर्याद्यः सुसमाहितः।
स्मृतिं मेधामतिबलंलब्ध्वा स कविवाग्भवेत्॥ ४॥

जो एकाग्रचित्त होकर उक्त दो मन्त्रों में से किसी एक से भी इन नियमों के अनुसार कार्य करता है वह श्रेष्ठ स्मरणशक्ति, बुद्धि, मति, बल और कवित्व तथा वाक्शक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ४॥

स्यान्मनुस्तन्मयः पूर्वो ध्यानहोमफलोऽपरः।
श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदेति शरणं ततः॥ ५॥

जब मन्त्र जप में, साधक तन्मय हो जाता है तब वह पूर्वोक्त ध्यान और होमादि का फल प्राप्त करके श्रीकृष्ण के चरणों में शरण प्राप्त कर लेता है ॥ ५ ॥

अहं प्रपद्य इत्युक्तो मौकुन्दाष्टादशाक्षरः ।
नारदोऽस्य तु गायत्री मुकुन्दश्चर्षिपूर्विका ॥ ६ ॥

'मैं मुकुन्द की शरण ग्रहण कर रहा हूँ।' यह उच्चारण करते हुए दशाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री और देवता मुकुन्द का स्मरण करना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रातः प्रातरिवोत्थाय जप्त्वा योऽष्टोत्तरं शतम् ।
अनेन षड्भिर्मासैः स भवेत् श्रुतधरो नरः ॥ ७ ॥

यदि प्रातःकाल उठकर भक्तियुक्त साधक १०८ बार जप करता है तो वह ६ महीने के भीतर ही श्रुतधर हो जाता है ॥ ७ ॥

उपसंहृतदिव्याङ्गं पुरोऽवन्मातुवङ्कम् ।
चलद्गोश्चारणं बालं नीलाभासं स्मरन् जपेत् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण के दिव्य शरीर में सम्पूर्ण देवत्व सम्मिलित है; और वह (श्रीकृष्ण) गायों को चरा रहे हैं। उनका बालसुलभ स्वभाव और नीलवर्ण है। वे अपनी माता की गोद में विराजमान हैं। इस प्रकार ध्यान करके जप करना चाहिये ॥ ८ ॥

अयुतं तावदेवाज्यैर्जुहुयाच्च हुताशने ।
स लभेदचलां श्रद्धां भक्तिं शान्ति च शाश्वतीम् ॥ १९ ॥

जो घी से दश हजार अग्नि में होम करता है वह अचल श्रद्धा, भक्ति और शाश्वत शान्ति प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

मनुनैतत् समस्तान्तो मरुन्नामित शब्दतः ।
बाललीलात्मने हुं फट् नम इत्यमुनाथवा ॥ १० ॥

मन्त्र के समस्त कार्य वायुबीज (यं) और उसके बाद 'बाललीलात्मने हुं फट् नमः' लगाकर सम्पन्न करना चाहिये ॥ १० ॥

नलकूवरगायत्री बालकृष्णा इतीरिता ।
ऋष्याद्याः सिद्धयः सर्वाः स्युर्जपाद्यैरथामुना ॥ ११ ॥

इसका गायत्री नलकूबर बालकृष्ण और सिद्ध ऋषिगण हैं। इस प्रकार इसका जप करना चाहिये ॥ ११ ॥

लम्बिते बालशयने रुदन्तं बल्लवीजनैः ।
प्रेङ्ख्यामानं दुग्धबुद्ध्या तर्पयेत् सोऽश्नुते फलम् ॥ १२ ॥

यह ध्यान करना चाहिये कि श्रीकृष्ण बालशय्या पर लेटे हुए रो रहे हैं और गोपियां उनसे दूध पीने का आग्रह कर रही हैं। इस प्रकार ध्यान करते हुए जो तर्पण करता है वह श्रेष्ठ फल प्राप्त करता है। ॥ १२ ॥

अमुना वानुरूपान्ते रसरूपपदं वदेत् ।
ओष्ठं रूपनमोद्वन्द्वमन्नाधिपतये मम ॥ १३ ॥

'अमुना अनुरूप' के बाद 'रसरूप' का उच्चारण करते हुए यह कहे कि 'मैं अन्नाधिपति श्रीकृष्ण की वन्दना कर रहा हूँ ॥ १३ ॥

अन्नं प्रयच्छ स्वाहेति त्रिंशदर्णोऽन्नदो मनुः ।
नारदानुष्टवन्नाधिपतयोऽस्यर्षिपूर्वकाः ॥ १४ ॥

'अमुना अनुरूप रसरूपं नमः मम अन्नाधिपतये नमः अन्नं प्रयच्छ स्वाहा' यह ३० अक्षरों का मन्त्र है। इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं और छन्द अनुष्टुप है। इसी रूप में इसका जप करना चाहिये ॥ १४ ॥

भूतबालग्रहोन्मादस्मृतिभ्रंशाद्युपद्रवैः ।
पूतनास्तनपातारं ग्रस्तं मूर्ध्नि स्मरन् जपेत् ॥ १५ ॥
सास्थचूषणनिर्विणसर्वाङ्गीं क्रन्दतीं च ताम् ।
आविश्य सर्वे तं मुक्त्वा विद्रवन्ति द्रुतं ग्रहाः ॥ १६ ॥

जो भूतबाधा, बालग्रह, उन्माद, स्मृतिह्रास, आदि से त्रस्त हो वह अपनी मूर्धा में यह ध्यान करे कि 'श्रीकृष्ण पूतना का स्तनपान कर रहे हैं' और फिर मन्त्र का जप करे। इससे सभी अनिष्टकारी लक्षण समाप्त हो जाते हैं, बच्चा रोना बन्द कर देता है, और सभी दुष्प्रभावी तत्त्व उसे छोड़कर तत्काल भाग जाते हैं ॥ १५-१६ ॥

जुहुयात् खरमञ्जर्या मञ्जरीभिर्विभावसौ ।
प्रसूतैः पञ्चगव्याद्यैः पूतनाहन्तुरानने ॥ १७ ॥

फिर पूतना का वध करने वाले श्रीहरि के मुख को अग्नि मानकर अग्नि में तुलसी की मञ्जरी, पुष्प, पञ्चगव्य, आदि का होम करे ॥१७॥

प्राशयेच्छिष्टगव्यं तत् कलशेनाभिषेचयेत् ।
साध्यं सहस्रजप्तेन सर्वोपद्रवशान्तये ॥ १८ ॥

दुग्ध के श्रेष्ठ पदार्थों से कलश को भरकर उसका अभिषेक करके यथाशक्ति एक हजार जप करने से समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। ॥ १८ ॥

मनुनाष्टादशान्तेन हुंफट्स्वाहान्तिकेन वा ।
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्री ग्रहव्यूहरयोऽस्य तु ॥ १९ ॥

अष्टादशाक्षर मन्त्र के साथ 'हुम फट् स्वाहा' लगाकर और ऋष्यादि का उल्लेख करके ब्रह्मगायत्री का ग्रहजन्य उपद्रवों को शान्त करने के लिये प्रयोग करना चाहिये ॥ १९ ॥

निजपादाम्बुजाक्षिप्तशकटं चिन्तयन् जपेत् ।
अयुतं मन्त्रयोरेकं सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २० ॥

यह ध्यान करते हुए कि 'श्रीकृष्ण के चरणकमलों ने शकट को उलट दिया है'; उपरोक्त दो मन्त्रों में से किसी का भी विघ्नों की शान्ति के लिये दश हजार जप करे ॥ २० ॥

अज्ञानमोषां मन्त्राणामाचक्रादिभिरर्चना ।
अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरुदिता सम्पदे सदा ॥ २१ ॥
बालो नीलतनुर्दोर्भ्यां दध्युत्थं पायसं दधत् ।
हविर्वोढा द्वीपिनखकिङ्किणीजालमण्डितः ॥ २२ ॥

बालकृष्ण नीलबदन और अपने दोनों हाथों में दधि तथा खीर लिये हुए हैं। उनके गले में छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त हार और व्याघ्रनख सुशोभित है ॥ २१-२२ ॥

ध्यात्वैवमग्नौ जुहुयाच्छतवीर्यांकुरत्रिकैः ।
पयःसर्पिःप्लुतैर्लक्षमेकं तावज्जपेन्मनुम् ॥ २३ ॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा भोजयेद्द्विजपुङ्गवान् ।
स ह्यब्दानां शतं जीवेन्नीरोगो नात्र संशयः ॥ २४ ॥

इस प्रकार ध्यान करते हुए साधक को शतवीर्यांकुर घी और दूध आदि से अग्नि में होम करना और मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। फिर गुरु को दक्षिणा देना तथा ब्राह्मण को भोजन करना चाहिये। इस प्रकार साधक रोगों से रहित होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है ॥ २३-२४ ॥

अत्राप्यन्यो मनुर्दाशार्णान्ते श्रीपुरुषोत्तमः।
आयूर्मे देहि सम्भाव्य विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ २५ ॥

यहाँ 'श्री पुरुषोत्तम' सहित एक अन्य दशाक्षर मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। 'हे विष्णु मुझे दीर्घायु प्रदान करो'—इन शब्दों से प्रार्थना करे ॥ २५ ॥

नमोऽन्ता द्व्यधिका त्रिंशद्वर्णोऽस्यर्षिस्तु नारदः।
छन्दोऽनुष्टब्देवता च श्रीकृष्णाङ्गान्यतो ब्रुवे ॥ २६ ॥

यहाँ नमोऽन्ता एक अन्य ३० अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। इसका ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप, और देवता श्रीकृष्ण बताया गया है। अब इसके अङ्गों को बताते हैं ॥ २६ ॥

रविभूतेन्द्रियवसुनेत्रान्तैरात्मना युतैः।
महानन्दप्रतिज्योतिर्मयो विद्यादिभिः क्रमात् ॥ २७ ॥

सूर्य, पञ्चभूत, इन्द्रियाँ, वसुगण, नेत्र, आत्मा, महानन्दप्रतिज्योति, और विद्या आदि देवों का क्रमानुसार पूजन करना चाहिये ॥ २७ ॥

जप्त्वा लक्षमिमं मन्त्रं पायसैरयुतं हुनेत्।
पूर्ववद्दूर्वया जुह्वदायुर्दीर्घतरं लभेत् ॥ २८ ॥

इस मन्त्र का एक लाख जप तथा खीर से दश हजार होम करके दूर्वा समर्पित करने से दीर्घायु प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

दारयन्तं वकं दोर्भ्यां कृष्णं संगृह्य तुण्डयोः।
स्मरन् शिशूनामाचक्षे स्पृष्ट्वान्यतरमभ्यसेत् ॥ २९ ॥

बकासुर का वध करते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करके एक अन्य मन्त्र तथा उनके शिशु नामों का जप करना चाहिये ॥ २९ ॥

यज्जप्ततिलजाभ्यङ्गाद्भवेयुः सुखिनश्च ते।
अत्राप्यन्यो मनुर्बालवपुषे वह्निवल्लभा ॥ ३० ॥

इस प्रकार जप समाप्त करके बदन पर तिल का तेल मलकर स्नान करना चाहिये। साथ ही, यहाँ 'बलिवपुषे स्वाहा' इस मन्त्र का जप करे ॥ ३० ॥

गोरक्षायां क्वणद्वेणुं चारयन्तं पशूंस्तथा।
उक्त्वा गोपालकपदं पुनर्वेबधराय च ॥ ३१ ॥

गायों की रक्षा करते हुए और अन्य पशुओं को चराने के लिये ले जाते हुए साधक को गोपवेश में वेणु बजाते श्रीकृष्ण का ध्यान और पूजन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

वासुदेवाय वर्मास्त्रे शिरांस्यष्टादशाक्षरः।
मनुर्नारदगायत्रीकृष्णर्ष्यादिबलेन वा ॥ ३२ ॥

वर्मयुक्त वासुदेव का एक अन्य मन्त्र अष्टादशाक्षर वर्णवाला है। इसके ऋषि नारद, छन्द गायत्री और देवता श्रीकृष्ण हैं ॥ ३२ ॥

कुर्याद्गोबालसंरक्षायाचक्राद्यङ्गिना बुधः।
कुम्भीनसादिक्ष्वेडार्त्तो दष्टमूर्ध्नि स्मरन् हरिम् ॥ ३३ ॥
नृत्यन्तं कालियफणामध्येऽन्यतरमभ्यसेत्।
दृशा पीयूषवर्षिण्या सिञ्चन्तं तत्तनुं बुधः ॥ ३४ ॥
तर्जयन् वामतर्जन्या तं द्रांमोचयते विषात्।
आपूर्य कलशं तोयैः स्मृत्वा कालियमर्दनम् ॥ ३५ ॥
जप्त्वाष्टशतमासिञ्चेद्विषिणं स सुखी भवेत्।
कारुमध्ये निजस्यान्तिफणामध्यो द्विवर्णकान् ॥ ३६ ॥
उक्त्वा पुनर्वदेन्नृत्यं करोति तमनन्तरम्।
नमामि देवकीपुत्रमित्युक्त्वा नृत्यशब्दतः ॥ ३७ ॥

कुम्भीनसादि व्याधि ग्रस्त होने अथवा शिर में साँप काट लेने पर बछड़ों को रक्षा करनेवाले श्रीकृष्ण का स्मरण करने से व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। इसमें यह ध्यान करना चाहिये कि श्रीकृष्ण कालिय नाग के फन पर नृत्य करते हुए अपने नेत्रों से अमृत की वर्षा कर रहे हैं जिससे सम्पूर्ण शरीर सिञ्चित हो रहा है। इसी

प्रकार किसी भी विष के शमन के लिये बायें हाथ की तर्जनी उठाकर कालियमर्दन करने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए जल से एक कलश भरकर उसे विषरहित जानना चाहिये। फिर मन्त्र का बारह सौ जप करने और जल छिड़क कर सर्प का अभिषेक करने से सुख प्राप्त होता है। साथ ही फन पर और कारुमध्य में द्वयाक्षर मन्त्र का जप करना और यह उच्चारण करना चाहिये कि देवकीपुत्र सर्प पर नृत्य कर रहे हैं। फिर उनके नृत्य के शब्द को सुनते हुए उन्हें प्रणाम करना चाहिये ॥ ३३-३७ ॥

राजानमच्युतं ब्रूयादिति दन्तलिपिर्मनुः ।
अस्याङ्गान्यंघ्रिभिर्व्यस्तैः समस्तैर्नारदो मुनिः ॥ ३८ ॥

छन्दोऽनुष्टब्देवता च कृष्णः कालियमर्दनः ।
जप्याल्लक्षं मनुवरं होतव्यं सर्पिषाऽयुतम् ॥ ३९ ॥

दांत का दर्द होने पर रोगी को यह भावना करनी चाहिये कि वह श्रीकृष्ण के चरणकमलों में नत है। साथ ही नारद मुनि का स्मरण करते हुए मूलमन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र का छन्द अनुष्टुप, और कालिय मर्दन करने वाले श्रीकृष्ण देवता हैं। मन्त्र का एक लाख जप और घी से अग्नि में से दश हजार हवन करना चाहिये ॥३८-३९॥

अङ्गदिक्पालवस्त्राद्यैरर्चऽस्य समीरिता ।
क्रियानेनैव वा सर्वा विषघ्नी प्रागुदीरिता ॥ ४० ॥
स्वक्षोऽनेन जगति नास्ति क्ष्वेडहरो मनुः ।
अङ्गैः सुरतरो पिष्टे गुटिकाधेनुवारिणा ॥ ४१ ॥
विषघ्नी पाननस्याञ्जनालेपैः साधिताऽमुना ।
उद्दण्डवामदोर्दण्डधृतगोवर्धनाचलम् ॥ ४२ ॥

वस्त्रसहित अङ्ग, दिक्पाल देवताओं (देह और दिशाओं के देवताओं) का पूजन करके विषादि के शमन के सम्बन्ध में पूर्वोक्त सभी क्रियायें करनी चाहिये। विष के प्रभाव को नष्ट करने के लिये इसके अतिरिक्त जगत् में अन्य कोई मन्त्र नहीं है। इस मन्त्र में गुटिका, धेनुवारी और कल्पवृक्ष के अनेक अंगों का औषधि के रूप में प्रयोग होता है। इन

औषधियों का मिश्रण बनाकर रोगी को पिलाना तथा मन्त्र जपपूर्वक उनका दंश के स्थान पर लेप भी करना चाहिये। साथ ही गोवर्धन-धारी, शक्तिशाली और पराक्रमी श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये। ॥ ४०-४२ ॥

अन्यहस्तांगुलिव्यक्तस्वरवंशार्पिताननम् ।
ध्यायन् जपन् हरिं मन्त्रोरेकं छत्रं विना व्रजेत् ॥ ४३ ॥

वर्षवाताशनिभ्यः स्याद्भयं तस्य न हि क्वचित् ।
मोघमेवौघयत्नोपगते तं स्मरणं हुनेत् ॥ ४४ ॥

लोलैरयुतसंख्यातैरनावृष्टिर्न संशयः ।
क्रीडन्तं यमुनातोये मज्जन्तं प्लवनादिभिः ॥ ४५ ॥

तच्छीकरजलासारैः सिच्यमानं प्रियाजनैः ।
ध्यात्वाऽयुतं पयःसिक्तैर्हु नेद्वानीरतर्पणैः ॥ ४६ ॥

दाहिने हाथ में बाँस का एक डण्डा लेकर श्रीकृष्ण का ध्यान और उनके मन्त्र का जप करता हुआ साधक बिना छाता के भी बाहर जा सकता है और उसे वर्षा, प्रचण्ड वायु, वज्रपात, आदि का कोई भय नहीं होगा। यदि साधक अपने इष्टमन्त्र का जप करे तो उसे क्षति पहुँचाने के प्रयास चाहे कितने भी प्रबल क्यों न हों, सदैव निष्फल होंगे—अर्थात् साधक को कोई क्षति नहीं पहुँचेगी। यदि उक्त मन्त्र का १० हजार जप किया जाय तो निश्चित रूप से वर्षा नहीं होगी। साथ ही साथ यहाँ यमुना के जल में क्रीडा करते हुए श्रीकृष्ण का स्मरण करना चाहिये। दस लाख तर्पण करते हुए प्रिय गोपियों द्वारा फेंके गये जल से पूरी तरह भीग गये श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये ॥ ४३-४६ ॥

वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नात्र संशयः ।
अमुमेव स्मरन् मूर्ध्नि विस्फोटकज्वरादिभिः ॥ ४७ ॥
सदाहमोहैरार्त्तस्य जपाच्छान्तिर्भवेत्क्षणात् ।
अथवा गरुडारूढं बालप्रद्युम्नसंयुतम् ॥ ४८ ॥

इससे अकाल में (बेमौसम) महान वर्षा होगी। साथ ही यदि श्रीकृष्ण का ध्यान किया जाय तो सर के फोड़े और ज्वरादि भी अच्छे हो जाते हैं। यदि शरीर में दाह हो तो थोड़े जप से ही ये उपद्रव शान्त हो जाते हैं; अथवा गरुड पर बैठकर शक्तिशाली प्रद्युम्न रोगग्रस्त व्यक्ति की रक्षा के लिये उपस्थित हो जाते हैं॥ ४७-४८॥

निजज्वराविनिष्पिष्टज्वराभिष्टुतमच्युतम्।
ध्यात्वा जुहति भूतस्य मूर्धन्न्यज्वरमभ्यसेत्॥ ४९॥
शान्तिं व्रजेदसाध्योऽपि ज्वरस्योपद्रवः क्षणात्।
ध्यात्वैवमग्नावभ्यर्च्य यथोक्तैश्चतुरंगुलैः॥ ५०॥
जुहुयादमृताखण्डैरयुतं ज्वरशान्तये।
निशातशरनिर्भिन्नभीष्मतापहरं हरिम्॥ ५१॥

यदि ज्वर को शान्त करना है तो अच्युतदेव का स्मरण और होम करना चाहिये। यदि भौतिक ज्वर हो तो शिर पर उक्त मन्त्र का जप करना चाहिये। इससे असाध्य होते हुए भी कुछ क्षणों में ज्वर शान्त हो जायगा। इसके लिये चार अंगुल की समिधाओं से अग्नि में होम और श्रीकृष्ण की पूजा करना चाहिये। ज्वरशान्ति के लिये बाणों से भिन्नाङ्ग भीष्म का ताप हरण करने वाले श्रीहरि का स्मरण और ईख के टुकड़ों का होम करना चाहिये॥ ४९-५१॥

स्मृत्वा स्पृशन् जपेदार्त्तं पाणिभ्यां रोगशान्तये।
अपमृत्युविनाशाय सान्दीपनिसुतप्रदम्॥ ५२॥
ध्यात्वाऽमृतलताखण्डैः क्षीराक्तैरयुतं हुनेत्।
मृतपुत्राय विप्राय सार्जुनं ददतं सुतान्॥ ५३॥

किसी भी अन्य रोग का उपचार करने के लिये रोगी के सर का स्पर्श करते हुए श्रीहरि का ध्यान करे। सान्दीपनि के पुत्र को जीवन प्रदान करनेवाले श्रीहरि रोगी को अपमृत्यु से बचा देंगे। इसके साथ ही लताखण्ड से दश हजार होम और सान्दीपनि नामक ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित करने वाले श्रीहरि का ध्यान करना चाहिये॥५२-५३॥

ध्यात्वा लक्षं जपेदेकं मन्वोः सुतविवृद्धये।

पुत्रजीवेन्धनचिते जुहुयादनलेऽयुतम् ॥ ५४ ॥

तत्फलैर्मधुराक्तैः स्युः पुत्रा दीर्घायुषोऽस्य तु ।
क्षीरिद्रुक्वाथसम्पूर्णमभ्यर्च्य कलशं निशि ॥ ५५ ॥

पुत्रों की वृद्धि के लिये उपरोक्त मन्त्रों में से किसी एक का जप तथा संस्कृत अग्नि में दस हजार होम करना चाहिये। पुत्र के दीर्घ जीवन के लिये मधु, फल तथा क्षीरी वृक्षों के रस से भरे कलश सहित श्रीहरि का रात्रि में पूजन करना चाहिये ॥ ५४-५५ ॥

जप्त्वाऽयुतं प्रगे नारीमभिषिञ्चेद् द्विषड्दिनम् ।
सा बन्ध्यापि सुतान् दीर्घजीविनो गदवर्जितान् ॥ ५६ ॥
लभते नात्रसन्देहस्तज्जप्ताम्बाशिनी सती ।
प्रातर्वाचं यमा नारी रौधिच्छदपुटे जलम् ॥ ५७ ॥
अष्टोत्तरशतं जप्तं मासं पुत्रीयती पिबेत् ।
देवकीसुतगोविन्द वासुदेव जगत्पते ॥ ५८ ॥
देहि मे तनयं देव त्वामहं शरणं गतः ।
प्रहितां काशिराजेन कृत्यां जित्वा निजारिणा ॥ ५९ ॥
तत्तेजसा तु नगरीं दहन्तं भावयन् हरिम् ।
सुस्निग्धाक्तैर्हु नेद्रात्रौ सर्षपैः सप्त वासरान् ॥ ६० ॥
कृत्या कर्त्तारमेवासौ कुपिता नाशयेत् ध्रुवम् ।
आसीनमाश्रमे दिव्ये बदरीषण्डमण्डिते ॥ ६१ ॥
स्पृशन्तं पाणिपादाभ्यां घण्टाकर्णकलेवरम् ।
ध्यात्वाऽच्युतं तिलैर्लक्षं हुनेत्त्रिर्मधुराप्लुतैः ॥ ६२ ॥

दश हजार मन्त्र का जप करने तथा प्रातःकाल जल से स्त्री का अभिषेक करने से यदि वह बन्ध्या भी होगी तो दीर्घायु और रोगरहित पुत्रों को उत्पन्न करेगी। यदि जन्म लेकर उसकी सन्तान मर जाती हो तब भी इससे उसके पुत्र जीवित रहेंगे। व्रत और १०८ बार मन्त्र का जप कर अभिषेक के जल को पवित्र कर एक महीने तक पीने से

पुत्राकांक्षी स्त्री को अवश्य पुत्र प्राप्त होगा। साथ ही, वह 'हे देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते देहि मे तनयं देव त्वामहं शरणं गतः। प्रहितां काशीराजेन कृत्यां जित्वा निजारिणा॥ तत्तेजसा तु नगरीं दहन्तं भावयन् हरिम॥' इसका पाठ करे और श्रीहरि का ध्यान करते हुए सरसों से सात रात तक होम करे। इसके बाद पुनः यह ध्यान करे कि 'समस्त कार्यों के विधाता श्रीकृष्ण के कुपित होने पर सभी वस्तुओं का विनाश हो जाता है, वह श्रीकृष्ण बदरी वृक्षों से सुशोभित दिव्य आश्रम में विराजमान होकर अपने हाथों और पैरों से घण्टाकर्ण के शरीर का स्पर्श कर रहे हैं।' इस प्रकार ध्यान करके त्रिमधु और तिल से एक लाख होम करे॥ ५६-६२॥

जपेद्वा सर्वपापानां शान्तये कान्तये तनोः।
द्वेषयन्तं रुक्मिबलौ द्यूतासक्तौ स्मरन् हरिम् ॥ ६३ ॥

सभी पापों की शान्ति तथा शरीर की कान्ति के लिये उक्त मन्त्र का जप तथा द्यूतासक्त रुक्मि और बल के शत्रु श्रीहरि का स्मरण करना चाहिये॥ ६३॥

जुहुयादिष्टयोर्दिक्ष्वै गुडिका गोमयोद्भवाः।
ज्वलद्वह्निमुखैर्बाणैर्वर्षन्तं गरुडस्थितम् ॥ ६४ ॥
ध्यायमानं रिपुगणमनुधावन्तमच्युतम् ।
ध्यात्वैवमभ्यसेन्मन्त्रोरेकं सप्तसहस्रकम् ॥ ६५ ॥
उच्चाटनं भवेदेतद्रिपूणां सप्तभिर्दिनैः।
उत्क्षिप्तवत्सकं ध्यायन् कपित्थफलहारिणम् ॥ ६६ ॥
अयुतं प्रजपेत् साध्यमुच्चाटयति तत्क्षणात् ।
आत्मानं कंसमथनं ध्यात्वा मञ्चान्निपातितम् ॥ ६७ ॥
कंसात्मानमरिं कर्षन् गतासुं प्रजपेन्मनुम् ।
अयुतं जुहुयाच्चास्य जन्मोरु हुततर्पणैः ॥ ६८ ॥
अपि सेवितपीयूषो म्रियतेऽरिर्नसंशयः।
अथवा निम्बतैलाक्तैर्हुनेदधीभिरक्षतैः ॥ ६९ ॥

होम के लिये विधानपूर्वक गुड प्राप्त करके इस प्रकार अच्युत का ध्यान करते हुए कि 'वह गरुड पर आसीन हैं, उनके मुख में ज्वलंत अग्नि है और वे बाणवर्षा कर रहे हैं' उपरोक्त मन्त्रों में से किसी का भी सात हजार जप करे। इस प्रकार करने से सात दिन के भीतर शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। साथ ही कपित्थ फल खाते हुए उत्क्षिप्तवत्सक श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये। मन्त्र का दश हजार जप करने से शत्रु का तत्काल उच्चाटन हो जाता है। इस मन्त्र का जप करते समय कंस को मारने वाले और मञ्च से उतर रहे परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये। अर्थात् 'श्रीकृष्ण ने कंस को मञ्च से नीचे गिराकर उसका वध कर दिया है।' इस प्रकार ध्यान करते हुए जन्म-वृक्ष की समिधाओं से दश हजार होम करके तर्पण करे। यह क्रिया करने से यदि शत्रु ने अमृतपान भी कर लिया है तो भी उसकी निश्चित मृत्यु हो जायगी। नीम के तेल और चावल से होम करने से भी यही फल प्राप्त होता है ॥ ६४-६९ ॥

अयुतं प्रयतो रात्रौ मरणाय रिपोः क्षणात् ।
दोषारिष्टदलव्योषकर्पासास्थिकलैर्निशि ॥ ७० ॥
हुनेदेरण्डतैलाक्तैः श्मशानस्थोऽरिशान्तये ।
न शस्तं मारणं कर्म कुर्याच्चेदयुतं जपेत् ॥ ७१ ॥

शत्रु का तत्काल मारण करने के लिये शुद्ध होकर रात में हल्दी, बहेडे का पत्ता, कपास का के बीज चूर्ण तथा मिर्च, सोंठ और पिप्पली) से दश हजार होम करना चाहिये। शत्रु को शान्त करने या मारण करने के लिये रेड़ के तेल से और श्मशान में स्थित होकर से दश हजार होम करे। आत्मरक्षार्थ दश हजार मंत्र जप भी करना चाहिये क्योंकि मारण कर्म प्रशस्त नहीं है ॥ ७०-७१ ॥

हुनेद्वा पायसैस्तद्वच्छान्तये शान्तमानसः ।
जयकामी जपेल्लक्षं पारिजात हरं हरिम् ॥ ७२ ॥

विजय प्राप्ति के लिये शान्तचित्त होकर पूर्वोक्त प्रकार से होम करे। शान्ति के लिये खीर से होम तथा परिजात कुसुम का हरण करने वाले श्रीहरि का के नाम एक लाख जप करे ॥ ७२ ॥

स्मरन् पराजयस्तस्य न कुतश्चिद्भविष्यति ।
पार्थे दिशन्तं गीतार्थं व्याख्यामुद्राकरं हरिम् ॥ ७३ ॥

श्रीहरि के नाम का जप करने से साधक की कहीं भी पराजय नहीं होती। 'वे श्रीहरि व्याख्या मुद्रा में अर्जुन को भगवद्गीता का अर्थ बताते हुए उपदेश दे रहे हैं' ऐसा ध्यान करे ॥ ७३ ॥

रथस्थं भावयन् जप्याद्धर्मवृद्ध्यै शमाय च ।
लक्षं पलाशकुसुमैर्हुनेद्यो मधुराप्लुतैः ॥ ७४ ॥

व्याख्याता सर्वशास्त्राणां स कविर्वादिराड्भवेत् ।
विश्वरूपधरं प्रोद्यद्भास्वत्कोटिसमप्रभम् ॥ ७५ ॥

द्रुतचामीकरनिभमग्नीषोमात्मकं हविः ।
अर्काग्निद्योतदस्यांघ्रिपङ्कजं दिव्यभूषणम् ॥ ७६ ॥

नानायुधधरं व्याप्तं विश्वाकाशावकाशकम् ।
राष्ट्रपुर्ग्रामवास्तूनां शरीरस्य च रक्षणे ॥ ७७ ॥

धर्मवृद्धि और चित्त की शान्ति के लिये रथस्थ श्रीहरि का ध्यान करना चाहिये। साथ ही मधु और पलाश के पुष्पों से एक लाख होम करने से साधक शास्त्रों का व्याख्यता, कवि और अदृश्यदर्शी हो जाता है। इसके लिये उसे करोड़ों उदित होते हुए सूर्य की प्रभा के समान और विश्वरूपधर श्रीहरि का ध्यान करना चाहिये : उनके चरणकमलों में अनेक दिव्य आभूषण सुशोभित हैं और वे अग्नि तथा चन्द्रमा के समान दीप्तिमान हैं। वे विविध प्रकार के आयुध धारण किये और सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किये हुए हैं। उन्होंने राष्ट्रों, पुरों और ग्रामों की रक्षा के लिये अवतार ग्रहण किया है ॥ ७४-७७ ॥

प्रजपेन्मन्त्रयोरेकतरं ध्यात्वैवमादरात् ।
अथवा व्यस्तसर्वांघ्रिरचिताङ्गाजुर्नर्षिकम् ॥ ७८ ॥

त्रिष्टुप्छान्दसिकं विश्वरूपविष्ण्वधिदैवतम् ।
जपेद्गीतामनुं स्थाने हृषीकेशाद्यमाद्यकैः ॥

हुनेद्वा सर्वरक्षायै सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ७९ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतीयरात्रे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक ध्यान करके उपरोक्त दो मंत्रों में से किसी एक का अथवा अर्जुन ऋषि नामक मन्त्र का जप करते हुए उनके चरणारविन्द का ध्यान करे। इसका छन्द त्रिष्टुप, देवता विश्वरूपधर विष्णु, तथा जप के लिये विनियोग बताया गया है। फिर गीता मन्त्र का उच्चारण करते हुए हृषीकेश का जप तथा सभी वाधाओं की शान्ति और सर्वरक्षा के लिये अग्नि में होम करना चाहिये॥ ७८-७९ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में तृतीय
रात्र का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥

तृतीयरात्रे पञ्चदशोऽध्यायः

अथ पूजाहोमविधिः

श्रीव्यास उवाच ।

वक्ष्येऽक्षयधनावाप्त्यै प्रतिपत्तिं श्रियः पतेः ।
सुगुप्तां धननाथाद्यैर्यान्यैर्वा क्रियते सदा ॥ १ ॥

श्री व्यास जी बोले : अक्षत सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये मैं कृपा करते हुए श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में अब अत्यन्त गुप्त नियमों को बताऊँगा । यहाँ कुबेर तथा अन्य का पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ १ ॥

द्वारवत्यां सहस्रार्कभास्वरैर्भवनोत्तमैः ।
अनल्पैः कल्पवृक्षैश्च परीते मणिमण्डपे ॥ २ ॥
ज्वलद्रत्नमयस्तम्भद्वारतोरणकुड्यके ।
फुल्लस्रगुल्लसच्चित्रवितानालम्बिमौक्तिके ॥ ३ ॥
पद्मरागस्थलीराजद्रत्नद्योश्च मध्यतः ।
अनारतगलद्रत्नसुमध्यस्रस्तवन्धनैः ॥ ४ ॥
रत्नप्रदीपावलिभिः प्रदीपितदिगन्तरे ।
उद्यदादित्यसंकाशमणिसिंहासनाम्बुजे ॥ ५ ॥
समासीनोऽच्युतो ध्येयोद्रुतहाटकसन्निभः ।
समानोदितचन्द्रार्कतडित्कोटिसमद्युतिः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः ।
पीतवासाश्चक्रशङ्खगदापद्मोज्ज्वलद्भुजः ॥ ७ ॥

द्वारका नगरी में सहस्रों सूर्य के समान प्रभावाले अनेक श्रेष्ठ भवन हैं। वहीं मणिमण्डप में बहुत से कल्पवृक्ष भी हैं। उस नगर में जाज्वल्यमान स्तम्भ, मधुर सुगन्धयुक्त पुष्प, तथा विभिन्न रत्नों और

मणियों से अलंकृत पर्दे आदि अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। वहीं पद्मराग देश के निकट रत्नों की एक नदी है जिसमें रत्न निरन्तर प्रवाहित हो रहे हैं। अतः उसमें स्नान करने वाली स्त्रियाँ अत्यन्त त्रस्त हैं क्योंकि उनके वस्त्रों के बन्धन खुल जाते हैं। मणियों और रत्नों की दीपमालिकओं से चारों ओर प्रकाशित वह स्थान अत्यन्त सुन्दर लग रहा है। उदित होते हुए सूर्य की किरणें वहाँ स्थित मणि-सिंहासन पर पड़ रही हैं। उस सिंहासन पर सुवर्णवर्ण तथा करोड़ों चन्द्रमा, सूर्य और विद्युत की प्रभा के समान प्रकाशमान श्रीकृष्ण विराजमान हैं। वे शरीर पर पीताम्बर और अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए हैं॥ २-७॥

अनारतोज्ज्वलद्रत्नधारौघकलशं स्पृशन्।
वामपादाऽम्बुजाग्रेण मुष्णता पल्लवच्छविम्॥ ८॥
रुक्मिणीसत्यभामेऽस्य मूर्ध्नि रत्नौघधारया।
सिञ्चन्त्यौ दक्षवामस्थे स्वदोःस्थकलशोत्थया॥ ९॥
नाग्नजिती सुनन्दा च दिशन्त्यौ कलशौ तयोः।
ताभ्यां च दक्षवामस्थे मित्रविन्दासुलक्षणे॥ १०॥
रत्ननद्योः समुद्धृत्य रत्नपूर्णघटौ तयोः।
जाम्बवती सुशीला च दिशन्त्यौ दक्षवामगे॥ ११॥
वहिः षोडशसाहस्रसंख्याताः परितः प्रियाः।
ध्येयाः कनकरत्नौघधारायुक्कलशोज्वलाः॥ १२॥
तद्बहिश्चाष्टनिधयः पूरयन्त्यो धनैर्धराम्।
तद्बहिर्वृष्णयः सर्वे पुरोवच्च सुरादयः॥ १३॥

रत्नादि से निर्मित, उज्ज्वल तथा निन्तर प्रकाशमान कलश का अपने बायें चरणकमल के अग्रभाग से स्पर्श किये हुए उनका आवाहन करना चाहिये। रुक्मिणी और सत्यभामा कलश में रत्नमय जल लाकर उनके (श्रीकृष्ण) के क्रमशः दाहिने और बायें पार्श्व में खड़ी होकर उनके मस्तक का सिञ्चन कर रही हैं। नग्नजिती, सुनन्दा, मित्रविन्दा, सुलक्षणा उनके पीछे खड़ी हैं। जाम्बवती और सुशीला भी रत्ननदी के

रत्नमय जल से कलश भरकर उनके पीछे आ रही हैं। बाहर की ओर सोलह सहस्र रानियाँ भी उनका ध्यान करते हुए उज्ज्वल कलशों में सुवर्ण और रत्नमय जल लेकर उनका सिञ्चन करने की इच्छा से खड़ी है। उसके भी बाहर प्रचुर अष्टनिधियाँ से युक्त वृष्णिगण धनार्थियों को धन बाँट रहे हैं ॥ ८-१३ ॥

ध्यात्वैवं परमात्मानं विंशत्यन्तं मनुं जपेत् ।
चतुर्लक्षं हुनेदाज्यैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए साधक को जप करना चाहिये। यहाँ चार लाख जप और चालीस हजार घी से होम करना चाहिये ॥ १४ ॥

शक्तिःश्रीपूर्विकेत्यष्टादशार्णो विंशदर्णकः ।
मन्त्रोऽनेन सदृशोऽन्यो मनुर्नहि जगत्त्रये ॥ १५ ॥

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य गायत्रीच्छन्दः कृष्णस्तु देवता ।
पूर्वप्रोक्तवदेवास्य बीजशक्त्यादिकल्पना ॥ १६ ॥

सर्वसिद्धियों को देने के लिये अष्टादशाक्षर मंत्र में श्रीं और ह्रीं लगाकर बननेवाले बीस अक्षर के मन्त्र से श्रेष्ठ तीनों लोकों में अन्य मन्त्र नहीं है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता श्रीकृष्ण हैं। इसके और बीज शक्ति को पूर्ववत् जानना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

कल्पः सनत्कुमारोक्तो मन्त्रस्यास्योच्यतेऽधुना ।
पीठन्यासान्तिकं कृत्वा पूर्वोक्तक्रमतः सुधीः ॥ १७ ॥

करद्वन्द्वांगुलितलेष्वङ्गषट्कं प्रविन्यसेत् ।
मन्त्रेण व्यापकं कृत्वा मातृकां मनुसम्पुटाम् ॥ १८ ॥

संहारसृष्टिमार्गेण दश तत्त्वानि विन्यसेत् ।
पुनश्च व्यापकं कृत्वा मन्त्रवर्णांस्तनौ न्यसेत् ॥ १९ ॥

मूर्ध्नि भाले भ्रुवोर्मध्ये नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः ।
आनने चिबुके गण्डे दोर्मूले हृदि तुण्डके ॥ २० ॥

नाभौ लिङ्गे तथाधारकट्योर्जान्वोश्च जङ्घयोः ।
गुल्फयोः पादयोर्न्यस्येत् सृष्टिरेषा समीरिता ॥ २१ ॥
स्थितिर्हृदादिनासान्ता संहृतिश्चरणादिका ।
विधायैवं पञ्चकृत्वः स्थित्यन्तं मूर्त्तिपञ्जरम् ॥ २२ ॥
सृष्टिस्थिती च विन्यस्य षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
गुणाब्धिवेदकरणाक्षाक्षरैरनिशंमनोः ॥ २३ ॥

अब सनत्कुमारोक्त मन्त्र बताते हैं। सुधी साधक को इसका पोठन्यासादि पूर्वोक्त क्रम से करना चाहिये। षडङ्गन्यास दोनों हाथों की अंगुलियों और करतल में करना चाहिये। फिर मन्त्र से व्यापक करने के बाद मातृका वर्णों से सम्पुटित मन्त्रवर्ण न्यास करना चाहिये। मूर्द्धा, भाल, भ्रूमध्य, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासिका, मुख, चिबुक, गण्डस्थल, बाहुमूल, हृदय, ओष्ठ, नाभि, लिङ्ग, आधार, कटि, जानु, जङ्घा, गुल्फ और पैरों में इस क्रम से न्यास को सृष्टिक्रम कहते हैं। फिर पाँच बार हृदयादि से नासिका पर्यन्त स्थिति न्यास और पाँच बार पादादि में संहृति न्यास करे। फिर स्थित्यन्त मूर्तिपञ्चर न्यास करना चाहिये। सृष्टि और स्थिति न्यास करने के बाद षडङ्गन्यास करे। इसके लिये चतुराक्षर, पञ्चाक्षर, सप्ताक्षर अथवा एकादशाक्षर मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये ॥ १७-२३ ॥

मुद्रां बद्ध्वा किरीटाख्यां दिग्बन्धं पूर्ववच्चरेत् ।
एवं ध्यात्वार्चयेद्देहं मूर्त्तिपञ्जरपूर्वकम् ॥ २४ ॥
अथवा ह्यर्चयेविष्णुं तदर्थं मन्त्रमुच्यते ।
गोमयेनोपलिप्योर्वीं तत्र पीटं निधापयेत् ॥ २५ ॥
विलिप्य गन्धपङ्केन लिखेदष्टदलाम्बुजम् ।
कर्णिकायां तु षट्कोणं स साध्यस्तत्र मन्मथम् ॥ २६ ॥
शिष्टैस्तं सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत् स्मरम् ।
प्राग्रक्षोऽनिलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु संविदम् ॥ २७ ॥
षडक्षरं सन्धिषु च केशवेषु त्रिशस्त्रिशः ।

विलिखेत् स्मरगायत्रीमालामन्त्रं दलाष्टके ॥ २८ ॥
षट्शः संलिख्य तद्बाह्ये वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ।
भूबिम्बं च लिखेद्बाह्ये दलानां दिग्विदिक्ष्वपि ॥ २९ ॥

फिर किरीट मुद्रा प्रदर्शित करके पूर्ववत् दिग्बन्धन और ध्यान करे। इसके बाद मूर्तिपञ्जरपूर्वक देह की पूजा करे। अथवा विष्णु की उपासना में मन्त्रादि इस प्रकार होंगे : पहले भूमि को गोबर से लीपकर पीठ की स्थापना करे। फिर चन्दनादि गन्ध आदि से लीपकर अष्टदल पद्म बनाये। उसकी कर्णिका में षट्कोण लिखे और उसमें यथाशक्ति मन्मथदेव का आवाहन करे और उन्हें मन्त्र के सत्रह वर्णों से सुवेष्टित करके पूर्व, नैर्ऋत्य और आग्नेय कोणों में 'श्रीं' बीज लिखे। सन्धि और केसरों में से प्रत्येक में तीन-तीन बार षडक्षर मन्त्र लिखकर अष्टदलों पर कामगायत्री मालामन्त्र लिखे। उसके बारह छः-छः बार बीजमन्त्र लिखकर उन्हें मातृकावर्णों से वेष्टित करे। दलों के बाहर सभी दिशाओं और विदिशाओं में भूबिम्ब लिखे ॥ २४-२६ ॥

एतन्मन्त्रं हाटकादिपात्रेष्वालिख्य पूर्ववत् ।
साधितं धारयेद्धीरैः सोऽर्च्यते त्रिदशैरपि ॥ ३० ॥

जो इस मन्त्र को सुवर्ण पत्र पर पूर्ववत् लिखकर इसकी साधना करता है अथवा इसे शरीर पर धारण करता है वह सबका पूज्य हो जाता है ॥ ३० ॥

स्याद्गायत्री कामदेवपुष्पबाणौ च ङेऽन्तकौ ।
विद्महेधीमहियुतौ तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ॥ ३१ ॥

कामगायत्री मन्त्र इस प्रकार है : कामदेवायविद्महे पुष्पबाणाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ॥ ३१ ॥

जप्याज्जपादौ गोपालमनूनां जनार्दनम् ।
नत्यन्ते कामदेवाय ङेऽन्तं सर्वजनप्रियम् ॥ ३२ ॥

इस गायत्री मन्त्र का जप करे। फिर गोपाल मन्त्र के जप के पहले 'जनार्दनाय कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' इसका उच्चारण करे। ॥ ३२ ॥

उक्त्वा सर्वजनान्ते तु सम्मोहनपदं तथा ।
ज्वल ज्वल प्रज्वलेति प्रोक्तो सर्वजनस्य च ॥ ३३ ॥
हृदयं च मम ब्रूयात् वशं कुरुयुगं शिवः ।
प्रोक्तो मदनमन्त्रोऽष्टचत्वारिंशद्भिरक्षरैः ॥ ३४ ॥

उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए 'सर्वजन सम्मोहन ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हृदयं मम वशं कुरु कुरु शिवम्' यह कहे। इस प्रकार ४८ अक्षरों का काममन्त्र पूरा होता है ॥ ३३-३४ ॥

जपादौ मारबीजाद्यो जगत्त्रयवशीकरः ।
भूगृहं चतुरस्रं स्यादष्टवज्रविभूषितम् ॥ ३५ ॥

जप आरम्भ करने के पहले तीनों लोकों को वश में करने वाले कामबीज को भूगृह में लिखकर चतुरस्र बनाये और उसे अष्टवज्रों से विभूषित करे ॥ ३५ ॥

पीठं पूर्ववदभ्यर्च्य मूर्त्तिं संकल्प्य पौरुषीम् ।
तत्रावाह्याच्युतं भक्त्या सकलीकृत्य पूजयेत् ॥ ३६ ॥

पूर्ववत् पीठपूजा करके पौरुषी मन्त्र से संकल्प करे। भक्तिपूर्वक अच्युतदेव का आवाहन करके सकलीकरण के बाद पूजन करे ॥३६॥

आसनादिविभूषान्तं पुनर्न्यासक्रमान्न्यसेत् ।
सृष्टिस्थिती षडङ्गं च किरीटं कुण्डलद्वयम् ॥ ३७ ॥
चक्रं शङ्खं गदां पद्मं मालां श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
गन्धाक्षतप्रसूनैश्च मूलेनाभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ ३८ ॥
आदौ वह्निपुरद्वन्द्वकोणेष्वङ्गानि पूजयेत् ।
सकृच्छिरः शिखावर्मनेत्रमन्त्रमिति क्रमात् ॥ ३९ ॥

पुनः आसनादि से विभूषान्त न्यास करके सृष्टि, स्थिति, और षडङ्गन्यास करे। फिर किरीट, कुण्डलद्वय, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, माला, श्रीवत्स और कौस्तुभ का गन्ध, अक्षत तथा पुष्पसहित मूलमन्त्र से पूजन करे। सर्वप्रथम ईशान कोण से आरम्भ करके सभी कोणों में

अङ्गदेवताओं का पूजन करे। फिर क्रमशः शिर, शिखा, कवच और नेत्र को पृथक्-पृथक् मन्त्र से शुद्ध करना चाहिये ॥ ३७-३९ ॥

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।
अग्न्यादिदलमूलेषु शान्तिर्लक्ष्मीः सरस्वती ॥ ४० ॥

रतिश्च दिग्दलेष्वस्यास्ततोऽष्टौ महिषीर्यजेत् ।
रुक्मिण्याद्या दक्षसव्यक्रमात् पत्राग्रकेषु च ॥ ४१ ॥

ततः षोडशसाहस्रं सकृदेवार्चयेत् प्रियाः ।
इन्द्रादीनामुकुन्दाद्यान् मकरानन्दकच्छपान् ॥ ४२ ॥

शङ्खपद्मादिकांश्चापि निधीनष्टौ क्रमाद्यजेत् ।
तद्बहिश्चेन्द्रबज्राद्या आवृतीः सम्प्रपूजयेत् ॥ ४३ ॥

इति सप्तावृतिवृतमभ्यर्च्याच्युतमादरात् ।
प्रीणयेद्दधिखण्डाज्यमिश्रेण तु पयोम्भसा ॥ ४४ ॥

इस मन्त्र में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अग्नि आदि को दलों के मूल में तथा शान्ति, लक्ष्मो, सरस्वतो और रति को दिग्दलों में स्थित करना चाहिये। फिर आठों महिषियों की पूजा करनी चाहिये। रुक्मिणी आदि को दक्षिणावर्त क्रम से पत्राग्रों पर स्थित करे। इनके बाद सोलह हजार रानियों का भी पूजन करे। फिर इन्द्रादि, मुकुन्दादि, मकरानन्द और कच्छपादि की पूजा करे। इनके बाद शङ्ख, पद्म और अष्टनिधियों की यथाक्रम पूजा करे। इन्द्रवज्रा आदि का उसके बाहर पूजन करे। इस प्रकार अत्यन्त श्रद्धा के साथ भगवान अच्युतदेव का सात आवरणों में पूजन करने के बाद जल, दही, दूध, घो और ईख के टुकड़ों से तर्पण करे ॥ ४०-४४ ॥

राजोपचारान्दत्त्वा च स्तुत्वा नत्वा च केशवम् ।
उद्वासयेत् स्वहृदये परिवारगणैः सह ॥ ४५ ॥

न्यस्तात्मानं समभ्यर्च्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम् ।
रत्नाभिषेकध्यानेज्या विंशत्यर्णाश्रिते रता ॥ ४६ ॥

श्री कृष्ण (केशव) को राजोपचार देकर स्तुति और प्रणाम करे, सपरिवार उन्हें अपने हृदय में धारण करे तथा फिर अपनी आत्मा को न्यस्त करके तन्मय होकर अर्चना और रत्नों से अभिषेक और ध्यान करके बीस अक्षरों के मन्त्र का जप करे ॥ ४५-४६ ॥

जपहोमार्चनध्यानैर्योऽमुं प्रभजते मनुम् ।
तद्वेश्म पूर्यते रत्नस्वर्णधान्यैरनावृतम् ॥ ४७ ॥
पृथ्वी पृथ्वी करे तस्य सर्वसस्यकुलाकुला ।
पुत्रैर्मित्रैः स सम्पन्नः प्रयात्यन्ते परां गतिम् ॥ ४८ ॥

जो इस मन्त्र का जप, होम, पूजा और ध्यानपूर्वक भजन करता है उसका घर रत्न, सुवर्ण और अन्नादि से सदा भरा रहता है; सम्पूर्ण पृथिवी उसके आधीन हो जाती है; सम्पूर्ण अन्न उसके आधीन हो जाते हैं, वह पुत्रों तथा बान्धवों से सदा घिरा रहता है और अन्त में परम गति को प्राप्त करता है ॥ ४७-४८ ॥

वह्नावभ्यर्च्य गोविन्दं शुक्लपुष्पैः सतण्डुलैः ।
आज्याक्तैरयुतं हुत्वा भस्म तन्मूर्ध्नि धारयेत् ॥ ४९ ॥
तस्यान्नानां समृद्धिः स्यात्तद्वशे सर्वयोषितः ।

श्वेत पुष्प, अक्षत और घी से अग्नि में गोविन्द की अर्चना करके उसकी भस्म को मूर्द्धा पर धारण करने से साधक अन्न की समृद्धि प्राप्त करता है तथा सभी स्त्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं ॥ ४९-४९½ ॥

आज्यैर्लक्षं हुनेद्रक्तपद्मैर्वा मधुराप्लुतैः ॥ ५० ॥
श्रिया तस्यैन्द्रमैश्वर्यं कृपणेशाय ते ध्रुवम् ।

घी से अथवा मधु से प्लुत कमल के फूलों से एक लाख जप करने से साधक इन्द्र के समान श्री और ऐश्वर्य प्राप्त करता है और उसके सभी कार्य निश्चित रूप से सफल होते हैं ॥ ५०-५०½ ॥

शुक्लादिवस्त्रलाभाय शुक्राय कुसुमैर्हुनेत् ॥ ५१ ॥

श्वेत वस्त्र प्राप्त करने के निमित्त शुक्र के लिये पुष्पों से होम करना चाहिये ॥ ५१ ॥

त्रिमध्वक्तैर्दशशतमाज्याक्तैर्वाष्टसंयुतम् ।
क्षौद्रसिक्तैः सितैः पुष्पैरष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ ५२ ॥
हुनेन्नित्यं सैष आसीत् पुरोधा नृपतेर्भवेत् ।
दशाष्टादशवर्णोक्तं जपध्यानहुतादिकम् ॥ ५३ ॥

प्रतिदिन तीन समय घो तथा मधु से अथवा शर्करा, मधु तथा पुष्प से होम, और ध्यान एवं होम में क्रमश: दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर मन्त्र का उच्चारण करने से साधक राजा का पुरोहित हो जाता है। ॥ ५२-५३ ॥

विदध्यात् कर्म चानेन ताभ्यामप्यत्र कीर्त्तितम् ।
वाग्भवं मारबीजं च कृष्णाय भुवनेश्वरी ॥ ५४ ॥
गोविन्दाय रमागोपीजनवल्लभ ते शिवः ।
चतुर्दशस्वरोपेतः शुक्रः संदी तदूर्ध्वतः ॥ ५५ ॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वप्रदायकः ।
अष्टादशार्णवत्सर्वं षड्ऋष्यादिकमस्य तु ॥ ५६ ॥

इसके बाद २२ अक्षरों के मन्त्र को बताते हैं। मन्त्र इस प्रकार है: 'ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय रं गोपीजन वल्लभाय ॐ स्वाहा'। इसका षडङ्ग और ऋष्यादिन्यास १८ अक्षरों के मन्त्र के समान हो है। ॥ ५४-५६ ॥

पूजा च विंशत्यर्णोक्ता प्रतिपत्तिस्तु कथ्यते ।
वामोर्ध्वहस्ते दधतं विद्यासर्वस्वपुस्तकम् ॥ ५७ ॥
अक्षमालां च दक्षोर्ध्वे स्फाटिकीं मातृकामयीम् ।
शब्दब्रह्ममयं वेत्थमधः पाणिद्वयेरितम् ॥ ५८ ॥

नाम, ख्याति तथा वाञ्छित वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये २० अक्षरों के मन्त्र की पूजा करना चाहिये। इसमें यह ध्यान करना चाहिये कि 'बाँया हाथ विद्या की सर्वस्व पुस्तक को पकड़ने के लिये उठा हुआ है।' दाहिने हाथ में अक्षमाला तथा मातृकामयी स्फाटिकी माला लेकर पूजा करनी चाहिये ॥ ५७-५८ ॥

गायन्तं पीतवसनं श्यामलं कोमलच्छविम् ।
वर्हिवर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञं सर्ववेदिभिः ॥ ५९ ॥
उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठेद्धरिं सदा ।
ध्यात्वैवं प्रमदावेशविलाशभवनेश्वरम् ॥ ६० ॥

पीतवसन, श्याम, कोमल छविवाले, मोरपंख के आभूषण धारण किये हुए, सर्वज्ञ, तथा सब कुछ जानने वाले मुनियों द्वारा उपासित श्रीहरि का सदा गायन करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करने से साधक वेश, विलास और भवन तथा स्त्रियों का अधिपति बन जाता है ॥ ५९-६० ॥

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रमिमं मन्त्री सुसंयतः ।
पालाशपुष्पैः स्वाद्वक्तैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ ६१ ॥
जुहुयात् कर्मणानेन ततः सिद्धो भवेद्ध्रुवम् ।
योऽस्मिन्निष्णातधीर्मन्त्री वर्त्तते वभ्रुगद्ववात् ॥ ६२ ॥
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य गङ्गाप्रवाहवत् ।
सर्ववेदेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च पण्डितः ॥ ६३ ॥
सम्पत्तिं परमां लब्ध्वा चान्ते याति परं पदम् ।

हरि के इस मन्त्र का ४ लाख जप करना चाहिये। मन्त्रवित साधक को सुसंयत होकर पलाश के फूलों और स्वादिष्ट फलों से ४० हजार होम करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक सफलता तथा सिद्धियाँ प्राप्त करता है। इस प्रकार सिद्ध साधक पाण्डित्य के जिस किसी क्षेत्र का अभ्यास करता है उसमें उसकी गद्य और पद्यमयी वाणी गङ्गा के प्रवाह के समान प्रवाहित होने लगती है; वेदों, शास्त्रों और पुराणों के महान पण्डित के रूप में उसकी ख्याति होती है; वह श्रेष्ठतम सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेता है और अन्त में परम पद प्राप्त करता है ॥ ६१-६३½ ॥

श्रीशक्तिस्मरकृष्णाय गोविन्दाय शिवो मनुः ॥ ६४ ॥
द्रूवर्णा ब्रह्मगायत्री कृष्णर्ष्यादिरथास्य तु ।
वेदैस्त्रिवेदयुग्मार्णैरङ्गषट्कमिहोदितम् ॥ ६५ ॥

साधक को इस मन्त्र का जप करना चाहिये : श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः'। 'ह्रीं' वर्ण को ब्रह्मगायत्री कहा गया है। इसके ऋषि कृष्ण हैं और १८ अक्षर वाले मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास बताया गया है ॥ ६४-६५ ॥

विंशत्यर्णोदितजपध्यानहोमार्चनक्रियः ।
मन्त्रोऽयं सकलैश्वर्यकांक्षिभिः सेव्यतां बुधैः ॥ ६६ ॥

बीस अक्षरवाले मन्त्र से उपासना करते समय साधक को जप, ध्यान, होम और अर्चन करना चाहिये। धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये इस मन्त्र को ग्रहण करना चाहिये ॥ ६६ ॥

श्रीशक्तिकामपूर्वाङ्गजन्मशक्तिरमान्तिकः ।
दशाक्षरः स एवादौ स्याच्च शक्तिरमान्वितः ॥ ६७ ॥
मन्त्रौ विकृतिरव्यर्णावाचकाद्यङ्गिनाविमौ ।
विंशत्यर्णोक्तयजनविधा ध्यायेदथाच्युतम् ॥ ६८ ॥

'श्रीं ह्रीं क्लीं अङ्गजन्मशक्ति रमाय' एक अन्य दशाक्षर मन्त्र है। इसकी उपासना में उक्त विंशत्यर्ण (२० अक्षरवाले) मन्त्र के समान ही अङ्गपूजा के लिये ध्यान करना चाहिये ॥ ६७-६८ ॥

वरदाभयहस्ताभ्यां श्लिष्यन्तं स्वाङ्कके प्रिये ।
पद्मोत्पलकरे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रधरोज्ज्वलम् ॥ ६९ ॥

यह ध्यान करे कि अच्युत देव हाथों में वर और अभय मुद्रा धारण किये कोमल करकमलों से अपनी प्रियतमाओं का आलिङ्गन कर रहे हैं और चक्र धारण किये हुए हैं। इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। ॥ ६९ ॥

दशलक्षं जपेदाज्यैस्तावत्साहस्रहोमतः ।
सिद्धाविमौ मूलसम्पत्सुखसौभाग्यदौ नृणाम् ॥ ७० ॥

उक्त मन्त्र का दस लाख जप तथा दस हजार होम करे। इस प्रकार करने से साधक सिद्धि, वैभव, सम्पत्ति, सौख्य और सौभाग्य प्राप्त करता हैं ॥ ७० ॥

मारशक्तिरसापूर्वो दशार्णो मनवस्त्रयः ।
एतेषां मनुर्णावनामङ्गर्ष्यादिदशार्णवत् ॥ ७१ ॥

क्लीं, ह्रीं और श्रीं से संयुक्त तीन अन्य मन्त्र है जिनके अङ्ग-न्यास और ऋष्यादि न्यास आदि उक्त दशाक्षर मन्त्र के ही समान हैं। ॥ ७१ ॥

शङ्खचक्रधनुर्बाणपाशांकुशधरोऽरुणः ।
वेणुं धमन् घृतो दोर्भ्यां ध्येयः कृष्णोदिवाकरे ॥ ७२ ॥

श्रीकृष्ण शङ्ख, चक्र, धनुष-बाण, पाश, अंकुश धारण किये हुए, सूर्य के समान अरुणवर्ण हैं। वे अपने हाथों में वेणु लेकर उस पर मधुर रागिनियां बजा रहे हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये ॥७२॥

आद्ये गणे ध्यानमेवं द्वितीये विंशदर्णवत् ।
दशार्णवत् तृतीयेऽङ्गदिक्पालाद्यैः समर्चना ॥ ७३ ॥
पञ्चलक्षं जपेत्तावदयुतं पायसैर्हुनेत् ।
ततः सिद्धास्तु मनवो नृणां सम्पत्तिकान्तिदाः ॥ ७४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे तृतीयरात्रे मन्त्रपूजा-
होमविधिविषयक पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

समाप्तश्चेदं तृतीयरात्रम् ॥

आदि गणों का ध्यान करने के लिये बीस अक्षर वाले मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। अङ्ग देवताओं और दश दिक्पालों का तृतीयावरण में पूजन के लिये दशार्णमन्त्र ग्रहण करना, मन्त्र का पाँच लाख जप और खीर से पचास हजार होम करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्यों को सम्पत्ति तथा कान्ति देनेवाला यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। ॥ ७३-७४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में तृतीय
रात्र का मन्त्रपूजा होमविधि विषयक
पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

तृतीय रात्र समाप्त

चतुर्थरात्रे प्रथमोऽध्यायः

श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीमहादेव उवाच ।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि भक्तिमुक्तिप्रसाधनम् ।
नाम्नामष्टोत्तरशतं श्रीकृष्णस्य परमात्मनः ॥ १ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे देवि, सुनो ! अब मैं परमात्मा श्रीकृष्ण के भक्ति-मुक्ति के साधन स्वरूप अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र को बता रहा हूँ ॥ १ ॥

पूर्वकल्पे धरोद्धारे पृथिव्या शेषकेण च ।
सवादं परमाश्चर्यं श्रृणुष्व कमलानने ॥ २ ॥

पूर्वकल्प में, हे कमलानने ! जिस समय सागर के गर्भ से पृथिवी का उद्धार हुआ था उस समय के पृथिवी और शेष के परम अश्चर्यमय इस संवाद को सुनो ॥ २ ॥

नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं तपः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परं परम् ॥ ३ ॥
वेदानां च यथा साम तीर्थानां मथुरा परा ।
क्षेत्राणां काशिका देवि मन्त्राणां श्रीदशाक्षरः ॥ ४ ॥
वैष्णवानां वैष्णवीनां यथाहं त्वं तथा परा ।
आश्रमाणां यथा न्यासः सिद्धानां कपिलो यथा ॥ ५ ॥
आयुधानां यथा वज्रं धेनूनां कामधुग्यथा ।
मनोरथं प्रस्रवतां यथा नाम्नां शताष्टकम् ॥ ६ ॥

इस स्तोत्र से श्रेष्ठ कोई स्तोत्र नहीं है; इससे श्रेष्ठ कोई तप नहीं है; इससे श्रेष्ठ कोई विद्या नहीं है और इससे श्रेष्ठ कोई तीर्थ नहीं है। हे देवि ! वेदों में जिस प्रकार सामवेद है, तीर्थों में जैसे मथुरा

श्रेष्ठ है, क्षेत्रों में जैसे काशी श्रेष्ठ है; मन्त्रों में जैसे दशाक्षर श्री मन्त्र श्रेष्ठ है; वैष्णवों और वैष्णवियों में जैसे हम और तुम श्रेष्ठ हैं; आश्रमों में जैसे संन्यास श्रेष्ठ है; सिद्धों में जैसे कपिल श्रेष्ठ हैं; आयुधों में जैसे वज्र श्रेष्ठ है; धेनुओं में जैसे कामधेनु श्रेष्ठ है; उसी प्रकार मनोरथों की पूर्ति में यह अष्टोत्तर शतनाम श्रेष्ठ है ॥ ३-६ ॥

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।

प्रणम्य वसुधा देवी शेषं संकर्षणात्मकम् ॥ ७ ॥

पप्रच्छ परया भक्त्या जनानां मुक्तिहेतवे ।

नाम्नामष्टोत्तरशतं श्रीकृष्णस्य रमापतेः ॥ ८ ॥

मैं उसी अष्टोत्तर शतनाम को कह रहा हूँ। तुम उसे सावधान होकर सुनो। तब वसुधा देवी ने संकर्षणात्मक शेष को प्रणाम करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक लोगों को मुक्ति के लिये रमापति श्रीकृष्ण के अष्टोत्तर शतनाम को पूछा ॥ ७-८ ॥

भूमिरुवाच ।

कृष्णावतारे रोहिण्या रामेणापि त्वया सह ।

अलंकृतं जन्म पुंसामपि वृन्दावनौकसाम् ॥ ९ ॥

तस्य देवस्य कृष्णस्य लीलाविग्रहधारिणः ।

यस्योपाधिनियुक्तानि सन्ति नामान्यनेकशः ॥ १० ॥

तेषु मुख्यानि नामानि श्रोतुकामा चिरादहम् ।

संकर्षणात्मनः स्त्रोत्रं यतो जानासि वाङ्मयम् ॥ ११ ॥

तत्तानि यानि नामानि वासुदेवस्य वासुके ।

नातः परतरं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १२ ॥

भूमि बोली : कृष्णावतार में रोहिणी, बलराम और आपने वृन्दावन में रहनेवाले मनुष्यों के जन्म को अलंकृत कर दिया है। उन लीला विग्रहधारी श्रीकृष्ण देव के अनेक नाम और उपाधियाँ हैं। बहुत समय से मैं इनमें से मुख्य नामों को सुनना चाहती हूँ। अतः आप संकर्षणात्मक स्तोत्र के रूप में विख्यात श्री वासुदेव के उन नामों के स्तोत्र को मुझे बतायें क्योंकि तीनों लोकों में उससे श्रेष्ठ अन्य कोई स्तोत्र नहीं है।९-१२।

श्रीशेष उवाच ।

वसुन्धरे वरारोहे जनानामस्ति मुक्तिदम् ।
सर्वमङ्गलमूर्धन्यमणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ॥ १३ ॥
महापातककोटिघ्नं सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
समस्तजपयज्ञानां फलदं पापनाशनम् ॥ १४ ॥

श्री शेष बोले : हे वसुन्धरे ! हे वरारोहे ! मुक्तिप्रद, मंगलकारकों में श्रेष्ठतम तथा अणिमादि अष्टसिद्धियों को देनेवाले श्रीकृष्ण के नामों को मैं जानता हूँ। ये करोडों महापातकों को नष्ट करने वाले; सभी तीर्थों का फल देनेवाले, पापनाशक और समस्त जपों तथा यज्ञों का फल देनेवाले हैं ॥ १३-१४ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम् ॥ १५ ॥
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ।
तस्मात् पुण्यतमं चैतत् स्तोत्रं पापप्रणाशनम् ॥ १६ ॥

हे देवि ! सुनो, मैं अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र बता रहा हूँ जिसकी तीन आवृत्ति से पुण्य सहस्रनाम का फल मिलता है। श्रीकृष्ण के एक नाम के एक बार उच्चारण का भी उक्त फल प्राप्त होता है। अतः पापों को नष्ट करनेवाले पुण्यतम इस स्तोत्र को सुनो ॥ १५-१६ ॥

अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र

विनियोग : श्रीकृष्णस्याष्टोत्तर शतनाम्नां श्रीशेष ऋषिः, अनुष्टुप छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनाम जपे विनियोगः ।

श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः ।
वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः ॥ १७ ॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो हरिः ।
चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशङ्खाम्बुजायुधः ॥ १८ ॥
देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ।
यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः ॥ १९ ॥

पूतनाजीवितहरः शकटासुरभञ्जनः ।
नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ २० ॥
नवनीतनवाहारी मुचुकुन्दप्रसादकः ।
षोडशस्त्रीसहस्रेशस्त्रिभङ्गो मधुराकृतिः ॥ २१ ॥
शुकवागमृताब्धीन्दुर्गोविन्दो गोविदां पतिः ।
वत्सपालनसञ्चारी धेनुकासुरभञ्जनः ॥ २२ ॥
तृणीकृततृणावर्त्तो यमलार्जुनभञ्जनः ।
उत्तानतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः ॥ २३ ॥
गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।
इलापतिः परं ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्वहः ॥ २४ ॥
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ।
गोवर्धनाचलोद्धर्त्ता गोपालः सर्वपालकः ॥ २५ ॥
अजो निरञ्जनः कामजनकः कञ्जलोचनः ।
मधुहा मथुरानाथो द्वारकानाथको बली ॥ २६ ॥
वृन्दावनान्तसञ्चारी तुलसीदामभूषणः ।
स्यमन्तकमणेर्हर्त्ता नरनारायणात्मकः ॥ २७ ॥
कुब्जाकृष्णाम्बरधरो मायी परमपुरुषः ।
मुष्टिकासुरचाणूरमहायुद्धविशारदः ॥ २८ ॥
संसारवैरिः कंसारिर्मुरारिर्नरकान्तकः ।
अनादिर्ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ॥ २९ ॥
शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलान्तकृत् ।
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ॥ ३० ॥
सत्यवाक् सत्यसङ्कल्पः सत्यभामारतो जयी ।
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ॥ ३१ ॥
जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुवाद्यविशारदः ।

वृषभासुरविध्वंसी बाणासुरबलान्तकृत् ॥ ३२ ॥
युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ।
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ॥ ३३ ॥
कालीयफणिमाणिक्यरञ्जितश्रीपदाम्बुजः ।
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्रविनाशनः ॥ ३४ ॥
नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।
जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकः ॥ ३५ ॥
पुण्यश्लोकस्तीर्थकरो वेदविद्यादयानिधिः ।
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः ॥ ३६ ॥

इत्येवं कृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ॥ ३७ ॥
स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया परम् ।
कृष्णनामामृतं नाम परमानन्ददायकम् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार पूर्वकाल में श्रीकृष्ण देव के गीतामृत के समान अष्टोत्तर शतनामों को श्रीकृष्ण से तथा कृष्णभक्तों से मैंने सुना है। परमानन्ददायक और श्रीकृष्ण की प्रीति उत्पन्न करनेवाले इस श्रीकृष्णामृत स्वरूप स्तोत्र को मैंने बनाया है ॥ ३७-३८ ॥

अनुपद्रवदुःखघ्नं परमायुष्यवर्धनम् ।
दानश्रुततपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ॥ ३९ ॥
पठतां शृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत् ।
पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ॥ ४० ॥
धनावहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।
शिशूना गोकुलानां च पुष्टिदं पुष्टिवर्धनम् ॥ ४१ ॥
वातग्रहज्वरादीनां शमनं शान्तिमुक्तिदम् ।
समस्तकामदं सद्यः कोटिजन्माघनाशनम् ।
अन्ते कृष्णस्मरणदं भवतापभयापहम् ॥ ४२ ॥

ये नाम सभी उपद्रवों और दुःखों को नष्ट करनेवाले तथा आयु की वृद्धि करनेवाले हैं। इनसे साधक इसी जन्म में दान, तप और तीर्थों का फल प्राप्त करता है। स्तोत्र के पाठ और श्रवण से कोटिगुना फल मिलता है। इससे पुत्रविहीन को पुत्र, तथा गतिरहित को गति प्राप्त होती है; निर्धन धनवान हो जाता है; और विजयाकांक्षी विजय प्राप्त करता है। यह शिशु और गायों को पुष्टिदायक है। इससे ज्वर तथा वातग्रह का शमन होता है और शान्ति तथा मुक्ति प्राप्त होती है। यह करोड़ों जन्म के पापों को नष्ट कर देता है। अन्त में श्रीकृष्ण के स्मरण मात्र से भवसागर के तापों और भयों का नाश हो जाता है ॥३६-४२॥

कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ।
नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदान्तवेदिने ॥ ४३ ॥

मैं वेदान्तविद्, यादवेन्द्र, ज्ञानमुद्रा, योगिनाथ और रुक्मिणीश श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ ॥ ४३ ॥

इमं मन्त्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् ।
सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् ॥ ४४ ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धिसमृद्धिमान् ।
निर्विश्य भोगानन्तेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे उमामहेश्वर-
संवादे धरणीशेषसंवादे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनाम
स्तोत्रं समाप्तम् प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे महादेवि ! जो रातदिन इस मन्त्र का जप करता है वह सर्वग्रहों का अनुग्रह प्राप्त करता है और सबका प्रिय बन जाता है। वह पुत्र-पौत्रादि, सभी सिद्धियाँ और सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है तथा इस संसार के समस्त भोगों को प्राप्त करके अन्त में श्रीकृष्ण का सासुज्य प्राप्त करता है ॥ ४४-४५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत उमामहेश्वर
संवाद में धरणी-शेष संवाद का श्रीकृष्ण अष्टोत्तर
शतनाम स्तोत्रविषयक प्रथम अध्याय समाप्त ।

चतुर्थरात्रे द्वितीयोऽध्यायः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

सभी विघ्नों की शान्ति के लिये श्वेत परिधान धारण किये, चन्द्रमा के समान वर्णवाले, प्रसन्नवदन और चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करे ॥ १ ॥

ॐ नमः कृष्णाय पार्थाय श्रियै नारायणाय
देव्यै च सरस्वत्यै नराय च ।

ब्रह्मलोकादिह प्राप्तं नारदं भगवत्प्रियम् ।
दृष्ट्वा नत्वा सभायां तु प्रप्रच्छुर्मुनयो मुदा ॥ २ ॥

"मैं श्रीकृष्ण, पार्थ, लक्ष्मी, श्रीनारायण, देवी सरस्वती और श्रीनर को नमस्कार करता हूँ।" ब्रह्मलोक से प्राप्त यह मन्त्र, जिसके ऋषि नारद हैं, श्री भगवान को अत्यन्त प्रिय है। सभा में ब्रह्मलोक से आये ऋषि को देखकर वहाँ उपस्थित सभी ऋषियों ने उन्हें नमस्कार करके इस प्रकार पूछा ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः ।

ब्रह्मन् केन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।
विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः ॥ ३ ॥
विना वेदैर्विना ध्यानैर्विना चेन्द्रियनिग्रहैः ।
विना शास्त्रसमूहैश्च कथं मुक्तिरवाप्यते ॥ ४ ॥
दानेन तपसा तीर्थैर्मखैश्चापि विना मुने ।
देवाधिदेवो देवेशः स्थितस्तपसि शङ्करः ॥
कं समाराधयेद्देवं जपध्यानपरायणः ॥ ५ ॥

ऋषिगण बोले : हे ब्रह्मन् ! दान, तप, तीर्थ और यज्ञ के बिना

किस प्रकार पापों का नाश हो सकता है ? वेदाध्ययन, ध्यान, इन्द्रिय-निग्रह और शास्त्र समूहों के ज्ञान के बिना कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? हे मुनि ! दान, तप, तीर्थ और यज्ञ के बिना भी देवाधिदेव देवेश शङ्कर जप और ध्यानपरायण होकर किस देवता की उपासना करते हैं ॥ ३-५ ॥

श्रीनारद उवाच ।

इदमेव पुरा पृष्टः पार्वत्या परमेश्वरः ।
यदुवाच शृणुध्वं हि कथयामि सुविस्तरात् ॥ ६ ॥

श्री नारद जी बोले। पूर्वसमय में पार्वती ने भी परमेश्वर से यही प्रश्न पूछा था। तब उन्होंने जो कहा था उसे सुनो। मैं उसे विस्तार-पूर्वक कह रहा हूँ ॥ ६ ॥

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
प्रणिपत्य महादेवं पर्यपृच्छदुमापतिम् ॥ ७ ॥

कैसाल के शिखर पर आसीन देवदेव, जगद्गुरु उमापति महादेव को प्रणाम करके पार्वती ने पूछा ॥ ७ ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

भगवंस्त्वं परो देवः सर्वज्ञः सर्वपूजितः ।
त्वल्लिङ्गमर्च्यते देवैर्ब्रह्मसूर्यादिकैरपि ॥ ८ ॥
त्वत्तो लभन्तेऽभिमतां सिद्धिं सर्ववरप्रद ।
त्वं जन्ममृत्युरहितः स्वयम्भूः सर्वशक्तिमान् ॥ ९ ॥

श्री पार्वतीजी बोलीं : हे भगवन् ! आप ही परम देव, सर्वज्ञ और सर्वपूजित हैं। ब्रह्मा, सूर्य तथा अन्य सभी देवता आपके लिङ्ग की अर्चना करते हैं। आपकी कृपा से ही उनको सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। आप सभी वर प्रदान करते हैं। आप जन्म और मृत्यु से रहित, स्वयंभू और सर्वशक्तिमान हैं ॥ ८-९ ॥

सदा ध्यायसि किं स्वामिन् दिग्वासा मदनान्तकः ।
तपश्चरसि कस्मात्त्वं जटिलो भस्मधूसरः ॥ १० ॥

किं वा जपसि देवेश परं कौतूहलं हि मे ।
अनुग्राह्या प्रिया चाहं तन्मे कथय सुव्रत ॥ ११ ॥

हे स्वामिन् ! हे मदनान्तक ! फिर आप नग्न क्यों रहते है ? जटाजूटधारी और अङ्गों में भस्म क्यों लगाते हैं ? हे देवेश ! आप किसका जप करते हैं ? मुझे यह सब जानने की परम उत्सुकता है। मैं आपकी प्रिया हूँ। अतः हे सुव्रत ! आप कृपा कर मुझे यह सब बतायें ॥१०-११॥

श्रीमहादेव उवाच ।

नेदं कस्यापि कथितं गोपनीयमिदं मम ।
किं तु वक्ष्यामि भद्रं ते त्वं भक्तासि प्रियासि मे ॥ १२ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे भद्रे ! मैंने अपने इस अत्यन्त गोपनीय रहस्य को कभी किसी से नहीं कहा है। किन्तु तुम मेरी भक्त और प्रिया हो, इसलिये तुम्हें बताऊँगा ॥ १२ ॥

पुरा सत्ययुगे देवि विशुद्धमतयोऽखिलाः ।
यजन्ति विष्णु मेवैकं ज्ञात्वा सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ १३ ॥
प्रयान्ति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं पराम् ।
या न प्राप्ताऽमरैः सर्वैरक्षया क्लेशवर्जिता ॥ १४ ॥

हे देवि ! पूर्वकाल में सत्ययुग में सभी विशुद्धमति भक्त विष्णु को एकमात्र देव और सर्वेश्वरेश्वर जानकर उनकी उपासना करने लगे। इस प्रकार उन लोगों ने इस लोक और परलोक की समस्त अक्षय और क्लेशवर्जित ऋद्धियों को प्राप्त कर लिया जिन्हें देवगण भी नहीं प्राप्त कर सके हैं ॥ १३-१४ ॥

न तां सन्तः प्रपद्यन्ते विनाचाररतान्नरान् ।
सन्मुखादपि संश्रुत्य देवा विष्णुबहिर्मुखाः ॥ १५ ॥

बिना आचार पालन के जिसे मनुष्य और सन्त भी नहीं प्राप्त करते उस विष्णुदेव के यज्ञ को मेरे मुख से सुनो ॥ १५ ॥

वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्भिन्नैर्विभ्रान्तचेतसः ।
निश्चयं नाधिगच्छन्ति किं तत्त्वं किं परं पदम् ॥ १६ ॥

तुलापुरुषदानाद्यैरश्वमेधादिभिर्मखैः ।
वाराणसीप्रयागादितीर्थस्नानादिभिः प्रिये ॥ १७ ॥

वेद, पुराण, तथा विभिन्न सिद्धान्तों के अध्ययन से भ्रमित होकर साधक कोई निश्चय नहीं कर पाते अतः वे किस प्रकार तत्त्व और परमपद् को प्राप्त कर सकते हैं। हे प्रिये ! तुलापुरुषदानादि, अश्वमेधादि यज्ञ और वाराणसी–प्रयाग तीर्थस्नान से भी उसे नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ १६-१७ ॥

गयाश्राद्धादिभिः पित्र्यैर्वेदपाठादिभिर्जपैः ।
तपोभिरुग्रैर्नियमैर्धर्मैर्भूतदयादिभिः ॥ १८ ॥

गुरुशुश्रूषणैः सत्यैर्धर्मैर्वर्णाश्रमोदितैः ।
ज्ञानध्यानादिभिः सम्यक् चरितैर्जन्मजन्मभिः ॥ १९ ॥

न याति तत्परं श्रेयो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
सर्वभावैरनाश्रित्य पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥ २० ॥

गया में पितरों का श्राद्ध, वेदाध्ययन, जप, तपस्या और नियमों का पालन, प्राणियों के प्रति दया, गुरुसेवा, सत्यधर्म और वर्णाश्रम का पालन, ज्ञान और ध्यानादि प्रत्येक जन्म में सभी को करना चाहिये। परन्तु इन सब में तत्पर होकर भी सर्वेश्वरेश्वर देव विष्णु के शुभ श्रेय को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इन सब कृत्यों से सर्वभावों के अनाश्रित उन पुराण पुरुष परमेश्वर को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। ॥ १८-२० ॥

अनन्यगतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परंतपाः ।
ज्ञानवैराग्यरहिता ब्रह्मचर्यादिवर्जिताः ॥ २१ ॥
सर्वधर्मजितो विष्णोर्नाममात्रैकजल्पकाः ।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः ॥ २२ ॥

यदि कोई भोगों में लिप्त, ज्ञान तथा वैराग्य से रहित और ब्रह्मचर्य-वर्जित व्यक्ति भी अपने शत्रुओं का निरुद्देश्य मारण करता है और श्रीविष्णु के नाम का जप करता है तो वह इस नाम के प्रभाव से सब

धर्मों को जीतकर सरलता से अपना वह अभीष्ट प्राप्त कर लेता है जिसे कोई भी मात्र धार्मिक व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २१-२२ ॥

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न कर्हिचित् ।
सर्वे विधिनिषिद्धाः स्युरेतस्यैव हि किंकराः ॥ २३ ॥

सदा विष्णु का स्मरण करना चाहिये; उन्हें कभी विस्मृत नहीं करना चाहिये; क्योंकि ये सभी विधानादि उन्हीं के सेवक हैं ॥२३॥

किं तु ब्रह्मादिभिर्देवैः पुरा दृष्ट्वा निरंहसः ।
निर्भयं विष्णु नाम्नैव यथेष्टं पदमागतान् ॥ २४ ॥

पूर्वकाल में इसी विष्णु नाम के प्रभाव से ब्रह्मादि देवगणों ने निर्भय और चिन्तारहित होकर यथेष्ट पद प्राप्त किया था ॥ २४ ॥

अलक्ष्य चात्मनः पूजां सम्यगाराधितो हरिः ।
मया चास्मादपि श्रैष्ठ्यं वाञ्छितोऽयं यतात्मना ॥ २५ ॥

यह देखे बिना कि मेरी पूजा कैसे होती है, मैं विशेष रूप से इसी बात का ध्यान रखता हूँ कि मैं श्रीहरि की किस प्रकार पूजा हो रही है। मैंने अपने को उनके समक्ष संयत करके उनसे वाञ्छित श्रेष्ठता प्राप्त की है ॥ २५ ॥

ततः साक्षाज्जगन्नाथः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।
अंशांशेनात्मनो वैतान् पूजयामास केशवः ॥ २६ ॥

उसके बाद साक्षात् जगन्नाथ, प्रसन्न और भक्तवत्सल श्री केशव ने अपने अंश से सभी देवों को पूज्य बना दिया ॥ २६ ॥

देवान् पितॄन् द्विजान् हव्यकव्याशान् करुणामयः ।
ततः प्रभृति पूज्यन्ते त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ २७ ॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रसादात् शार्ङ्गधन्वनः ।
माञ्चोवाच तदा मत्तः पूज्यश्रेष्ठो भविष्यसि ॥ २८ ॥

तब से उन करुणामय देव ने हव्याशी देवों, काव्याशी पितरों और द्विजों को तीनों लोकों में चराचर का पूज्य बना दिया। तब ब्रह्मादि सभी देवों ने शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्ण को प्रसन्न करके उनसे तथा मुझसे कहा कि श्रीकृष्ण मुझसे श्रेष्ठ और प्रथम पूजा के अधिकारी होंगे ॥२७-२८॥

त्वामाराध्य यदा शम्भो ग्रहिष्यामि वरंतव ।
द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु ॥ २९ ॥
आगमैः कल्पितैस्त्वं हि जनान मद्विमुखान् कुरु ।
मां च गोपयमे न स्यात् सृष्टिरेवोत्तरोत्तरा ॥
ततस्तं प्रणिपत्याहमुवाच परमेश्वरम् ॥ ३० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे शम्भो ! जब मैं तुम्हारी पूजा करके तुमसे वर प्राप्त करूँगा और द्वापर युग में मनुष्य के रूप में अवतार लूंगा तब तुम आगमशास्त्र की कल्पना करके लोगों के मन को मुझसे हटाकर मुझे गोपनीय रखना। इस प्रकार सृष्टि उत्तरोत्तर चलती रहेगी। श्रीकृष्ण से यह सुनकर मैंने उन्हें प्रणाम करके कहा ॥ २९-३० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र में ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
चतुर्थरात्र का द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे तृतीयोऽध्यायः

श्रीविष्णोर्नाम सहस्रम्

श्रीमहादेव उवाच ।

ब्रह्महत्यासहस्राणां पापं शाम्येत् कथंचन ।
न पुनस्त्वय्यविज्ञाते कल्पकोटिशतैरपि ॥ २ ॥
यस्मान्मया कृता स्पर्धा पवित्रं स्यात्कथं हरे ।
नश्यन्ति सर्वपापानि तन्मां वद सुरेश्वर ॥
तदाह देवो गोविन्दो मम प्रीत्या यथायथम् ॥ २ ॥

श्री महादेव बोले : हे भगवन् आपको जाने बिना हजारों ब्रह्महत्याओं का पाप करोड़ों कल्पों में भी किसी प्रकार शान्त नहीं हो सकता । हे हरे ! जिस कारण से मैंने इच्छा की है, मैं वैसे पवित्र होऊँ। हे सुरेश्वर ! जिससे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं उसे आप मुझे बतायें। उन देव से यह पूछने पर गोविन्द ने मेरे स्नेह से मुझे यथावत् बताया। ॥ १-२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सदा नामसहस्रं मे पावनं मत्पदावहम् ।
तत्परोऽनुदिनं शम्भो सर्वैश्वर्यं यदीच्छसि ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले : हे शम्भो ! यदि तुम सभी ऐश्वर्यों को चाहते हो तो प्रतिदिन मेरे नामों से युक्त सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करते रहो ॥ ३ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

तमेव तपसा नित्यं भजामि स्तौमि चिन्तये ।
तेनाद्वितीयमहिमो जगत्पूज्योऽस्मि पार्वति ॥ ४ ॥

श्री महादेव बोले : हे पार्वती ! मैं उसी सहस्रनाम स्तोत्र का तत्परता से नित्य भजन करता हूं, उसी की स्तुति करता हूं, उसी

का चिन्तन करता हूँ और उसी से संसार में अद्वितीय महिमा वाला जगत्पूज्य हूँ ॥ ४ ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

तन्मे कथय देवेश यथाहमपि शङ्कर ।
शर्वेश्वरी निरुपमा तव स्यां सदृशी प्रभो ॥ ५ ॥

श्री पार्वती बोलीं : हे देवेश, शङ्कर ! आप उस सहस्रनाम को मुझे बतायें जिससे मैं भी सर्वेश्वरी तथा निरुपमा होकर आपके समान बन जाऊँ ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

साधु साधु त्वया पृष्टो विष्णोर्भगवतः शिवे ।
नाम्नां सहस्रं वक्ष्यामि मुख्यं त्रैलोक्यमङ्गलम् ॥ ६ ॥

श्री महादेव बोले : हे शिवे ! धन्य, धन्य, तुमने विष्णु भगवान् के जिस सहस्रनाम स्तोत्र को पूछा है उसे मैं तुम्हें बताऊँगा । यह सर्वप्रमुख तथा तीनों लोकों का मङ्गल करनेवाला है ॥ ६ ॥

नमोनारायणाय पुरुषोत्तमाय च महात्मने ।
विशुद्धसत्त्वाधिष्ठाय महाहंसाय धीमहि ॥ ७ ॥

विनियोग : ॐ अस्यश्रीविष्णोः सहस्रनाममन्त्रस्य महादेव ऋषिः । अनुष्टुपछन्दः । परमात्मा देवता । सूर्यकोटिप्रतीकाश इति बीजम् । गङ्गातीर्थोत्तमा शक्तिः । प्रपन्नाशनिपञ्जर इति कीलकम् । दिव्यास्त्र-इत्यस्त्रं । सर्वपापक्षयार्थं सर्वाभीष्ट सिद्धयर्थं श्रीविष्णोर्नामसहस्रं जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास : ॐ महादेवाय ऋषये नमः शिरसि ॥ १ ॥ अनुष्टुप छन्दसे नमः मुखे ॥ २ ॥ परमात्मदेवतायै नमः हृदि ॥ ३ ॥ सूर्यकोटि प्रतीकाशबीजाय नमः गुह्ये ॥४॥ गङ्गातीर्थोत्तमशक्तये नमः पादयोः ॥५॥ प्रसन्नाशनिपञ्जरकीलकाय नमः नाभौ ॥६॥ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ॥७॥

करन्यास : ॐ वासुदेवं परं ब्रह्म इत्यंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ १ ॥ ॐ मूलप्रकृतिरिति तर्जनीभ्यां नमः ॥२॥ ॐ भूमहावराह इति मध्यमाभ्यां नमः ॥ ३ ॥ ॐ सूर्यवंशध्वजो राम अनामिकाभ्यां नमः ॥ ४ ॥ ॐ ब्रह्मादिकमलादिगदासूर्यकेशवमिति कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ५ ॥ शेष इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ ६ ॥ इति करन्यासः ।

हृदयादिषडङ्गन्यासः ॐ वासुदेवं परं ब्रह्म इति हृदयाय नमः ॥ १ ॥ ॐ मूलप्रकृतिशिरसे स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ भूमहावराह इति शिखायै वषट् ॥ ३ ॥ ॐ सूर्यवंशध्वजो रामः कवचाय हुं ॥ ४ ॥ ॐ ब्रह्मादिकमलादिगदासूर्यकेशवः नेत्रत्रयाय वौषट् ॥५॥ ॐ दिव्यास्त्र इत्यस्त्राय फट् ॥ ६ ॥ इति हृदयादिषडङ्गन्यासः ॥ ८ ॥

इस प्रकार न्यास करके ध्यान करे ।

विष्णुं भास्वत्किरीटाङ्गदवलयगणाकल्पहारोदरां-
त्रिश्रोणीभूषंसुवक्षोमणिमकरमहाकुण्डलं मण्डितांसं ।
हस्तोद्यच्चक्रशङ्खाम्बुजगदममलं पीतकौशेयवासो-
विद्युद्भासं समुद्यद्दिनकरसदृशं पद्महस्तं नमामि ॥ ९ ॥

ॐ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परम् ।
परं धाम परं ज्योतिः परं तत्त्वं परं पदम् ॥ १० ॥
परं शिवं परो ध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः ।
परमार्थः परं श्रेयः परानन्दः परोदयः ॥ ११ ॥
परो व्यक्तः परं व्योम परार्धः परमेश्वरः ।
निरामयो निर्विकारो निर्विकल्पो निराश्रयः ॥ १२ ॥
निरञ्जनो निरालम्बो निर्लेपो निरवग्रहः ।
निर्गुणोनिष्कलोऽनन्तोऽचिन्त्योऽसावचलोऽच्युतः ॥ १३ ॥
अतीन्द्रियोऽमितोऽरोध्योऽनीहोऽनीशोऽव्ययोऽक्षयः ।
सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वदः सर्वभावनः ॥ १४ ॥
सर्वः शम्भुः सर्वसाक्षी पूज्यः सर्वस्य सर्वदृक् ।
सर्वशक्तिः सर्वसारः सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥ १५ ॥
सर्वावासः सर्वरूपः सर्वादिः सर्वदुःखहा ।
सर्वार्थः सर्वतोभद्रः सर्वकारणकारणम ॥ १६ ॥
सर्वातिशायकः सर्वाध्यक्षः सर्वेश्वरेश्वरः ।
षड्विंशको महाविष्णुर्महागुह्यो महाहरिः ॥ १७ ॥

नित्योदितो नित्ययुक्तो नित्यानन्दः सनातनः ।
मायापतिर्योगपतिः कैवल्यपतिरात्मभूः ॥ १८ ॥
जन्ममृत्युजरातीतः कालातीतो भवातिगः ।
पूर्णः सत्यः शुद्धबुद्धस्वरूपो नित्यचिन्मयः ॥ १९ ॥
योगिप्रियो योगमयो भवबन्धैकमोचकः ।
पुराणः पुरुषः प्रत्यक् चैतन्यं पुरुषोत्तमः ॥ २० ॥
वेदान्तवेद्योदुर्ज्ञेयस्तापत्रयविवर्जितः ।
ब्रह्मविद्याश्रयोऽलंघ्यः स्वप्रकाशः स्वयंप्रभः ॥ २१ ॥
सर्वोपेय उदासीनः प्रणवः सर्वतः समः ।
सर्वानवद्यो दुष्प्रापस्तुरीयस्तमसः परः ॥ २२ ॥
कूटस्थः सर्वसंश्लिष्टो वांगमनोगोचरातिगः ।
संकर्षणः सर्वहरः कालः सर्वभयङ्करः ॥ २३ ॥
अनुल्लंघ्यः सर्वगतिर्महारुद्रो दुरासदः ।
मूलप्रकृतिरानन्दः प्रज्ञाता विश्वमोहनः ॥ २४ ॥
महामायो विश्वबीजं परशक्तिसुखैकभुक् ।
सर्वकाम्योऽनन्तशीलः सर्वभूतवशङ्करः ॥ २५ ॥
अनिरुद्धः सर्वजीवो हृषीकेशो मनःपतिः ।
निरुपाधिः प्रियो हंसोऽक्षरः सर्वनियोजकः ॥ २६ ॥
ब्रह्मा प्राणेश्वरः सर्वभूतभृद्देहनायकः ।
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिस्वामी पुरुषो विश्वसूत्रधृक् ॥ २७ ॥
अन्तर्यामी त्रिधामाऽन्तःसाक्षी त्रिगुण ईश्वरः ।
योगी मृग्यः पद्मनाभः शेषशायी श्रियः पतिः ॥ २८ ॥
श्रीसत्योपास्यपादाब्जोऽनन्तः श्रीःश्रीनिकेतनः
नित्यवक्षःस्थलस्थश्रीः श्रीनिधिः श्रीधरो हरिः ॥ २९ ॥
रम्यश्रीर्निश्चयश्रीदो विष्णुः क्षीराब्धिमन्दिरः ।

कौस्तुभोद्भासितोरस्को माधवो जगदार्तिहा ॥ ३० ॥
श्रीवत्सवक्षो निःसीमः कल्याणगुणभाजनम् ।
पीताम्बरो जगन्नाथो जगद्धाता जगत्पिता ॥ ३१ ॥
जगद्बन्धुर्जगत्स्रष्टा जगत्कर्ता जगन्निधिः ।
जगदेकस्फुरद्वीर्यो नाहंवादी जगन्मयः ॥ ३२ ॥
सर्वाश्चर्यमयः सर्वसिद्धार्थः सर्ववीरजित् ।
सर्वामोघोद्यमो ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः ॥ ३३ ॥
शम्भो पितामहो ब्रह्मपिता शक्राद्यधीश्वरः ।
सर्वदेवप्रियः सर्वदेवमूर्त्तिरनुत्तमः ॥ ३४ ॥
सर्वदेवैकशरणं सर्वदेवैकदैवतम् ।
यज्ञभुग् यज्ञफलदो यज्ञेशो यज्ञभावनः ॥ ३५ ॥
यज्ञत्राता यज्ञपुमान् वनमाली द्विजप्रियः ।
द्विजैकमानदोऽहिंस्रः कुलदेवोऽसुरान्तकः ॥ ३६ ॥
सर्वदुष्टान्तकृत् सर्वसज्जनानन्दपालकः ।
सर्वलोकैकजठरः सर्वलोकैकमण्डलः ॥ ३७ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकृच्चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
शङ्खभृन्नन्दकीपद्मपाणिर्गरुडवाहनः ॥ ३८ ॥
अनिर्देश्यवपुः सर्वः सर्वलोकैकपावनः ।
अनन्तकीर्त्तिर्निःश्रीशः पौरुषः सर्वमङ्गलः ॥ ३९ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिविनाशनः ।
ब्रह्मकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः ॥ ४० ॥
कोटीन्दुजगदानन्दी शम्भुकोटिमहेश्वरः ।
कुबेरकोटिलक्ष्मीवान् शत्रुकोटिविनाशनः ॥ ४१ ॥
कन्दर्पकोटिलावण्यो दुर्गकोटिविमर्द्दनः ।
समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः ॥ ४२ ॥

हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः ।
कोट्यश्वमेधपापघ्नो यज्ञकोटिसमार्चनः ॥ ४३ ॥
सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः कामधुक्कोटिकामदः ।
ब्रह्मविद्याकोटिरूपः शिपिविष्टः शुचिश्रवाः ॥ ४४ ॥
विश्वम्भरस्तीर्थपादः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
आदिदेवो जगज्जैत्रो मुकुन्दः कालनेमिहा ॥ ४५ ॥
वैकुण्ठोऽनन्तमाहात्म्यो महायोगीश्वरेश्वरः ।
नित्यतृप्तो न सद्भावो निःशङ्को नरकान्तकः ॥ ४६ ॥
दीनानाथैकशरणं विश्वैकव्यसनापहा ।
जगत्क्षमाकृतो नित्यो कृपालुः सज्जनाश्रयः ॥ ४७ ॥
योगेश्वरः सदोदीर्णो वृद्धिक्षयविवर्जितः ।
अधोक्षजो विश्वरेता प्रजापतिसभाधिपः ॥ ४८ ॥
शक्रब्रह्मार्चितपदः शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः ।
सूर्यसोमेक्षणो विश्वभोक्ता सर्वस्य पारगः ॥ ४९ ॥
जगत्सेतुर्धर्मसेतुर्धीरोऽरिष्टधुरन्धरः ।
निर्ममोऽखिललोकेशो निःसङ्गोऽद्भुतभोगवान् ॥ ५० ॥
रम्यमायो विश्वविश्वो विश्वक्सेनो नगोत्तमः ।
सर्वाश्रेयः पतिर्देव्या सर्वभूषणभूषितः ॥ ५१ ॥
सर्वलक्षणलक्षण्यः सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा ।
समस्तदेवसर्वज्ञः सर्वदैवतनायकः ॥ ५२ ॥
समस्तदेवतादुर्गः प्रपन्नाशनिपञ्जरः ।
समस्तदेवकवचं सर्वदेवशिरोमणिः ॥ ५३ ॥
समस्तभयनिर्भिन्नो भगवान् विष्टरश्रवाः ।
विभुः सर्वहितोदर्को हतारिः सुगतिप्रदः ॥ ५४ ॥
सर्वदैवतजीवेशो ब्राह्मणादिनियोजकः ।

ब्रह्मशम्भुपरार्धाढ्यो ब्रह्मजेष्ठ्यः शिशुःस्वराट् ॥ ५५ ॥
विराट् भक्तपराधीनः स्तुत्यः सर्वार्थसाधकः ।
सर्वार्थकर्ता कृत्यज्ञः स्वार्थकृत्यसदोज्झितः ॥ ५६ ॥
सदा नवः सदा भद्रः सदा शान्तः सदा शिवः ।
सदा प्रियः सदा तुष्टः सदा पुष्टः सदार्चितः ॥ ५७ ॥
सदा पूतः पावनाग्रो वेदगुह्यो वृषाकपिः ।
सहस्रनामा त्रियुगश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्भुजः ॥ ५८ ॥
भूतभव्यभवन्नाथो महापुरुषपूर्वजः ।
नारायणो मुञ्जकेशः सर्वयोगविनिस्मृतः ॥ ५९ ॥
वेदसारो यज्ञसारः सामसारस्तपोनिधिः ।
साध्यश्रेष्टः पुराणर्षिर्निष्ठाशान्तिपरायणः ॥ ६० ॥
शिवस्त्रिशूलविध्वंसी श्रीकण्ठैकवरप्रदः ।
नरकृष्णो हरिर्धर्मनन्दनो धर्मजीवनः ॥ ६१ ॥
आदिकर्ता सर्वसत्यः सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा ।
त्रिकालो जितकन्दर्प उर्वशीदृङ्मुनीश्वरः ॥ ६२ ॥
आद्यः कविर्हयग्रीवः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।
सर्वदेवमयो ब्रह्म गुरुर्वाग्मीश्वरीपतिः ॥ ६३ ॥
अनन्तविद्याप्रभवो मूलाविद्याविनाशकः ।
सर्वार्हणो जगज्जाड्यनाशको मधुसूदन ॥ ६४ ॥
अनन्तमन्त्रकोटीशः शब्दब्रह्मैकपावकः ।
आदिविद्वान् वेदकर्ता वेदात्मा श्रुतिसागरः ॥ ६५ ॥
ब्रह्मार्थवेदाभरणः सर्वविज्ञानजन्मभूः ।
विद्याराजो ज्ञानराजो ज्ञानसिन्धुरखण्डधीः ॥ ६६ ॥
मत्स्यदेवो महाशृङ्गो जगद्बीजवहित्रधृक् ।
लीलाव्याप्ताखिलाम्भोधिश्चतुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ६७ ॥

आदिकूर्मोऽखिलाधारस्तृणीकृतजगद्भवः ।
अमरीकृतदेवौघः पीयूषोत्पत्तिकारणम् ॥ ६८ ॥
आत्माधारो धराधारो यज्ञाङ्गो धरणीधरः ।
हिरण्याक्षहरः पृथ्वीपतिः श्राद्धादिकल्पकः ॥ ६९ ॥
समस्तपितृभीतिघ्नः समस्तपितृजीवनम् ।
हव्यकव्यैकभुग्भव्यो गुणभव्यैकदायकः ॥ ७० ॥
लोमान्तलीनजलधिः क्षोभिताशेषसागरः ।
महावराहो यज्ञघ्नध्वंसनो याज्ञिकाश्रयः ॥ ७१ ॥
नरसिंहो दिव्यसिंहः सर्वारिष्टार्तिदुःखहा ।
एकवीरोऽद्भुतबलो यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनम् ॥ ७२ ॥
ब्रह्मादिदुःसहज्योतिर्युगान्ताग्न्यतिभीषणः ।
कोटिवज्राधिकनखो गजदुष्प्रेक्षमूर्तिधृक् ॥ ७३ ॥
मातृचक्रप्रमथनो महामातृगणेश्वरः ।
अचिन्त्योऽमोघवीर्याढ्यः समस्तासुरघस्मरः ॥ ७४ ॥
हिरण्यकशिपुच्छेदी कालः संकर्षणः पतिः ।
कृतान्तवाहनः सद्यः समस्तभयनाशनः ॥ ७५ ॥
सर्वविघ्नान्तकः सर्वसिद्धिदः सर्वपूरकः ।
समस्तपातकध्वंसी सिद्धमन्त्राधिकाह्वयः ॥ ७६ ॥
भैरवेशो हरार्तिघ्नः कालकल्पो दुरासदः ।
दैत्यगर्भस्त्राविनामा स्फुटद्ब्रह्माण्डवर्जितः ॥ ७७ ॥
स्मृतिमात्राखिलत्राता भूतरूपो महाहरिः ।
ब्रह्मचर्मशिरःपट्टा दिक्पालोऽर्धाङ्गभूषणः ॥ ७८ ॥
द्वादशार्कशिरोदामा रुद्रशीर्षैकनूपुरः ।
योगिनीग्रस्तगिरिजारतो भैरवतर्जकः ॥ ७९ ॥
वीरचक्रेश्वरोऽत्युग्रो यमारिः कालसंवरः ।

क्रोधेश्वरो रुद्रचण्डीपरिवादी सुदुष्टभाक् ॥ ८० ॥
सर्वाक्षः सर्वमृत्युश्च मृत्युर्मृत्युनिवर्तकः ।
असाध्यः सर्वरोगघ्नः सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत् ॥ ८१ ॥
गणेशकोटिदर्पघ्नो दुःसहोऽशेषगोत्रहा ।
देवदानवदुर्धर्षो जगद्भक्ष्यप्रदः पिता ॥ ८२ ॥
समस्तदुर्गतित्राता जगद्भक्षकभक्षकः ।
उग्रेशोऽसुरमार्जारः कालमूषकभक्षकः ॥ ८३ ॥
अनन्तायुधदोर्दण्डो नृसिंहो वीरभद्रजित् ।
योगिनीचक्रगुह्येशः शक्रारिः पशुमांसभुक् ॥ ८४ ॥
रुद्रो नारायणो मेषरूपशङ्करवाहनः ।
मेषरूपी शिवत्राता दुष्टशक्तिसहस्रभुक् ॥ ८५ ॥
तुलसीवल्लभो वीरोऽचिन्त्यमायोऽखिलेष्टदः ।
महाशिवः शिवारुद्रो भैरवैककपालभृत् ॥ ८६ ॥
भिल्लीचक्रेश्वरः शक्रो दिव्यमोहनरूपधृक् ।
गौरीसौभाग्यदो मायानिधिर्मायाभयापहः ॥ ८७ ॥
ब्रह्मतेजोमयो ब्रह्म श्रीमयश्च त्रयीमयः ।
सुब्रह्मण्यो बलिध्वंसी वामनोऽदितिदुःखहा ॥ ८८ ॥
उपेन्द्रो नृपतिर्विष्णुः कश्यपान्वयमण्डनः ।
बलिस्वाराज्यदः सर्वदेवविप्रान्नदोऽच्युतः ॥ ८९ ॥
उरुक्रमस्तीर्थपादस्त्रिदशश्च त्रिविक्रमः ।
व्योमपादः स्वपादाम्भःपवित्रितजगत्त्रयः ॥ ९० ॥
ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्यांघ्रिद्रु तकर्माद्रिधारणः ।
अचिन्त्याद्भुतविस्तारो विश्ववृक्षो महाबलः ॥ ९१ ॥
बहुमूर्धा पराङ्गच्छिद्भृगुपत्नीशिरोहरः ।
पापस्तेय सदापुण्यो दैत्येशो नित्यखण्डकः ॥ ९२ ॥

पूरिताखिलदेवेशो विश्वार्थैकावतारकृत् ।
अमरो नित्यगुप्तात्मा भक्तचिन्तामणिः सदा ॥ ९३ ॥
वरदः कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदोऽनघः ।
विश्वश्लाघ्योऽमिताचारो दत्तात्रेयो मुनीश्वरः ॥ ९४ ॥
परशक्तिसमायुक्तो योगानन्दमदोन्मदः ।
समस्तेन्द्रारितेजोहृत् परमानन्दपादपः ॥ ९५ ॥
अनसूयागर्भरत्नो भोगमोक्षसुखप्रदः ।
जमदग्निकुलादित्यो रेणुकाद्भुतशक्तिहृत् ॥ ९६ ॥
मातृहत्याघनिर्लेपः स्कन्दजिद्विप्रराज्यदः ।
सर्वक्षत्रान्तकृद्वीरदर्पहा कार्तवीर्यजित् ॥ ९७ ॥
योगी योगावतारश्च योगीशो योगतत्परः ।
परमानन्ददाता च शिवाचार्ययशःप्रदः ॥ ९८ ॥
भीमः परशुरामश्च शिवाचार्यैकविश्वभूः ।
शिवाखिलज्ञानकोषो भीष्माचार्योऽग्निदैवतः ॥ ९९ ॥
द्रोणाचार्यगुरुर्विश्वजैत्रधन्वा कृतान्तकृत् ।
अद्वितीयतमोमूर्तिर्ब्रह्मर्यैकदक्षिणः ॥ १०० ॥
मनुश्रेष्ठः सतां सेतुर्महीयान् वृषभो विराट् ।
आदिराजः क्षितिपिता सर्वरत्नैकदोहकृत् ॥ १०१ ॥
पृथुजन्माद्येकदक्षो ह्रीः श्रीः कीर्त्तिः स्वयं धृतिः ।
जगद्वृत्तिप्रदश्चक्रवर्त्तिश्रेष्ठो दुरस्त्रधृक् ॥ १०२ ॥
सनकादिमुनिप्राप्यभगवद्भक्तिवर्धनः ।
वर्णाश्रमादिधर्माणां कर्ता वक्ता प्रवर्त्तकः ॥ १०३ ॥
सूर्यवंशध्वजो रामो राघवः सद्गुणार्णवः ।
काकुत्स्थवीरताधर्मोराजधर्मधुरन्धरः ॥ १०४ ॥
नित्यसुस्थाशयः सर्वभद्रग्राही शुभैकदृक् ।

नवरत्नं रत्ननिधिः सर्वाध्यक्षो महानिधिः ॥ १०५ ॥
सर्वश्रेष्ठाश्रयः सर्वशस्त्रास्त्रग्रामवीर्यवान् ।
जगद्वशी दाशरथिः सर्वरत्नाश्रयो नृपः ॥ १०६ ॥
धर्मः समस्तधर्मस्थो धर्मद्रष्टाखिलार्तिहृत् ।
अतीन्द्रो ज्ञानविज्ञानपारदृश्वा क्षमाम्बुधिः ॥ १०७ ॥
सर्वप्रकृष्टः शिष्टेष्टो हर्षशोकाद्यनाकुलः ।
पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः सपत्नोदयनिर्भयः ॥ १०८ ॥
गुहादेशार्पितैश्वर्यः शिवस्पर्द्धाजटाधरः ।
चित्रकूटाप्तरत्नाद्रिजगदीशो रणेचरः ॥ १०९ ॥
यथेष्टामोघशस्त्रास्त्रो देवेन्द्रतनयाक्षिहा ।
ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीको मारीचघ्नो विराधहा ॥ ११० ॥
ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः ।
चतुर्दशसहस्राग्र्यरक्षोघ्नैकशरैकभृत् ॥ १११ ॥
खरारिस्त्रिशिरोहन्ता दूषणघ्नो जनार्दनः ।
जटायुषोऽग्निगतिदो कबन्धस्वर्गदायकः ॥ ११२ ॥
लीलाधनुःकोट्यापास्तदुन्दुभ्यस्थिमहाचयः ।
सप्ततालव्ययाकृष्टध्वजपातालदानवः ॥ ११३ ॥
सुग्रीवे राज्यदो धीमान् मनसैवाभयप्रदः ।
हनूमद्रुद्रमुख्येशः समस्तकपिदेहभृत् ॥ ११४ ॥
अग्निदैवत्यबाणैकव्याकुलीकृतसागरः ।
सम्लिच्छकोटिबाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः ॥ ११५ ॥
सनागदैत्यधामैकव्याकुलीकृतसागरः ।
समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुर्यशोनिधिः ॥ ११६ ॥
असाध्यसाधको लङ्कासमूलोत्कर्षदक्षिणः ।
वरदृप्तजनस्थानपौलस्त्यकुलकृन्तनः ॥ ११७ ॥

रावणघ्नः प्रहस्तच्छित् कुम्भकर्णभिदुग्रहा ।
रावणैकमुखच्छेता निःशङ्केन्द्रैकराज्यदः ॥ ११८ ॥
स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी देवेन्द्रादिन्द्रताहरः ।
रक्षोदेवत्वहृद्धर्मा धर्महृर्म्यः पुरुष्टुतः ॥ ११९ ॥
नातिमात्रदशास्यारिर्दत्तराज्यविभीषणः ।
सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्यजीवनैककृत् ॥ १२० ॥
देवब्राह्मणनामैकधाता सर्वामरार्चितः ।
ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवन्द्योऽर्चितसतां प्रियः ॥ १२१ ॥
अयोध्याखिलराजाग्र्यः सर्वभूतमनोहरः ।
स्वाम्यतुल्यकृपादत्तो हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः ॥ १२२ ॥
स्वपक्षादिन्यायदर्शी हीनार्थोऽधिकसाधकः ।
बाधव्याजानुचितकृत्तावकोऽखिलतुष्टिकृत् ॥ १२३ ॥
पार्वत्यधिकयुक्तात्मा प्रियात्यक्तः सुरारिजित् ।
साक्षात्कुशलवत्सद्मेन्द्राग्निनातोऽपराजितः ॥ १२४ ॥
कोशलेन्द्रो वीरबाहुः सत्यार्थत्यक्तसोदरः ।
यशोदानन्दनो नन्दी धरणीमण्डलोदयः ॥ १२५ ॥
ब्रह्मादिकाम्यसान्निध्यसनाथीकृतदैवतः ।
ब्रह्मलोकाप्तचाण्डालाद्यशेषप्राणिसार्थपः ॥ १२६ ॥
स्वर्णीतगर्दभश्वादिचिरायोध्याबलैककृत् ।
रामाद्वितीयः सौमित्रिलक्ष्मणप्रहतेन्द्रजित् ॥ १२७ ॥
विष्णुभक्ताशिवांहः क्षिप्तपादुकाराज्यनिर्वृतः ।
भरतोऽसह्यगन्धर्वकोटिघ्नो लवणान्तकः ॥ १२८ ॥
शत्रुघ्नो वैद्यराडायुर्वेदगर्भौषधीपतिः ।
नित्यानित्यकरो धन्वन्तरिर्यज्ञो जगद्धरः ॥ १२९ ॥
सूर्यविघ्नः सुराजीवो दक्षिणेशो द्विजप्रियः ।

छिन्नमूर्धोपदेशार्कतनूजकृतमैत्रिकः ॥ १३० ॥
शेषाङ्गस्थापितनरः कपिलः कर्दमात्मजः ।
योगात्मकध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत् ॥ १३१ ॥
धर्मो विश्वेन्द्रसुरभीपतिः शुद्धात्मभावितः ।
शम्भुत्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्धतः ॥ १३२ ॥
विश्वात्मशेषरुद्रार्थशिरश्छेदाक्षताकृतिः ।
वाजपेयादिनामाग्निर्वेदधर्मपरायणः ॥ १३३ ॥
श्वेतद्वीपपतिः सांख्यप्रणेता सर्वसिद्धिराट् ।
विश्वप्रकाशितध्यानयोगो मोहतमिस्रहा ॥ १३४ ॥
भक्तशम्भुजितो दैत्यामृतवापीसमस्तपः ।
महाप्रलयविश्वैकोऽद्वितीयोऽखिलदैत्यराट् ॥ १३५ ॥
शेषदेवः सहस्राक्षः सहस्रांघ्रिशिरोभुजः ।
फणी फणिफणाकारयोजिताब्ध्यम्बुदक्षितिः ॥ १३६ ॥
कालाग्निरुद्रजनको मुसलास्त्रो हलायुधः ।
नीलाम्बरो वारुणीशो मनोवाक्कायदोषहा ॥ १३७ ॥
स्वसन्तोषतृप्तिमात्रः पातितैकदशाननः ।
बलिसंयमनो घोरो रौहिणेयः प्रलम्बहा ॥ १३८ ॥
मुष्टिकघ्नो द्विविदहा कालिन्दीभेदनो बलः ।
रेवतीरमणः पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः ॥ १३९ ॥
देवकीवसुदेवोत्थोऽदितिकश्यपनन्दनः ।
वार्ष्णेयः सात्वतां श्रेष्ठः शौरिर्यदुकुलोद्वहः ॥ १४० ॥
नराकृतिः पूर्णब्रह्म सव्यसाची परंतपः ।
ब्रह्मादिकामनानित्यजगत्पर्वतशैशवः ॥ १४१ ॥
पूतनाघ्नः शकटभिद्यमलार्जुनभञ्जनः ।
वत्सासुरारिः केशिघ्नो धेनुकारिर्गवीश्वरः ॥ १४२ ॥

दामोदरो गोपदेवो यशोदानन्दकारकः ।
कालीयमर्द्दनः सर्वगोपगोपीजनप्रियः ॥ १४३ ॥
लीलागोवर्धनधरो गोविन्दो गोकुलोत्सवः ।
अरिष्टमथनः कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः ॥ १४४ ॥
सद्यः कुवलयापीडघाती चाणूरमर्दनः ।
कंसारिरुग्रसेनादिराज्यस्थाप्यऽरिहाऽमरः ॥ १४५ ॥
सुधर्माङ्कितभूलोको जरासन्धबलान्तकः ।
त्यक्तभक्तजरासन्धभीमसेनयशःप्रदः ॥ १४६ ॥
सान्दीपनिमृतापत्यदाता कालान्तकादिजित् ।
रुक्मिणीरमणो रुक्मिशासनो नरकान्तकृत् ॥ १४७ ॥
समस्तनरकत्राता सर्वभूपतिकोटिजित् ।
समस्तसुन्दरीकान्तोऽसुरारिर्गरुडध्वजः ॥ १४८ ॥
एकाकी जितरुद्रार्कमरुदाद्योऽखिलेश्वरः ।
देवेन्द्रदर्पहा कल्पद्रुमालंकृतभूतलः ॥ १४९ ॥
बाणबाहुसहस्रच्छित्स्कन्धादिगणकोटिजित् ।
लीलाजितमहादेवो महादेवैकपूजितः ॥ १५० ॥
इन्द्रार्थार्जुननिर्मत्सुर्जयदः पाण्डवैकधृक् ।
काशीराजशिरश्छेत्ता रुद्रशक्त्येकमर्दनः ॥ १५१ ॥
विश्वेश्वरप्रसादाढ्यः काशीराजसुतार्दनः ।
शम्भुप्रतिज्ञापाता च स्वयम्भुगणपूजकः ॥ १५२ ॥
काशीशगणकोटिघ्नो लोकशिक्षाद्विजार्चकः ।
शिवतीव्रतपोवश्यः पुरा शिववरप्रदः ॥ १५३ ॥
गयासुरप्रतिज्ञाधृक् स्वांशशङ्करपूजकः ।
शिवकन्याव्रतपतिः कृष्णरूपशिवारिहा ॥ १५४ ॥
महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राणो देवलवातहा ।

विनिद्रमुचकुन्दैकब्रह्मास्त्रयुवनाश्वहृत् ॥ १५५ ॥
अक्रूरोऽक्रूमुख्यैकभक्तस्वच्छन्दमुक्तिदः ।
सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः ॥ १५६ ॥
यमुनापतिरानीतपरिणीतद्विजात्मकः ।
श्रीदामशंकुभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रभैरवः ॥ १५७ ॥
दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिकोद्धारकेश्वरः ।
आचाण्डालादिकं प्राप्य द्वारकानिधिकोटिकृत् ॥ १५८ ॥
ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत् ।
परिणीतद्विजसुतानेताऽर्जुनमदापहः ॥ १५९ ॥
गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यखिलगौरवः ।
पार्थार्थखण्डिताशेषदिव्यास्त्रः पार्थमोहभृत् ॥ १६० ॥
ब्रह्मशापच्छलध्वस्तयादवो विभवावहः ।
अनङ्गो जितगौरीशो रतिकान्तः सदेप्सितः ॥ १६१ ॥
पुष्पेषुर्विश्वविजयी स्मरः कामेश्वरीपतिः ।
उषापतिर्विश्वहेतुर्विश्वतृप्तोऽधिपूरुषः ॥ १६२ ॥
चतुरात्मा चतुर्वर्णश्चतुर्वेदविधायकः ।
चतुर्विश्वैकविश्वात्मा सर्वोत्कृष्टासु कोटिषु ॥ १६३ ॥
आश्रयात्मा पुराणर्षिर्व्यासः शास्त्रसहस्रकृत् ।
महाभारतनिर्माता कवीन्द्रो बादरायणः ॥ १६४ ॥
कृष्णद्वैपायनः सर्वपुरुषार्थैकबोधकः ।
वेदान्तकर्त्ता ब्रह्मैकव्यञ्जकः पुरुवंशकृत् ॥ १६५ ॥
बुद्धो ध्यानजिताशेषदेवदेवो जगत्प्रियः ।
निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीघनो दुष्टमोहनः ॥ १६६ ॥
दैत्यवेदबहिष्कर्त्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः ।
शुद्धोदनिर्नष्टदिष्टः सुखदः सदसत्पतिः ॥ १६७ ॥

यथायोग्याखिलकृपः सर्वशून्योऽखिलेष्टदः
चतुष्कोटिपृथक्तत्त्वं प्रज्ञापारमितेश्वरः ॥ १६८ ॥
पाषण्डश्रुतिमार्गेण पाषण्डश्रुतिगोपकः ।
कल्की विष्णुयशःपूतः कलिकालविलोपकः ॥ १६९ ॥
समस्तम्लेच्छहस्तघ्नः सर्वशिष्टद्विजातिकृत् ।
सत्यप्रवर्त्तको देवद्विजदीर्घक्षुधापहः ॥ १७० ॥
अश्वमेधादिवेदेन पृथ्वीदुर्गतिनाशनः ।
सद्यःक्ष्मानन्तलक्ष्मीकृत् नष्टनिःशेषधर्मकृत् ॥ १७१ ॥
अनन्तस्वर्णयागैकहेमपूर्णाखिलद्विजः ।
असाध्यैकजगच्छास्ता विश्ववन्द्यो जयध्वजः ॥ १७२ ॥
आत्मातत्त्वाधिपः कर्तृश्रेष्ठो विधिरुमापतिः ।
भर्तुः श्रेष्ठःप्रजेशाग्र्यो मरीचिजनकाग्रणीः ॥ १७३ ॥
कश्यपो देवराडिन्द्रः प्रह्लादो दैत्यराट् शशी ।
नक्षत्रेशो रविस्तेजःश्रेष्ठः शुक्रः कवीश्वरः ॥ १७४ ॥
महर्षिराट् भृगुर्विष्णुरादित्येशो बलिः स्वराट् ।
वायुर्वह्नि शुचिश्रेष्ठः शङ्करो रुद्रराट् गुरुः ॥ १७५ ॥
विद्वत्तमश्चित्ररथो गन्धर्वाग्र्यो वसूत्तमः ।
वर्णादिरग्र्या स्त्री गौरी शक्त्याग्र्या श्रीश्चनारदः ॥ १७६ ॥
देवर्षिराट् पाण्डवाग्र्योऽर्जुनो नारदवादराट् ।
पवनः पवनेशानो वरुणो यादसाम्पतिः ॥ १७७ ॥
गङ्गातीर्थोत्तमोद्भूतं छत्रकाग्र्यं वरौषधम् ।
अन्नं सुदर्शनास्त्राग्र्यो वज्रप्रहरणोत्तमम् ॥ १७८ ॥
उच्चैःश्रवा वाजिराज ऐरावत इभेश्वरः ।
अरुन्धत्येकपत्नीशो ह्यश्वत्थोऽशेषवृक्षराट् ॥ १७९ ॥

अध्यात्मविद्याविद्यात्मा प्रणवश्छन्दसां वरः ।
मेरुर्गिरिपतिर्मार्गो मासाग्र्यः कालसत्तमः ॥ १८० ॥
दिनाद्यात्मा पूर्वसिद्धिः कपिलः सामवेदराट् ।
तार्क्ष्यः खगेन्द्रऋक्षत्वग्र्यो वसन्तः कल्पपादपः ॥ १८१ ॥
दातृश्रेष्ठः कामधेनुरार्तिघ्नाग्र्यः सुरोत्तमः ।
चिन्तामणिर्गुरुश्रेष्ठो माता हिततमः पिता ॥ १८२ ॥
सिंहो मृगेन्द्रो नागेन्द्रो वासुकिर्भूधरो नृपः ।
वर्णशो ब्राह्मणश्चान्तःकरणाग्र्यं नमो नमः ॥ १८३ ॥

इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
सर्वापराधशमनं परं भक्तिविवर्द्धनम ॥ १८४ ॥
अक्षयब्रह्मलोकादिसर्वार्थाप्त्येकसाधनम् ।
विष्णुलोकैकसोपानं सर्वदुःखविनाशनम् ॥ १८५ ॥
समस्तसुखदं सत्यं परं निर्वाणदायकम् ।
कामक्रोधादिनिःशेषमनोमलविशोधनम् ॥ १८६ ॥
शान्तिदं पावनं नृणां महापातकिनामपि ।
सर्वेषां प्राणिनामाशु सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ १८७ ॥
सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वारिष्टविनाशनम् ।
घोरदुःस्वप्नशमनं तीव्रदारिद्र्यनाशनम् ॥ १८८ ॥
तापत्रयापहं गुह्यं धनधान्ययशस्करम् ।
सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वसिद्धिदं सर्वकामदम् ॥ १८९ ॥
तीर्थयज्ञतपोदानव्रतकोटिफलप्रदम् ।
अप्रज्ञजाड्यशमनं सर्वविद्याप्रवर्त्तकम् ॥ १९० ॥
राज्यदं राज्यकामानां रोगिणां सर्वरोगनुत् ।
बन्ध्यानां सुतदं चाशु सर्वश्रेष्ठफलप्रदम् ॥ १९१ ॥

अस्त्रग्रामविषध्वंसि ग्रहपीडाविनाशनम् ।
मङ्गल्यं पुण्यमायुष्यं श्रवणात् पठनाज्जपात् ॥ १९२ ॥
सकृदस्याखिला वेदाः साङ्गा मन्त्राश्च कोटिशः ।
पुराणशास्त्रं स्मृतयः पठिताः पाठितास्तथा ॥ १९३ ॥
जप्त्वास्य श्लोकं श्लोकार्धं पादं वा पठतः प्रिये ।
नित्यं सिध्यति सर्वेषामचिरात्किसुतोऽखिलम् ॥ १९४ ॥
प्राणेन सदृशं सद्यः प्रत्यहं सर्वकर्मसु ।
इदं भद्रे त्वया गोप्यं पाठ्यं स्वार्थैकसिद्धये ॥ १९५ ॥
नावैष्णवाय दातव्यं विकल्पोपहतात्मने ।
भक्तिश्रद्धाविहीनाय विष्णुसामान्यदर्शिने ॥ १९६ ॥
देयं पुत्राय शिष्याय शुद्धाय हितकाम्यया ।
मत्प्रसादादृते नेदं ग्रहिष्यन्त्यल्पमेधसः ॥ १९७ ॥
कलौ सद्यः फलं कल्पग्राममेष्यति नारदः ।
लोकानां भाग्यहीनानां येन दुःखं विनश्यति ॥ १९८ ॥
क्षेत्रेषु वैष्णवेष्वेतदार्यावर्त्ते भविष्यति ।
नास्ति विष्णोःपरं सत्यं नास्तिविष्णोःपरंपदम् ॥ १९९ ॥
नास्ति विष्णोः परं ज्ञानं नास्ति मोक्षो ह्यवैष्णवः ।
नास्तिविष्णोः परोमन्त्रो नास्तिविष्णोःपरं तपः ॥ २०० ॥
नास्ति विष्णो परं ध्यानं नास्ति मन्त्रो ह्यवैष्णवः ।
किन्तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं जपैर्बहुविस्तरैः ॥ २०१ ॥
वाजपेयसहस्रैः किं भक्तिर्यस्य जनार्दने ।
सर्वतीर्थमयो विष्णुः सर्वशास्त्रमयः प्रभुः ॥ २०२ ॥
सर्वक्रतुमयो विष्णुः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
आब्रह्मसारसर्वस्वं सर्वमेतन्मयोदितम् ॥ २०३ ॥

यह वासुदेव का विष्णु सहस्रनाम सब अपराधों का शमन करनेवाला और परमभक्ति की वृद्धि करनेवाला है। यह अक्षय ब्रह्मलोक तथा समस्त इच्छाओं की प्राप्ति का एक मात्र साधन है। यह सर्वदु:खों का विनाश करनेवाला तथा विष्णुलोक का एक सोपान है। यह समस्त सुखों को प्रदान करनेवाला, सत्य और परम निर्वाणदायक है। काम, क्रोध तथा सभी मन की वासनाओं को शुद्ध करनेवाला है। यह मनुष्यों को शान्ति प्रदान करता है, महापातकियों को भी पवित्र करता है और प्राणियों की सभी अभीष्ट इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला है। यह समस्त विघ्नों और घोर दु:खों का शमन करनेवाला तथा सभी अरिष्टों और तीव्र दारिद्रय का नाश करनेवाला है। यह तापत्रय को दूर करता है। इसे गुप्त रखना चाहिये। यह धन-धान्य और यश प्रदान करता है। यह सर्व ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाला, सभी सिद्धियों को देनेवाला और सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। यह सब तीर्थों, यज्ञों, तपों और करोड़ों व्रतों का फल देनेवाला और अज्ञानान्धकार का नाश करके सभी विद्याओं का प्रवर्त्तन करनेवाला है। यह राज्य की कामना करनेवालों को राज्य देनेवाला, रोगियों के रोगों को नाश करनेवाला, बन्ध्या को सुपुत्र प्रदान करनेवाला तथा सद्य: श्रेष्ठ फलप्रद है। यह अस्त्रों, विषों और ग्रहबाधाजन्य समस्त पीडाओं को नष्ट करता है। इसका श्रवण, पठन और जप मङ्गलकारी तथा दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला है। जिसने इसका एक बार पाठ कर लिया है उसने मानो अङ्गोंसहित समस्त वेदों, करोड़ों मन्त्रों, पुराणों, शास्त्रों और स्मृतियों का पाठ कर लिया है। हे प्रिये, यदि कोई इसके एक श्लोक, श्लोकार्ध या श्लोक के एक पाद का पाठ कर लेता है तो उसे इतने जप से ही समस्त सिद्धियाँ और फल प्राप्त हो जाते हैं। हे भद्रे ! तुम्हें इसे सर्वकर्मों में सदा गुप्त रखना चाहिये और अपने प्राणों के समान रक्षा करते हुए इसका केवल अपने हित के लिये पाठ करना चाहिये। जो विष्णु को एक साधारण व्यक्ति समझता है, जो भक्ति और श्रद्धा से विहीन है, जिसके मन में सन्देह और जिसकी विष्णु में भक्ति नहीं है उसे इसे कदापि नहीं देना चाहिये। यह शुद्धबुद्धि रखनेवाले शिष्य और अपने पुत्र को ही उसके हितकामना की दृष्टि से देना चाहिये। अल्पबुद्धि मेरी इच्छा के बिना इसे ग्रपण नहीं कर सकते। महर्षि नारद कलियुग में

कल्पग्राम में इससे सद्यः श्रेष्ठ फल की आशा करेंगे जिससे संसार के भाग्यहीनों का उद्धार होगा। यह आर्यावर्त के वैष्णव क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ फल देनेवाला है। विष्णु से श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं है, विष्णु से उच्च कोई पद नहीं है, विष्णु से श्रेष्ठ कोई ज्ञान नहीं है, वैष्णव के अतिरिक्त कोई मुक्ति प्राप्त नहीं करता, विष्णु से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है और विष्णु से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। विष्णु से श्रेष्ठ कोई ध्यान नहीं है और वैष्णव मन्त्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है। अन्य मन्त्रों की चर्चा या विस्तृत जप से क्या लाभ है? विष्णु की भक्ति करनेवालों के लिये सहस्रों वाजपेय यज्ञों की क्या आवश्यकता है, क्योंकि प्रभु विष्णु सर्वतीर्थमय और सर्वशास्त्रमय हैं। मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ कि विष्णु ही सर्वयज्ञमय हैं। इस प्रकार मैंने तुम्हें आब्रह्मसारसर्वस्व बता दिया॥ १८४-२०३॥

श्री पार्वत्युवाच

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि जगद्गुरो।
यन्मेदं श्रुतं स्तोत्रं त्वद्रहस्यं सुदुर्लभम्॥ २०४॥
अहो वत महत्कष्टं समस्त सुखदे हरो।
विद्यमानेऽपि सर्वेशे मूढाः क्लिश्यन्ति संसृतौ॥ २०५॥
यमुद्दिश्यसदा नाथो महेशोऽपि दिगम्बरः।
जटिलो भस्मलिप्ताङ्गस्तपस्वी वीक्षितो जनैः॥ २०६॥
अतोऽधिको न देवोऽस्ति लक्ष्मीकान्तान्मधुद्विषः।
यत्तत्त्वं चिन्तयते नित्यं त्वया योगीश्वरेण हि॥ २०७॥
अतःपरं किमधिकं पदं श्रीपुरुषोत्तमात्।
तमविज्ञाय तान् मूढ़ा यजन्ते ज्ञानमानिनः॥ २०८॥
मुषितास्मि त्वया नाथ चिरं यदयमीश्वरः।
प्रकाशितो न मे यस्य दत्ताद्या दिव्यशक्तयः॥ २०९॥
अहो सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वदेवोत्तमोत्तमः।
भवदादिगुरुर्मूढैः सामान्य इव लक्ष्यते॥ २१०॥
महीयसां हि माहात्म्यं भजमानान् भजन्ति चेत्।

द्विषतोऽपि तथा पापानुपेक्ष्यन्ते क्षमालयाः ॥ २११ ॥
मयापि बाल्ये स्वपितुः प्रजा दृष्टा बुभुक्षिताः ।
दुःखादशक्ताःस्वं पोष्टुं श्रिया नाध्यासिताः पुरा ॥ २१२ ॥
त्वया संवर्धिताभिश्च प्रजाभिर्विबुधादयः ।
विसृसद्भिः स्वशक्त्याद्याः समुहृन्मित्रबान्धवाः ॥ २१३ ॥
त्वया विना क्व देवत्वं क्व धैर्यं क्व परिग्रहः ।
सर्वे भवन्ति जीवन्तो यातनाः शिरसि स्थिताः ॥ २१४ ॥
त्वामृते नैव धर्मार्थौ कामो मोक्षोऽपि दुर्लभः ।
क्षुधितानां दुर्गतानां कुतो योगसमाधयः ॥ २१५ ॥
सा च संसारसारैका सर्वलोकैकपालिका ।
वश्या सा कमला यस्य त्यक्त्वा त्वामपि शङ्करः ॥ २१६ ॥
श्रिया धर्मेण शौर्येण रूपेणार्जवसम्पदा ।
सर्वातिशयवीर्येण सम्पूर्णस्य महात्मनः ॥ २१७ ॥
कस्तेन तुल्यतामेति देवदेवेन विष्णुना ।
यस्यांशांशकभागेन विना सर्वं विलीयते ॥ २१८ ॥
जगदेतत्तथा प्राहुर्दोषायैतद्विमोहिताः ।
नास्य जन्म जरा मृत्युर्नाप्राप्यं वार्थमेव वा ॥ २१९ ॥
तथापि कुरुते धर्मान् पालनाय सतां कृते ।
विज्ञापय महादेवं प्रणम्यैकं महेश्वरम् ॥ २२० ॥
अवधार्य तथा साहं कान्त कामद शाश्वत ।
कामाद्यासक्तचित्तत्वात् किं तु सर्वेश्वर प्रभो ॥ २२१ ॥
त्वन्मयत्वात्प्रसादाद्वा शक्नोमि पठितुं नचेत् ।
विष्णोः सहस्रनामैतत्प्रत्यहं वृषभध्वज ॥
नाम्नैकेन तु येन स्यात्तत्फलं ब्रूहि मे प्रभो ॥ २२२ ॥

पार्वती जी बोलीं : हे जगद्गुरो ! आपके अत्यन्त दुर्लभ रहस्य-

स्वरूप और पवित्र इस स्तोत्र को आपसे सुनकर मैं अत्यन्त धन्य तथा अत्यन्त कृतार्थ हो गई हूँ, और आपकी अत्यधिक अनुगृहीत हूँ। अहो! यह अत्यन्त दुःख की बात है कि समस्त सुखों के दाता, सबके स्वामी, विष्णु भगवान् के विद्यमान होते हुए भी मूढ़जन इस संसार में क्लेश सहन कर रहे हैं। उन्हें ही (विष्णु को ही) लक्ष्य करके मेरे नाथ महेश भी दिगम्बर, जटिल और शरीर में भस्म लपेटे हुए तपस्वी के रूप में मनुष्यों द्वारा देखे जाते हैं। मधु का वध करनेवाले इन लक्ष्मीकान्त विष्णु से अधिक कोई देव नहीं है। योगीश्वर रूप आप स्वयं जिनके तत्व का चिन्तन कर रहे हैं उन पुरुषोत्तम से उच्च और अधिक श्रेष्ठ कौन-सा पद हो सकता है? उनको न जानकर ज्ञान के अहंकारी मूढ़जन अन्य देवताओं की पूजा करते हैं। हे नाथ! आज तक जिसे छिपा रक्खा था उस दिव्य शक्ति को मुझे प्रदान करके आपने मुझे अपने वश में कर लिया है। अहो! सर्वेश्वर, सर्वदेवोत्तमोत्तम, आपके भी आदि गुरु भगवान् विष्णु को मूर्ख लोग सामान्य व्यक्ति समझते हैं तथा महान लोगों के माहात्म्य का भजन करनेवाले द्वेषी पापियों को भी क्षमा करनेवाले इन विष्णु की उपेक्षा कर देते हैं। बाल्यावस्था में मैं भी पितृग्रह में ऐसे मूर्खों और दरिद्रों के प्रति दया दिखाती थी जो अपने परिजनों का भरण-पोषण करने में असमर्थ थे। आपने इन्द्र और अन्य प्रजाजनों के प्रति महान दया की है और वे अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ अपनी योग्यतानुसार इस संसार में उन्मुक्त विचरण कर रहे हैं। देवत्व, धैर्य और सिद्धियों का आपके बिना अस्तित्व नहीं रह सकता। आपको भुलाकर इस संसार में सभी जीव अत्यन्त कष्ट से ही जीवित रहते हैं। आपके बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कठिन है। क्षुधित और दुर्गति को प्राप्त लोगों को योग और समाधि कैसे प्राप्त हो सकती है। ऐसे आपको छोड़कर संसार की साररूपा, एकमात्र जगत् का पालन करनेवाली वह कमला (लक्ष्मी) भी, हे शङ्कर जिन श्री, धर्म, शौर्य, रूप, ऋजुता, सर्वातिशय और वीर्य से परिपूर्ण महात्मा के वश में हैं, उन विष्णु देव की, जिनके अंशभाव के बिना यह सब लय को प्राप्त हो जाता है, कौन समता कर सकता है। यह संसार हर प्रकार के पापों से विमोहित है। यद्यपि विष्णु जन्म, जरा, मृत्यु और समस्त कामनाओं से ऊपर हैं, तथापि वे धर्म की रक्षा और

साधुओं के पालन में रत रहते हैं। हे कान्त, कामद, शाश्वत! मैंने ध्यानपूर्वक इस स्तोत्र को सुना। परन्तु हे देवाधिदेव! कामनाओं में लिप्त होने के कारण मैं इसका एकाग्रचित्त और ध्यानपूर्वक उच्चारण करने में अपने को असमर्थ पा रही हूँ। अतः मैं आपसे निवेदन करती हूं कि आप इस स्तोत्र के स्थान पर केवल एक नाम बतायें जिसके दैनिक पाठ से हे परमेश्वर, हे वृषभध्वज, मुझे वही फल प्राप्त हो जो सम्पूर्ण सहस्रनामों के जप से मिलता है ॥ २०४-२२१ ॥

श्री महादेव उवाच।

राम रामेति रामेति रामरामो मनोरमे।
सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने ॥ २२३ ॥
अथ सर्वाणि तीर्थानि जलञ्चैव प्रयागजम्।
विष्णोर्नामसहस्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २२४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे
पार्वतीशिवसंवादे श्रीविष्णोर्नामसहस्रं
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे वरानने! अकेले 'रामनाम' ही सहस्रनाम के बराबर है। मैं भी सर्वदा 'ॐ राम, राम' इस प्रकार मनोरम रामनाम में ही रमण करता हूं। अतः सर्वतीर्थ और प्रयाग का जल मिल कर इस विष्णु सहस्रनाम की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ २२३-२२४ ॥

इति नारदपञ्चरात्रोक्त श्रीविष्णुसहस्रनाम

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के अन्तर्गत
चतुर्थ रात्र के पार्वती-शिव संवाद में श्रीविष्णु
सहस्रनाम स्तोत्र विषयक तृतीय
अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे चतुर्थोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

श्री महादेव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं परमदुर्लभम ।
यज्ज्ञात्वा न पुनर्गच्छेन्नरो निरययातनाम् ॥ १ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे देवि ! सुनो, मैं परम दुर्लभ स्तोत्र को बता रहा हूँ जिसके ज्ञान से मनुष्य को पुनः नरकयातना नहीं सहनी पडती ॥ १ ॥

कवचं च महेशानि त्रैलोक्यमङ्गलादिकम् ।
नारदाय च यत्प्रोक्तं ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
सनत्कुमारेण पुरा योगीन्द्रगुरुवर्त्मना ॥ २ ॥

और मैं त्रैलोक्य मङ्गलादि कवच भी बताऊँगा, जिसे हे महेशानि ! अपने योगीन्द्र गुरु से सुनकर ब्रह्मपुत्र धीमान् सनत्कुमार ने नारद को बताया था ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच ।

प्रसीद भगवन् मह्यमज्ञानात्कुण्ठितात्मने ।
तवांघ्रिपङ्कजरजोरागिणीं भक्तिमुत्तमाम् ॥ ३ ॥
अज प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपञ्जर ।
अप्रमेय प्रसीदास्मद्दुःखहन् पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥
स्वसंवेद्य प्रसीदास्मदानन्दात्मन्ननामय ।
अचिन्त्यसार विश्वात्मन् प्रसीद परमेश्वर ॥ ५ ॥
प्रसीद तुङ्ग तुङ्गानां प्रसीद शिव शोभन ।
प्रसीद गुणगम्भीर गम्भीराणां महाद्युते ॥ ६ ॥

प्रसीद व्यक्त विस्तीर्ण विस्तीर्णानामगोचर ।
प्रसीदार्द्रार्द्रजातीनां प्रसीदान्तान्तदायिनाम् ॥ ७ ॥
गुरोर्गरीयः सर्वेश प्रसीदानन्त देहिनाम् ।
जय माधव मायात्मन् जय शाश्वत शङ्खभृत् ॥ ८ ॥
जय शङ्खधर श्रीमन् जय नन्दकनन्दन ।
जय चक्रगदापाणे जय देव जनार्दन ॥ ९ ॥
जय रत्नवराबद्धकिरीटाक्रान्तमस्तक ।
जय पक्षिपतिच्छायानिरुद्धार्ककरारुण ॥ १० ॥
नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन ।
नमस्ते ललितापाङ्ग नमस्ते नरकान्तक ॥ ११ ॥
नमः पापहरेशान नमः सर्वभयापह ।
नमः सम्भूतसर्वात्मन् नमः सम्भृतकौस्तुभ ॥ १२ ॥
नमस्ते नयनातीत नमस्ते भयहारक ।
नमो विभिन्नवेषाय नमः श्रुतिपथातिग ॥ १३ ॥
नमस्त्रिमूर्त्तिभेदेन स्वर्गस्थित्यन्तहेतवे ।
विष्णवे त्रिदशारातिजिष्णवे परमात्मने ॥ १४ ॥
चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रवल्लभ ।
विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतानुवर्त्तिने ॥ १५ ॥
नमोऽस्तु योगिध्येयात्मन्नमोऽस्त्वध्यात्मरूपिणे ।
भक्तिप्रदाय भक्तानां नमस्ते भक्तिदायिने ॥ १६ ॥
पूजनं हवनं चेज्या ध्यानं पश्चान्नमस्क्रिया ।
देवेश कर्म सर्वं मे भवेदाराधनं तव ॥ १७ ॥
इति हवनजपार्चाभेदतो विष्णुपूजा
नियतहृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय ।

स खलु सकलकामान् प्राप्य कृष्णान्तरात्मा
अननमृतिविमुक्तामुत्तमां भक्तिमेति ॥ १८ ॥

जो मन्त्रसाधक होम, जप और पूजापूर्वक अपने हृदय में श्रीकृष्ण को धारण करके उनकी उपासना करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करता है और अन्त में जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर उत्तम भक्ति को प्राप्त करता है ॥ १८ ॥

गोगोपगोपिकावीतं गोपालं गोषु गोप्रदम् ।
गोपैरीड्यं गोसहस्रैर्नौमि गोकुलनायकम् ॥ १९ ॥
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥ २० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे
श्रीकृष्णस्तोत्रं चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सैकड़ों गायों, गोपों और गोपियों से घिरे, गोपाल, गोप्रद, गोकुल नायक गायों को प्रसन्नता प्रदान करनेवाले, पुरुषोत्तम, जगन्नाथ, जगन्मय श्रीकृष्ण को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये प्रणाम करके यह स्तुति करता हूँ ॥ १९-२० ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में चतुर्थरात्र
का श्रीकृष्ण स्तोत्र नामक चतुर्थ
अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे पञ्चमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमङ्गल कवचम्

श्रीनारद उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ कवचं यत्प्रकाशितम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥

श्री नारद जी बोले : हे भगवन्, सर्वधर्मज्ञ ! आपने जो त्रैलोक्य मङ्गल नामक कवच कहा है उसे, हे प्रभो ! मुझे बतायें ॥ १ ॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम् ।
नारायणेन कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥ २ ॥
ब्रह्मणा कथितं मह्यं परं स्नेहाद्वदामि ते ।
अतिगुह्यतरं तत्त्वं ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ॥ ३ ॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ।
यद्धृत्वा पठनात्पाति महालक्ष्मीर्जगत्त्रयम् ॥ ४ ॥
पठनाद्धारणात् शम्भुः संहर्ता सर्वमन्त्रवित् ।
त्रैलोक्यजननी दुर्गा महिषादिमहासुरान् ॥ ५ ॥
वरदृप्तान् जघानैव पठनाद्धारणाद्यतः ।
एवमिन्द्रादय सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥ ६ ॥
इदं कवचमत्यन्तगुप्तं कुत्रापि नो वदेत् ।
शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ॥ ७ ॥
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।

सनत्कुमार बोले : हे विप्रेन्द्र ! परम अद्भुत कवच मैं तुम्हें बतलाऊँगा, उसे सुनो । इसे नारायण ने अतीत में कृपापूर्वक ब्रह्मा से कहा कहा था और ब्रह्मा ने मुझे बताया है। मैं अब स्नेहवश तुम्हें बता

रहा हूं। यह मन्त्र अत्यन्त गुह्य और ब्रह्ममन्त्रों का समूह है। इसे धारण और पाठ कर ब्रह्मा निश्चित रूप से सृष्टि का निर्माण करते हैं। इसके धारण और पाठ से महालक्ष्मी तीनों लोकों की रक्षा करती हैं। इसके धारण और पाठ से ही सब मन्त्रों के ज्ञाता शम्भु तीनों लोकों का संहार करते हैं। इसके धारण तथा पाठ से ही तीनों लोकों की जननी दुर्गा ने वर से उन्मत्त महिषादि असुरों का वध किया था। इसी प्रकार इन्द्रादि सभी ने ऐश्वर्य की प्राप्ति की थी। यह कवच अत्यन्त गुप्त है। इसे किसी को भी नहीं बताना चाहिये। जो शिष्य भक्तियुक्त तथा साधक हो उसे ही इसे बताना चाहिये। शठ को और परशिष्य को बताने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥ २-७½ ॥

विनियोग : त्रैलोक्य मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो नारायणः स्वयम् । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ८-९ ॥

प्रणवो मे शिरः पातु नमो नारायणाय च ।
भालं मे नेत्रयुगलमष्टार्णो भक्तिमुक्तिदः ॥ १० ॥
क्लीं पायाच्छ्रोत्रयुग्मं चैकाक्षरः सर्वमोहनः ।
क्लींकृष्णाय सदा घ्राणं गोविन्दायेति जिह्विकाम् ॥ ११ ॥
गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहाननं मम ।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कण्ठं पातु दशाक्षरः ॥ १२ ॥
गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहा भुजद्वयम् ।
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलङ्गाय नमःस्कन्धौदशाक्षरः ॥ १३ ॥
क्लीं कृष्ण क्लीं करौ पायात् क्लीं कृष्णायाङ्गतोऽवतु ।
हृदयं भुवनेशानी क्लीं कृष्णाय क्लीं स्तनौ मम ॥ १४ ॥
गोपालायाग्निजायान्तं कुक्षियुग्मं सदावतु ।
क्लीं कृष्णाय सदा पातु पार्श्वयुग्ममनुत्तमः ॥ १५ ॥
कृष्णगोविन्दकौ पातु स्मराद्यौ ङेयुतौ मनुः ।
अष्टाक्षरः पातु नाभि कृष्णेति द्व्यक्षरोऽवतु ॥ १६ ॥

पृष्ठं क्लीं कृष्ण कङ्कालं क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः ।
शक्थिनी सततं पातु श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णठद्वयम् ॥ १७ ॥
ऊरू सप्ताक्षरः पायात् त्रयोदशाक्षरोऽवतु ।
श्रीं ह्रीं क्लीं पदतो गोपीजनवल्लभदन्ततः ॥ १८ ॥
भया स्वाहेति पायूं वै क्लीं ह्रीं श्रीं सदशार्णकः ।
जानुनी च सदा पातु ह्री श्रीं क्लीं च दशाक्षरः ॥ १९ ॥
त्रयोदशाक्षरः पातु जंघे चक्राद्युदायुधः ।
अष्टादशाक्षरो ह्रीं श्रीं पूर्वको विंशदर्णकः ॥ २० ॥
सर्वाङ्गं मे सदा पातु द्वारकानायको बली ।
नमो भगवते पश्चाद्वासुदेवाय तत्परम् ॥ २१ ॥
ताराद्यो द्वादशार्णोऽयं प्राच्यां मां सर्वदावतु ।
श्रीं ह्रीं क्लीं च दशार्णस्तु क्लीं ह्रीं श्रीं षोडशार्णकः ॥ २२ ॥
गदाद्युदायुधो विष्णुर्मामग्नेर्दिशि रक्षतु ।
ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मन्त्रो दक्षिणे मां सदावतु ॥ २३ ॥
तारो नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च ।
स्वाहेति षोडशार्णोऽयं नैऋत्यां दिशि रक्षतु ॥ २४ ॥
क्लीं हृषीकेपदं शाय नमो मां वारुणेवतु ।
अष्टादशार्णः कामान्तो वायव्ये मां सदावतु ॥ २५ ॥
श्रीं माया काम कृष्णाय गोविन्दाय द्विठो मनुः ।
द्वादशार्णात्मको विष्णुरुत्तरे मां सदावतु ॥ २६ ॥
वाग्भवं कामं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय तत्परम् ।
श्रीं गोपीजनवल्लभान्ते भाय स्वाहा हसौस्ततः ॥ २७ ॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मामैशान्ये सदावतु ।
कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ॥ २८ ॥
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ।

द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्यधो मां सर्वदावतु ॥ २९ ॥
कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि ।
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयादेषा मां पातु चोर्ध्वतः ॥ ३० ॥

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥ ३१ ॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥ ३२ ॥

हे विप्र ! यह त्रैलोक्यमङ्गल नामक कवच ब्रह्ममन्त्रों के समूह का पुञ्जीभूत शरीर और ब्रह्मरूपमय है। इसे नारायण के मुख से सुनकर ब्रह्मा ने मुझसे कहा था। तुम्हारे स्नेहवश मैंने तुम्हें इसे बताया है। तुम इसे किसी को न बताना ॥ ३१-३२ ॥

गुरुं प्रणम्य विधिवत् कवचं प्रपठेत्ततः ।
सकृद्द्विस्त्रिर्यथाज्ञानं सोऽपि सर्वतपोमयः ॥ ३३ ॥
मन्त्रेषु सकलेष्वेव देशिको नात्र संशयः ।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥ ३४ ॥
हवनादीन्दशांशेन कृत्वा तत्साधयेत् ध्रुवम् ।
यदि स्यात् सिद्धिकवचो विष्णुरेव भवेत् स्वयम् ॥ ३५ ॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत् तस्य पुरश्चर्याविधानतः ।
स्पर्धामुद्धूय सततं लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥ ३६ ॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ।
दशवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

गुरु को प्रणाम करके विधिवत् कवच को एक बार, दो बार, तीन बार अपने ज्ञानानुसार पढ़ना चाहिये। चाहे ये मन्त्र पूरे न हुए हों तो भी यह समस्त तपोमय हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है। १०८ बार जप इसकी पुरश्चरण विधि कही गयी है। उसका दशांश हवन आदि करके इसकी निश्चित सिद्धि करनी चाहिये। यदि साधक का विष्णु कवच सिद्ध हो जाय तो वह स्वयं विष्णु बन जाता है। पुरश्चरण

के विधान से उसको मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसके बाद स्पर्धा को त्याग कर लक्ष्मी और वाणी सदा उसके पास निवास करती है। आठ पुष्पाञ्जलि देकर मूलमन्त्र के साथ एक बार इसका पाठ करना चाहिये। इससे साधक दस हजार वर्षों की पूजा का फल प्राप्त करता है ॥ ३३-३७ ॥

भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥ ३८ ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
महादानादि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥ ३९ ॥
कलां नार्हन्ति तान्येव सकृदुच्चारणात्ततः ।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ ४० ॥
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
इदं कवचमज्ञात्वा यजेद्यः पुरुषोत्तमम् ॥
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रस्तस्य सिध्यति ॥ ४१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

यदि भोजपत्र पर इसे लिखकर गुटिका बनाकर स्वर्ण की ताबीज में गले या दाहिने हाथ में धारण करे तो साधक भी विष्णु हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। हजार अश्वमेध, एक सौ बाजपेय और जितने महादान तथा जितनी पृथिवी की प्रदक्षिणायें हैं वे सब इसके एक बार सकृदुच्चारण की एक कला की भी समानता के योग्य नहीं हैं। मनुष्य कवच के प्रसाद से जीवनमुक्त हो जाता है। वह तीनों लोकों को क्षुभित कर देता है और त्रैलोक्यविजयी भी हो जाता है। इस कवच को जाने बिना जो पुरुषोत्तम का यज्ञ करता है उसका एक करोड़ जप से भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता ॥ ३८-४१ ॥

इति विष्णु कवच समाप्त।

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के चतुर्थरात्र में त्रैलोक्यमङ्गल नामक कवच विषयक पञ्चम अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे षष्ठोऽध्यायः

गोपालस्तोत्रम् ।

श्रीनारद उवाच ।

नवीननीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
वल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥ १ ॥
स्फुरद्बर्हदलोद्बद्धनीलकुञ्चितमूर्धजम् ।
कदम्बकुसुमोद्बद्धवनमालाविभूषितम् ॥ २ ॥
गण्डमण्डलसंसर्गिचलत्कुञ्चितकुन्तलम् ।
स्थूलमुक्ताफलोदारहारोद्योतितवक्षसम् ॥ ३ ॥
हेमाङ्गदतुलाकोटिकिरीटोज्ज्वलविग्रहम् ।
मन्दमारुतसंक्षोभचलिताम्बरसञ्चयम् ॥ ४ ॥
रुचिरौष्ठपुटन्यस्तवंशीमधुरनिस्वनैः ।
लसद्गोपालिकाचेतो मोहयन्तं पुनः पुनः ॥ ५ ॥
वल्लवीवदनाम्भोजमधुपानमधुव्रतम् ।
क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ॥ ६ ॥
यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ।
विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ॥ ७ ॥
प्रभिन्नाञ्जनकालिन्दीजलकेलिकलोत्सुकम् ।
योधयन्तं क्वचिद्गोपान् व्याहरन्तं गवाङ्गणम् ॥ ८ ॥
कालिन्दीजलसंसर्गिशीतलानिलसेविते ।
कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥ ९ ॥

रत्नभूधरसंलग्नरत्नासनपरिग्रहम् ।
कल्पपादपमध्यस्थहेममण्डपिकागतम् ॥ १० ॥
वसन्तकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखे ।
गोवर्धनगिरौ रम्यै स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥ ११ ॥
सव्यहस्ततलन्यस्तगिरिवर्यातपत्रकम् ।
खण्डिताखण्डलोन्मुक्तमुक्तासारघनाघनम् ॥ १२ ॥
वेणुवाद्यमहोल्लासकृतहूङ्कारनिस्वनैः ।
सरसैरुन्मुखैःशश्वद्गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥ १३ ॥
कृष्णमेवानुगायद्भिस्तच्चेष्टावशवर्त्तिभिः ।
दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरुपशोभितम् ॥ १४ ॥
नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
प्रीतिसुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥ १५ ॥
य एवं चिन्तयेद्देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ।
त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥ १६ ॥
राजवल्लभतामेति भवेत् सर्वजनप्रियः ।
अचलां श्रियमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम् ॥ १७ ॥

इति गोपालस्तोत्रं समाप्तम् ॥
इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे
गोपालस्तोत्रं षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य इस प्रकार ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक तीनों संध्याओं में श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए उन्हें सन्तुष्ट करता है वह उनसे वाञ्छित वर प्रप्त करता है। ऐसा भक्त राजा और सबका प्रिय बन जाता है तथा अचल श्री प्राप्त करके निश्चित रूप से वाग्मी हो जाता है ॥१६-१७॥

इति श्रीगोपाल स्तोत्र समाप्त
इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में चतुर्थ रात्र का
गोपाल स्तोत्र विषयक षष्ठ अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे सप्तमोऽध्यायः

श्रीमहादेव उवाच ।

अथ वक्ष्यामि कवचं गोपालस्य जगद्गुरोः ।
यस्य स्मरणमात्रेण जीवनन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ १ ॥

श्री महादेव जी बोले : अब में जगद्गुरु श्री गोपाल का कवच बता रहा हूं जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है। ॥ १ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ।
नारदोऽस्य ऋषिर्देवि छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥ २ ॥
देवता बालकृष्णश्च चतुर्वर्गप्रदायकः ।

हे देवि ! मैं इसे बता रहा हूं। तुम सावधान होकर इसे धारण करो। इसके ऋषि नारद हैं, छन्द अनुष्टुप है। देवता बालकृष्ण हैं और यह चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का फल देनेवाला है। ॥ २-२½ ॥

शिरो मे बालकृष्णश्च पातु नित्यं मम श्रुती ॥ ३ ॥
नारायणः पातु कण्ठं गोपीवन्द्यः कपोलकम् ।
नासिके मधुहा पातु चक्षुषी नन्दनन्दनः ॥ ४ ॥
जनार्दनः पातु दन्तानधरे माधवस्तथा ।
ऊर्ध्वोष्ठं पातु वाराहश्चिबुकं केशिसूदनः ॥ ५ ॥
हृदयं गोपिकानाथो नाभिं सेतुप्रदः सदा ।
हस्तौ गोवर्धनधरः पादौ पीताम्बरोऽवतु ॥ ६ ॥
करांगुली श्रीधरो मे पादांगुल्यः कृपामयः ।
लिङ्गं पातु गदापाणिर्बालक्रीडामनोरमः ॥ ७ ॥

जगन्नाथः पातु पूर्वं श्रीरामोऽवतु पश्चिमम् ।
उत्तरं कैटभारिश्च दक्षिणं हनुमत्प्रभुः ॥ ८ ॥
आग्नेयां पातु गोविन्दो नैर्ऋतिं पातु केशवः ।
वायव्यां पातु दैत्यारिरैशान्यां गोपनन्दनः ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं पातु प्रलम्बारिरधः कैटभमर्दनः ।
शयानं पातु पूतात्मा गतौ पातु श्रियः पतिः ॥ १० ॥
शेषः पातु निरालम्बे जाग्रद्भावे ह्यपां पतिः ।
भोजने केशिहा पातु कृष्णः सर्वाङ्गसन्धिषु ॥ ११ ॥
गणनासु निशानाथो दिवानाथो दिनक्षये ।
इति ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥
यः पठेन्नित्यमेवेदं कवचं प्रयतो नरः ।
तस्याशु विपदो देवि नश्यन्ति रिपुसङ्घतः ॥ १३ ॥
अन्ते गोपालचरणं प्राप्नोति परमेश्वरि ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यः पठेत् शृणुयादपि ॥ १४ ॥
तत्सर्वदो रमानाथः परिपाति चतुर्भुजः ।
अज्ञात्वा कवचं देवि गोपालं पूजयेद्यदि ॥ १५ ॥
सर्वं तस्य वृथा देवि जपहोमार्चनादिकम् ।
स शस्त्रघातं संप्राप्य मृत्युमेति न संशयः ॥ १६ ॥

इति गोपालकवचं समाप्तम् ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार मैंने तुमसे परम अद्‌भुत कवच कहा। जो मनुष्य संयत होकर नित्य इसका पाठ करता है उसकी, हे देवि ! शत्रुओं द्वारा उत्पन्न समस्त विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। हे परमेश्वरि ! अन्त में वह श्री गोपाल के चरणों को प्राप्त करता है। जो तीनों सन्ध्याओं में अथवा एक ही सन्ध्या में इसे पढ़ता या सुनता है उसे चतुर्भुज रमानाथ

सब कुछ प्रदान करते हैं और उसका सदा प्रतिपालन करते हैं। जो इस कवच को जाने बिना श्रीगोपाल की उपासना करता है, उसका, हे देवि ! जप, होम, पूजादि सबकुछ व्यर्थ होता है और उसको शस्त्र-घात से निश्चित मृत्यु होती है॥ १२-१६ ॥

इति श्रीगोपाल कवच समाप्त

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में चतुर्थ रात्र का सप्तम अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे अष्टमोऽध्याय:

गोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

भगवन् सर्वदेवेश देवदेव जगद्गुरो ।
कथितं कवचं दिव्यं बालगोपालरूपिणम् ॥ १ ॥
श्रुतं मया तव मुखात् परं कौतूहलं मम ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गोपालस्य परमात्मनः ॥ २ ॥
सहस्रं नाम्नां दिव्यानामशेषेणानुकीर्त्तय ।
तमेव शरणं नाथ त्राहि मां भक्तवत्सल ॥ ३ ॥
यदि स्नेहोऽस्ति देवेश मां प्रति प्राणवल्लभ ।
केन प्रकाशितं पूर्वं कुत्र किं वा कदा क्व नु ॥
पिबतोऽच्युतपीयूषं न मेऽत्रास्ति विरामता ॥ ४ ॥

श्री पार्वती जी बोलीं : हे भगवन्, सर्वदेवेश, देवदेव, जगद्गुरो ! आपने श्री बालगोपाल का दिव्य कवच मुझे बताया। मैंने आपके मुख से जो कुछ सुना है उससे और अधिक सुनने का मेरे मन में परम कौतूहल हो रहा है। अतः अब मैं परमात्मा गोपाल के सहस्रनाम को सुनना चाहती हूं। कृपया आप इसे विस्तार से बतायें। हे नाथ ! हे भक्तवत्सल ! मैं आपकी शरण में हूं। मेरी रक्षा कीजिये। हे देवेश ! हे प्राणवल्लभ ! यदि आपका मेरे प्रति स्नेह है तो मुझे यह बतायें कि अच्युत श्री गोपाल के उस नामामृत को किस प्रकार किस स्थान पर और किसने प्रकाशित किया था। अब मैं और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती ॥ १-४ ॥

श्री महादेव उवाच ।

श्रीबालकृष्णस्य सहस्रनाम्नः
स्तोत्रस्य कल्पाख्यसुरद्रुमस्य ।

व्यासो वदत्यखिलशास्त्रनिदेशकर्त्ता
शृण्वन् शुकं मुनिगणेषु सुरर्षिवर्यः ॥ ५ ॥

श्री महादेव जी बोले : श्री बालकृष्ण का सहस्रनाम स्तोत्र कल्पवृक्ष के समान है। अखिलशास्त्रविद् वेदव्यास जब श्री शुकदेव को इस सहस्रनाम का उपदेश दे रहे थे तब देवर्षियों में श्रेष्ठ नारद मुनि ने उनके वार्तालाप को सुना था ॥ ५ ॥

पुरा महर्षयः सर्वे नारदं दण्डके वने ।
जिज्ञासन्ति स्म भक्त्या च गोपालस्य परात्मनः ॥ ६ ॥

पूर्वकाल में दण्डकारण्य में महर्षियों ने भक्तिपूर्वक नारद मुनि से परमात्मा श्रीगोपाल का सहस्रनाम बताने के लिये कहा ॥ ६ ॥

नाम्नः सहस्रं परमं शृणु देवि समासतः ।
श्रुत्वा श्रीबालकृष्णस्य नाम्नः साहस्रकं प्रिये ॥ ७ ॥

हे देवि ! हे प्रिये ! ध्यानपूर्व श्री बालकृष्ण के श्रेष्ठ सहस्रनाम को सुनो ॥ ७ ॥

व्यपैति सर्वपापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
कलौ बालेश्वरो देवः कलौ वृन्दावनं वनम् ॥ ८ ॥

ब्रह्महत्यादि सब पाप इसके द्वारा नष्ट हो जाते हैं। इस कलियुग में बालेश्वर ही देव हैं और कलियुग में वृन्दावन ही वन है ॥ ८ ॥

कलौ गङ्गा मुक्तिदात्री कलौ गीता परागतिः ।
नास्ति यज्ञादिकार्याणि हरेर्नामैव केवलम् ॥
कलौ विमुक्तये नृणां नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ ९ ॥

कलियुग में गङ्गा ही मुक्तिदात्री है, कलियुग में गीता ही परम गति है; इस युग में यज्ञादिकर्मों के न होने से केवल हरि का नाम ही मनुष्यों की मुक्ति का साधन है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है ॥९॥

विनियोग : अस्य श्री बालकृष्ण सहस्रनाम स्तोत्रस्य नारद ऋषिः, श्री बालकृष्णो देवता, पुरुषार्थसिद्धये जपे विनियोगः ॥

बालकृष्णः सुराधीशो भूतावासो व्रजेश्वरः ।
व्रजेन्द्रनन्दनो नन्दी व्रजाङ्गनविहारणः ॥ १० ॥

गोगोपगोपिकानन्दकारको भक्तिवर्धनः ।
गोवत्सपुच्छसंकर्षजातानन्दभरोऽजयः ॥ ११ ॥
रिङ्गमाणगतिः श्रीमानतिभक्तिप्रकाशनः ।
धूलिधूसरसर्वाङ्गो घटीपीतपरिच्छदः ॥ १२ ॥
पुरटाभरणः श्रीशो गतिर्गतिमतां सदा ।
योगीशो योगवन्द्याश्च योगाधीशो यशःप्रदः ॥ १३ ॥
यशोदानन्दनः कृष्णो गोवत्सपरिचारकः ।
गवेन्द्रश्च गवाक्षश्च गवाध्यक्षो गवां पतिः ॥ १४ ॥
गवेशश्च गवीशश्च गोचारणपरायणः ।
गोधूलिधामप्रियको गोधूलिकृतभूषणः ॥ १५ ॥
गोरास्यो गोरसाशोगो गोरसाश्रितधामकः ।
गोरसास्वादको वैद्यो वेदातीतो वसुप्रदः ॥ १६ ॥
विपुलांशो रिपुहरो विक्षरो जयदो जयः ।
जगद्वन्द्यो जगन्नाथो जगदाराध्यपादकः ॥ १७ ॥
जगदीशो जगत्कर्त्ता जगत्पूज्यो जयारिहा ।
जयतां जयशीलश्च जयातीतो जगद्बलः ॥ १८ ॥
जगद्धर्त्ता पालयिता पाता धाता महेश्वरः ।
राधिकानन्दनो राधाप्राणनाथो रसप्रदः ॥ १९ ॥
राधाभक्तिकरः शुद्धो राधाराध्यो रमाप्रियः ।
गोकुलानन्ददाता च गोकुलानन्दरूपधृक् ॥ २० ॥
गोकुलेश्वरकल्याणो गोकुलेश्वरनन्दनः ।
गोलोकाभिरितिः स्रग्वी गोलोकेश्वरनायकः ॥ २१ ॥
नित्यं गोलोकवसतिर्नित्यं गोगोपनन्दनः ।
गणेश्वरो गणाध्यक्षो गणानां परिपूरकः ॥ २२ ॥
गुणी गुणोत्करो गण्यो गुणातीतो गुणाकरः ।

गुणप्रियो गुणाधारो गुणाराध्यो गणाग्रणीः ॥ २३ ॥
गणनायको विघ्नहरो हेरम्बः पार्वतीसुतः ।
पर्वताधिनिवासी च गोवर्धनधरो गुरुः ॥ २४ ॥
गोवर्धनपतिः शान्तो गोवर्धनविहारकः ।
गोवर्धनो गीतगतिर्गवाक्षो गोवृषेक्षणः ॥ २५ ॥
गभस्तिनेमिर्गीतात्मा गीतगम्यो गतिप्रदः ।
गवामयो यज्ञनेमिर्यज्ञाङ्गो यज्ञरूपधृक् ॥ २६ ॥
यज्ञप्रियो यज्ञहर्ता यज्ञगम्यो यजुर्गतिः ।
यज्ञाङ्गो यज्ञगम्यश्च यज्ञप्राप्यो विमत्सरः ॥ २७ ॥
यज्ञान्तकृत् यज्ञगुह्यो यज्ञातीतो यजुःप्रियः ।
मनुर्मन्वादिरूपी च मन्वन्तरविहारकः ॥ २८ ॥
मनुप्रियो मनोर्वंशधारी माधवमापतिः ।
मायाप्रियो महामायो मायातीतो मयान्तकः ॥ २९ ॥
मायाभिगामी मायाख्यो महामायावरप्रदः ।
महामायाप्रदो मायानन्दो मायेश्वरः कविः ॥ ३० ॥
करणं कारणं कर्ता कार्यं कर्म क्रिया मतिः ।
कार्यातीतो गवां नाथो जगन्नाथो गुणाकरः ॥ ३१ ॥
विश्वरूपो विरूपाख्यो विद्यानन्दो वसुप्रदः ।
वासुदेवो विशिष्टेशो वाणीशो वाक्पतिर्महः ॥ ३२ ॥
वासुदेवो वसुश्रेष्ठो देवकीनन्दनोऽरिहा ।
वसुपाता वसुपतिर्वसुधापरिपालकः ॥ ३३ ॥
कंसारिः कंसहन्ता च कंसाराध्यो गतिर्गवाम् ।
गोविन्दो गोमतां पालो गोपनारीजनाधिपः ॥ ३४ ॥
गोपीरतो रुरुनखधारी हारी जगद्गुरुः ।
जानुजङ्घान्तरालश्च पीताम्बरधरो हरिः ॥ ३५ ॥

हैयङ्गवीनसम्भोक्ता पायसाशो गवां गुरुः ।
ब्रह्मण्यो ब्रह्मणाऽऽराध्यो नित्यं गोविप्रपालकः ॥ ३६ ॥
भक्तप्रियो भक्तलभ्यो भक्त्यातीतो भुवां गतिः ।
भूलोकपाता हर्ता च भूगोलपरिचिन्तकः ॥ ३७ ॥
नित्यं भूलोकवासी च जनलोकनिवासकः ।
तपोलोकनिवासी च वैकुण्ठो विष्टरस्रवाः ॥ ३८ ॥
विकुण्ठवासी वैकुण्ठवासी हासी रसप्रदः ।
रसिकागोपिकानन्ददायको बालधृग्वपुः ॥ ३९ ॥
यशस्वी यमुनातीरपुलिनेऽतीवमोहनः ।
वस्त्रहर्ता गोपिकानां मनोहारी वरप्रदः ॥ ४० ॥
दधिभक्षो दयाधारो दाता पाता हताहतः ।
मण्डपो मण्डलाधीशो राजराजेश्वरो विभुः ॥ ४१ ॥
विश्वधृक् विश्वभुक् विश्वपालको विश्वमोहनः ।
विद्वत्प्रियो वीतहव्यो हव्यगव्यकृताशनः ॥ ४२ ॥
कव्यभुक् पितृवर्ती च काव्यात्मा कव्यभोजनः ।
रामो विरामो रतिदो रतिभर्त्ता रतिप्रियः ॥ ४३ ॥
प्रद्युम्नोऽक्रूरदम्यश्च क्रूरात्मा क्रूरमर्दनः ।
कृपालुश्च दयालुश्च शयालुः सरितां पतिः ॥ ४४ ॥
नदीनदविधाता च नदीनदविहारकः ।
सिन्धुः सिन्धुप्रियोदान्तः शान्तः कान्तः कलानिधिः ॥ ४५ ॥
संन्यासकृत्सतां भर्ता साधूच्छिष्टकृताशनः ।
साधुप्रियः साधुगम्यो साध्वाचारनिषेवकः ॥ ४६ ॥
जन्मकर्मफलत्यागी योगी भोगी मृगीपतिः ।
मार्गातीतो योगमार्गो मार्गमाणो महोरविः ॥ ४७ ॥
रविलोचनो रवेरंशभागी द्वादशरूपधृक् ।

गोपालो बालगोपालो बालकानन्ददायकः ॥ ४८ ॥
बालकानां पतिः श्रीशो विरतिः सर्वपापिनाम् ।
श्रीलः श्रीमान् श्रीयुतश्च श्रीनिवासः श्रियः पतिः ॥ ४९ ॥
श्रीदः श्रीशः श्रियःकान्तो रमाकान्तो रमेश्वरः ।
श्रीकान्तो धरणीकान्त उमाकान्तप्रियः प्रभुः ॥ ५० ॥
इष्टऽभिलाषी वरदो वेदगम्यो दुराशयः ।
दुःखहर्ता दुःखनाशो भवदुःखनिवारकः ॥ ५१ ॥
यथेच्छाचारनिरतो यथेच्छाचारसुरप्रियः ।
यथेच्छालाभसन्तुष्टो यथेच्छस्य मनोऽन्तरः ॥ ५२ ॥
नवीननीरदाभासो नीलाञ्जनचयप्रभः ।
नवदुर्दिनमेघाभो नवमेघच्छविः क्वचित् ॥ ५३ ॥
स्वर्णवर्णो न्यासधारो द्विभुजो बहुबाहुकः ।
किरीटधारी मुकुटी मूर्त्तिपञ्जरसुन्दरः ॥ ५४ ॥
मनोरथपथातीतकारको भक्तवत्सलः ।
कण्वान्नभोक्ता कपिलो कपिशो गरुडात्मकः ॥ ५५ ॥
सुवर्णपर्णो हेमाभः पूतनान्तक इत्यपि ।
पूतनास्तनपाता च प्राणान्तकरणो रिपोः ॥ ५६ ॥
वत्सनाशो वत्सपालो वत्सेश्वरवत्सूत्तमः ।
हेमाभो हेमकण्ठश्च श्रीवत्सः श्रीमतां पतिः ॥ ५७ ॥
सनन्दनपथाराध्यो पातुर्धातुमतां पतिः ।
सनत्कुमारयोगात्मा सनकेश्वररूपधृक् ॥ ५८ ॥
सनातनपदो दाता नित्यं चैव सनातनः ।
भाण्डीरवनवासी च श्रीवृन्दावननायकः ॥ ५९ ॥
वृन्दावनेश्वरीपूज्यो वृन्दारण्यविहारकः ।
यमुनातीरगोधेनुपालको मेघमन्मथः ॥ ६० ॥

कन्दर्पदर्पहरणो मनोनयननन्दनः ।
बालकेलिप्रियः कान्तो बालक्रीडापरिच्छदः ॥ ६१ ॥
बालानां रक्षको बालः क्रीडाकौतुककारकः ।
बाल्यरूपधरो धन्वी धानुष्की शूलधृक् विभुः ॥ ६२ ॥
अमृतांशोऽमृतवपुः पीयूषपरिपालकः ।
पीयूषपायी पौरव्यानन्दनो नन्दिवर्धनः ॥ ६३ ॥
श्रीदामांशुकपाता च श्रीदामपरिभूषणः ।
वृन्दारण्यप्रियः कृष्णः किशोरः कान्तरूपधृक् ॥ ६४ ॥
कामराजः कलातीतो योगिनां परिचिन्तकः ।
वृषेश्वरः कृपापालो गायत्रीगतिवल्लभः ॥ ६५ ॥
निर्वाणदायको मोक्षदायी वेदविभागकः ।
वेदव्यासप्रियो वैद्यो वैद्यानन्दप्रियः शुभः ॥ ६६ ॥
शुकदेवो गयानाथो गयासुरगतिप्रदः ।
विष्णुर्जिष्णुर्गरिष्ठश्च स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ॥ ६७ ॥
वरिष्ठश्च यविष्ठश्च भूयिष्ठश्च भुवः पतिः ।
दुर्गतेर्नाशको दुर्गपालको दुष्टनाशकः ॥ ६८ ॥
कालीयसर्पदमनो यमुनानिर्मलोदकः ।
यमुनापुलिने रम्ये निर्मले पावनोदके ॥ ६९ ॥
वसन्तुबालगोपालरूपधारी गिरां पतिः ।
वाग्दाता वाक्प्रदो वाणीनाथो ब्राह्मणरक्षकः ॥ ७० ॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्मकर्मप्रदायकः ।
ब्रह्मण्यदेवो ब्रह्मण्यदायको ब्राह्मणप्रियः ॥ ७१ ॥
स्वस्तिप्रियोऽस्वस्थधरोऽस्वस्थनाशो धियां पतिः ।
क्वणन्नूपुरधृग्विश्वरूपी विश्वेश्वरः शिवः ॥ ७२ ॥
शिवात्मको बाल्यवपुः शिवात्मा शिवरूपधृक् ।

सदाशिवप्रियो देवः शिववन्द्यो जगत्शिवः ॥ ७३ ॥
गोमध्यवासी गोवासी गोपगोपीमनोऽन्तरः ।
धर्मो धर्मधुरीणश्च धर्मरूपो धराधरः ॥ ७४ ॥
स्वोपार्जितयशाः कीर्त्तिवर्धनो नन्दिरूपकः ।
देवहूतिज्ञानदाता योगसांख्यनिवर्त्तकः ॥ ७५ ॥
तृणावर्त्तप्राणहारी शकटासुरभञ्जनः ।
प्रलम्बहारी रिपुहा तथा धेनुकमर्दनः ॥ ७६ ॥
अरिष्टानाशनोऽचिन्त्यः केशिहा केशिनाशनः ।
कङ्कहा कंसहा कंसनाशनो रिपुनाशनः ॥ ७७ ॥
यमुनाजलकल्लोलदर्शी हर्षी प्रियंवदः ।
स्वच्छन्दहारी यमुनाजलहारी सुरप्रियः ॥ ७८ ॥
लीलाधृतवपुः केलिकारको धरणीधरः ।
गोप्ता गरिष्ठो गदिदो गतिकारी गयेश्वरः ॥ ७९ ॥
शोभाप्रियः शुभकरो विपुलश्रीप्रतापनः ।
केशिदैत्यहारो दानी दाता धर्मार्थसाधनः ॥ ८० ॥
त्रिसामा त्रिककृत्सामः सर्वात्मा सर्वदीपनः ।
सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो बौद्धरूपी जनार्दनः ॥ ८१ ॥
दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षः पद्मनाभोऽच्युतोऽसितः ।
पद्माक्षः पद्मजाकान्तो गरुडासनविग्रहः ॥ ८२ ॥
गारुत्मतधरो धेनुपालकः सुप्तविग्रहः ।
आर्तिहा पापहानेहा भूतिहा भूतिवर्धनः ॥ ८३ ॥
वाञ्छाकल्पद्रुमः साक्षान्मेधावी गरुडध्वजः ।
नीलःश्वेतः सितः कृष्णो गौरः पीताम्बरच्छदः ॥ ८४ ॥
भक्तार्तिनाशनो गीर्णः शीर्णो जीर्णतनुच्छदः ।
बलिप्रियो बलिहरो बलिबन्धनतत्परः ॥ ८५ ॥

वामनो वामदेवश्च दैत्यारिः कञ्जलोचनः ।
उदीर्णः सर्वतो गोप्ता योगगम्यः पुरातनः ॥ ८६ ॥
नारायणो नरवपुः कृष्णार्जुनवपुर्धरः ।
त्रिनाभिस्त्रिवृतां सेव्यो युगातीतो युगात्मकः ॥ ८७ ॥
हंसो हंसी हंसवपुर्हंसरूपी कृपामयः ।
हरात्मको हरवपुर्हरभावनतत्परः ॥ ८८ ॥
धर्मरागो यमवपुस्त्रिपुरान्तकविग्रहः ।
युधिष्ठिरप्रियो राज्यदाता राजेन्द्रविग्रहः ॥ ८९ ॥
इन्द्रयज्ञहरो गोवर्धनधारी गिरां पतिः ।
यज्ञभुग्यज्ञकारी च हितकारी हितान्तकः ॥ ९० ॥
अक्रूरवन्द्यो विश्वघ्नुगश्वहारी हयास्यकः ।
हयग्रीवः स्मितमुखो गोपीकान्तोऽरुणघ्नवधः ॥ ९१ ॥
निरस्तसाम्यातिशयः सर्वात्मा सर्वमण्डनः ।
गोपीप्रीतिकरो गोपीमनोहारो हरिर्हरिः ॥ ९२ ॥
लक्ष्मणो भरतो रामः शत्रुघ्नो नीलरूपकः ।
हनूमज्ज्ञानदाता च जानकीवल्लभो गिरिः ॥ ९३ ॥
गिरिरूपी गिरिमखो गिरियज्ञप्रवर्त्तकः ॥ ९४ ॥
भवाब्धिपोतः शुभकृच्छुभभुक् शुभवर्धनः ।
वारारोही हरिमुखो मण्डूकगतिलालसः ॥ ९५ ॥
नेत्रवद्धक्रियो गोपबालको बालको गुणः ।
गुणार्णवप्रियो भूतनाथो भूतात्मकश्च सः ॥ ९६ ॥
इन्द्रजिद्भयदाता च यजुषां पतिरप्पतिः ।
गीर्वाणवन्द्यो गीर्वाणगतिरिष्टोगुरुर्गतिः ॥ ९७ ॥
चतुर्मुखस्तुतिमुखो ब्रह्मनारदसेवितः ।
उमाकान्तधियाऽऽराध्यो गणनागुणसीमकः ॥ ९८ ॥

सीमान्तमार्गो गणिकागणमण्डलसेवितः ।
गोपीहृत्पद्ममधुपो गोपीहृन्मण्डलेश्वरः ॥ ९९ ॥
गोप्यालिङ्गनकृद् गोपीहृदयानन्दकारकः ।
मयूरपिच्छशिखरः कङ्कणाङ्गदभूषणः ॥ १०० ॥
स्वर्णचम्पकसन्दोलः स्वर्णनूपुरभूषणः ।
स्वर्णताटङ्ककर्णश्च स्वर्णचम्पकभूषितः ॥ १०१ ॥
चूडाग्रार्पितरत्नेन्द्रसारः स्वर्णाम्बरच्छदः ।
आजानबाहुः सुमुखो जगज्जननतत्परः ॥ १०२ ॥
बालक्रीडाऽतिचपलो भाण्डीरवननन्दनः ।
महाशालः श्रुतिमुखो गङ्गाचरणसेवनः ॥ १०३ ॥
गङ्गाम्बुपादः करजाकरतोयाजलेश्वरः ।
गण्डकोतीरसम्भूतो गण्डकीजलमर्दनः ॥ १०४ ॥
शालग्रामः शालरूपी शशिभूषणभूषणः ।
शशिपादः शशिनखो वराहो युवतीप्रियः ॥ १०५ ॥
प्रेमप्रदः प्रेमलभ्यो भक्त्यातीतो भवप्रदः ।
अनन्शायी शवकृच्छयनो योगिनीश्वरः ॥ १०६ ॥
पूतनाशकुनिप्राणहारको भवपालकः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीमान् लक्ष्मणाग्रजः ॥ १०७ ॥
सर्वान्तकृत्सर्वगुह्यः सर्वातीतोऽसुरान्तकः ।
प्रातराशनसम्पूर्णो धरणीरेणुगुण्ठितः ॥ १०८ ॥
इज्यो महेज्यः सर्वेज्य इज्यरूपीज्यभोजनः ।
ब्रह्मार्पणपरो नित्यं ब्रह्माग्निप्रीतिलालसः ॥ १०९ ॥
मदनो मदनाराध्यो मनोमथनरूपकः ।
नीलाञ्चिताकुञ्चितको बालवृन्दविभूषितः ॥ ११० ॥
स्तोककीडापरो नित्यं स्तोकभोजनतत्परः ।

ललिताविशखाश्यामलतावन्दिपादकः ॥ १११ ॥
श्रीमतीप्रियकारी च श्रीमत्या पादपूजितः ।
श्रीसंसेवितपादाब्जो वेणुवाद्यविशारदः ॥ ११२ ॥
शृङ्गवेत्रकरो नित्यं शृङ्गवाद्यप्रियः सदा ।
बलरामानुजः श्रीमान् गजेन्द्रस्तुतपादकः ॥ ११३ ॥
हलायुधः पीतवासा नीलाम्बरपरिच्छदः ।
गजेन्द्रवक्त्रो हेरम्बो ललनाकुलपालकः ॥ ११४ ॥
रासक्रीडाविनोदश्च गोपीनयनहारकः ।
बलप्रदो वीतभयो भक्तार्तिपरिनाशनः ॥ ११५ ॥
भक्तिप्रियो भक्तिदाता दामोदर इभस्पतिः ।
इन्द्रदर्पहरोऽनन्तो नित्यानन्दश्चिदात्मकः ॥ ११६ ॥
चैतन्यरूपश्चैतन्यश्चेतनागुणवर्जितः ।
अद्वैताचारनिपुणोऽद्वैतः परमनायकः ॥ ११७ ॥
शिवभक्तिप्रदो भक्तो भक्तानामन्तराशयः ।
विद्वत्तमो दुर्गतिहा पुण्यात्मा पुण्यपालकः ॥ ११८ ॥
ज्येष्ठः श्रेष्ठः कनिष्ठश्च निष्ठोऽतिष्ठ उमापतिः ।
सुरेन्द्रवन्द्यचरणो गोत्रहा गोत्रवर्जितः ॥ ११९ ॥
नारायणप्रियो नारशायी नारदसेवितः ।
गोपालबालसंसेव्यः सदानिर्मलमानसः ॥ १२० ॥
मनुमन्त्रो मन्त्रपतिर्धाता धामविवर्जितः ।
धराप्रदो धृतिगुणो योगीन्द्रः कल्पपादपः ॥ १२१ ॥
अचिन्त्यातिशयानन्दरूपी पाण्डवपूजितः ।
शिशुपालप्राणहारी दन्तवक्रनिसूदनः ॥ १२२ ॥
अनादिरादिपुरुषो गोत्री गात्रविवर्जितः ।
सर्वापत्तारकोदुर्गो दुष्टदैत्यकुलान्तकः ॥ १२३ ॥

निरन्तरःशुचिमुखो निकुम्भकुलदीपनः ।
भानुर्हनूर्द्धनुःस्थाणुः कृशानुः कृतनुर्धनुः ॥ १२४ ॥
अनुर्जन्मादिरहितो जातिगोत्रविवर्जितः ।
दावानलनिहन्ता च दनुजारिर्वकापहा ॥ १२५ ॥
प्रह्लादभक्तो भक्तेष्टदाता दानवगोत्रहा ।
सुरभिर्दुग्धपो दुग्धहारी शौरिः शुचां हरिः ॥ १२६ ॥
यथेष्टदोऽतिसुलभः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ।
दैत्यारिः कैटभारिश्च कंसारिः सर्वतापनः ॥ १२७ ॥
द्विभुजः षड्भुजो ह्यन्तर्भुजो मातलिसारथिः ।
शेषः शेषाधिनाथश्च शेषी शेषान्तविग्रहः ॥ १२८ ॥
केतुर्धरित्रीचारित्रश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्गतिः ।
चतुर्धा चतुरात्मा च चतुर्वर्गप्रदायकः ॥ १२९ ॥
कन्दर्पदर्पहारी च नित्यः सर्वाङ्गसुन्दरः ।
शचीपतिपतिर्नेता दाता मोक्षगुरुर्द्विजः ॥ १३० ॥
हतस्वनाथोऽनाथस्य नाथः श्रीगरुडासनः ।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयःपतिर्गतिरपां पतिः ॥ १३१ ॥
अशेषवन्द्यो गीतात्मा गीतागानपरायणः ।
गायत्रीधामशुभदो वेलामोदपरायणः ॥ १३२ ॥
धनाधिपः कुलपतिर्वसुदेवात्मजोऽरिहा ।
अजैकपात् सहस्राक्षो नित्यात्मा नित्यविग्रहः ॥ १३३ ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरजोऽग्निर्गिरिनायकः ।
गोनायकः शोकहन्ता कामारिः कामदीपनः ॥ १३४ ॥
विजितात्मा विधेयात्मा सोमात्मा सोमविग्रहः ।
ग्रहरूपी ग्रहाध्यक्षो ग्रहमर्दनकारकः ॥ १३५ ॥

वैखानसः पुण्यजनो जगदादिर्जगत्पतिः ।
नीलेन्दीवरभो नीलवपुः कामाङ्गनाशनः ॥ १३६ ॥
कामवीजान्वितः स्थूलः कृशः कृशतनुर्निजः ।
नैगमेयोऽग्निपुत्रश्च षाण्मातुर उमापतिः ॥ १३७ ॥
मण्डूकवेशाध्यक्षश्च तथा नकुलनाशनः ।
सिंहो हरीन्द्रः केशीन्द्रहन्ता तापनिवारणः ॥ १३८ ॥
गिरीन्द्रजापादसेव्यः सदा निर्मलमानसः ।
सदाशिवप्रियो देवः शिवः सर्व उमापतिः ॥ १३९ ॥
शिवभक्तो गिरामादिः शिवाराध्यो जगद्गुरुः ।
शिवप्रियो नीलकण्ठः शितिकण्ठः ऊषापतिः ॥ १४० ॥
प्रद्युम्नपुत्रो निशठः शठः शठधनापहा ।
धूपाप्रियो धूपदाता गुग्गुलवगुरुधूपितः ॥ १४१ ॥
नीलाम्बरः पीतवासा रक्तश्वेतपरिच्छदः ।
निशापतिर्दिवानाथो देवब्राह्मणपालकः ॥ १४२ ॥
उमाप्रियो योगिमनोहारी हारविभूषितः ।
खगेन्द्रवन्द्यपादाब्जः सेवातपपराङ्मुखः ॥ १४३ ॥
परार्थदोऽपरपतिः परात्परतरो गुरुः ।
सेवाप्रियो निर्गुणश्च सगुणः श्रुतिसुन्दरः ॥ १४४ ॥
देवाधिदेवो देवेशो देवपूज्यो दिवापतिः ।
दिवः पतिर्बृहद्भानुः सेवितेप्सितदायकः ॥ १४५ ॥
गोतमाश्रमवासी च गोतमश्रीनिषेवितः ।
रक्ताम्बरधरो दिव्यो देवीपादाब्जपूजितः ॥ १४६ ॥
सेवितार्थप्रदाता च सेवासेव्यगिरीन्द्रजः ।
धातुर्मनोविहारी च विधाता धातुरुत्तमः ॥ १४७ ॥
अज्ञानहन्ता ज्ञानेन्द्रवन्द्यो वन्द्यधनाधिपः ।

अपां पतिर्जलनिधिर्धरापतिरशेषकः ॥ १४८ ॥
देवेन्द्रवन्द्यो लोकात्मा त्रिलोकात्मा त्रिलोकपात् ।
गोपालदायको गन्धप्रदो गुह्यकसेवितः ॥ १४९ ॥
निर्गुणः पुरुषातीतः प्रकृतेः पर उज्ज्वलः ।
कार्तिकेयोऽमृताहर्ता नागारिर्नागहारकः ॥ १५० ॥
नागेन्द्रशायी धरणीपतिरादित्यरूपकः ।
यशस्वी विगताशी च कुरुक्षेत्राधिपः शशी ॥ १५१ ॥
शशकारिःशुभचारो गीर्वाणगणसेवितः ।
गतिप्रदो नरसखः शीतलात्मा यशःपतिः ॥ १५२ ॥
विजितारिर्गणाध्यक्षो योगात्मा योगपालकः ।
देवेन्द्रसेव्यो देवेन्द्रपापहारी यशोधनः ॥ १५३ ॥
अकिञ्चनधनः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ।
महाप्रलयकारी च शचीसुतजयप्रदः ॥ १५४ ॥
जनेश्वरः सर्वविधिरूपी ब्राह्मणपालकः ।
सिंहासननिवासी च चेतनारहितः शिवः ॥ १५५ ॥
शिवप्रदो दक्षयज्ञहन्ता भृगुनिवारकः ।
वीरभद्रभयावर्त्तः कालः परमनिर्व्रणः ॥ १५६ ॥
उदूखलनिबद्धश्च शोकात्मा शोकनाशनः ।
आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः पापहारकः ॥ १५७ ॥
कीर्तिप्रदः कीर्तिदाता गजेन्द्रभुजपूजितः ।
सर्वान्तरात्मा सर्वात्मा मोक्षरूपी निरायुधः ॥ १५८ ॥
उद्धवज्ञानदाता च यमलार्जुनभञ्जनः ।
इत्येतत्कथितं देवि सहस्रं नाम चोत्तमम् ॥ १५९ ॥
आदिदेवस्य वै विष्णोर्बालकत्वमुपेयुषः ।
यः पठेत् पाठयेद्वापि शृणुयात् श्रावयीत वा ॥ १६० ॥

किं फलं लभते देवि वक्तुं नास्ति मम प्रिये ।
शक्तिर्गोपालनाम्नश्च सहस्रस्य महेश्वरि ॥ १६१ ॥
ब्रह्महत्यादिकानीह पापानि च महान्ति च ।
विलयं यान्ति देवेशि गोपालस्य प्रसादतः ॥ १६२ ॥
द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा सप्तम्यां रविवासरे ।
पक्षद्वये च सम्प्राप्य हरिवासरमेव च ॥ १६३ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि न जनुस्तस्य विद्यते ।
सत्यं सत्यं महेशानि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १६४ ॥

हे देवि ! इस प्रकार मैंने श्रीगोपाल के अत्युत्तम सहस्रनाम को बता दिया । जो बालरूप धारी आदिदेव श्रीविष्णु के इस सहस्रनाम को पढ़ता-पढ़ाता या सुनता-सुनाता है वह हे प्रिये ! जो उत्तम फल पाता है उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता । हे महेश्वरि ! गोपाल के सहस्रनामों की शक्ति से ब्रह्महत्यादि अनेक महापापों का सर्वथा विनाश हो जाता हैं। अन्त में इसके प्रसाद से साधक श्रीगोपाल में विलीन हो जाता है । दोनों पक्षों की द्वादशी, पूर्णिमा, सप्तमी, एकादशी अथवा रविवार को जो भक्त इसे पढ़ता या धारण करता है उसका हे महेशानि ! पुनर्जन्म नहीं होता । यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १५६-१६४ ॥

एकदश्यां शुचिर्भूत्वा सेव्या भक्तिर्हरेः शुभाः ।
श्रुत्वा नाम सहस्राणि नरो मुच्येत पातकात् ॥ १६५ ॥
न शठाय प्रदातव्यं न धर्मध्वजिने पुनः ।
निन्दकाय च विप्राणां देवानां वैष्णवस्य च ॥ १६६ ॥
गुरुभक्तिविहीनाय शिवद्वेषरताय च ।
राधादुर्गाभेदमतो सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १६७ ॥

एकादशी तिथि को स्नानादि से स्वच्छ होकर जो भक्तिपूर्वक श्रीहरि के शुभ सहस्रनामों को सुनता है वह मनुष्य सभी पातकों से मुक्त हो जाता है । इसे किसी शठ व्यक्ति को, धर्मविद्वेषी को, ब्राह्मणों-

देवों-वैष्णवों के निन्दक को, गुरुभक्ति से रहित को, शिवद्वेषी को, अथवा राधा और दुर्गा में भेद करनेवाले को कदापि नहीं देना चाहिये–यह मैं निश्चितरूप से सत्य कह रहा हूँ॥ १६५-१६७ ॥

यदि निन्देन्महेशानि गुरुहा स भवेद्ध्रुवम् ।
वैष्णवेषु च शान्तेषु नित्यं वैराग्यरागिषु ॥ १६८ ॥
ब्राह्मणाय विशुद्धाय सन्ध्यार्चनरताय च ।
अद्वैताचारनिरते शिवभक्तिरताय च ॥ १६९ ॥
गुरुवाक्यरतायैव नित्यं देयं महेश्वरि ।
गोपितं सर्वतन्त्रेषु तव स्नेहात्प्रकीर्तितम् ॥ १७० ॥

हे महेशानि ! जो शान्त और नित्यवैरागी वैष्णव की निन्दा करता है वह निश्चित रूप से गुरुहत्या के पाप का भागी होता है। शुद्ध और सन्ध्या-बन्दन में रत ब्राह्मण को, अद्वैताचार में निष्ठा रखनेवालों और शिवभक्तों को, तथा गुरु की आज्ञा का पालन करनेवालों को ही इसे देना चाहिये। हे महेश्वरि ! यह सभी तन्त्रों में अत्यन्त गोपनीय है परन्तु तुम्हारे स्नेह के कारण मैंने तुम्हें बताया है॥ १६८-१७० ॥

नातःपरतरं स्तोत्रं नातःपरतरो मनुः ।
नातः परतरो देवो युगेष्वपि चतुर्ष्वपि ॥ १७१ ॥

इससे श्रेष्ठ कोई स्तोत्र नहीं है; इससे श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है तथा चारों युगों में इससे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है॥ १७१ ॥

हरिभक्तेःपरा नास्ति मोक्षश्रेणी नगेन्द्रजे ।
वैष्णवेभ्यः परं नास्ति प्राणेभ्योऽपि प्रिया मम ॥ १७२ ॥
वैष्णवेषु च सङ्गो मे सदा भवतु सुन्दरि ।
यस्य वंशे क्वचिद्दैवात्वैष्णवो रागवर्जितः ॥ १७३ ॥
भवेत्तद्वंशके ये ये पूर्वे स्युः पितरस्तथा ।
भवन्ति निर्मलास्ते हि यान्ति निर्वाणतां हरेः ॥ १७४ ॥

हे नगेन्द्रजे ! हरिभक्ति से उत्तम मोक्षप्रद कुछ नहीं है। वैष्णवों से अधिक मुझे प्राणों के समान प्रिय और कुछ नहीं है। हे सुन्दरि !

सदा वैष्णवों का संग करना चाहिये। जिसके वंश में रागवर्जित वैष्णव का जन्म होता है उसके वंश के जितने भी पूर्व पितर हो चुके हैं वे सभी निर्मल होकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥ १७२-१७४ ॥

बहुना किमिहोक्तेन वैष्णवानांतु दर्शनात् ।
निर्मलाः पापरहिताः पापिनः स्युर्न संशयः ॥ १७५ ॥
कलौ बालेश्वरो देवः कलौ गङ्गैव केवला ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ १७६ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे
गोपाल सहस्रनामस्तोत्रमष्टमोऽध्यायः ॥८॥

बहुत कहने से क्या लाभ? वैष्णवों के दर्शनमात्र से पापी पाप-रहित और निर्मल हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। कलियुग में बालेश्वर ही देवता हैं और कलियुग में केवल गङ्गा ही नदी है। कलियुग में इनके अतिरिक्त कुछ नहीं है और इनके अतिरिक्त कोई गति नहीं है ॥ १७५-१७६ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में चतुर्थरात्र का
गोपाल सहस्रनाम स्तोत्र विषयक आठवाँ
अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे नवमोऽध्यायः

पूजाद्रव्यविधानम्

श्री महादेव उवाच ।

परिभाषामथो वक्ष्ये उपचारविधौ हरेः ।
द्रव्याणां यावती संख्या पात्राणां द्रव्यसंगतिः ॥ १ ॥
हाटकं राजतं ताम्रमारकूटमृगादिना ।
उपचारविधावेतत् द्रव्यमाहुर्मनीषिणः ॥ २ ॥

श्री महादेव जी बोले : अब मैं हरि के उपचारों की परिभाषा बताऊँगा । जितने द्रव्य हों उतनी ही संख्या पात्रों की भी होनी चाहिये । ये पात्र सोने, चाँदी, ताँबे मरकत या मृगादि के होने चाहिये जिनमें मनिषियों को उपचार द्रव्यों को रखना चाहिये ॥ १-२ ॥

आसने पञ्च पुष्पाणि स्वागते षट् चतुष्पलम् ।
जलं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ॥ ३ ॥
पाद्ये चार्घ्ये जलं तावद्गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् ।
दूर्वास्तिलाक्षतं चैव कुशाग्रश्वेतसर्षपाः ॥ ४ ॥
जातीफलं लवङ्गं च कक्कोलं तोयषट्पलम् ।
प्रोक्तमाचमनं कांस्ये मधुपर्कं घृतं मधु ॥ ५ ॥
दध्ना सह पलैकं तु शुद्धं वारि तथाचमे ।
परिमाणन्तु पञ्चाशत् पलं वा शुद्धमम्भसः ॥ ६ ॥

आसन के लिये पाँच पुष्प तथा स्वागत के लिये छः पुष्प रखना चाहिये । पाद्य के लिये श्यामाक, दूर्वा, विष्णुक्रान्ता और चार पल (१६ तोला) जल रखना चाहिये । अर्घ्य जल में पुष्प, अक्षत, गन्ध (चन्दन या हल्दी), दूर्वा, तिल और श्वेत सरसों डालना चाहिये । जायफल, लवङ्ग, कक्कोल का ६ पल जल—इसे आचमन के लिये कहा गया है । मधुपर्क के लिये काँसे के पात्र में घृत और मधु अथवा दही के

साथ एक पल पानी रखना चाहिये। शुद्ध आचमन के लिये ५० पल शुद्ध जल रखना चाहिये ॥ ३-६ ॥

निर्मलेनोदकेनाथ सर्वत्र परिपूर्णता ।
सलिलं गर्हितं सर्वं त्यजेत्पूजाविधौ हरेः ॥ ७ ॥

जहाँ भी पात्रों में रखकर जल समर्पित करना हो वहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि जल पूर्णतया शुद्ध और स्वच्छ हो। श्रीहरि की पूजा के लिये गर्हित जल का कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥७॥

वितस्तिमात्रादधिकं मूल[1] ।
स्वर्णाद्याभरणान्येव मुक्तारत्नयुतानि च ॥ ८ ॥
चन्दनागुरुकर्पूरपद्मगन्धपलावधि ।
नानाविधानि पुष्पाणि पञ्चाशदधिकानि च ॥ ९ ॥
कांस्यादिनिर्मिते पात्रे धूपगुग्गुलुकर्मभाक् ।
यावद्भक्ष्यं भवेत् पुंसस्तावद्दद्याज्जनार्दने ॥ १० ॥
नैवेद्यं यत्तु भक्ष्यं च तदादिकचतुर्विधम् ।
कर्पूरादिघृतावृत्तिः सा च कार्पासनिर्मिता ॥ ११ ॥
सप्तावृत्तया सुसंजप्तो दीपः स्याच्चतुरंगुलः ।
शिलापिष्टं चन्दनाद्यां सप्तधावर्णयेन्नरः ॥ १२ ॥
कार्या ताम्रादिपात्रे तत् प्रीतये हरिमेधसः ।
दूर्वाक्षतप्रमाणं तु विज्ञेयं तु शताधिकम् ॥ १३ ॥
तत्त्वतोऽयं विधिः प्रोक्तो विभवे सति सर्वदा ।
एषामभावे सर्वेषां यथा शक्त्याभिपूजयेत् ॥
सर्वभोगान्वितो भूत्वा व्रजेदन्ते हरेः पुरम् ॥ १४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे चतुर्थरात्रे पूजाद्रव्यविधानं
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

१ सर्व्वत्रैवं पाठः प्रमादपरम्परापतितः परंतु मूलमर्घ्यपत्रकमिति भवितुमर्हति ॥

स्वर्णादि और मुक्ता रत्नादि के ही आभरण हों और उन्हें एक बित्ते ये अधिक मान का होना चाहिये। पूजा के लिये चन्दन, अगुरु, कर्पूर, पद्मगन्ध तथा नाना प्रकार के कम से कम ५० पुष्पों का प्रयोग करना चाहिये। धूप और गुग्गुल को काँसे के पात्र में रखकर समर्पित करना चाहिये। अपने लिये जिन-जिन भक्ष्य पदार्थों को सर्वश्रेष्ठ माना जाय उन्हीं-उन्हीं पदार्थों को जनार्दन को अर्पित करना चाहिये। भक्ष्य के लिये समर्पित नैवेद्य चार प्रकार का होना चाहिये। आरती कपूर से करनी चाहिये अथवा चार अंगुल के दीपपात्र में कपास के सूत की बत्ती डालकर उससे आरती करनी चाहिये। साथ ही सात बार मन्त्र का जप करना और फिर प्रणाम करना चाहिये। सभी कार्यों में हरि को प्रसन्न करने के लिये ताम्रादि के पात्र रखने चाहिये तथा द्रव्यों को शिलापट्ट पर पिसा होना चाहिये। दूर्वा और अक्षत का प्रमाण सौ से अधिक होना चाहिये। यदि भक्त या साधक सम्पन्न हो तो तत्त्वतः उक्त नियमों के अनुसार ही उसे पूजा करना चाहिये। अन्यथा यथाशक्ति वस्तुओं को एकत्र करके पूजन करे। इस प्रकार पूजा करने से साधक जीवन के सभी भोगों को प्राप्त करके अन्त में श्रीहरि की पुरी (वैकुण्ठ) को प्राप्त करता है ॥ ८-१४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के चतुर्थरात्र में पूजा द्रव्यविधान
विषयक नवम अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे दशमोऽध्यायः

पञ्चप्रकारार्चाविधिः ।

श्री महादेव उवाच ।

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्महरादयः ।
कृपया देवदेवेश मदग्रे सन्निधोभव ॥ १ ॥
तस्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं प्रभो ।
कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥ २ ॥
यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय ।
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च ॥
यद्यपूर्णं भवेत्कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव ॥ ३ ॥

इससे आवाहन करे ।

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः ।
तस्मै ते परमेशाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये ॥ ४ ॥

इससे पाद्य देवे ।

देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने ।
आचामं कल्पयामीश चात्मनां शुद्धिहेतवे ॥ ५ ॥

इससे आचमन देवे ।

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दसम्भवम् ।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥ ६ ॥

इससे अर्घ्य देवे ।

सर्वकल्मषहीनाय परिपूर्णसुखात्मने ।
मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥ ७ ॥

इससे मधुपर्क देवे ।

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥ ८ ॥

इससे पुनः आचमन देवे ।

परमानन्दबोधाय निमग्नानिजमूर्त्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥ ९ ॥

इससे स्नान के लिये जल देवे ।

मायाचित्रपटाच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञाय वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥ १० ॥

इससे वस्त्र देवे ।

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ ११ ॥

इससे उत्तरीय देवे ।

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥ १२ ॥

इससे यज्ञोपवीत देवे ।

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ॥ १३ ॥

इससे भूषण देवे ।

समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ।
अखण्डानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ॥ १४ ॥

इससे जल देवे ।

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥ १५ ॥

इससे गन्ध देवे ।

तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम् ।
सुमन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥ १६ ॥

इससे पुष्प देवे ।

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १७ ॥

इससे धूप देवे ।

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥

इससे दीप समर्पित करे ।

सत्पात्रसिद्धं सुभगं विविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत् ॥ १९ ॥

इससे नैवेद्य समर्पित करे ।

इसके बाद 'समस्तदेवदेवेश' मन्त्र से जल देवे ।

पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदान् शृणुष्व मे ।
अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च ।
इज्या पञ्चप्रकारार्चा क्रमेण कथयामि ते ॥ २० ॥

पूजा पञ्चविधि कही गई है। अब उसके भेदों को सुनो : १. अभिगमन; २. उपादान; ३. योग; ४. स्वाध्याय; ५. इज्या । इस प्रकार मैंने तुम्हें पञ्चप्रकार की अर्चना का क्रम बताया ॥ २० ॥

ततोऽभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम् ।
उपलेपननिर्माल्यदूरीकरणमेव च ॥ २१ ॥

देवता के स्थान के मार्जन, उपलेपन और निर्माल्य आदि को हटाने को अभिगमन कहते हैं ॥ २१ ॥

उपादानं नाम गन्धपुष्पादिचयनं तथा ।
योगो नाम स्वदेहस्य स्वात्मत्वेनैव भावना ॥ २२ ॥

उपादान के अन्तर्गत गन्ध-पुष्पादि का चयन आता है। स्वदेह में अपनी आत्मा की भावना को योग कहते हैं ॥ २२ ॥

स्वाध्यायो नाम मन्त्रार्थसन्धानपूर्वको जपः ।
सूक्तस्तोत्रादिपाठस्तु हरिसंकीर्त्तनं तथा ॥ २३ ॥
तत्त्वादिशास्त्राद्यभ्यासः स्वाध्यायःपरिकीर्त्तितः ।

इज्या नाम स्वदेवस्य पूजनं तु यथार्थतः ॥ २४ ॥

स्वाध्याय के अन्तर्गत मन्त्रार्थ-संधनपूर्वक (अर्थात् मन्त्र के अर्थ को भली प्रकार समझते हुए) मन्त्र का जप आता है। सूक्त और स्तोत्र का पाठ, हरिकीर्तन तथा तत्त्वों और शास्त्रों का अभ्यास—इन्हें भी स्वाध्याय कहा गया है। स्वदेव के यथार्थतः पूजन को इज्या कहते हैं। ॥ २३-२४ ॥

इति पञ्चप्रकारार्चा कथिता तव सुव्रते ॥ २५ ॥
सार्ष्णिसामीप्यसालोक्यसायुज्यसारूप्यदा क्रमात् ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे चतुर्थरात्रे पञ्चप्रकारार्चाविधि-
र्दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

हे सुव्रत ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पाँच प्रकार की अर्चना को बता दिया। इससे क्रमानुसार सार्ष्णि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के चतुर्थरात्र में पञ्चप्रकारार्चा-
विधिविषयक दशम अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थरात्रे एकादशोऽध्यायः

द्वादशः शुद्धिः ।

श्री शिव उवाच ।

अथ द्वादशसंशुद्धिर्वैष्णवानामिहोच्यते ।
गृहोपसर्पणं चैव तथानुगमनं हरेः ॥ १ ॥

श्री शिवजी बोले : अब मैं श्रीहरि का अनुगमन करते हुए उनके मन्दिर में जानेवाले वैष्णवों की द्वादश संशुद्धियों को बताऊँगा ॥१॥

भक्तिप्रदक्षिणं चैव पादयो शोधनं पुनः ।
पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः ॥ २ ॥

भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा, पुनः पादशोधन और श्रीहरि की पूजा के लिये भक्तिपूर्वक पत्रों और पुष्पों को तोड़ना चाहिये ॥२॥

करयोःसर्वशुद्धिनामियं शुद्धिर्विशिष्यते ।
तन्नामकीर्तनं चैव गुणानामपि कीर्तनम् ॥ ३ ॥

दोनों हाथों की विशेष रूप से संशुद्धि करना चाहिये और हरि के नामों का कीर्तन तथा गुणों का कीर्तन करना चाहिये ॥ ३ ॥

भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते ।
तत्कथाश्रवणं चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम् ॥ ४ ॥

भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण के प्रति अपने वचनों को शुद्ध करना, उनकी कथा का श्रवण तथा उनके उत्सव को देखना—यही भक्त की इच्छायें होनी चाहिये ॥ ४ ॥

श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते ।
पादोदकस्य निर्माल्यमालानामपि धारणम् ॥ ५ ॥

अपने कानों और नेत्रों की भली प्रकार शुद्धि और उनके पादोदक तथा निर्माल्य की माला को धारण करना चाहिये ॥ ५ ॥

उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः ।
आघ्राणं गन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपोधन ॥ ६ ॥
विशुद्धिः स्यादनन्तस्य घ्राणस्यापि विधीयते ।
पत्रं पुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्पितम् ॥ ७ ॥
तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत् ।
ललाटे च गदा कार्या मूर्ध्नि चापं शरांस्तथा ॥ ८ ॥

श्रीहरि को प्रणाम करके अपने शिर की शुद्धि करना चाहिये। हे तपोधन ! श्रीहरि के गन्ध, पुष्प और निर्माल्य को सूँघकर और श्रीकृष्ण के चरणकमलों में समर्पित पत्रों, पुष्पों आदि को सूँघकर भी अपनी घ्राणेन्द्रिय को शुद्ध करना चाहिये। इस लोक में यह अत्यन्त पावन कृत्य है और इससे सब का विशोधन होता है। शुद्धि के लिये ललाट पर गदा का और मूर्द्धा पर धनुष-बाण का चिह्न बनाना चाहिये ॥६-८॥

नन्दकं चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये ।
शङ्खचक्रान्वितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि ॥ ९ ॥
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गोतम ।
यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे ॥ १० ॥
देवोत्सवेष्वासवी च अप्रमाणो मदग्रतः ।
उच्छिष्टे चैव वाऽशौचेभगवद्वन्दनादिकम ॥ ११ ॥

हृदय पर नन्दक (श्रीकृष्ण के खड्ग) का चिह्न और दोनों भुजाओं पर शङ्ख तथा चक्र का चिह्न अङ्कित करना चाहिये। यदि शङ्ख और चक्र के चिह्नों से युक्त ब्राह्मण की श्मशान में मृत्यु हो जाय तो भी उसे वही गति प्राप्त होती है जो प्रयागादि में मृत्यु होने पर प्राप्त होती है। श्रीकृष्ण भगवान के मन्दिर में कभी किसी यान पर बैठकर या पैरों में जूता आदि पहन कर नहीं जाना चाहिये। देव के उत्सव में मदिरा का पान नहीं करना चाहिये, प्रणाम किये बिना उनके आगे खड़ा नहीं होना चाहिये; और अशुद्ध वस्त्रों को पहन कर या जूठे मुँह भगवान की वन्दना नहीं करनी चाहिये ॥ ९-११ ॥

एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात् प्रदक्षिणम् ।

पादप्रसारणं चैव तथा पर्यङ्कबन्धनम् ॥ १२ ॥
शयनं भक्षणं चापि मिथ्याभाषणमेव च ।
उच्चैर्भाषो मिथो वैरं रोदनानि च विग्रहः ॥ १३ ॥

एक हाथ से उनको (हरि को) प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिये (अर्थात् दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिये और दोनों हाथ जोड़कर ही प्रदक्षिणा करनी चाहिये)। उनके आगे न तो पाँव फैलाना चाहिये और न धोती आदि बाँधना चाहिये। उनके सामने लेटना, सोना, खाना, झूठ बोलना, जोर से बोलना, किसी के प्रति वैर प्रदर्शित करना और रोना आदि कार्य नहीं करना चाहिये। ॥ १२-१३ ॥

निग्रहानुग्रहश्चैव स्त्रीषु च क्रूरभाषणम् ।
कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ॥ १४ ॥
अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोक्षणम् ।
शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षणम् ॥ १५ ॥

इसी प्रकार किसी के प्रति अनुग्रह करना या किसी को डाँटना-फटकारना, स्त्रियों के प्रति क्रूर भाषण करना, कम्बल का आवरण लगाना, परनिन्दा या परस्तुति—ये सब कार्य भी देव के सामने नहीं करना चाहिये। अश्लील भाषण और अधोवायु का स्खलन नहीं करना चाहिये। जो कुछ पर्याप्त मात्रा में समर्पित किया जा सकता है उसे अल्प मात्रा में समर्पित नहीं करना चाहिये। श्रीहरि को अनिवेदित भक्ष्य का भक्षण नहीं करना चाहिये ॥ १४-१५ ॥

तत्तत्कालभवानां च फलादीनामनर्पणम् ।
विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनस्य च ॥ १६ ॥
स्पष्टीकृत्वासनं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ।
गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ॥
अपराधस्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत् परिकीत्तिताः ॥ १७ ॥

जिस ऋतु में जो फलादि उत्पन्न होते हैं उन्हें अर्पित करना बन्द नहीं करना चाहिये। किसी अन्य कार्य से बचे हुए व्यञ्जनों को समर्पित

नहीं करना चाहिये। उनके समक्ष अपने आसन को स्पष्ट नहीं करना चाहिये। परनिन्दा या परस्तुति नहीं करनी चाहिये। गुरु के प्रति मौन नहीं रहना चाहिये। आत्मप्रशंसा और देवता को निन्दा नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार श्रीविष्णु के प्रति ये ३२ अपराध कहे गये हैं ॥ १६-१७ ॥

शालग्रामशिलातोयं न पीत्वा यस्तु मस्तके ।
प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते ॥ १८ ॥
विष्णोः पादोदकं पीतं कोटिजन्माघनाशनम् ।
तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दुनिपातनात् ॥ १९ ॥

शालग्राम शिला के जल को मस्तक पर लगाकर जो नहीं पीता और उसे फेंक देता है उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। श्रीविष्णु के पादोदक पान से करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है। किन्तु उसके एक बिन्दु को भी भूमि पर गिराने से आठ गुना अधिक पाप लगता है ॥ १८-१९ ॥

धारणमन्त्रस्तु ।

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पुण्यं शिरसा धारयाम्यहम् ॥ २० ॥

अब विष्णु के पादोदक को धारण करने का मन्त्र बताते हैं : मैं श्रीविष्णु के पुण्य पादोदक को शिर पर धारण करता हूँ। यह पादोदक अकालमृत्यु का हरण करने वाला और सभी व्याधियों का विनाश करनेवाला है ॥ २० ॥

हत्यां हन्ति तदङ्घ्रिजापि तुलसी स्तेयं च तोयं पदे
नैवेद्यं बहु अन्नपानजनितं गुर्वङ्गनासङ्गजम् ।
श्रीशाधीनमतिःस्थितिर्हरिजनैस्तत्सङ्गजं किल्बिषं
शालग्रामशिलार्चनस्यमहिमाकोऽप्येषलोकोत्तरः ॥ २१ ॥

श्रीहरि के चरणकमल पर चढ़ाये गये तुलसीदल तथा नैवेद्य को ग्रहण करने से हत्या, चरणामृत की चोरी, मदात्यय और गुरुपत्नी की शय्या को दूषित करने के पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण के समक्ष

नम्रता और वैष्णवों का संग बुरे संग के पापों को नष्ट करता है। शालग्राम शिला की पूजा से परलोक में भक्त की मनोकामनायें पूर्ण होती हैं॥ २१ ॥

केशवाग्रे नृत्यगीतं यःकरोति कलौ नरः ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति नित्यशः ॥ २२ ॥

वसिष्ठे।

केशवाग्रे नृत्यगीतं न करोति हरेर्दिने ।
वह्निना किं न दग्धोऽसौ गतः किं न रसातलम् ॥ २३ ॥

इस कलियुग में केशव के आगे जो मनुष्य नृत्य और गायन करता है वह पद-पद पर नित्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है—ऐसा वसिष्ठ ने कहा है। जो केशव के आगे श्रीहरि के दिन नृत्य और गायन नहीं करता वह अग्नि में दग्ध होने या रसातल में पतित होने जैसी गति प्राप्त करता है॥ २२-२३ ॥

स्मरणं कीर्तनं विष्णोःकलौ मन्त्रजपादिषु ।
दानं तु प्रीतये तस्य नान्यथा गतिरिष्यते ॥ २४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे
द्वादशशुद्धिरेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

समाप्तश्चायं चतुर्थरात्रः

कलियुग में विष्णु के मन्त्र जपादि के साथ उनकी प्रसन्नता के लिये उनका स्मरण, कीर्तन और दान भी करना चाहिये क्योंकि इनके अतिरिक्त कोई अन्य गति नहीं है॥ २४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के चतुर्थरात्र
के अन्तर्गत द्वादशशुद्धि विषयक ग्यारहवाँ
अध्याय समाप्त ॥

चतुर्थ रात्र समाप्त

पञ्चमरात्रे प्रथमोऽध्यायः

श्रीमहादेव उवाच ।

अथोच्यन्ते पुनर्मन्त्राः शृणुष्वैकमनाः प्रिये ।
येषां विज्ञानमात्रेण नरो भक्तत्वमाव्रजेत् ॥ १ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे प्रिये ! अब मैं उन मन्त्रों को कहूँगा जिनके विज्ञानमात्र से मनुष्य भक्तत्व प्राप्त कर लेता है। तुम उन्हें एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १ ॥

येषां तन्त्रादिशास्त्राणां विचारो नैव हि क्वचित् ।
करोम्यशेषतो देवि भक्तिमुक्तिप्रदो नृणाम् ॥ २ ॥

हे देवि ! अब मैं उन तन्त्रादि शास्त्रों की विस्तार से व्याख्या करूँगा जो भक्ति और मुक्तिप्रद हैं तथा जिन पर पहले विचार नहीं किया गया है ॥ २ ॥

उपदेशविधिं वक्ष्ये श्रीकृष्णस्य कलौ यथा ।
दद्यान्मन्त्रं गुरुः स्वच्छः शिष्यं भक्तिसमन्वितम् ॥ ३ ॥

कलियुग में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में उपदेश देने की विधि को कहूँगा। श्रीकृष्ण के मन्त्र को गुरु स्वच्छ और भक्तियुक्त शिष्य को ही देवे ॥ ३ ॥

उपोष्यैकदिनं पूर्वं यद्वा भुक्त्वा हविष्यकम् ।
स्नात्वा तु निर्मले तोये पूर्वास्यः सुस्थमानसः ॥ ४ ॥

उपदेश के एक दिन पूर्व साधक को व्रत रखना अथवा हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये। तदुपरान्त निर्मल जल से स्नान करके सुखपूर्वक आसन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठना चाहिये ॥ ४ ॥

शिष्यं चोदङ्मुखस्थं च हरेर्नाम्नस्तु षोडश ।
स श्राव्यैव ततो दद्यान्मन्त्रं त्रैलोक्यमङ्गलम् ॥ ५ ॥

जब साधक उत्तराभिमुख बैठे हुए सोलह बार हरि के नाम का

श्रवण करले तब उसे त्रैलोक्यमङ्गल मन्त्र देना चाहिये ॥ ५ ॥

ततो गुरुः स्वयं देवं सम्पूज्य विधिवद्धुनेत् ।
वैष्णवोक्तविधानेन स्थण्डिले संस्कृतेऽपि च ॥ ६ ॥

इसके बाद गुरु को स्वयं देव का पूजन करके वैष्णवोक्त विधानपूर्वक स्थण्डिल पर संस्कृत अग्नि में विधिवत् हवन करना चाहिये ॥६॥

ततस्तु दक्षिणा देया शिष्येण गुरवे यथा ।
सामर्थेन स्वशक्त्या तु वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ७ ॥

इसके बाद शिष्य को अपने सामर्थ्यानुसार और कृपणता छोड़कर यथाशक्ति गुरु को दक्षिणा देना चाहिये ॥ ७ ॥

अथोच्यन्ते महामन्त्राः कृष्णस्य बालरूपिणः ।
नाम्नः सहस्रं शतकं कवचं च सुरेश्वरि ॥ ८ ॥

हे सुरेश्वरि ! अब मैं बालरूपी कृष्ण के महामन्त्रों, सहस्र, शतनाम और कवच को बताऊँगा ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णाय नमः

अष्टादशार्णो मारान्तो मनुः सुतधनप्रदः ।
ऋष्याद्यष्टादशार्णोक्तं मारूढस्वरैः क्रमात् ।
अङ्गान्यस्य मनोरङ्गदिक्पालास्त्रैः समर्चना ॥ ९ ॥

श्री कृष्णाय नमः । मारान्त (क्लीं) से अन्त होनेवाला १८ अक्षरों का मन्त्र पुत्र और धन प्रदान करनेवाला है। उक्त कामबीज युक्त १८ अक्षरों के मन्त्र के वर्णों का यथाक्रम पूजन करते हुए उसका ऋष्यादि, दिक्पालों और अस्त्रों सहित पूजन करना चाहिये ॥ ९ ॥

पाणौ पायसपक्वमाहितरसं बिभ्रन्मुदा दक्षिणे
सव्ये शारदचन्द्रमण्डलनिभं हैयङ्गवीनं दधत् ।
कण्ठे कल्पितपुण्डरीकनखवद्दाम प्रदीप्तं वहन
देवो दिव्यदिगम्बरो दिशतु नः सौख्यं यशोदासुतः ॥ १० ॥

'ॐ नमो भगवते गोपीजनवल्लभाय स्वाहा क्लीम्' यह १८ अक्षरों का मन्त्र है।

अपने दाहिने हाथ में वह प्रसन्न मुद्रा में पायसान्न और बायें हाथ में शारद चन्द्रमण्डल के समान ताजा नवनीत लिये हुए हैं। यशोदा के वे दिव्य पुत्र दिगम्बर हैं, उनके कटि में प्रदीप्त करधनि है और उनके कण्ठ में पुण्डरीक है। उनके नख कमल के समान हैं—वह हमें सौख्य प्रदान करें ॥ १० ॥

दिनशोऽभ्यर्च्य गोविन्दं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ॥
जप्त्वा दशांशं जुहुयात् सितान्नेन पयोन्धसा ॥ ११ ॥

श्री गोविन्द की प्रतिदिन इस प्रकार पूजा करते हुए मन्त्र का ३२ लाख जप तथा उसका दशांश शर्करा, दूध और जल से होम करना चाहिये ॥ ११ ॥

पद्मस्थं देवमभ्यर्च्य तर्पयेत्तन्मुखाम्बुजे ।
क्षीरेण कदलीपङ्कैर्दध्ना हैयङ्गवेन च ॥ १२ ॥

पद्मस्थ देव की अर्चना करने के बाद उनके मुखकमल में खीर, कदलीपङ्क, दही और ताजा मक्खन देकर उन्हें प्रसन्न करे ॥ १२ ॥

सुतार्थी तर्पयेद्देवं वत्सराल्लभते सुतम् ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं तर्पणादेव सिद्ध्यति ॥ १३ ॥

सुताकांक्षी को देव का तर्पण करना चाहिये। ऐसा करने से उसे एक वर्ष में पुत्र प्राप्त होगा और इस तर्पण से उसकी अन्य मनोकामनायें भी पूर्ण हो जायेंगी ॥ १३ ॥

तारं हृद्भगवान् ङेऽन्तो नन्दपुत्रपदं तथा ।
नन्दान्ते वपुषे हस्ताग्निमयोऽन्ते दशार्णकः ॥ १४ ॥

तार (ॐ), हृद्भगवान् (नमो), ङेऽन्त नन्दपुत्र (नन्दपुत्राय), हस्ताग्निमयोऽन्ते (स्वाहा) लगाने से यह दशाक्षर मन्त्र बनता है: 'ॐ नमो नन्दपुत्राय स्वाहा' ॥ १४ ॥

अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं ब्रुवे द्वात्रिंशदक्षरम् ।
नन्दपुत्रपदं ङेऽन्तं श्यामलाङ्गपदं तथा ॥ १५ ॥
तथा बालवपुः कृष्णो गोविन्दो दशवर्णकः ।
अनयोर्नारद ऋषिश्छन्दस्तूष्णिगनुष्टुभौ ॥ १६ ॥

अब २८ अक्षरों और ३२ अक्षरों का मन्त्र बताते हैं। 'ॐ नमो वालवपुषे श्रीकृष्णाय गोविन्दाय नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय स्वाहा' यह २८ अक्षरों का मन्त्र है। इसमें 'भगवते' पद जोड़ देने से ३२ अक्षरों का मन्त्र बन जाता है। दशार्ण मन्त्र में 'वालवपुः', 'कृष्ण' और 'गोविन्द' पद यथावत रहते हैं। इस मन्त्र के ऋषि नारद हैं और छन्द अनुष्टुप है ॥ १५-१६ ॥

आचक्राद्यैरङ्गसंस्थैर्दिक्पालास्त्रैः प्रपूजनम् ।
दक्षिणे रत्नचषकं वामे सौवर्णवेत्रकम् ॥ १७ ॥
करे दधानं देवीभ्यामाश्लिष्टं चिन्तयेद्धरिम् ।
जपेल्लक्षं मनुवरं पायसैरयुतं हुनेत् ॥ १८ ॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ।

आचक्रपर्यन्त अङ्गदेवताओं, दिक्पालों और उनके आयुधों की पूजा करके दाहिने ओर रत्न चषक और बायें सुवर्ण पात्र रक्खे। इसके बाद देवी द्वारा आलिङ्गित श्रीहरि का ध्यान करके एक लाख जप तथा पायसान्न से १० हजार होम करे। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है ॥ १७-१८½ ॥

तारादिर्भगवान् ङेऽन्तो रुक्मिणीवल्लभस्तथा ॥ १९ ॥
शिरोऽन्तः षोडशार्णोऽयं रुक्मिणीवल्लभाह्वयः ।
सर्वसाक्षात्प्रदो मन्त्रो नारदोऽस्य मुनिः स्मृतः ॥ २० ॥
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च रुक्मिणीवल्लभो हरिः ।
एकदृग्वेदमुनिदृग्वर्णैरस्याङ्गकल्पना ॥ २१ ॥

'ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा' यह सोलह अक्षरों का मन्त्र है। यदि इसमें 'रुक्मिणीवल्लभ' पद जोड़ दिया जाय तो यह साक्षात् विष्णु का मन्त्र बन जाता है। इसके ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप तथा देवता रुक्मिणीवल्लभ हरि हैं। इसके एक, तीन, चार, सात और पुनः तीन अक्षरों से अङ्गन्यास करना चाहिये ॥ १९-२१ ॥

तापिच्छच्छविरङ्कगां प्रियतमां स्वर्णप्रभामम्बुज-
प्रोद्यद्वामभुजां स्वबाहुलतयाऽऽश्लिष्यन्सचिन्ताश्मया ।

श्लिष्यन्तीं स्मयमानहस्तविलसत्सौवर्णवेत्रश्रियं
पायाद्वः शणसूनपीतवसनो नानाविभूषो हरिः ॥ २२ ॥

लताओं के समान अपने हाथों से गोपियों का आलिङ्गन करनेवाले, आश्चर्यचकित और लज्जित गोपियों को देखकर हँसनेवाले, विविध आभूषण और पीताम्बर धारण करनेवाले श्रीहरि हमारी सदा रक्षा करें ॥ २२ ॥

ध्यात्वैवं रुक्मिणीनाथं जप्याल्लक्षमिमं मनुम् ।
अयुतं जुहुयात्पद्मैररुणैर्मधुराप्लुतैः ॥ २३ ॥

श्री रुक्मिणीवल्लभ का इस प्रकार ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का एक लाख जप और मधु से प्लुत लाल कमलों का १० हजार होम करना चाहिये ॥ २३ ॥

अर्चयेन्नित्यमङ्गैस्तं नारदाद्यैर्दिशोऽधिपैः ।
वज्राद्यैरपि धर्मार्थकाममोक्षाप्तये नरः ॥ २४ ॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये मनुष्य को अङ्गों, दिक्पालों और आयुधों तथा नारदादि सहित श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

लीलादण्डधरो गोपीजनसंसक्तदोःपदम् ।
दण्डान्ते बालरूपेति मेघश्यामपदं ततः ॥ २५ ॥
भगवन् विष्णुरित्युक्तो वह्निजायान्तको मनुः ।
एकोनत्रिंशदन्तोऽस्य मुनिर्नारद ईरितः ॥ २६ ॥
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च लीलादण्डहरिर्मतः ।
मुन्यब्धिकरणाङ्गाब्धिवर्णैरङ्गक्रिया मता ॥ २७ ॥

'लीलादण्डधरो गोपीजनसंसक्तदोर्दण्डबालरूप मेघश्याम विष्णवे स्वाहा'—यह २९ अक्षरोंवाला मन्त्र है जिसके ऋषि नारद हैं, छन्द अनुष्टुप है और देवता लीलादण्डधर हरि हैं। मुनि, सागर, करण और मन्त्राक्षरों से अङ्गपूजा करनी चाहिये ॥ २५-२७ ॥

सम्मोहयन्निजकरामकरस्थलीला
दण्डेन गोपयुवतीः सुरसुन्दरीश्च ।

दिश्यान्निजप्रियतमासुगदक्षहस्तो
देवः श्रियं निहतकंस उरुक्रमो वः २८ ॥

कंस का वध करनेवाले, लीला द्वारा वाम भुजा से आलिङ्गन करके गोपयुवतियों और सुर-सुन्दरियों को सम्मोहित करनेवाले, तथा दाहिनी भुजा से निज प्रिया का आलिङ्गन करनेवाले त्रिविक्रम श्रीहरि हमारी श्रीवृद्धि करें ॥ २८ ॥

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं अयुतं सिततण्डुलैः ।
त्रिमध्वक्तैर्हुनेदङ्गदिक्पालास्त्रैः समर्चयेत् ॥ २९ ॥
लीलादण्डहरिं यो वै भजते नित्यमादरात् ।
स पूज्यते सर्वलोकैस्तं भजेदिन्दिरा सदा ॥ ३० ॥

इस प्रकार ध्यान करते हुए मन्त्र का एक लाख जप और त्रिमधु तथा चावलों से १० हजार होम करना चाहिये। तत्पश्चात् दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। जो लीलादण्डधारी हरि का इस प्रकार आदरपूर्वक नित्य भजन करता है वह सब लोकों का पूज्य और सम्पत्तिशाली हो जाता है ॥ २९-३० ॥

त्रयोदशस्वरयुतः शार्ङ्गी मोदः स केशवः ।
तथा मांसयुगस्तारः शिवः सप्ताक्षरोऽपरः ॥ ३१ ॥
आचक्राद्यैरङ्गक्लृप्तिर्नारदोऽस्य मुनिः स्मृतः ।
छन्द उष्णिग्देवता च गोवल्लभ उदाहृतः ॥ ३२ ॥

शार्ङ्गी (ग अथवा ख), तेरहवाँ स्वर (ओ), मोदः (वः केशवः), मांसयुग (दो बार ल, 'ल्ल'), तार (ॐ), और शिव (ह्रौं) 'ॐ ह्रौं गोवल्लभ केशवः' यह मन्त्र बनता है। चक्रादि इस मन्त्र के अङ्ग हैं, नारद ऋषि हैं, छन्द उष्णिग् है और देवता गोवल्लभ हैं। ॥ ३१-३२ ॥

ध्येयोऽच्युतः स कपिलागणमध्यसंस्थो
य आह्वयन् दधि दक्षिणदोष्णि वेणुम् ।
पाशं सयष्टि सपत्रपयोदनीलः
पीताम्बरोऽहिरिपुपिच्छकृतावतंसः ॥ ३३ ॥

कपिला गायों के मध्य स्थित होकर दाहिने हाथ से वेणु बजाते हुए, मोरशिखा से सुशोभित केशवाले, पीताम्बर धारी, पाश और यष्टि लिये हुए अच्युत श्रीहरि मेरी रक्षा करें ॥ ३३ ॥

मनुं लक्षं जपेदेतं हुनेत् सप्तसहस्रकम् ।
गोक्षीरैरङ्गदिक्पालमध्येऽर्च्यं गोगणान्तकम् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का एक लाख जप और गाय के दूध से सात हजार होम करना चाहिये। इस प्रकार गायों के मध्य स्थित श्रीकृष्ण को दिक्पालों और अङ्गों सहित पूजा करनी चाहिये। ॥ ३४ ॥

अष्टोत्तरसहस्रं यः पयोभिर्दिनशो हुनेत् ।
पतङ्गगोगणैराढ्यो दशार्णेनैव वा विधिः ॥ ३५ ॥

जो एक हजार आठ बार गाय के दूध से होम करता है वह बहुत-सी गायें और पशु प्राप्त करता है। दशाक्षर मन्त्र से भी यही फल प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

स नरो वासुदेवो ह्रन् ङेऽन्तं च भगवत्पदम् ।
श्रीगोविन्दपदं तद्वद्द्वादशार्णोऽयमीरितः ॥ ३६ ॥
मनुर्नारदगायत्रीकृष्णर्ष्यादिरथाङ्गकम् ।
एकाक्षिवेदभूतार्णैः समस्तैरपि कल्पयेत् ॥ ३७ ॥

अब बारह अक्षरों का मन्त्र बताते हैं: 'ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय'—यह बारह अक्षरों का मन्त्र है। इसके ऋषि नारद, छन्द गायत्री और देवता श्रीकृष्ण हैं। इसकी भी अङ्गों आदि सहित पूजा करनी चाहिये ॥ ३६-३७ ॥

वन्दे कल्पद्रुमूलाश्रितमणिमयसिंहासने सन्निविष्टं ।
नीलाभं पीतवस्त्रं करकमललसच्छङ्खवेणुं मुरारिम्
गाभिः सप्रस्नवाभिर्वृतममरपतिप्रौढहस्तस्थकुम्भ-
प्रद्योतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम् ॥ ३८ ॥

कल्पवृक्ष के नीचे मणिमय सिंहासन पर विराजमान, पीताम्बरधारी, नीलाभ, तथा करकमलों में शङ्ख और वेणु धारण किये हुए,

गायों और बछड़ों से घिरे, कमलपत्र के समान नेत्रवाले श्रीकृष्ण मुरारी को मैं वन्दना करता हूँ। वह सबके लिये शुभ हों ॥ ३८ ॥

ध्यात्त्वैवमच्युतं जप्त्वा रविलक्षं हुनेत्ततः।
दुग्धैर्द्वादशसाहस्रं दिनशोऽमुं समर्चयेत् ॥ ३९ ॥

श्री अच्युतदेव का इस प्रकार ध्यान करते हुए मन्त्र का १२ लाख जप और दूध से १२ हजार होम करना चाहिये। इससे प्रतिदिन उनकी पूजा करना चाहिये ॥ ३९ ॥

गोष्ठे प्रतिष्ठितं वापि गेहे वा प्रतिमादिषु।
समस्तपरिवारार्चास्ताः पुनर्विष्णुपार्षदाः ॥ ४० ॥
द्वाराग्रेऽवनिपीठेऽर्च्याः पक्षीन्द्रश्च तदग्रतः।
चण्डप्रचण्डौ प्राग्दोहविधातारौ च दक्षिणे ॥ ४१ ॥
जयः सविजयः पश्चाद्‌बलप्रबल उत्तरे।
ऊर्ध्वे द्वारि श्रियं श्रेष्ठान् द्वार्येतान् युग्मशोऽर्चयेत् ॥
पूज्यो वास्तुपुमांस्तत्र तत्र द्वाःपीठमध्यतः।
द्वारान्तपार्श्वयोरर्च्या गङ्गा च यमुना नदी ॥ ४३ ॥
कोणेषु विघ्नं दुर्गां च वाणीं क्षेत्रेशमर्चयेत्।
अर्चयेद्वास्तुपुरुषं वेश्ममध्ये समाहितः ॥ ४४ ॥

गोष्ठ में अथवा घर में प्रतिष्ठित प्रतिमादि में उनकी सपरिवार और पुनः विष्णु के पार्षदों सहित अर्चना करनी चाहिये। पीठ में भूमि पर द्वार के समीप गरुड का, पूर्व में चण्ड और प्रचण्ड का; दक्षिण में दोह और विधाता का, पश्चिम में जय और विजय का; उत्तर में वल और प्रवल का, तथा ऊर्ध्व दिशा में द्वारका में श्रीपति को युगल मूर्ति की पूजा करे। पीठ मध्य में वास्तुदेव की तथा पार्श्वों में गङ्गा और यमुना नदियों को पूजा करे। कोणों में विघ्न (गणेश), सरस्वती और क्षेत्रेश की पूजा करे। वेश्ममध्य में समाहित चित्त होकर वास्तुपुरुष को पूजा करे ॥ ४०-४४ ॥

तारं शार्ङ्गपदं ङेऽन्तं सपर्वं च शरासनम्।
हूं फट् नम उक्त्वाऽस्त्रमुद्रयाऽग्रे स्थितो हरेः ॥ ४५ ॥

पुष्पाक्षतं क्षिपेद्दिक्षु समासीतासने ततः ।
विधेयमेतत्सर्वत्र स्थापिते तु विशेषतः ॥ ४६ ॥
आत्मार्चनान्तं कृत्वाथ गुरुपंक्तिं पुरोक्तवत् ।
श्रीगुरुं परमाद्यांश्च महास्मत्सर्वपूर्वकान् ॥ ४७ ॥
तत्पादुकान्नारदादीन् पूर्वसिद्धाननन्तरम् ।
ततो भगवतश्चेष्ट्वा विघ्नघ्नान् दक्षिणेऽर्चयेत् ॥ ४८ ॥
पूर्ववत् पीठमभ्यर्च्य श्रीगोविन्दमथार्चयेत् ।
रुक्मिणीं सत्यभामां च पार्श्वयोरिन्द्रमग्रतः ॥ ४९ ॥
पृष्ठतः सुरभिं चेष्ट्वा केशरेष्वङ्गदेवताः ।
अर्च्या हृदादिवर्मान्तं दिक्ष्वस्त्रं कोणकेषु च ॥ ५० ॥

इसके बाद 'ॐ शार्ङ्गधनुषे हुं फट् नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुए हरि के आगे अस्त्र मुद्रा दिखाये। फिर आसन पर स्थित होकर चारो दिशाओं में अक्षत तथा पुष्प फेंके। प्रतिष्ठित मूर्ति की उपासना में इस नियम का विशेष रूप से पालन करना चाहिये। आत्मार्चन के बाद पूर्वोक्तवत्गुरु पंक्ति की पूजा करे। सबसे पहले श्रीगुरु और परमात्मा श्रीकृष्ण का स्मरण करना चाहिये। फिर नारदादि ऋषियों का पादुका में पूजन करे और इसके बाद दक्षिण में विघ्नविनाशक श्रीगणेश की अर्चना करे। यहाँ पूर्ववत् पीठ का पूजन कर श्री गोविन्द और उनके पार्श्वों में इन्द्र के आगे रुक्मिणी और सत्यभामा की पूजा करे। पृष्ठभाग में सुरभि गाय की, केसरों में हृदयादि से वर्मपर्यन्त अङ्गदेवताओं को, और दिशाओं के कोणों में आयुधों की पूजा करे ॥ ४५-५० ॥

कालिन्दी रोहिणी नाग्नजित्याद्याः षट्कशक्तयः ।
दलेषु पीठकोणेषु वह्न्याद्यर्चाथ किङ्किणी ॥ ५१ ॥
दामानि यष्ट्यो वेश्मः पुरः श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
अग्रतो वनमालां च दिक्ष्वष्टासु ततोऽर्चयेत् ॥ ५२ ॥

कालिन्दी, रोहिणी और नग्नजिती आदि छः शक्तियों को दलों में, वह्न्यादिकों को पीठ के कोणों में तथा किङ्किणी, दामनी (पशुओं को

नाथने की रस्सी), यष्टि, वेश्म (निवासगृह), पुर, श्रीवत्स, कौस्तुभ, और वनमाला का अष्ट दिशाओं में पूजन करे ॥ ५१-५२ ॥

पाञ्चजन्यं गदां चक्रं वसुदेवं च देवकीम् ।
नन्दगोपं यशोदां च सगोगोपालगोपिकाः ॥ ५३ ॥
इन्द्राद्या देवताः सर्वा विश्वक्सेनं तथोत्तरे ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः ॥ ५४ ॥
शंकुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वेति गोष्ठिकाम् ॥ ५५ ॥

पाञ्चजन्य (शङ्ख विशेष), गदा, चक्र, वसुदेव, देवकी, नन्दगोप, यशोदा, गाय, गोपालकों और गोपिकाओं, इन्द्रादि देवता, तथा विश्वक्सेन की पूजा करने के बाद कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शंकुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख तथा सुप्रतिष्ठित का एककाल, द्विकाल अथवा त्रिकाल में पूजन करना चाहिये। इस पूजा को गोष्ठिपूजा कहते हैं। ॥ ५३-५५ ॥

श्रीगोविन्दं यजेन्नित्यं गोभ्यश्च यवसप्रदः ।
दीर्घजीवी निरातङ्को धेनुधान्यधनादिभिः ॥ ५६ ॥
पुत्रैर्मित्रैर्धनाढ्योऽन्ते प्रयाति परमां गतिम् ।

गायों को घास आदि देने वाले अथवा चरानेवाले श्रीगोविन्द की नित्य पूजा करनी चाहिये। इससे साधक दीर्घजीवी और निरातंक (भयरहित) होकर गायें, अन्न और धनादि प्राप्त करता है। जीवन-काल में वह पुत्रों और मित्रों सहित धनाढ्य होकर अन्त में परमगति पाता है ॥ ५६-५६½ ॥

ऊर्ध्वदन्तयुतः शार्ङ्गी चक्री दक्षिणकर्णयुक् ॥ ५७ ॥
मां सनाथाय नत्यन्तो मूलमन्त्रोऽष्टवर्णकः ।
ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री छन्दः कृष्णस्तु देवता ॥
वर्णयुग्मैः समस्तेन प्रोक्तं स्यादङ्गपञ्चकम् ॥ ५८ ॥

अब अष्टाक्षरी मूलमन्त्र बताते हैं। मन्त्र इस प्रकार है : गोकुल-नाथाय नमः। इसके ऋषि ब्रह्मा हैं। छन्द गायत्री है, तथा देवता

श्रीकृष्ण हैं। 'कृष्ण' इन दो वर्णों से पञ्चाङ्ग पूजन करना चाहिये। ॥ ५७-५८ ॥

पञ्चवर्षमतिदृप्तमङ्गने धावमानमतिचञ्चलेक्षणम् ।
किङ्किणीवलयहारनूपुरैरञ्जितं नमत गोपबालकम् ॥ ५९ ॥

बाल्यकाल के प्रथम पाँच वर्षों तक आँगन में धावमान होनेवाले, चञ्चल नेत्रों वाले, किङ्किणी-वलय-हार-नूपुर रंजित, गोपबालक (श्रीकृष्ण) का मैं नमन करता हूँ ॥ ५९ ॥

ध्यात्वैवं प्रजपेदष्टलक्षं तावत्सहस्रकम् ।
जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षोत्थसमिद्भिः पायसेन वा ॥ ६० ॥

प्रासादास्थापितं कृष्णममुना नित्यमर्चयेत् ।
द्वारपूजादि पीठान्तं कुर्यात्पूर्वोक्तमार्गतः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार ध्यान करते हुये मन्त्र का आठ लाख जप तथा पायसान्न और अश्वत्थ की समिधाओं से आठ हजार होम करे। प्रासाद-स्थापित श्रीकृष्ण की इस प्रकार नित्य अर्चना करे। द्वारपूजा से पीठपर्यन्त पूजा पूर्वोक्त मार्ग से सम्पन्न करना चाहिये ॥ ६०-६१ ॥

मध्येऽर्चयेद्धरिं दिक्षु विदिक्ष्वङ्गानि च क्रमात् ।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ ६२ ॥
रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा जाम्बवत्यपि ।
दिग्विदिक्ष्वर्चयेदेता इन्द्रवज्रादिकान् बहिः ॥ ६३ ॥

मध्य में हरि की और दिशाओं तथा विदिशाओं में क्रमानुसार वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, जाम्बवती आदि का पूजन करे। फिर उसके बाहर दिशाओं और विदिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों तथा वज्रादि उनके आयुधों की पूजा करे ॥ ६२-६३ ॥

योऽमुं मनुं जपेन्नित्यं विधिनाभ्यर्चयन् हरिम् ।
सर्वसम्पत्सुसम्पूर्णो नित्यं शुद्धं पदं व्रजेत् ॥ ६४ ॥

जो इस मन्त्र का नित्य जप और श्री हरि का इस विधि से पूजन

करता है वह सर्वसम्पत्तियों से समृद्ध होकर अन्त में नित्य शुद्ध पद प्राप्त करता है ॥ ६४ ॥

तारश्रीशक्तिमारान्ते श्रीकृष्णस्य पदं वदेत् ।
श्रीगोविन्दाय तस्योर्ध्वं श्रीगोपीजन इत्यपि ॥ ६५ ॥
वल्लभाय ततस्त्रिः श्रीःसिद्धगोपालको मनुः ।
माधवीमण्डपासीनो गरुडेनातिपालितो ॥ ६६ ॥

अब माध्वीमण्डप में स्थित, गरुड द्वारा प्रशंसित गोपाल के सिद्ध-गोपालमन्त्र को बताते हैं। मन्त्र इस प्रकार है: ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय श्रीगोविन्दाय श्रीगोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं ॥६५-६६॥

दिव्यक्रीडासु निरतौ रामकृष्णौ स्मरन् जपेत् ।
चक्री वस्वक्षरयुतः स ह्येकार्णो मनुर्मतः ॥ ६७ ॥

दिव्य क्रीडारत श्रीरामकृष्ण का स्मरण करते हुये विष्णु के अष्टाक्षर अथवा एकाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये ॥ ६७ ॥

कृष्णेति द्व्यक्षरः कामपूर्वस्त्र्यर्ण स एव तु ।
स एव चतुर्णः स्यात् ङेऽन्तोऽन्यश्चतुरक्षरः ॥ ६८ ॥

अब चतुरक्षर मन्त्र बताते हैं। 'क्लीं कृष्णाय' यह चार अक्षरों का मन्त्र है ॥ ६८ ॥

रक्ष्यते पञ्चवर्णः स्यात्कृष्णाय नम इत्यपि ।
कृष्णायेति स्मरद्वन्द्वमध्ये पञ्चाक्षरोऽपरः ॥ ६९ ॥
गोपालायाग्निजायान्तः षडक्षरः उदाहृतः ।
कृष्णाय वायुबीजाद्यो वह्निजायान्तकोऽपरः ॥ ७० ॥
कृष्णाय स्मरबीजाद्यो वह्निजायान्तकोऽपरः ।
षडक्षरः प्रागुदितः कृष्णगोविन्दको पुनः ॥ ७१ ॥
श्रीशक्तिमारकृष्णाय मारः सप्ताक्षरोऽपरः ।
कृष्णगोविन्दकौ ङेऽन्तौ स्मराद्यौ वसुवर्णकः ॥ ७२ ॥
दधिभक्षण ङेवह्निर्जयाभिरपरोऽष्टकः ।
सुप्रसन्नात्मने प्रोच्य नम इत्यपरोऽष्टकः ॥ ७३ ॥

क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमस्तु स्याद्दशार्णकः ।
शिरोऽन्तो बालवपुषे कृष्णायान्यो मनुर्मतः ॥ ७४ ॥

शिरोऽन्तो बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्मृतो बुधैः ।
एकादशाक्षरो मन्त्र एतेषां नारदो मुनिः ॥ ७५ ॥

उक्तं छन्दस्तु गायत्री देवस्तु कृष्ण ईरितः ।
कलषड्दीर्घकैरङ्गमथामुं चिन्तयेद्धरिम् ॥ ७६ ॥

'कृष्णाय नमः' यह पञ्चवर्णात्मक मन्त्र रक्षण करता है। 'गोपालाय स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र है। 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' एक अन्य मन्त्र है जिसे पहले बताया जा चुका है। अब सप्ताक्षर मन्त्र बताते हैं: 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं' यह सप्ताक्षर मन्त्र है। 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। 'दधिभक्षणाय स्वाहा' तथा 'सुप्रसन्नात्मने स्वाहा' ये अन्य अष्टाक्षर मन्त्र हैं। 'क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः' यह दशाक्षर मन्त्र है। 'बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा' भी दूसरा दशाक्षर मन्त्र है। 'बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह एकादशाक्षर मन्त्र है। इन मन्त्रों के ऋषि नारद हैं। छन्द गायत्री है और श्रीकृष्ण को देवता कहा गया है। अङ्ग पूजा आदि सहित इन मन्त्रों से श्रीहरि का पूजन करना चाहिये ॥ ६९-७६ ॥

अव्याद्व्याकोषनीलाम्बुजरुचिररुणाम्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो
बालोजङ्घाकटीरस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्दः
दोर्भ्यां हैयङ्गवीनं दधतिविमलं पायसं विश्ववन्द्यो
गोगोपीगोपवीतो रुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः ॥ ७७ ॥

नीलकमल के समान सुन्दर, कमल नेत्र, उदित होते सूर्य के समान प्रदीप्त, विविध आभूषणधारी, जांघों और कटिदेश में किङ्किणी पहने हुये, नवनीत तथा पायसान्न (खीर) खाते हुये, गो-गोप-गोपिकाओं से घिरे हुये—ऐसे बालमुकुन्द श्रीकृष्ण सब की रक्षा करे ॥ ७७ ॥

ध्यात्वैवमेकमेतेषां लक्षं जप्यान्मनुं ततः ।
सर्पिःसितोपलोपेतैः पायसैरयुतं हुनेत् ॥ ७८ ॥

तर्पयेत्तावदेतेषां मनूनां हुतसंख्यया ।
तर्पणं विहितं नित्यमर्चयेत् सुसमाहितः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार ध्यान करते हुये उक्त किसी भी मन्त्र का एक लाख जप और पायसान्न से दश हजार होम करे। हवन की संख्या के अनुसार तर्पण करना चाहिये। इसके बाद एकाग्रचित्त होकर नित्य पूजन करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ७८-७९ ॥

वह्न्यादीशान्तमङ्गानि हृदादिकवचान्तिकाम् ।
अर्चयेत् पुरतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु बहिः क्रमात् ॥ ८० ॥
इन्द्रवज्रादिकाः पूज्याः सपर्यैषा समीरिता ।
इत्येकमेषां मन्त्राणां यजेद्यो मनुजोत्तमः ॥ ८१ ॥
करप्रचेयाः सर्वार्थास्तस्यासौ पूज्यतेऽमरैः ।

फिर आग्नेयी से ईशान पर्यन्त विदिशाओं में हृदय से कवच पर्यन्त अङ्गपूजा करे और बाहर इन्द्रादि दिक्पालों और उनके अस्त्रों की यथाक्रम पूजा करे। इस प्रकार जो उपरोक्त मन्त्रों में से किसी की भी पूजा करता है उसकी सभी इच्छायें पूर्ण होती हैं, सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं तथा साधक देवों का भी पूज्य हो जाता है ॥ ८०-८१½ ॥

सद्यः फलप्रदं मन्त्रं वक्ष्येऽन्यं चतुरक्षरम् ॥ ८२ ॥
सम्प्रोक्तो मारयुग्मान्तरस्थकृष्णपदेन तु ।
ऋष्याद्यमङ्गषट्कं च प्रागुक्तं प्रोक्तमस्य तु ॥ ८३ ॥

अब सद्यः फलप्रद चतुरक्षर मन्त्र बताता हूँ। 'क्लीं क्लीं कृष्ण'— यह चतुरक्षर मन्त्र है। ऋष्यादि और अङ्गपूजा पूर्वोक्त रूप से करनी चाहिये ॥ ८२-८३ ॥

श्रीमत्कल्पद्रुमूलोद्यतकमललसत्कर्णिकासंस्थितोऽयं
तच्छाखालम्बिपद्मोदरविषवदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः ।
हेमाभःस्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं भासयन् वासुदेवः
पायाद्वः पायसादोऽनवतनुवनितामृगशिरसि सः ॥ ८४ ॥[1]

---

१. ऽमरतनुरनिशं मृग्यमानो मुनीन्द्रैरित्येतादृशः पाठः कश्चित्कल्पनीयः ।

कल्पद्रुम के मूल से निकले कमल की कर्णिका में स्थित, नाना रत्नों से भूषित, अपनी प्रभा से तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले, सर्वाभीष्टों को पूर्ण करने वाले, भक्तों को समृद्धि और सौख्य प्रदान करने वाले, स्वर्ण जैसी आभा वाले, तीनों लोकों के पूज्य, और अनन्त शक्ति वाले श्रीकृष्ण वासुदेव सब की रक्षा करें॥ ८४॥

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं जुहुयात्ततः ।

त्रिमध्वक्तबिल्वफलैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ ८५ ॥

इस प्रकार ध्यान करते हुये चार लाख जप और मधु तथा बिल्व फल से ४० हजार होम करे॥ ८५॥

अङ्गैर्ऋषिभिरिन्द्राद्यैर्वज्राद्यैरर्चनोदिता ।

तर्पयेद्दिनशः कृष्णं स्वादुत्रयधिया जनैः ॥ ८६ ॥

ऋषि, इन्द्रादि और वज्रादि अंगों की पूजा के बाद भक्त को त्रिमधुरों से प्रतिदिन श्रीकृष्ण के लिये तर्पण करना चाहिये॥ ८६॥

मारयोरस्य मां साधो रक्तं चेदपरो मनुः ।

षडङ्गान्यस्य कलवदीर्घैर्मन्त्रशिखा मनोः ॥ ८७ ॥

मारबीज 'क्लीं', मां साधो रक्तं (लं रं) सहित एक मन्त्र है जिसकी षडङ्ग पूजा आदि पूर्वोक्त मन्त्रों के ही समान करनी चाहिये। ॥ ८७॥

आरक्तोद्यानकल्पद्रुमशिखरलसत्स्वर्णदोलाधिरूढं

गोपीभ्यांप्रेङ्ख्यमानंविकसितनवबन्धूकसिन्दूरभासम् ।

बालंनीलालकान्तंकटितटविलसत्क्षुद्रघण्टाघटाढ्यं

वन्देशार्दूलकामांकुशलसितगलाकल्पदीप्तंमुकुन्दम् ॥ ८८ ॥

रक्त वर्ण उद्यान में कल्पवृक्ष की शाखा से लटकते हुये स्वर्ण के पालने में बैठे हुये बालगोपाल को दो गोपियाँ झुला रही हैं। उनके शरीर से ताजे बन्धूक पुष्प और सिन्दूर के समान लाल वर्ण का प्रकाश निकल रहा है। उनकी कटि में छोटी-छोटी घण्टियाँ सुशोभित हैं। वह काम भावना पर अंकुश लगाने में परम श्रेष्ठ हैं। ऐसे बालकृष्ण सबको मुक्ति प्रदान करते हैं अतः मैं उनकी वन्दना करता हूँ॥ ८८॥

ध्यात्वैवं पूर्वक्लृप्तेन जप्त्वा रक्तोत्पलैर्नवैः ।
मधुत्रययुतैर्हुत्वाऽभ्यर्चयेत् पूर्ववद्धरिम् ॥ ८९ ॥
मधुरत्रयसंयुक्तामारक्तां शालिमञ्जरीम् ।
जुहुयान्नित्यशोऽष्टोर्ध्वशतमेकेन मन्त्रयोः ॥ ९० ॥
तस्य मण्डलतः पृथ्वी पृथ्वी शस्यकुलाकुला ।
स्याच्छालिपुत्रपूर्णं च तद्वेश्माशु प्रजायते ॥ ९१ ॥

यश्चैतयोर्नियतमन्यतरं भजेत
मन्वोर्जपार्चनहुतादिभिरात्मभक्तिः ।
श्रीमान् स मन्मथ इव प्रमदासु राज्ञी
भूयात्तनोर्विपदि तच्च महाच्युताख्यम् ॥ ९२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार ध्यान करते हुये उपरोक्त प्रकार से लाल कमलों और त्रिमधुरों से होम करे। इसका जप यथाशक्ति जितना हो सके उतना करना चाहिये। ऐसा करने से पृथिवी शस्य से पूर्ण हो जाती है। उपरोक्त किसी भी मन्त्र से इस प्रकार प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पूजा और जप करने से साधक कन्दर्प के समान सुन्दर और रानियों का प्रिय बन जाता है तथा उस पर कभी कोई विपत्ति नहीं आती ॥८९-९२॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के पञ्चम रात्र
में प्रथम अध्याय समाप्त।

पञ्चमरात्रे द्वितीयोऽध्यायः

मुद्रानिरूपणम्

श्रीमहादेव उवाच ।

अथोच्यते वश्यविधिः पुरोक्तदशार्णतोऽष्टादशवर्णतश्च ।
स्मृत्यैतयोः सर्वजगत्प्रियत्वं मनुर्मनुज्ञस्य सदा विधत्ते ॥ १ ॥

श्री महादेव जी बोले : अब मैं पूर्वोक्त दशार्ण और अष्टादशार्णं मन्त्र के वशोकरण प्रयोग को बताऊँगा। यदि साधक इसे यथाविधि स्मरण रक्खे तो वह सभी मनुष्यों का प्रिय बन जायेगा। (पिछले अध्याय के श्लोक ७४-७५ में कहे गये दो दशार्ण मन्त्र इस प्रकार हैं : १. क्लीं ग्लौं क्लीं श्याभाङ्गलाय नमः। २. बाल वपुषे कृष्णाय स्वाहा।
अष्टादशार्ण मन्त्र इस प्रकार है : ॐ श्रीं क्लीं गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं। देखिये पिछले अध्याय का श्लोक ६५-६६) ॥ १ ॥

फुल्लैर्वन्यप्रसूनैरमुमरुणतरैरर्चयित्वा दिनादौ
नित्यंनित्यक्रियायांरतमथदिनमध्योक्तक्लृप्त्यामुकुन्दं ।
अष्टोपेतं सहस्रं दशलिपिमनुवर्यं जपेद्यः स मन्त्री
कुर्याद्विश्यान्यवश्यं स्वसुखमुखभुवां मन्त्रवन्मण्डलानि ॥२॥

यदि पूर्ण पुष्पित वनपुष्पों से प्रातःकाल श्रीकृष्ण की पूजा करके और मध्याह्न में श्रीविष्णु की यथोक्त सेवा करके कोई साधक उक्त दशार्ण मन्त्र का १००८ जप करे तो वह अपने सुख के लिये सभी लोगों का वशीकरण कर सकता है ॥ २ ॥

जातिप्रसूनैर्वरगोपवेषं क्रीडारतं रक्तहयारिपुष्पैः ।
नीलोत्पलैर्गीतरतं पुरोऽवदृष्ट्वा नृपादीन् वशयेत् क्रमेण ॥ ३ ॥

यदि साधक जातीपुष्पों अथवा रक्तहयारि पुष्पों या नीलकमलों से

क्रीडारत गोपवेशी श्रीकृष्ण की पूजा और ध्यान करके उक्त मन्त्र का जप करे तो राजा आदि भी उसके वश में हो जायेंगे ॥ ३ ॥

सितकुसुमसमेतैस्तण्डुलैराज्यसिक्तै-
दशशतमथ हुत्वा नित्यशः सप्तवारम् ।
कचभुवि च ललाटे भस्म तद्धारयन्ना
वशयति युवतीं स्त्री तत्प्रतिं सा तदैव ॥ ४ ॥

घृतसिक्त सफेद फूलों और चावलों से एक हजार होम करने के बाद दूसरे दिन से नित्य सात बार होम करके अन्त में होम की राख का तिलक लगाने से साधक स्त्रियों का उनके पतियों सहित वशीकरण कर लेता है ॥ ४ ॥

ताम्बूलवस्त्रकुसुमाञ्जनचन्दनाढ्यं
जप्त्वा सहस्रमयमन्यतरेण मन्वोः ।
यस्मै ददाति मनुवित् स जनोऽस्य साक्षात्
स्यात् किङ्करो न खलु तत्र विचारणीयम् ॥ ५ ॥

उपरोक्त दोनों मन्त्रों का प्रतिदिन पान, वस्त्र, पुष्प, अञ्जन और चन्दनादि पर एक हजार जप करने के बाद इन वस्तुओं को किसी के ऊपर फेंक दिया जाय तो वह व्यक्ति तत्काल साधक का दास हो जायगा—इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ५ ॥

राजद्वारे व्यवहारे सभायां द्यूते वादे चाष्टयुक्तं शतं च ।
जप्त्वा वाचं प्रमथामीरयेद्यो वर्तेतासौ तत्र तत्रोपरिष्टात् ॥ ६ ॥

यदि साधक राजद्वार में, व्यवहार के स्थान में (व्यवसाय के स्थान में), सभा में, द्यूत में, वादविवाद में उक्त मन्त्र का १०८ बार जप करके कुछ बोल दे तो वह तत्काल सभी पर श्रेष्ठता या वर्चस्व प्राप्त कर लेगा ॥ ६ ॥

आसीनं सुरमथनं कदम्बमूले
गायन्तं मधुरतरं व्रजाङ्गनाभिः ।
स्मृत्वाग्नौ मधुमिलितैर्मयूरकेध्मै-
र्हुत्वासौ वशयति मन्त्रवित् त्रिलोकीम् ॥ ७ ॥

कदम्बवृक्ष के मूल में स्थित होकर व्रजबालाओं के साथ मधुर सुरों में गायन करते और देवों को भी मोहित करते श्रीकृष्ण का ध्यान करके घी से सिक्त मोर के पङ्खों का अग्नि में होम कर साधक तीनों लोकों का वशीकरण कर सकता है ॥ ७ ॥

रासमध्यगतमच्युतं स्मरन् यो जपेद्दशशतं दशाक्षरम् ।
नित्यशो झटिति मासतो नरो वाञ्छितामतिवहेत् स कन्यकाम् ।८।

रासमध्य स्थित श्रीकृष्ण का ध्यान करके उक्त दशार्ण मन्त्र का प्रतिदिन एक हजार जप करने से साधक एक मास के भीतर ही वाञ्छित कन्या का वशीकरण कर लेता है ॥ ८ ॥

तुङ्गकुञ्जमधिरूढमच्युतं या विचिन्त्य दिनशः सहस्रकम् ।
साष्टकं जपति सा हि मण्डलात् वाञ्छितं वरमुपैति कन्यका ॥९॥

अत्यन्त उच्चासन पर आरूढ श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये एक हजार आठ बार नित्य जप करने से स्त्री मनोवाञ्छित पति प्राप्त करती है ॥ ९ ॥

नृत्यन्तं व्रजसुन्दरीजनकराम्भोजालिसंग्राहितं
ध्यात्वाष्टादशवर्णकं मनुवरं लक्षं जपेन्मन्त्रवित् ।
लाजानामथवा मधुद्रुततरैर्हुत्वायुतं चूर्णकै-
रुद्वोढु प्रजपेच्चतावदचिरादाकांक्षितांकन्यकाम् ॥ १० ॥

व्रज की सुन्दरियों से आलिङ्गित होकर नृत्य करते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान करके यदि साधक दशार्ण मन्त्र का एक लाख जप और लाजा, घी तथा मधु से दस हजार होम करे तो शीघ्र ही मनोवाञ्छित कन्या से उसका विवाह हो जायगा ॥ १० ॥

अष्टादशाक्षरेण द्विजतरुजेस्त्रिमध्वक्तैरयुतम् ।
कुशैस्तिलैर्वा सिततण्डुलैरशयितुं द्विजान् जुहुयात् ।
जुहुयात्कृतमानभरैर्वशयेन्नृपतोन्कुसुमैः कुरुण्टकजैः
विषइक्षुरसैरपि पाटलजैरितरानपि तद्वदथोवशयेत् ॥ ११ ॥

अष्टादशार्ण मन्त्र का जप करने के बाद कुश, तिल और चावलों से होम करने से राज वशीकरण होता है। इसी मन्त्र का जप

करने के बाद ईख के रस से होम करने से मन्त्री वश में हो जाते हैं ॥ ११ ॥

अभिनवैः कमलैररुणोत्पलैः समधुरैरपि चम्पकपाटलैः ।
प्रतिहुनेदयुतं क्रमशोऽचिराद्वशयितुं सुखजादिवराङ्गनाः ॥ १२ ॥

ताजे कमल के फूलों, लाल कमलों और मधु या शर्करा के साथ अथवा चम्पा के फूल के साथ दश हजार होम करने से साधक अत्यन्त शीघ्र हो मनोवाञ्छित कन्या प्राप्त करके सुखपूर्वक उसके साथ विहार करता है ॥ १२ ॥

हयारिकुसुमैर्नवैस्त्रिमधुराप्लुतैर्नित्यशः
सहस्रमुषिरासवं प्रतिहुनेन्निशीथे बुधः ।
सुगर्वितधियं हठात् झटिति वारयोषामसौ
करोति निजकिङ्करीं स्मरशिलीमुखैरर्दिताम् ॥ १३ ॥

त्रिमधुर, ताजे फूलों और उशीरवृक्ष के मूल को मिलाकर मध्य रात्रि में एक हजार होम करने से अपने पति में अत्यधिक निष्ठा रखने वाली स्त्री का भी साधक वशीकरण करके उसके साथ कामक्रीड़ा कर सकता है ॥ १३ ॥

पटुसंयुतैस्त्रिमधुरार्द्रभवै-
रपि सर्षपैर्दशशतत्रितयम् ।
निशि जुह्वतोऽस्य शचीदयितो-
ऽप्यवशो वशीभवति किन्त्वपरे ॥ १४ ॥

सरसों और त्रिमधुरों के साथ रात के समय एक हजार होम करने से इन्द्रपत्नी शची भी साधक के अधीन हो जाती है—फिर अन्य स्त्रियों का कहना ही क्या ॥ १४ ॥

अखण्डबिल्वजैः फलसमित्-
प्रसवच्छदैर्मधुद्रुततरैर्हवनात् ।
कमलैः सिताक्षतयुतैश्च पृथक्
कमलां चिराय वशयेदचिरात् ॥ १५ ॥

मधु सहित बेलवृक्ष के पञ्चाङ्ग (अखण्ड बिल्व फल, पत्तियां, पुष्प, मूल और समिधा), कमल और चावलों से दश सहस्र होम करने से अत्यन्त शीघ्र ही लक्ष्मी साधक के वशीभूत हो जाती हैं ॥ १५ ॥

अपहृत्य गोपवनिताम्बरजातं
हृदयैः कदम्बमधिरूढमच्युतम ।
प्रजपन् महानिशि सहस्रमानयेत्
द्रुतमुर्वशीमपि हठात् दशाहतः ॥ १६ ॥

गोपियों के वस्त्रों का हरण करके कदम्ब वृक्ष पर बैठे श्रीकृष्ण का हृदय में ध्यान करके उपरोक्त मन्त्र का मध्यरात्रि में एक सहस्र जप करने से दस दिन के भीतर ही उर्वशी प्रभृत नारियां भी हठात् वशीभूत हो जाती हैं ॥ १६ ॥

बहुना किमत्र कथितेन मन्त्रयो-
रनयोः सहङ् न हि परो वशीकृतौ ।
अपि तृप्तिकर्मणि विदग्धयोषितां
कुसुमायुधास्त्रमयवर्षिणोरिह ॥ १७ ॥

अधिक कहने से क्या लाभ ! जहां तक इस मन्त्र का प्रश्न है, वशीकरण के लिये इसे श्रेष्ठ अन्य मन्त्र नहीं है । उपरोक्त दोनों मन्त्रों के प्रयोग द्वारा कामबाण से पीड़ित होकर स्त्रियां साधक के वशीभूत हो जाती हैं ॥ १७ ॥

वन्दे कुन्देन्दुगौरं तरुणमरुणपाथोजपत्राभनेत्रं
शङ्खं चक्रं गदाब्जे निजभुजपरिघैरायतैरादधानम् ।
दिव्यैर्भूषाङ्गरागैर्नवनलिनलसन्मालया च प्रदीप्तं
द्योतत्पीताम्बराढ्यंमुनिभिरभिवृतंपङ्कस्थंमुकुन्दम् ॥ १८ ॥

पद्मासन पर विराजमान, पीताम्बर धारण किये हुये, मुनियों से घिरे, कुन्दपुष्प के समान और चन्द्रमा के समान गौरवर्ण, युवा, कमल के समान नेत्र वाले, प्रकाशित, और शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म लिये हुये, श्रेष्ठ आभूषण पहने हुये, सुगन्धित अनुलेपनों से युक्त शरीर वाले, वनमाल और पुष्पों से सुशोभित, मुक्तिदाता श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूं ॥ १८ ॥

एवं ध्यात्वा पुमांसं स्फुटहृदयसरोजासनासीनमाद्य
सान्द्राम्भोजच्छविं वा द्रुतकनकनिभं योजपेदर्कलक्षं ।
मन्वोरेकं हि सम्यग्वशमपि च हुनेदर्कसाहस्रमिध्मैः
क्षीरद्रुत्थैःपयोभिःसमधुघृतसितेनाथवापायसेन ॥ १९ ॥
ततो लोकाध्यक्षं ध्रुवचितिसदानन्दवपुषं
हृदा पाथोजाविर्भवतिमिरसंहारमिहिरम् ।
निजैक्येन ध्यायन्मनुममलचेताः प्रतिदिनं
त्रिसाहस्रं जप्यत् प्रयजतु च सायाह्नविधिना ॥ २० ॥
विधिं योऽमुं भक्त्या भजति नियतं सुस्थिरमति-
र्भवाम्भोधिं भीमं बिषमविषयग्राहनिकरैः ।
तरङ्गैरुत्तुङ्गैर्जनिमृतिसमाख्यैः प्रविततं
समत्तीर्यानल्पं व्रजति परमं धाम स हरेः ॥ २१ ॥

इस प्रकार अपने हृदयकमल में उन स्वर्णवर्ण परमपुरुष का ध्यान करते हुये उपरोक्त दोनों मन्त्रों में से किसी का भी बारह लाख जप करने और मधु, घी, शकर से सिक्त अथवा खीर से सिक्त समिधाओं से होम करने से सभी वस्तुयें साधक के वशीभूत हो जाती हैं। फिर यह चिन्तन करना चाहिये कि लोकाध्यक्ष, और सुन्दर शरीर वाले श्रीकृष्ण साधक के हृदय में आविर्भूत हो गये हैं। इस प्रकार चिन्तन करते हुये प्रतिदिन सन्ध्या समय शुद्ध हृदय साधक को उक्त मन्त्र का ३०० बार यथानियम जप करना चाहिये। इस प्रकार नियम और भक्तिपूर्वक उपासना करने से साधक की बुद्धि पुष्ट होती है, और वह स्त्री, भूमि, धन तथा इस संसार की अन्य भयंकर ग्राहस्वरूप विपत्तियों से मुक्त होकर अन्त में श्रीहरि के परम धाम को प्राप्त करता है ॥१९-२१॥

गृणंस्तस्य नामानि शृण्वंस्तदीयाः
कथा संस्मरंस्तस्य रूपाणि नित्यम् ।
स्मरंस्तत्पदाम्भोरुहं भक्तिनम्रः
स पूज्यो बुधैर्नित्ययुक्तः स एव ॥ २२ ॥

जो उनके नाम का उच्चारण करता है, उनकी लीलाओं का श्रवण करता है, और भक्तिनम्र हो उनके विविध रूपों का स्मरण करता है, वह साधु पुरुषों का पूज्य हो जाता है ॥ २२ ॥

वक्ष्ये मनुद्वयमथातिरहस्यमन्यत्
संक्षेपतो भुवनमोहननामधेयम् ।
ब्रह्मेन्द्रवामनयनेन्दुभिरादिमोऽन्य-
स्तत्पूर्वको विषहृषीकयुतश्च ङेऽन्तः ॥ २३ ॥

नमोऽस्तु सम्मोहननारदो मुनिश्छन्दस्तु गायत्रमुदीरितं बुधैः ।
त्रैलोक्यसम्मोहनविष्णुरेतयोः स्याद्देवता वच्म्यधुना षडङ्गम् ।२४।
अक्लीबकलादीर्घः सलवैस्तदपि च कलामसारूढैः ।
उक्तं पूर्ववदासनविन्यासान्तं समाचरेदथ तु ॥ २५ ॥
करयो शाखासु तले विन्यस्य षडङ्गानि चांगुलीषु शरान् ।
मनुपुटितमातृकावर्णैर्विन्यस्याङ्गानि विन्यसेच्च शरान् ॥ २६ ॥
विषहृषीकयुतेशान् ङेहृत्करशाखाभिन्नमोऽन्तिकान् ।
शोषण मोहन सन्दीपनतापनमादनकादिकान् क्रमशः ॥ २७ ॥
पञ्चैते सम्प्रोक्ता ह्रांह्रींक्लींब्लुंसआदिकरणाः ।
सम्मोहनमथ जगतां ध्यायेत् पुरुषोत्तमं समाहितधीः ॥ २८ ॥

अब मैं वशीकरण से सम्बद्ध उपरोक्त दोनों मन्त्रों के अन्य रहस्यों को बताऊँगा। क्लीं हृषीकेशाय नमः—यह मन्त्र दूसरों को सम्मोहित करता है। इसके ऋषि नारद हैं, छन्द गायत्री है, देवता विष्णु हैं और त्रैलोक्य सम्मोहन में इसका विनियोग बताया गया है। अब इसकी षडङ्ग पूजा बताते हैं। 'क्लीं त्रैलोक्य मोहनाय विद्महे, कामदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।' यह गायत्री मन्त्र है। अब कला-दीर्घ और अक्लीव 'स, ल, व' बीजों से आसन पर आरूढ़ होकर उपरोक्त नियमों के अनुसार कार्य करे। दोनों हाथों और अँगुलियों में मातृका वर्णों से षडङ्ग न्यास करे। मन्त्रपुटित मातृका वर्णों से अङ्गों में विन्यास करने के बाद शोषण, मोहन, सन्दीपन, तापन और मादन इन पञ्चबाणों का विन्यास करे। ह्रां, ह्रीं, क्लीं, ब्लुं, और सं—इन

बीजों को जगत का सम्मोहन करने वाला बताया गया है। तदुपरान्त समाहित चित्त से पुरुषोत्तम का इस प्रकार ध्यान करे ॥ २३-२८ ॥

दिव्यतरूद्यानोद्यद्रुचिरमहाकल्पपादपाधस्तात् ।
मणिमयभूतलविलसद्भद्रपयोजन्मपीठनिष्ठस्य ॥ २९ ॥
विश्वप्राणिप्रोद्यत्प्रद्योतनसद्युतेः सुपर्णस्य ।
आसीनमुन्नतांशे विद्रुमभङ्गाङ्गमङ्गजोन्मथितम् ॥ ३० ॥
चक्रगदांकुशपाशान् सुमनोबाणेक्षुचापकमलगदाः ।
दधतं स्वदोर्भिररुणायतविशालघूर्णिताक्षियुगललोलम् ॥ ३१ ॥
मणिमयकुण्डलकिरीटहाराङ्गदकङ्कणोर्मिररानाद्यैः ।
अरुणैर्माल्यविलेपैश्चोद्दीप्तं पीतवस्त्रपरिधानम् ॥ ३२ ॥
निजवामोरुनिषण्णां श्लिष्यन्तीं वामहस्तधृतनलिनीम् ।
क्लिद्यद्योनिं कमलामोदनदनव्याकुलाङ्गलताम् ॥ ३३ ॥
सुरुचिरभूषणमाल्याऽनुलेपनां सुसितवसनपरिवीताम् ।
निजसुखकमलव्यापृतचटुलायितनयनमधुकरां तरुणीम् ॥ ३४ ॥
श्लिष्यन्तं वामभुजादण्डेन दृढं धृतेक्षुचापेन ।
तज्जनितपरमनिर्वृतिनिर्भरहृदयं चराचरैकगुरुम् ॥ ३५ ॥
सुरदितिजभुजगगुह्यकगन्धर्वाद्यङ्गनाजनसहस्रैः ।
मदमन्मथालसाङ्गैरभिवीतं दिव्यभूषणोल्लसितैः ॥ ३६ ॥
आत्माभेदतयेत्थं ध्यात्वैकाक्षरमथाष्टादशार्णम् ।
प्रजपेद्दिनकरलक्षं त्रिमधुरसिक्तैश्च किंशुकप्रसवैः ॥ ३७ ॥
जुहुयादर्कसहस्रं विमलैः सलिलैश्च तर्पयेत्तावत् ।
विंशत्यर्णं प्रोक्तं मन्त्रं दिनशोऽमुमर्चयेद्भक्त्या ॥ ३८ ॥
पीठावन्दोवक्ष्यान्तराजय सिरोसुनाभिः पूजावपुम् ।
हरिमावाह्य स्कन्धे तस्यार्घाद्यैः समभ्यर्च्य भूषान्तैः ॥ ३९ ॥
अङ्गानि प्राणांश्च न्यसेत् क्रमतः किरीटमपि शिरसि श्रवसोश्च ।

कुण्डले हरिप्रमुणानि प्रहरणानि पाणिषु च ॥ ४० ॥
श्रीवत्सकौस्तुभौ च स्तनयोर्मूर्धिन गले च वनमालाम् ।
पीतवसनं नितम्बे वामांशे श्रियमपि स्वबीजेन ॥ ४१ ॥
इण्ट्राथकर्णिकायामङ्गानि विदिशासु दिक्षु शरान् ।
कोणेषु पञ्चमं वै पुनरग्न्यादिदलेषु शक्तयः पूज्याः ॥ ४२ ॥
लक्ष्मीः सरस्वती च स्वर्णावदातनिभे अतिप्रीत्यै ।
कीर्त्तिः कान्तिश्च सिते तुष्टिः पुष्टिर्मरकतप्रतिमे ॥ ४३ ॥
दिव्याङ्गरागभूषणमाल्यदुकूलैरलंकृताङ्गलताः ।
स्मेराननाः स्मरार्ता धृतचामरचारुकरतला एताः ॥ ४४ ॥
लोकेशा बहिरर्च्याः कथितार्चा मनुद्वयोद्भूताः ।
प्रायः पुरुषोत्तमविधिरयसैरसनोच्यते बहुमत्त्वात् ॥ ४५ ॥
त्रैलोक्यमोहनायेत्युक्त्वा विग्रह इति स्मरायेति ततः ।
धीमहि तन्नो चान्ते विष्णुस्तदनु प्रचोदयाद्गायत्री ॥ ४६ ॥
जप्यैषा तु जपादौ हरितहली श्रीकरी च जपहरणैः ।
प्रोक्षयितृशुद्धिविधयेऽर्च्यान्यात्मयागभूद्रव्याणि ॥ ४७ ॥
मन्वोरेकेन शतं प्रतर्पयेन्मोहनीप्रसूनद्युतेर्यः ।
तोयैर्दिनशः प्रातः स तु लभते वाञ्छितान् पश्चात् कामान् ॥४८॥

इस प्रकार पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये अष्टादशार्ण मन्त्र का बारह लाख जप और मधुसहित पलाश पुष्पों से बारह हजार होम करे। फिर स्वच्छ जल से उतना ही तर्पण करे। इसके बाद बीस अक्षरों के मन्त्र से उनकी भक्तिपूर्वक प्रतिदिन पूजा करे। पीठ पूजा में श्रीहरि का आवाहन करके उन्हें अर्घ्य, विभिन्न वस्तुयें तथा आभूषण आदि देकर उनकी साङ्गोपाङ्ग पूजा करे। उनके विभिन्न अङ्गों की क्रमानुसार प्राणप्रतिष्ठा करे तथा यथाक्रम उनके कानों, मस्तक और हाथों के लिये आभूषणादि देकर उनकी श्रीमूर्त्ति को सुशोभित करे। उनके शिर और वक्ष पर आभूषण रख कर श्रीवत्स और कौस्तुभ का चिन्तन करे। उनके गले में वनमाला और कटि में

पीताम्बर पहनाये और उनके वामभाग में उनके बीजाक्षर और लक्ष्मी को स्थित करे। चारों दिशाओं और विदिशाओं तथा कर्णिका में क्रमानुसार अङ्गपूजा तथा पीठपद्म में शक्तियों की पूजा करे। लक्ष्मी, स्वर्णवर्ण वाली अति सुन्दर सरस्वती, कीर्ति, श्वेतवर्ण कान्ति, तुष्टि, मरकतवर्ण पुष्टि आदि को शक्तियाँ कहा गया है। सुन्दर अङ्गराग, आभूषण, माला, दुकूल (रेशमी वस्त्र) और चमर से अलंकृत करके इनके स्थान नियत करे। पद्मदल के बाहर दिक्पालों की पूजा करे। इनकी पूजा श्रीपुरुषोत्तम के समान ही करनी चाहिये, अतः कलेवर वृद्धि के भय से विस्तारपूर्वक उल्लेख नहीं किया जा रहा है। इस गायत्री का जप करे : 'त्रैलोक्य मोहनाय विद्महे, स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।' मन्त्र जप के पहले इसका जप करना चाहिये। श्रीकृष्ण को पूजा के बाद हरितहली और श्रीकरी नामक शक्तियों की भी अवश्य पूजा करना चाहिये। जो मोहिनी प्रसून के समान द्युति वाले श्रीकृष्ण का प्रतिदिन प्रातःकाल उक्त मन्त्र से १०० जप करते हुये तर्पण करता है उसकी सभी मनोकामनायें पन्द्रह दिन के भीतर पूर्ण हो जाती हैं॥ २९-४८॥

हुत्वाऽयुतं हुतशेषं पाताऽऽज्येन तावदतिजप्तेन।

भोजयेत् स्वसभिकं रमणीं मनोऽर्पितां स्ववशतां नेतुम्॥ ४९॥

घृतादि से दश हजार होम और इतनी ही संख्या में जप करके हविष्य का भोजन करने से सभी स्त्रियाँ साधक के वशीभूत हो जाती हैं॥ ४९॥

अष्टादशार्णविहिता विधयः कार्ये वश्यकृतास्ताभ्याम्।

मन्वोरनयोः सदृशो नहि जातस्त्रिलोकवश्यकर्मणि कश्चित्॥५०॥

अत्रैकस्तु जपादावथवा कृष्णः सवेणुगीतिर्ध्येयः।

अरुणनूपुराङ्गवेशः कन्दर्पो वा प्रसूनचापेषुधारी च॥ ५१॥

यस्त्वेकतरं मनुमेतयोर्विमलधीः सदा भजति मन्त्री।

स द्राङ्मुद्रान्विततया तथा सिद्धिं विप्राणामतितरामेति॥५२॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
मुद्रानिरूपणे द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

वशीकरण के लिये अष्टादशार्ण मन्त्र के ही समान सब क्रियायें करना चाहिये। वशीकरण के लिये इन दोनों मन्त्रों से श्रेष्ठ कोई अन्य मन्त्र नहीं है। एक मन्त्र के लिये वेणु बजाते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान करे तथा दूसरे के लिये उदित होते सूर्य के समान प्रकाशमान, पावों में किङ्किणी पहने हुये पुष्पधन्वा कन्दर्प का ध्यान करे। जो विमल बुद्धि साधक उक्त मन्त्रों में से किसी एक का भी जप करता है वह समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है ॥ ५०-५२ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में पञ्चम रात्र
का मुद्रानिरूपणविषयक द्वितीय अध्याय समाप्त।

पञ्चमरात्रे तृतीयोऽध्यायः

श्री महादेव उवाच ।

अथ सत्यसौ द्वितृतीयतूर्यकाः
शिखिवामनेत्रशशिखण्डमण्डिताः ।
जय कृष्ण युगनिरन्तरात्मभूमि-
शिखिशक्तितास्यवृतिशक्तिवर्णकाः ॥ १ ॥
प्रणि मध्यतो मुदितचेतसे ततोऽन्त्या-
ऽनुपरक्तहृद्‍मत्तगुरुमारुताक्षराः ।
स चतुर्थकृष्णपद्मिक्षुकार्मुको
दशवर्णकश्च मनवर्यकस्तवसौ ॥ २ ॥
सलवाधराचलसुतारमाक्षरैः पुटितः क्रमात् क्रमागतैः समुद्धरेत् ।
इति दन्तसूर्यवसुवर्ण उद्धृतः कवितानुरञ्जनरमाकरोद्यकृत् ॥ ३ ॥
मुखवृत्तनन्दयुतनारदो मुनि-
स्त्विह छन्द उक्तममृतो विराडपि ।
त्रिजगद्विमोहनसमाह्वयो हरिः
खलु देवतास्य मुनिभिः समीरिता ॥ ४ ॥
वसुमित्रभूधरगजात्मदिङ्मयै-
र्मनुरर्णकैस्त्रिपुटीकृतः पृथक् ।
निजजातिमुङ्निगदितं षडङ्गकं
क्रिययैव तत् खलु जनानुरञ्जनम् ॥ ५ ॥[1]

उक्त श्लोक स्पष्ट नहीं हैं ।

---

१. अथेत्यादि श्लोक पञ्चकमपरिस्फुटम् ।

अथ संविशोध्य तनुयुक्तमनिन्दतः
प्ररचय्य पीठमपि चारुचर्मणा ।
करयोर्दशाक्षरविधिं क्रमात् न्यसेत्
षडङ्गसायकमनङ्गपञ्चकं च ॥ ६ ॥

मनुमीदृशं न्यसतु सर्वतस्तनौ स्मरसम्पुटैस्तदनु मातृकाक्षरैः ।
दशतत्त्वादि दशार्णकीर्त्तितं त्वथ मूर्तिपञ्जरविधानमाचरेत् ॥७॥
सृजतिस्थितिदशषडङ्गसायकान् न्यसतात्ततोऽन्यदखिलं पुरोक्तवत् ।
प्रविधाय सकलभुवनैकसाक्षिणं स्मरतान्मुकुन्दमनवद्यधीरधीः ।८।

अनिन्दित साधक अपने शरीर में पीठ की रचना करके उसे शुद्ध करे और दोनों हाथों से पूजा करके दशार्ण मन्त्र की षडङ्ग पूजा और अनङ्ग पञ्चक पूजा करे। क्लीं को मातृका वर्णों से सम्पुटित करके इस मन्त्र से दश तत्त्व न्यास और मूर्ति पञ्जरन्यास करे। फिर सृष्टि, स्थिति, षडङ्ग और सायक आदि पूर्वोक्त न्यास करके सकल भुवनों के एकमात्र साक्षी श्रीमुकुन्द का इस प्रकार ध्यान करे ॥ ६-८ ॥

अथ भूधरोदधिपरिष्कृते महोन्नतशालगोपुरविशालवीथिके ।
मूलछन्नग्रसितसौधसंकुले मणिहर्म्यविस्तृतकवाटवेदिके ॥ ९ ॥

पर्वत, समुद्र और पृथिवी को सर्वत्र व्याप्त करने वाले, तथा मणि-रत्नों से निर्मित विशाल भवनों, गोपुरों, सभामण्डपों और विशाल सड़कों से युक्त अपने विस्तृत वैकुण्ठ लोक में प्रकाशमान श्रीकृष्ण का स्मरण करना चाहिये ॥ ६ ॥

द्विजभूपविट्चरणजन्मनां गृहैर्विविधैश्च शिल्पिजनवेश्मभिस्तथा ।
इभवाज्युरभ्रखरधेनुसौरभच्छगलालयैश्च लसिते सहस्रशः ॥१०॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के विविध प्रकार के रत्नों से जटित, श्रेष्ठ शिल्पियों द्वारा सुरुचिपूर्वक निर्मित तथा सहस्रों हाथी, घोडे, गाय, गर्दभ, बकरों से अलंकृत गृहों में श्रीकृष्ण की पूजा उपरोक्त नियमों के अनुसार करना चाहिये ॥ १० ॥

विविधापणाश्रितमहाजनाकुले क्रयविक्रयद्रविणसंचयाञ्चिते ।

जनमानसाकृतिविदग्धसुन्दरीजनमन्दिरैः सुरुचिरैश्च मण्डिते ।११।

महाजनों से संकुलित स्थानों, व्यापार तथा क्रय-विक्रय केन्द्रों, द्रव्य संचय के स्थानों आदि में सुरुचिपूर्वक निर्मित मन्दिरों में जहाँ पुरुष और स्त्री अधिक एकत्र होते हों, उल्लासपूर्वक श्रीकृष्ण की पूजा तथा उत्सव करना चाहिये ॥ ११ ॥

पृथुदीर्घिकाविमलपाथसि स्फुरद्विकचारविन्दमकरन्दलम्पटैः ।
कलहंससारसरथाङ्गनामभिर्विहगैर्विघुष्टककुभैःस्वके पुरे ॥ १२ ॥

यद्यपि श्रीकृष्ण सर्वव्यापी हैं, तथापि स्वच्छ जल के विशाल सरोवरों, झीलों और जलाशयों के ऐसे मनोहर तटों पर अधिक निवास करते हैं जो कलहंसों, सारसों, चक्रवाकों तथा अन्यान्य प्रकार के पक्षियों से संकुलित हों ॥ १२ ॥

स्मरपादपैः सुरभिपुष्पलोलुपभ्रमराकुलैर्विविधकामदैर्नृणाम् ।
शिवमन्दमारुतचलच्छिखैर्वृते मणिमण्डपे रविसहस्रसप्रभे ॥१३॥

मणिदीपितान्तरे तनुचित्रविस्तृतवितान-
शालिनि विलसिते विकस्वरविचित्रदामभिः ।
सुगन्धिगन्धसलिलोक्षितस्थले प्रमदाशतै-
र्मदनालसैः कवरिभारलोलचारुचामरैः ॥ १४ ॥

अभिसेविते स्खलितमञ्जुभाषिभिः स्तनभारभंगुरकृशावलग्नकैः ।
अधिवासधारमनिवार्यवर्षिणः सुमहानदामृतरसस्रुतेरधः ॥ १५ ॥

जहाँ कामिनियों में कामभावना जाग्रत करते हुये भ्रमर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों पर गुञ्जार करते हों, जहाँ मन्द-मन्द सुगन्धित पवन बह रहा हो, वहाँ मणिमण्डप में सहस्रों सूर्य के समान प्रभावाले श्रीकृष्ण का आवाहन करने से मनोकामनाओं की अधिक सरलता से पूर्ति होती है। जहाँ सुन्दर दीपमालिकायें प्रकाशित हों, जहाँ मृगों के समान कजरारे नेत्रों वाली, सुन्दर और विविध सुगन्ध-द्रव्यों से सुगन्धित शरीरवाली, पुष्पमाला धारण किये, प्रेमभाव से विभोर और कबरी भार से नत सैकड़ों युवतियाँ विस्तृत वितानों में एकत्र हों वहाँ श्रीकृष्ण शीघ्रता से प्रकट होते हैं। वह देवों की स्तुतियों से उतना

अधिक प्रसन्न नहीं होते जितना स्तनभार से दबी, क्षीणकटि सुन्दर युवतियों के मधुर भाषण से प्रसन्न होते हैं ॥ १३-१५ ॥

सुरपादपस्य मणिभूतलोल्लसत्-
पृथुसिंहवक्त्रचरणाम्बुजासने ।
अभिचिन्तयेत् सुखनिविष्टमच्युतं
नवनीलनीररुहकोमलच्छविम् ॥ १६ ॥

नवनीलकमल के समान छविवाले कल्पवृक्ष के नीचे सुन्दर विशाल सिंहासन पर पद्मासन में विराजमान श्री अच्युत का चिन्तन करना चाहिये ॥ १६ ॥

कुटिलाग्रकुन्तललसत्किरीटकं स्मितरत्नपुष्परचितावतंसकम् ।
सुललाटमुदञ्चितभ्रुवं मनोज्ञं विपुलायतविलोलचारुलोचनम् ॥१७॥
मणिमण्डलोप्तपरिदीप्तगण्डकं
नवबन्धुजीवकुसुमारुणाधरम् ।
स्मितचन्द्रिकोज्ज्वलितदिङ्मुखं स्फुरत्-
पुलकश्रमाम्बुकणमण्डिताननम् ॥ १८ ॥

स्फुरदंशुरत्नगणदीप्तभूषणोत्तमहारदामभिरुरस्थलीयकम् ।
घनसारकुंकुमविलिप्तविग्रहं पृथुदीप्तषड्द्वयभुजाविराजितम् ॥
अरुणाब्जनेत्रमङ्गजोन्मथिताङ्गमङ्कगसुशोभनकराम्बुजद्वयम् ॥१९॥

प्रदीप्त किरीट शिर पर धारण किये हुये जिनके कपोलों पर काली घुँघराली लटें लटक रही हैं, उन श्रीकृष्ण के नेत्र अत्यन्त विशाल और सुन्दर हैं; उनके माथे पर विविध आभूषण सुशोभित हैं, उनको अत्यन्त मोहक छवि है; उनके कुण्डल रत्नमण्डित हैं, और उनके अधरों पर मधुर मुस्कान है; मणियों और रत्नों से उनके कपोल प्रकाशित हैं; उनके अधर बन्धूक पुष्प के समान लाल हैं; उनकी सुन्दर और स्मित मुखछवि चारों ओर प्रसन्नता और उल्लास का प्रकाश बिखेर रही है; स्वयं अपने उल्लास के श्रम से उनके मुख पर स्वेद कण झलक रहे हैं;

उनके सम्पूर्ण शरीर पर कुंकुम, कपूर तथा अन्यान्य गन्ध द्रव्य लगे हैं; उनका वक्षःस्थल रत्नों और वनमाला से सुशोभित है; उनकी भुजायें अनेक प्रकार के प्रदीप्त आभूषणों से सुशोभित हैं; उदित होते हुये सूर्य के समान आभावाले कमल के समान उनके नेत्र हैं; उनके शरीर पर पीताम्बर है; लाल कमल के समान उनकी दोनों हथेलियाँ उनकी गोद में स्थित हैं और उनकी सम्पूर्ण छवि कामदेव के समान है—ऐसे श्रीकृष्ण लोगों को लज्जित होने से बचायें और सबकी रक्षा करें। ॥ १७-१९ ॥

स्वाङ्कस्थभीष्मकसुतोरुयुगान्तरस्थं
तां तप्तहेमरुचिमात्मकराम्बुजाभ्याम् ।
श्लिष्यन्तमार्द्रजघनामुपगूहमाना-
मात्मानमायलसत्करपल्लवाभ्याम् ॥ २० ॥

आनन्दोद्रेकनिघ्नां मुकुलितनयनेन्दीवरां चारुहासां
प्रोद्यद्रोमांचलग्न श्रमजलकणिकामौक्तिकालंकृताङ्गीं ।
आत्मन्यालीनबाह्यान्तरकरणगणामङ्कैर्निस्तरङ्गे
मज्जन्तं लोलनानामतिमतुलमहानन्दसन्दोहसिन्धौ ॥२१॥

स द्वाभ्यां युवतीभ्यां दिव्यदुकूलानुलेपननिर्मलाभ्याम् ।
मन्मथशरणयुताभ्यां मुखकमललोललोचनभ्रमराभ्याम् ॥ २२ ॥
भुजयुगलाश्लिष्टाभ्यां श्यामारुणललितकोमलाङ्गलताभ्याम् ।
आश्लिष्टमात्मदक्षिणवामगताभ्यां करोल्लसत्कमलाभ्याम् ॥२३॥

पृष्ठगतया कलिन्दसुतया करकमलयुजा
सम्परिरब्धमञ्जनरुचा च मदनमथितया ।
पद्मगदारथाङ्गजलजमृद्धु जयुगयुगलं
दोर्द्वयसंसक्तवंशविलसन्मुखसरसीरुहम् ॥ २४ ॥

दिक्षु बहिःसुरर्षियतिभिः भक्तिभारावनम्रतनुभिः ।
स्तुतिमुखरमुखैः सन्ततं सेव्यमानं कमललोचनम् ॥
ज्ञानविषयमर्थचतुष्टयप्रदं त्रिभुवनजनकम् ॥ २५ ॥

जिनके करकमलों की छत्रछाया में भीष्म तथा अन्य बड़े-बड़े योद्धा युगान्त तक सुरक्षित है, जिनकी महानता का सभी शास्त्र वर्णन करते हैं, जो तरल सुवर्ण के समान अपनी भुजाओं से गोपियों का आलिङ्गन किये हुये हैं, वह श्रीकृष्ण अपने लता के समान करकमलों से सबकी रक्षा करें। गोपियों को आह्लादित करनेवाले श्रीकृष्ण सबकी रक्षा करें। अपने हृदय में आनन्द की प्रारम्भिक अनुभूति से उल्लसित गोपियों को रोमाञ्च हो रहा है; उनके शरीर पर स्वेदविन्दु मोतियों के समान सुशोभित हैं, और उनका अन्तर-वाह्य दोनों प्रेम के सागर में लीन है—गोपियों को इस प्रकार आनन्दित करने वाले श्रीकृष्ण सब के भ्रमों का निवारण करके प्रकाश दिखायें। वासना और प्रेम से पूर्ण दो-दो गोपियों के साथ जिन्हें खड़ा देखा जाता है वह प्रसन्न होकर स्वयं अपने मुखारविन्द से उच्चरित शब्दों द्वारा भक्त को आशीर्वाद दें। भुजाओं और शरीर द्वारा गोपियों से आलिङ्गित होकर वह श्याम और अरुण लता के समान प्रतीत हो रहे हैं। उनके दोनों ओर एक-एक गोपी स्थित है। कमलों से सुशोभित यमुना के तट पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुये तथा हाथों से पकड़ कर अधरों पर रक्खी वेणु बजाते हुये श्रीकृष्ण अपने दिव्य स्वरूप का भक्तों को दर्शन दे रहे हैं। उनके चारों ओर देवर्षि ओर यतिगण प्रणत होकर उन कमल नेत्र और त्रिभुवनजनक की स्तुति करते हुये उनकी सेवा में अपने को समर्पित करके चतुर्वर्ग फल प्राप्त कर रहे हैं॥ २०-२५॥

सान्द्रानन्दसुधाब्धिमग्नममले धाम्निस्वकेऽवस्थितं
ध्यात्वैवं परमं पुमांसमनघात् सम्प्रेक्ष्य दीक्षागुरोः।
लब्ध्वामुं मनुमादरेण शितधीर्लक्षं जपेद्गोपितां
वार्ताकर्णनदर्शनादिरहितो मन्त्री गुरूणामपि॥ २६॥
जुहुयात्तद्दशांशं, सशर्करातिलक्षौद्रघृतेनपायसेन।
प्रथमोक्तपीठवर्यकेऽमुं प्रयजेदनित्यताविमुक्त्यै॥ २७॥
आरभ्य विभूतिमथ न्यसेत् क्रमतः शरान्तमभ्यर्च्य।
आद्येऽन्तरात्मानं विंशत्यर्णोदिते यन्त्रवरे॥ २८॥
मध्ये बीजं परितो वरुणेशयमेन्द्रदिक्षु संलिख्य।

पूर्वबीजचतुष्कंतदपि च चत्वारिंशद्भिरक्षरैर्द्व्यधिकैः ॥ २९ ॥
शिष्टैश्च प्रवेशे शिवहरिवह्न्याशास्त्रियुक्तांश्च विलिखेत् ।
वाङ्मयाश्रीभन्द्रास्तद्वह्वयोऽनुपालितालिखिताः ॥ ३० ॥
शेषं पूर्वोदितवत् विधाय पीठमधस्तादभ्यर्च्य ।
संकल्प्य मूर्तिमात्रमावाह्याभ्यर्च्य मध्यबीजे तत् ॥ ३१ ॥
मुखदक्षसव्यपृष्ठगबीजेष्वर्च्यास्तु शक्तयः क्रमशः
रुक्मिण्याद्याश्चषट्सुकोणेष्वङ्गानिकेसरेषुशरान् ॥ ३२ ॥
लक्ष्म्याद्यादलमध्येष्वग्न्यादिषुतद्बहिर्ध्वजप्रमुखान् ।
अग्र केतुं श्यामं पृष्ठे विप्रमरुणममलरक्तरुचम् ॥ ३३ ॥
पार्श्वद्वये निधीशानन्तौ तद्वदभिपूजयेत् क्रमशः ।
हेरम्बशास्तृद्वन्द्वविश्वक्सेनानधिदिक्षवहनाद्यम् ॥ ३४ ॥
विद्रुममरकतदूर्वास्वर्णाभान् बहिरथेन्द्रवज्राद्यान् ।
यजनविधानमितीरितमावृतिसप्तकयुतंमुकुन्दस्यः ॥ ३५ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अपने सघन आनन्द सुधाब्धि में मग्न और अपने विमल लोक में स्थित परंपुरुष श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करते हुये अपने दीक्षागुरु से उनके मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करने के बाद विमलबुद्धि साधक स्त्रियों को बिना देखे और उनके सम्बन्ध में किसी चर्चा को बिना सुने मन्त्र का एक लाख जप तथा शकर, तिल, घी और खीर से दशांश होम करे। तदुपरान्त अनित्य संसार से मुक्ति के लिये उनकी सतत उपासना करे। साधक को विंशत्यक्षर मन्त्र का एक यन्त्र बनाकर शरान्त पूजन के प्रारम्भ और अन्त में विभूति और आत्मा का न्यास करना चाहिये। यन्त्र के मध्य में मूलबीज लिख कर उत्तर, ईशान, नैऋत्य और पूर्व दिशाओं में चार अन्य बीजों को लिख कर यन्त्र को चालीस या छियालीस अक्षरों के मन्त्र से पूरा करना चाहिये। यन्त्र के दूसरी ओर शिव, अग्नि, वाग्भव, माया और श्रीमदादि के बीजमन्त्रों

को लिखे। तदुपरान्त संकल्पपूर्वक पीठपूजा तथा आवाहन करके मूलबीज में मूर्तियों की पूजा करे। दाहिने, बायें, सामने और पीछे के बीजों में क्रमशः रुक्मिणी तथा अन्य शक्तियों की पूजा करे। फिर षट्कोणों में अङ्गपूजा करके केसरों में शरों की पूजा करे। दलों में लक्ष्मी देवी की पूजा करके उदित होते सूर्य के अरुणनीलाभ वर्ण के समान इष्टदेवता के बाह्य और पृष्ठभाग में पूजा करे। दोनों पार्श्वों में क्रमशः कुबेर और गणेश की पूजा करे। फिर चारों दिशाओं में जनार्दन और वाहनों की पूजा करे। इसके बाद भूपुर के बाहर इन्द्रादि दिक्पालों और उनके समीप उनके आयुधों की पूजा करे। यह सब समाप्त करने के बाद मुक्तिदाता श्रीकृष्ण की सप्तविध पूजा नियमों के अनुसार पूरी करे ॥ २६-३५ ॥

इति श्रीनारद पञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में पञ्चम
रात्र का तृतीय अध्याय समाप्त।

पञ्चमरात्रे चतुर्थोऽध्यायः

श्री महादेव उवाच ।

इत्यर्चयन्नच्युतमादरेण योऽमुं जपेन्मन्त्रवरं यतात्मा ।
सोऽभ्यर्च्यते दिव्यजनैर्जनानां हृन्नेत्रपङ्केरुहतिग्मभानुः ॥१॥
सितशर्करोत्तरपयःप्रतिपत्त्या तर्पयेद्दिनमुखेदिनशस्तम् ।
सलिलैःशतं शतमखश्रियमेष स्वविभूत्युदन्वति करोत्युदविन्दुम् ।२।

विदलद्दलैःसुमनसः
सुमनोभिर्घनद्रवमग्नैः ।
मसुना ऽमुना हवनतोऽयुतसंख्यं
त्रिजगत्श्रेयः स मन्त्रावित् कविराट् स्यात् ॥ ३ ॥

श्री महादेव जी बोले : जो भक्ति और आदरपूर्वक इस प्रकार श्रीकृष्ण की पूजा और इस मन्त्र से होम करता है वह सूर्य के समान द्युतिमान तथा देवों का भी पूज्य बन जाता है। प्रतिदिन प्रातःकाल सफेद शर्करा और जल से श्रीहरि का तर्पण करने से इन्द्र के समान वैभव प्राप्त करके अन्त में साधक परम पद प्राप्त करता है। जो भक्त शान्तचित्त से उक्त मन्त्रश्रेष्ठ का जप और दश हजार होम करता है वह तीनों लोकों को शान्ति प्रदान करते हुये स्वयं कविराज हो जाता है ॥ १-३ ॥

ध्यानादेवास्यसद्यस्त्रिदशमृगदृशोवश्यतांयान्त्यवश्यं
कन्दर्पार्ताजपाद्यैःकिमथ न सुलभंमन्त्रतोऽस्यान्तरस्थं ।
स्पर्धामुद्धूय चित्तंमहदिदमपि नैसर्गिकींशश्वदेनं
सेवेतेमुंत्रिलक्षंसरसिजनिलयाधीश्वरीवापिवाचां ॥ ४ ॥
आधिव्याधिजरापमृत्युदुरितैर्भूतैः समस्तैर्विधिश्नो-
भाग्येन दरिद्रतादिभिरसौ दूरं विमुक्तैरिम् ।

सत्पुत्रैः सहितैश्च मित्रनिवहैर्जुष्टोऽखिलाभिः सदा

सम्पद्भिः परिपुष्टभूरियशसा जीवेदनेकाः समाः ॥ ५ ॥

देवता का उक्त रूप से ध्यान करने पर कामबाण से पीड़ित देव-कन्यायें साधक के पास आकर उसकी दासी बन जाती हैं। स्पर्धा को छोड़ कर मन्त्र का नियमानुसार ३ लाख जप और दैनिक पूजा करने से लक्ष्मी और सरस्वती दोनों साधक पर अनुग्रह करने के लिये तत्पर रहती हैं। इस प्रकार कार्य करने से मानसिक क्लेश, व्याधि, जरा, अपमृत्यु, दुर्भाग्य, और निर्धनता का निवारण, और श्रेष्ठ पुत्र, बन्धु-बान्धव, धन, यश तथा दीर्घजीवन प्राप्त होता है ॥ ४-५ ॥

अखिलमनुषु मन्त्रा वैष्णवा वीर्यवन्तो

महिततरफलाढ्यास्तेषु गोपालमन्त्राः ।

प्रबलतर इहैषोऽशिष्टसंमोहनाख्यो

मनुरनुपमसंपत्कल्पनाकल्पशाखी ॥ ६ ॥

मनुमिममतिहृद्यं यो भजेद्भक्तिनम्रो

जपहुतयजनाद्यैर्ध्यानवन्मन्त्रिमुख्यः ।

त्रुटितसकलकर्मग्रन्थिरुद्बुद्धचेता

व्रजति स तु पदं तन्नित्यशुद्धं मुरारेः ॥ ७ ॥

विष्णु मन्त्र सब मन्त्रों से अधिक शक्तिशाली है। विष्णु मन्त्रों में भी गोपाल मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ और लाभकारी फल देने वाला है। पुनः इससे भी अधिक शक्तिशाली सम्मोहनाख्य मन्त्र है जो तीनों लोकों को मोहित करता है और कल्पवृक्ष के समान सभी मनोरथों को पूर्ण करता है। जो इस अत्यन्त सुखदायक मन्त्र का भक्तिनम्र होकर जप, होम, पूजा और ध्यान करता है वह कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर श्रीहरि के नित्य शुद्ध लोक को प्राप्त करता है ॥ ६-७ ॥

अङ्गीकृत्यैकमेषां मनुमथ जपहोमार्चनाद्यैर्मनूना-

मष्टाङ्गोत्सारितारिःप्रमुदितपरिशुद्धोपसन्नान्तरात्मा ।

योगी युञ्जीत योगान् समुदितविकृतिः स पुरोधाकृतिः सन् ।

आत्मन्याधाय चित्तं विषयसमसुखोन्मीलिताक्षो निविष्टः ॥८॥

पुनः, उपरोक्त मन्त्रों में से किसी भी मन्त्र को ग्रहण करके जप, होम, और पूजा करने से साधक सर्वथा शुद्ध और विमलबुद्धि होकर योगी हो जाता है। वह अपने मन को नियन्त्रित करके चित्तको आत्म-ध्यान में लगाकर ब्रह्म सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ८ ॥

विश्वं भूतेन्द्रियान्तःकरणयमिवेन्दुस्वरूपं समस्तं
वर्णात्मैतत्प्रधाने कलनलयभये बीजरूपे ध्रुवेण ।
नीत्वा तत् पुंसि विश्वात्मनि तमपि परालम्बने कालतत्त्वे
तं वै शक्तौ चिदामून्यपि नयतु चन्द्रांशके वा निशान्ते ।९।

निशा या निशान्त में साधक को समय तत्त्व की सार्थकता का विचार करते हुये उन विश्वात्मा श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिये जो सभी प्राणियों की इन्द्रियों और अन्तरात्माओं को प्रकाशित करते हैं ॥९॥

निर्द्वन्द्वे निर्विशेषेनिरतिशयमहानन्दसान्द्रेवसानो
नापार्थेकृष्णपूर्वामलसहितपरे शाश्वतेऽभ्यासनीयं ।
सूक्ष्मं संकृष्य बीजोत्तममथ शनकैर्नीतनिश्वासचेताः
प्रक्षीणापुण्यपुण्योनिरुपमसुखसंवित्स्वरूपः सभूयात् ॥१०॥

निर्द्वन्द्व, निर्विशेष, निरतिशय, सघन महानन्द में निरन्तर निरत, अत्यन्त सूक्ष्म जीवों तक के भी हृदय को आकर्षित करने वाले और इस कारण कृष्ण नामधारी श्रीकृष्ण का एकाग्र चित्त से ध्यान करने से वह पुण्यवान भक्त को आत्मज्ञान प्रदान करते हैं ॥ १० ॥

मूलाधारे त्रिकोणे तरुणतरणिभे भास्वरेविभ्रमन्तं
बालार्कालोकलोलंजरठतरकुरङ्गाङ्ककोटिप्रभाभिः ।
विद्युन्मालासहस्रद्युतिरुचिरहसद्बन्धुजीवाभिरामं
त्रैगुण्याक्रान्तबिन्दुंजगदुदयलयावेकहेतुंविचिन्त्य ॥ ११ ॥
तस्योर्ध्वेविस्फुरन्तींस्फुटरुचिरतडित्पुञ्जभांभास्वदन्त-
मुद्गच्छन्तींसुषुम्णासरणिमनुशिखामाललाटेन्दुबिम्बम् ।
चिन्मात्रांसूक्ष्मरूपांकलितसकलविश्वांकलानादगर्भ्यां
मूलंयासर्वधाम्नां स्मरतुनिरुपमां हुंकृतीदाश्विरंवः ॥ १२ ॥

नीत्वा तां शनकैरधोमुखसहस्राब्जारुणाम्भोदधे
द्योतत्पूर्णशशाङ्कबिम्बमनुतः पीयूषधारास्रुतिम् ।
वक्त्रामन्त्रमयीं निपीय च सुधानिःस्यन्दरूपां
विशेद्ध्योऽप्यात्मनिकेतनंपुनरपिव्युत्थायपीत्वाविशेत् ॥१३॥

मूलाधार चक्रस्थ त्रिकोण में स्थित उदित होते सूर्य के समान द्युतिमान और विद्युत के समान सहस्रों रश्मियों से युक्त, बन्धुजीव पुष्प के समान अरुणवर्ण, त्रिगुणों से युक्त तथा विश्व की सृष्टि और लय के कारणभूत विन्दुबीज का ध्यान करना चाहिये। उसके ऊपर निरूपमा का चिन्तन और ध्यान करने से सभी कष्टों का निवारण होता है। निरूपमा देवी 'हुं'-स्वरूप, दस हजार विद्युतों के समान प्रदीप्त, अत्यन्त सूक्ष्म, चिन्मय, हुंकारकारिणी, सुषुम्ना में स्थित, तीन मात्रावाली, विश्वको धारण करने वाली, कला और नादगम्य, सम्पूर्ण जगत, भुवनों और धामों की मूल है। साधक को इस कुण्डलिनी देवी को मुलाधार से उठा कर सहास्रार में स्थित और सहस्रों सूर्य के समान द्युतिमान परम पुरुष से मिलाना तथा वहां अमृत को धारा का पान कराना चाहिये। जब उस अमृत को पान करके यह मूलाधार में लौट आये तब नियमानुसार इसे पुनः ऊपर ले जाना चाहिये॥ ११-१३॥

योऽभ्यस्यत्यनुदिनमेवमात्मनामुं
बीजोत्थान्दुरितजरापमृत्युरोगान् ।
जित्वाऽसौ स्वयमिव मूर्तिमाननङ्गः
संजीवेच्चिरमलिनीलकेशजालः॥ १४॥

स्फुटमधुरपदार्णश्रेणिरत्यद्भुतार्था
झटिति वदनपद्मान्निःसरत्यस्य वाणी ।
अपिच सकलमन्त्रास्तस्य सिद्ध्यन्ति संक्षु-
ब्धपरमघनसौख्यैकास्पदं वर्तते सः॥ १५॥

जो प्रतिदिन ऐसा अभ्यास करता हुआ पूजन करता है वह समस्त दुरितों, वृद्धावस्था, और अपमृत्यु से मुक्त को कर कन्दर्प के समान सुन्दर तथा काले बालों वाला हो जाता है। वह अत्यन्त मधुर, प्रिय और अद्भुत शब्दों का उच्चारण करता है। सभी मन्त्र उसके लिये सिद्ध

हो जाते हैं और श्रेष्ठ समृद्धि प्राप्त करते हुये वह सब का योग्य सखा हो जाता है ॥ १४-१५ ॥

आभ्यन्मूर्त्ति मूलचक्रादनङ्गं श्रीभिर्भाभीरक्तपीयूषयुग्भिः ।
विश्वाकाशं पूरयन्तं विचिन्त्य प्रत्यावेश्यास्तत्र वश्यायसाध्याः १६

नार्यो नरा वा नगरी सभा वा
प्रवेशितास्तत्र निषक्तचेतसः ।
स्युः किंकरास्तस्य झटित्यनारतं
चिराय तन्निघ्नधियो न संशयः ॥ १७ ॥

तरणिदलसनाथे शक्रगोपारुणे यो
रविशशिशिखिबिम्बप्रस्फुरद्वारुमध्ये ।
हृदयसरसिजेऽमुं श्यामलाङ्गं सुवेशं
ससुखमुपनिषण्णं संस्मरेद्वासुदेवम् ॥ १८ ॥

समस्त लोक जिनके दास और जिनकी साधना में रत हैं उन सर्वत्र गमन करने वाले, सम्पूर्ण लोकों को अमृतत्व, सुन्दरता और श्री से पूर्ण करने वाले अनङ्ग देव का भक्त को ध्यान करना चाहिये। ऐसा भक्त जिस भी स्त्री, पुरुष के पास या नगर और सभा में जाता है वह सभी उसके दास और सदा के लिये उसके आज्ञाकारी हो जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। वह श्रीकृष्ण वासुदेव को जान लेता है जो चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशमान हैं; जिनका शरीर श्यामवर्ण है, जिनके केश अत्यन्त सुन्दर हैं, जो हृदयकमल में प्रसन्नतापूर्वक विराजमान होते हैं। साधक को इस प्रकार पुनः पुनः उनका स्मरण करना चाहिये। ॥ १६-१८ ॥

पादाम्भोजद्वयेऽङ्गुल्यमलकिशलयेस्वावनौसन्नखानां
सद्धर्मोदारकान्तौप्रपदयुजिलसज्जङ्घिकादण्डयोश्च ।
जान्वोरूर्वोःप्रसङ्गेनववसनवरेमेखलादाम्निनाभौ
रोमावल्यामुदारोदरभुविविपुलेवक्षसिप्रौढहारे ॥ १९ ॥
श्रीवत्सकौस्तुभावस्फुटकमललसद्वन्द्वसद्धाम्नि-
बाह्वोर्मूले केयूरदीप्ते जगदवनपटोर्दोर्द्वये कङ्कणाढ्ये ।

पाणिद्वन्द्वांगुलिषु मधुरालीनविश्वे च वेणौ
कण्ठे सत्कुण्डलाग्रेस्फुटरुचिरमणौदीप्तगण्डस्थले च ॥ २० ॥
किस्तुद्वन्द्वे च शोणेनयननलिनयोर्भ्रू विलासेललाटे
केशेष्वालोलबर्हेष्वतिसुरभिमनोज्ञप्रसूनोत्पलेषु ।
शोणे विन्यस्तवेणावधरकिशलये दन्तपंक्त्यां स्मितास्य
ज्योत्स्नायामादिपुंसः क्रमत इति शनैः स्वं मनः संनिधत्ताम् २१

उनके (श्रीकृष्ण के) दोनों चरणों पर, विभिन्न आभूषणों से सुशोभित उनकी अँगुलियों और नखों पर, उनके दोनों जानुओं पर, उनकी नाभि पर, वलयाकार उदर पर, श्रीवत्स और कौस्तुभ से अलंकृत उनके विशाल वक्ष पर स्थित हार पर, कमल नाल के समान कोमल उनकी कलाइयों पर, जगत के पालन में सतत रत और विविध प्रकार के आभूषणों से सुशोभित उनके हाथों पर, कंकण से अलंकृत उनके करयुग्म पर, उनकी वेणु पर, उनके कण्ठ पर, कुण्डलो से अलंकृत उनके कपोलों पर, सुन्दर भौहों से सुशोभित उनके चञ्चल नेत्रों पर, विभिन्न रंगों से रञ्जित उनको मोरशिखा पर, सुन्दर पुष्पों से अलंकृत उनके मनोहर केशों पर, वेणु से सुशोभित उनके अधरों पर, मुस्कराते हुये उनकी दंतपंक्तियों पर तथा इस प्रकार उनके सम्पूर्ण शरीर पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये ॥१६-२१॥

यावन्मनो विलयमेति हरेरुदारे
मन्दस्मिते जपतु तावदनङ्गबीजम् ।
अष्टादशार्णमथवापि दशार्णकं वा
मन्त्रं शनैरथ जपेत्समयेस्वनिष्ठः ॥ २२ ॥
आरोप्यारोप्य मनः पदारविन्दादि मन्दहसितान्तम् ।
तत्र विलाप्यं क्षीणे चेत् सुखाचत्सदात्मको भवति ॥ २३ ॥

जब तक साधक का मन श्रीहरि के मधुर-मनोहर मुस्कानों में विलीन नहीं हो जाता तब तक उसे कामबीज का जप करना चाहिये। फिर कालान्तर में उसे यथासमय शुद्ध भक्तिपूर्वक अष्टादशार्ण मन्त्र का जप करना चाहिये। जब मन बिल्कुल स्थिर हो जाय तथा साधक को

परमात्मा के प्रति अपनी अनुरक्ति का ज्ञान हो जाय और उसे उसमें आनन्द की अनुभूति होने लगे तब उसे उनके (श्रीकृष्ण के) चरण कमलों से लेकर उनकी मुस्कान तक का चिन्तन करते हुये शान्त हो जाना चाहिये ॥२२-२३॥

न्यासजपहोमपूजा तर्पणमन्त्राभिषेकविनियोगानाम् ।
दीपिकाकारमयोद्भावित क्रमः कृष्णमन्त्रगणकथितानाम् ॥ २४ ॥
संशयतिमिरच्छिदुराऽशेषाऽक्रमदीपिका करेण महद्भिः ।
करदीपिकेव धार्या सस्नेहमहर्निशं समस्तसुखाप्त्यै ॥ २५ ॥

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र के न्यास, जप, होम, पूजा, तर्पण, मन्त्र दीक्षा, और विनियोग पर टीकाकारों ने बल दिया है। क्रम का पालन करते हुये साधकों को अपने हृदय में एक ज्योति के समान उनका ध्यान करते हुये संसार के अन्धगर्त से बचने के लिये रात-दिन सान्द्र आनन्द प्राप्त करना चाहिये ॥२४-२५॥

यश्चक्रं निजकेलिसाधनमधिष्ठानस्थितोऽपि प्रभुर्दत्तं
मन्मथशत्रुणाऽवनकृते व्याकुललोकोत्तरम् ।
धत्ते दीप्तनवेन्दुभानुनयनोपेताद्भमायं ध्रुवं
वन्दे कायविमर्दनं बधकृतां भक्तिप्रदं यादवम् ॥२६॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

यदुवंशनाथ, भक्तिदाता, स्वयं अपने में अधिष्ठित किन्तु आत्मकेलि हेतु चक्र धारण करने वाले, कन्दर्प के महान शत्रु महादेव को लोकोत्तर प्राणियों का आधिदेवत्व प्रदान करने वाले यादव श्रीकृष्ण की मैं पुनः पुनः बन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में
पञ्चमरात्र का चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

पञ्चमरात्रे पञ्चमोऽध्यायः

मन्त्रनामरहस्यम्

श्रीपार्वत्युवाच ।

देव देव जगन्नाथ भक्तानुग्रहकारक ।
यद्यस्ति मयि कारुण्यं मयि यद्यस्ति ते दया ॥ १ ॥
यद्यत् त्वया प्रगदितं तत् सर्वं मे श्रुतं प्रभो ।
गुह्याद्‌गुह्यतरं यत्तु यत्ते मनसि काशते ॥ २ ॥
त्वया न गदितं यत्तु यस्मै कस्मै कदाचन ।
तन्मां कथय देवेश सहस्रं नाम चोत्तमम् ॥ ३ ॥
श्रीराधाया महादेव्या गोप्या भक्तिप्रसाधनम् ।
ब्रह्माण्डकर्त्री हर्त्री सा कथं गोपीत्वमागता ॥ ४ ॥

श्री पार्वती बोलीं : हे देवदेव, जगन्नाथ, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले ! यदि आपके हृदय में मेरे लिये कुछ करुणा और दया हो तो हे देवेश ! कृपा कर मुझे श्रीराधिका के उत्तम सहस्र नाम को बतायें। आपने अब तक जो बताया है वह सब मैंने सुना। अब मैं आपके मन में प्रकाशित होने वाले उस गुह्यातिगुह्य रहस्य को सुनाना चाहता हुँ। जिसे आपने पहले कभी भी नहीं कहा है। महादेवी गोपी श्रीराधिका के सहस्रनाम किस प्रकार भक्ति के साधन बन गये हैं, और वह ब्रह्माण्डकर्त्री तथा हर्त्री किस प्रकार गोपी के रूप में प्रकट हुईं—यह सब आप मुझे बतायें ॥ १-४ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु देवि विचित्रार्थां कथां पापहरां शुभाम् ।
नास्ति जन्मानि कर्माणि तस्या नूनं महेश्वरि ॥ ५ ॥
यदा हरिश्चरित्राणि कुरुते कार्यगौरवात् ।

तदा विधातृरूपाणि हरिसान्निध्यसाधिनी ॥ ६ ॥
तस्या गोपीत्वभावस्य कारणं गदितं पुरा ।
इदानीं शृणु देवेशि नाम्नां चैव सहस्रकम् ॥ ७ ॥

श्री महादेवजी बोले : हे देवी, परमेश्वरी ! अब उस विचित्र अर्थ वाली, पापहारक और शुभ कथा को सुनो। हे महेश्वरी ! उनके लिये न तो जन्म है और न कर्म। जब श्रीहरि अपने कार्यगौरव के लिये स्वयं अवतार लेते हैं तब वे हरिसान्निध्यसाधिनी भी विधातृ के रूप में अवतार लेती हैं। हे देवेशि ! उनके गोपीरूप ग्रहण करने का कारण मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। अब उनके सहस्रनामों को सुनो ॥ ५-७ ॥

यन्मया कथितं नैव तन्त्रेष्वपि कदापि न ।
तव स्नेहात् प्रवक्ष्यामि भक्त्या धार्यं मुमुक्षुभिः ॥ ८ ॥
मम प्राणसमा विद्या भाव्यते मे त्वहर्निशम् ।
शृणुष्व गिरिजे नित्यं पठस्व च यथामति ॥ ९ ॥
यस्याः प्रसादात् कृष्णस्तु गोलोकेशः परःप्रभुः ।
अस्या नामसहस्रस्य ऋषिर्नारद एव च ॥ १० ॥
देवी राधा परा प्रोक्ता चतुर्वर्गप्रसाधिनी ।

अब मैं तुम्हारे स्नेह के कारण वह बता रहा हूँ जिसे मुमुक्षुओं को भक्तिपूर्वक धारण करना चाहिये और जिसे पहले किसी भी तन्त्र में नहीं कहा गया है। यह विद्या मेरे प्राण के समान है और मैं अहर्निश इसका ध्यान करता हूँ। हे गिरिजे ! अब अपनी इच्छा के अनुसार उसे सुनो तथा उसका ध्यानपूर्वक नित्य पाठ करो। उन्हीं (राधिका) के प्रसाद से गोलोकेश श्रीकृष्ण परमप्रभु हुये हैं। उनके इस सहस्रनाम के ऋषि नारद हैं और चतुर्वर्गप्रसाधिनी राधा उसकी परा देवी हैं। सहस्रनाम इस प्रकार है ॥ ८-१०½ ॥

ॐ श्रीराधा राधिका कृष्णवल्लभा कृष्णसंयुता ॥ ११ ॥
वृन्दावनेश्वरी कृष्णप्रिया मदनमोहनी ।
श्रीमती कृष्णकान्ता च कृष्णानन्दप्रदायिनी ॥ १२ ॥

यशस्विनी यशोगम्या यशोदानन्दवल्लभा ।
दामोदरप्रिया गोपी गोपानन्दकरी तथा ॥ १३ ॥
कृष्णाङ्गवासिनी हृद्या हरिकान्ता हरिप्रिया ।
प्रधानगोपिका गोपकन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ १४ ॥
वृन्दावनविहारी च विकाशितमुखाम्बुजा ।
गोकुलानन्दकर्त्री च गोकुलानन्ददायिनी ॥ १५ ॥
गतिप्रदा गीतगम्या गमनागमनप्रिया ।
विष्णुप्रिया विष्णुकान्ता विष्णोरङ्गनिवासिनी ॥ १६ ॥
यशोदानन्दपत्नी च यशोदानन्दगेहिनी ।
कामारिकान्ता कामेशी कामलालसविग्रहा ॥ १७ ॥
जयप्रदा जया जीवा जीवानन्दप्रदायिनी ।
नन्दनन्दनपत्नी च वृषभानुसुता शिवा ॥ १८ ॥
गणाध्यक्षा गवाध्यक्षा गवां गतिरनुत्तमा ।
काञ्चनाभा हेमगात्रा काञ्चनाङ्गदधारिणी ॥ १९ ॥
अशोका शोकरहिता विशोका शोकनाशिनी ।
गायत्री वेदमाता च वेदातीता विदुत्तमा ॥ २० ॥
नीतिशास्त्रप्रिया नीतिगतिर्मतिरभीष्टदा ।
वेदप्रिया वेदगर्भा वेदमार्गप्रवर्धिनी ॥ २१ ॥
वेदगम्या वेदपरा विचित्रकनकोज्ज्वला ।
तथोज्ज्वलप्रदा नित्या तथैवोज्ज्वलगात्रिका ॥ २२ ॥
नन्दप्रिया नन्दसुताराध्याऽऽनन्दप्रदा शुभा ।
शुभाङ्गी विमलाङ्गी च विलासिन्यपराजिता ॥ २३ ॥
जननी जन्मशून्या च जन्ममृत्युजरापहा ।
गतिर्गतिमतां धात्री धात्रानन्दप्रदायिनी ॥ २४ ॥
जगन्नाथप्रिया शैलवासिनी हेमसुन्दरी ।

किशोरी कमला पद्मा पद्महस्ता पयोदृदा ॥ २५ ॥
पयस्विनी पयोदात्री पवित्रा सर्वमङ्गला ।
महाजीवप्रदा कृष्णकान्ता कमलसुन्दरी ॥ २६ ॥
विचित्रवासिनी चित्रवासिनी चित्ररूपिणी ।
निर्गुणा सुकुलीना च निष्कुलीना निराकुला ॥ २७ ॥
गोकुलान्तरगेहा च योगानन्दकरी तथा ।
वेणुवाद्या वेणुरतिर्वेणुवाद्यपरायणा ॥ २८ ॥
गोपालस्य प्रिया सौम्यरूपा सौम्यकुलोद्वहा ।
मोहाऽमोहा विमोहा च गतिनिष्ठा गतिप्रदा ॥ २९ ॥
गीर्वाणवन्द्या गीर्वाणा गीर्वाणगणसेविता ।
ललिता च विशोका च विशाखाचित्रमालिनी ॥ ३० ॥
जितेन्द्रिया शुद्धसत्त्वा कुलीना कुलदीपिका ।
दीपप्रिया दीपदात्री विमला विमलोदका ॥ ३१ ॥
कान्तारवासिनी कृष्णा कृष्णचन्द्रप्रिया मतिः ।
अनुत्तरा दुःखहन्त्री दुःखकर्त्री कुलोद्वहा ॥ ३२ ॥
मतिर्लक्ष्मीर्धृतिर्लज्जा कान्तिःपुष्टिःस्मृतिःक्षमा ।
क्षीरोदशायिनी देवी देवारिकुलमर्दिनी ॥ ३३ ॥
वैष्णवी च महालक्ष्मीः कुलपूज्या कुलप्रिया ।
संहर्त्री सर्वदैत्यानां सावित्री वेदगामिनी ॥ ३४ ॥
वेदातीता निरालम्बा निरालम्बगणप्रिया ।
निरालम्बजनैः पूज्या निरालोका निराश्रया ॥ ३५ ॥
एकाङ्गा सर्वगा सेव्या ब्रह्मपत्नी सरस्वती ।
रासप्रिया रासगम्या रासाधिष्ठातृदेवता ॥ ३६ ॥
रसिका रसिकानन्दा स्वयं रासेश्वरी परा ।
रासमण्डलमध्यस्था रासमण्डलशोभिता ॥ ३७ ॥

रासमण्डलसेव्या च रासक्रीडामनोहरा ।
पुण्डरीकाक्षनिलया पुण्डरीकाक्षगेहिनी ॥ ३८ ॥
पुण्डरीकाक्षसेव्या च पुण्डरीकाक्षवल्लभा ।
सर्वजीवेश्वरी सर्वजीववन्द्या परात्परा ॥ ३९ ॥
प्रकृतिः शम्भुकान्ता च सदाशिवमनोहरा ।
क्षुत्पिपासादयानिद्राभ्रान्तिःश्रान्तिःक्षमाकुला ॥ ४० ॥
बधूरूपा गोपपत्नी भारती सिद्धयोगिनी ।
सत्यरूपा नित्यरूपा नित्याङ्गी नित्यगेहिनी ॥ ४१ ॥
स्थानदात्री तथा धात्री महालक्ष्मीः स्वयंप्रभा ।
सिन्धुकन्या स्थानदात्री द्वारकावासिनी तथा ॥ ४२ ॥
बुद्धिः स्थितिः स्थानरूपा सर्वकारणकारणा ।
भक्तिप्रिया भक्तगम्या भक्तानन्दप्रदायिनी ॥ ४३ ॥
भक्तकल्पद्रुमातीता तथातीतगुणा तथा ।
मनोऽधिष्ठातृदेवी च कृष्णप्रेमपरायणा ॥ ४४ ॥
निरामया सौम्यदात्री तथा मदनमोहनी ।
एकानंशा शिवा क्षेमा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ४५ ॥
ईश्वरी सर्ववन्द्या च गोपनीया शुभंकरी ।
पालिनी सर्वभूतानां तथा कामाङ्गहारिणी ॥ ४६ ॥
सद्यो मुक्तिप्रदा देवी वेदसारा परात्परा ।
हिमालयसुता सर्वा पार्वती गिरिजा सती ॥ ४७ ॥
दक्षकन्या देवमाता मन्दलज्जा हरेस्तनुः ।
वृन्दारण्यप्रिया वृन्दा वृन्दावनविलासिनी ॥ ४८ ॥
विलासिनी वैष्णवी च ब्रह्मलोकप्रतिष्ठिता ।
रुक्मिणी रेवती सत्यभामा जाम्बवती तथा ॥ ४९ ॥

सुलक्षणा मित्रविन्दा कालिन्दी जह्नुकन्यका ।
परिपूर्णा पूर्णतरा तथा हैमवती गतिः ॥ ५० ॥
अपूर्वा ब्रह्मरूपा च ब्रह्माण्डपरिपालिनी ।
ब्रह्माण्डभाण्डमध्यस्था ब्रह्माण्डभाण्डरूपिणी ॥ ५१ ॥
अण्डरूपाऽण्डमध्यस्था तथाण्डपरिपालिनी ।
अण्डबाह्याऽण्डसंहर्त्री शिवब्रह्महरिप्रिया ॥ ५२ ॥
महाविष्णुप्रिया कल्पवृक्षरूपा निरन्तरा ।
सारभूता स्थिरा गौरी गौराङ्गी शशिशेखरा ॥ ५३ ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा शशिकोटिसमप्रभा ।
मालतीमाल्यभूषाढ्या मालतीमाल्यधारिणी ॥ ५४ ॥
कृष्णस्तुता कृष्णकान्ता वृन्दावनविलासिनी ।
तुलस्यधिष्ठातृदेवी संसारार्णवपारदा ॥ ५५ ॥
सारदाऽऽहारदाऽम्भोदा यशोदा गोपनन्दिनी ।
अतीतगमना गौरी परानुग्रहकारिणी ॥ ५६ ॥
करुणार्णवसम्पूर्णा करुणार्णवधारिणी ।
माधवी माधवमनोहारिणी श्यामवल्लभा ॥ ५७ ॥
अन्धकारभयध्वस्ता मङ्गल्या मङ्गलप्रदा ।
श्रीगर्भा श्रीप्रदा श्रीशा श्रीनिवासाऽच्युतप्रिया ॥ ५८ ॥
श्रीरूपा श्रीहरा श्रीदा श्रीकामा श्रीस्वरूपिणी ।
श्रीदामानन्ददात्री च श्रीदामेश्वरवल्लभा ॥ ५९ ॥
श्रीनितम्बा श्रीगणेशा श्रीस्वरूपाश्रिता श्रुतिः ।
श्रीक्रियारूपिणी श्रीला श्रीकृष्णभजनान्विता ॥ ६० ॥
श्रीराधा श्रीमती श्रेष्ठा श्रेष्ठरूपा श्रुतिप्रिया ।
योगेशा योगमाता च योगातीता युगप्रिया ॥ ६१ ॥
योगप्रिया योगगम्या योगिनीगणवन्दिता ।

जवाकुसुमसंकाशा दाडिमीकुसुमोपमा ॥ ६२ ॥
नीलाम्बरधरा धीरा धैर्यरूपधरा धृतिः ।
रत्नसिंहासनस्था च रत्नकुण्डलभूषिता ॥ ६३ ॥
रत्नालंकारसंयुक्ता रत्नमाल्यधरा परा ।
रत्नेन्द्रसारहाराढ्या रत्नमालाविभूषिता ॥ ६४ ॥
इन्द्रनीलमणिन्यस्तपादपद्मशुभा शुचिः ।
कार्त्तिकी पौर्णमासी च अमावस्या भयापहा ॥ ६५ ॥
गोविन्दराजगृहिणी गोविन्दगणपूजिता ।
वैकुण्ठनाथगृहिणी वैकुण्ठपरमालया ॥ ६६ ॥
वैकुण्ठदेवदेवाढ्या तथा वैकुण्ठसुन्दरी ।
मदालसा वेदवती सीता साध्वी पतिव्रता ॥ ६७ ॥
अन्नपूर्णा सदानन्दरूपा कैवल्यसुन्दरी ।
कैवल्यदायिनी श्रेष्ठा गोपीनाथमनोहरा ॥ ६८ ॥
गोपीनाथेश्वरी चण्डी नायिकानयनान्विता ।
नायिका नायकप्रीता नायकानन्दरूपिणी ॥ ६९ ॥
शेषा शेषवती शेषरूपिणी जगदम्बिका ।
गोपालपालिका माया जायाऽऽनन्दप्रदा तथा ॥ ७० ॥
कुमारी यौवनानन्दा युवती गोपसुन्दरी ।
गोपमाता जानकी च जनकानन्दकारिणी ॥ ७१ ॥
कैलासवासिनी रम्भा वैराग्यकुलदीपिका ।
कमलाकान्तगृहिणी कमला कमलालया ॥ ७२ ॥
त्रैलोक्यमाता जगतामधिष्ठात्री प्रियाऽम्बिका ।
हरकान्ता हररता हरानन्दप्रदायिनी ॥ ७३ ॥
हरपत्नी हरप्रीता हरतोषणतत्परा ।
हरेश्वरी रामरता रामा रामेश्वरी रमा ॥ ७४ ॥

श्यामला चित्रलेखा च तथा भुवनमोहिनी ।
सुगोपी गोपवनिता गोपराज्यप्रदा शुभा ॥ ७५ ॥
अङ्गावपूर्णा माहेयी मत्स्यराजसुता सती ।
कौमारी नारसिंही च वाराही नवदुर्गिका ॥ ७६ ॥
चञ्चला चञ्चलामोदा नारी भुवनसुन्दरी ।
दक्षयज्ञहरा दाक्षी दक्षकन्या सुलोचना ॥ ७७ ॥
रतिरूपा रतिप्रीता रतिश्रेष्ठा रतिप्रदा ।
रतिर्लक्ष्मणगेहस्था विरजा भुवनेश्वरी ॥ ७८ ॥
शङ्कास्पदा हरेर्जाया जामातृकुलवन्दिता ।
बकुला बकुलामोदधारिणी यमुना जया ॥ ७९ ॥
विजया जयपत्नी च यमलार्जुनभञ्जिनी ।
वक्रेश्वरी वक्ररूपा वक्रवीक्षणवीक्षिता ॥ ८० ॥
अपराजिता जगन्नाथा जगन्नाथेश्वरी यतिः ।
खेचरी खेचरसुता खेचरत्वप्रदायिनी ॥ ८१ ॥
विष्णुवक्षःस्थलस्था च विष्णुभावनतत्परा ।
चन्द्रकोटिसुगात्री च चन्द्राननमनोहरा ॥ ८२ ॥
सेवासेव्या शिवा क्षेमा तथा क्षेमकरी वधूः ।
यादवेन्द्रवधूः सेव्या शिवभक्ता शिवान्विता ॥ ८३ ॥
केवला निष्कला सूक्ष्मा महाभीमाऽभयप्रदा ।
जीमूतरूपा जैमूती जितामित्रप्रमोदिनी ॥ ८४ ॥
गोपालवनिता नन्दा कुलजेन्द्रनिवासिनी ।
जयन्ती यमुनाङ्गी च यमुनातोषकारिणी ॥ ८५ ॥
कलिकल्मषभङ्गा च कलिकल्मषनाशिनी ।
कलिकल्मषरूपा च नित्यानन्दकरी कृपा ॥ ८६ ॥
कृपावती कुलवती कैलासाचलवासिनी ।

वामदेवी वामभागा गोविन्दप्रियकारिणी ॥ ८७ ॥
नरेन्द्रकन्या योगेशी योगिनी योगरूपिणी ।
योगसिद्धा सिद्धरूपा सिद्धिक्षेत्रनिवासिनी ॥ ८८ ॥
क्षेत्राधिष्ठातृरूपा च क्षेत्रातीता कुलप्रदा ।
केशवानन्ददात्री च केशवानन्ददायिनी ॥ ८९ ॥
केशवा केशवप्रीता केशवी केशवप्रिया ।
रासक्रीडाकरी रासवासिनी राससुन्दरी ॥ ९० ॥
गोकुलान्वितदेहा च गोकुलत्वप्रदायिनी ।
लवङ्गनाम्नी नारङ्गी नारङ्गकुलमण्डना ॥ ९१ ॥
एलालवङ्गकर्पूरमुखवासमुखान्विता ।
मुख्या मुख्यप्रदा मुख्यरूपा मुख्यनिवासिनी ॥ ९२ ॥
नारायणी कृपातीता करुणामयकारिणी ।
कारुण्या करुणा कर्णा गोकर्णा नागकर्णिका ॥ ९३ ॥
सर्पिणी कौलिनी क्षेत्रवासिनी जगदन्वया ।
जटिला कुटिला नीला नीलाम्बरधरा शुभा ॥ ९४ ॥
नीलाम्बरविधात्री च नीलकण्ठप्रिया तथा ।
भगिनी भागिनी योग्या कृष्णभोग्या भगेश्वरी ॥ ९५ ॥
बलेश्वरी बलाराध्या कान्ता कान्तनितम्बिनी ।
नितम्बिनी रूपवती युवती कृष्णपीवरी ॥ ९६ ॥
विभावरी वेत्रवती संकटा कुटिलालका ।
नारायणप्रिया शैला सृक्वणीपरिमोहिता ॥ ९७ ॥
दृक्पातमोहिता प्रातराशिनी नवनीतिका ।
नवीना नवनारी च नारङ्गफलशोभिता ॥ ९८ ॥
हैमी हेममुखी चन्द्रमुखी शशिसुशोभना ।
अर्धचन्द्रधरा चन्द्रवल्लभा रोहिणी तमिः ॥ ९९ ॥

तिमिङ्गिलकुलामोदमत्स्यरूपाऽङ्गहारिणी ।
कारणी सर्वभूतानां कार्यातीता किशोरिणी ॥ १०० ॥
किशोरवल्लभा केशकारिका कामकारिका ।
कामेश्वरी कामकला कालिन्दीकुलदीपिका ॥ १०१ ॥
कलिन्दतनयातीरवासिनी तीरगेहिनी ।
कादम्बरीपानपरा कुसुमामोदधारिणी ॥ १०२ ॥
कुमुदा कुमुदानन्दा कृष्णेशी कामवल्लभा ।
तर्कालीवैजयन्ती च निम्बदाडिमरूपिणी ॥ १०३ ॥
बिल्ववृक्षप्रिया कृष्णाम्बरा बिल्वोपमस्तनी ।
बिल्वात्मिका बिल्ववपुर्बिल्ववृक्षनिवासिनी ॥ १०४ ॥
तुलसीतोषिका तैतिलानन्दपरितोषिका ।
गजमुक्ता महामुक्ता महामुक्तिफलप्रदा ॥ १०५ ॥
अनङ्गमोहिनी शक्तिरूपा शक्तिस्वरूपिणी ।
पञ्चशक्तिस्वरूपा च शैशवानन्दकारिणी ॥ १०६ ॥
गजेन्द्रगामिनी श्यामलताऽनङ्गलता तथा ।
योषित्शक्तिस्वरूपा च योषिदानन्दकारिणी ॥ १०७ ॥
प्रेमप्रिया प्रेमरूपा प्रेमानन्दतरङ्गिणी ।
प्रेमहारा प्रेमदात्री प्रेमशक्तिमयी तथा ॥ १०८ ॥
कृष्णप्रेमवती धन्या कृष्णप्रेमतरङ्गिणी ।
प्रेमभक्तिप्रदा प्रेम प्रेमानन्दतरङ्गिणी ॥ १०९ ॥
प्रेमक्रीडापरीताङ्गी प्रेमभक्तितरङ्गिणी ।
प्रेमार्थदायिनी सर्वश्वेता नित्यतरङ्गिणी ॥ ११० ॥
हावभावान्विता रौद्रा रुद्रानन्दप्रकाशिनी ।
कपिला शृङ्खला केशपाशसंबन्धिनी घटी ॥ १११ ॥
कुटीरवासिनी धूम्रा धूम्राकेशा जलोदरी ।

ब्रह्माण्डगोचरा ब्रह्मरूपिणी भवभाविनी ॥ ११२ ॥
संसारनाशिनी शैवा शैवलानन्ददायिनी ।
शिशिरा हेमरागाढ्या मेघरूपाऽतिसुन्दरी ॥ ११३ ॥
मनोरमा वेगवती वेगाढ्या वेदवादिनी ।
दयान्विता दयाधारा दयारूपा सुसेविनी ॥ ११४ ॥
किशोरसङ्गसंसर्गा गौरचन्द्रानना कला ।
कलाधिनाथवदना कलानाथाधिरोहिणी ॥ ११५ ॥
विरागकुशला हेमपिङ्गला हेममण्डना ।
भाण्डीरतालवनगा कैवर्ती पीवरी शुकी ॥ ११६ ॥
शुकदेवगुणातीता शुकदेवप्रिया सखी ।
विकलोत्कर्षिणी कोषा कौशेयाम्बरधारिणी ॥ ११७ ॥
कौषावरी कोषरूपा जगदुत्पत्तिकारिका ।
सृष्टिस्थितिकरी संहारिणी संहारकारिणी ॥ ११८ ॥
केशशैवलधात्री च चन्द्रगात्रा सुकोमला ।
पद्माङ्गरागसंरागा विन्ध्याद्रिपरिवासिनी ॥ ११९ ॥
विन्ध्यालया श्यामसखी सखी संसाररागिणी ।
भूता भविष्या भव्या च भव्यगात्रा भवातिगा ॥ १२० ॥
भवनाशान्तकारिण्याकाशरूपा सुवेशिनी ।
रतिरङ्गपरित्यागा रतिवेगा रतिप्रदा ॥ १२१ ॥
तेजस्विनी तेजरूपा कैवल्यपथदा शुभा ।
मुक्तिहेतुर्मुक्तिहेतुलङ्घिनी लङ्घनक्षमा ॥ १२२ ॥
विशालनेत्रा वैशाली विशालकुलसम्भवा ।
विशालगृहवासा च विशालबदरी रतिः ॥ १२३ ॥
भक्त्यतीता भक्तिगतिर्भक्तिका शिवभक्तिदा ।
शिवशक्तिस्वरूपा च शिवार्धाङ्गविहारिणी ॥ १२४ ॥

शिरीषकुसुमामोदा शिरीषकुसुमोज्ज्वला ।
शिरीषमृद्वी शैरीषी शिरीषकुसुमाकृतिः ॥ १२५ ॥
वामाङ्गहारिणी विष्णोः शिवभक्तिसुखान्विता ।
विजिता विजितामोदा गगना गणतोषिता ॥ १२६ ॥
हयास्या हेरम्बसुता गणमाता सुखेश्वरी ।
दुःखहन्त्री दुःखहरा सेवितेप्सितसर्वदा ॥ १२७ ॥
सर्वज्ञत्वविधात्री च कुलक्षेत्रनिवासिनी ।
लवङ्गा पाण्डवसखी सखीमध्यनिवासिनी ॥ १२८ ॥
ग्राम्या गीता गया गम्या गमनातीतनिर्भरा ।
सर्वाङ्गसुन्दरी गङ्गा गङ्गाजलमयी तथा ॥ १२९ ॥
गङ्गेरिता पूतगात्रा पवित्रकुलदीपिका ।
पवित्रगुणशीलाढ्या पवित्रानन्ददायिनी ॥ १३० ॥
पवित्रगुणसीमाढ्या पवित्रकुलदीपनी ।
कम्पमाना कंसहरा विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ १३१ ॥
गोवर्धनेश्वरी गोवर्धनहास्या हयाकृतिः ।
मीनावतारा मीनेशी गगनेशी हया गजी ॥ १३२ ॥
हरिणी हारिणी हारधारिणी कनकाकृतिः ।
विद्युत्प्रभा विप्रमाता गोपमाता गयेश्वरी ॥ १३३ ॥
गवेश्वरी गवेशी च गवीशी गवि वासिनी ।
गतिज्ञा गीतकुशला दनुजेन्द्रनिवारिणी ॥ १३४ ॥
निर्वाणधात्री नैर्वाणी हेतुयुक्ता गयोत्तरा ।
पर्वताधिनिवासा च निवासकुशला तथा ॥ १३५ ॥
संन्यासधर्मकुशला संन्यासेशी शरन्मुखी ।
शरच्चन्द्रमुखी श्यामहारा क्षेत्रनिवासिनी ॥ १३६ ॥
वसन्तरागसंरागा वसन्तवसनाकृतिः ।

चतुर्भुजा षड्भुजा च द्विभुजा गौरविग्रहा ॥ १३७ ॥
सहस्रास्या विहास्या च मुद्रास्या मुददायिनी ।
प्राणप्रिया प्राणरूपा प्राणरूपिण्यपावृता ॥ १३८ ॥
कृष्णप्रीता कृष्णरता कृष्णतोषणतत्परा ।
कृष्णप्रेमरता कृष्णभक्ता भक्तफलप्रदा ॥ १३९ ॥
कृष्णप्रेमा प्रेमभक्ता हरिभक्तिप्रदायिनी ।
चैतन्यरूपा चैतन्यप्रिया चैतन्यरूपिणी ॥ १४० ॥
उग्ररूपा शिवक्रोडा कृष्णक्रोडा जलोदरी ।
महोदरी महादुर्गकान्तारसुस्थवासिनी ॥ १४१ ॥
चन्द्रावली चन्द्रकेशी चन्द्रप्रेमतरङ्गिणी ।
समुद्रमथनोद्भूता समुद्रजलवासिनी ॥ १४२ ॥
समुद्रामृतरूपा च समुद्रजलवासिका ।
केशपाशरता निद्रा क्षुधा प्रेमतरङ्गिका ॥ १४३ ॥
दूर्वादलश्यामतनुर्दूर्वादलतनुच्छविः ।
नागरा नागरीरागा नागरानन्दकारिणी ॥ १४४ ॥
नागरालिङ्गनपरा नागराङ्गनमङ्गला ।
उच्चनीचा हैमवतीप्रिया कृष्णतरङ्गदा ॥ १४५ ॥
प्रेमालिङ्गनसिद्धाङ्गी सिद्धसाध्यविलासिका ।
मङ्गलामोदजननी मेखलामोदधारिणी १४६ ॥
रत्नमञ्जीरभूषाङ्गी रत्नभूषणभूषणा ।
जम्बालमालिका कृष्णप्राणा प्राणविमोचना ॥ १४७ ॥
सत्यप्रदा सत्यवती सेवकानन्ददायिका ।
जगद्योनिर्जगद्बीजा विचित्रमणिभूषणा ॥ १४८ ॥
राधारमणकान्ता च राध्या राधनरूपिणी ।
कैलासवासिनी कृष्णप्राणसर्वस्वदायिनी ॥ १४९ ॥

कृष्णावतारनिरता कृष्णभक्तफलार्थिनी ।
याचकायाचकानन्दकारिणी याचकोज्ज्वला ॥ १५० ॥
हरिभूषणभूषाढ्याऽऽनन्दयुक्ताऽऽर्द्रपादगा ।
है है-तालधरा थै थैशब्दशक्तिप्रकाशिनी ॥ १५१ ॥
हे हे-शब्दस्वरूपा च हीही-वाक्यविशारदा ।
जगदानन्दकर्त्री च सान्द्रानन्दविशारदा ॥ १५२ ॥
पण्डिता पण्डितगुणा पण्डितानन्दकारिणी ।
परिपालनकर्त्री च तथा स्थितिविनोदिनी ॥ १५३ ॥
तथा संहारशब्दाढ्या विद्वज्जनमनोहरा ।
विदुषां प्रीतिजननी विद्वत्प्रेमविवर्धिनी ॥ १५४ ॥
नादेशी नादरूपा च नादविन्दुविधारिणी ।
शून्यस्थानस्थिता शून्यरूपपादपवासिनी ॥ १५५ ॥
कार्त्तिकव्रतकर्त्री च वसनाहारिणी तथा ।
जलाशया जलतला शिलातलनिवासिनी ॥ १५६ ॥
क्षुद्रकीटाङ्गसंसर्गा सङ्गदोषविनाशिनी ।
कोटिकन्दर्पलावण्या कन्दर्पकोटिसुन्दरी ॥ १५७ ॥
कन्दर्पकोटिजननी कामबीजप्रदायिनी ।
कामशास्त्रविनोदा च कामशास्त्रप्रकाशिनी ॥ १५८ ॥
कामप्रकाशिका कामिन्यणिमाद्यष्टसिद्धिदा ।
यामिनी यामिनीनाथवदना यामिनीश्वरी ॥ १५९ ॥
यागयोगहरा भुक्तिमुक्तिदात्री हिरण्यदा ।
कपालमालिनी देवी धामरूपिण्यपूर्वदा ॥ १६० ॥
कृपान्विता गुणा गौण्या गुणातीतफलप्रदा ।
कूष्माण्डभूतवेतालनाशिनी शरदाऽन्विता ॥ १६१ ॥
शीतला शबला हेला लीला लावण्यमङ्गला ।

बिद्यार्थिनी विद्यमाना विद्याविद्यास्वरूपिणी ॥ १६२ ॥
आन्वीक्षिकी शास्त्ररूपा शास्त्रसिद्धान्तकारिणी ।
नागेन्द्रा नागमाता च क्रीडाकौतुकरूपिणी ॥ १६३ ॥
हरिभावनशीला च हरितोषणतत्परा ।
हरिप्राणा हरप्राणा शिवप्राणा शिवान्विता ॥ १६४ ॥
नरकार्णवसंहन्त्री नरकार्णवनाशिनी ।
नरेश्वरी नरातीता नरसेव्या नराङ्गना ॥ १६५ ॥
यशोदानन्दनप्राणवल्लभा हरिवल्लभा ।
यशोदानन्दना रम्या यशोदानन्दनेश्वरी ॥ १६६ ॥
यशोदानन्दना क्रीडा यशोदाक्रोडवासिनी ।
यशोदानन्दनप्राणा यशोदानन्दनार्थदा ॥ १६७ ॥
वत्सला कोशला काला करुणार्णवरूपिणी ।
स्वर्गलक्ष्मीर्भूमिलक्ष्मीर्द्रौपदी पाण्डवप्रिया ॥ १६८ ॥
तथार्जुनसखी भौमी भैमी भीमकुलोद्वहा ।
भुवना मोहना क्षीणा पानासक्ततरा तथा ॥ १६९ ॥
पानार्थिनी पानपात्रा पानपानन्ददायिनी ।
दुग्धमन्थनकर्माढ्या दधिमन्थनतत्परा ॥ १७० ॥
दधिभाण्डार्थिनी कृष्णक्रोधिनी नन्दनाङ्गना ।
घृतलिप्ता तक्रयुक्ता यमुनापारकौतुका ॥ १७१ ॥
विचित्रकथका कृष्णहास्यभाषणतत्परा ।
गोपाङ्गनावेष्टिता च कृष्णसङ्गार्थिनी तथा ॥ १७२ ॥
रासासक्ता रासरतिरासवासक्तवासना ।
हरिद्रा हरिता हारीण्यानन्दार्पितचेतना ॥ १७३ ॥
निश्चैतन्या च निश्चेता तथा दारुहरिद्रिका ।
सुबलस्य स्वसा कृष्णभार्या भाषातिवेगिनी ॥ १७४ ॥

श्रीदामस्य सखी दाम दामिनी दामधारिणी ।
कैलासिनी केशिनी च हरिदम्बरधारिणी ॥ १७५ ॥
हरिसान्निध्यदात्री च हरिकौतुकमङ्गला ।
हरिप्रदा हरिद्वारा यमुनाजलवासिनी ॥ १७६ ॥
जैत्रप्रदा जितार्थी च चतुरा चातुरी तमी ।
तमिस्राऽऽतपरूपा च रौद्ररूपा यशोऽर्थिनी ॥ १७७ ॥
कृष्णार्थिनी कृष्णकला कृष्णानन्दविधायिनी ।
कृष्णार्थवासना कृष्णरागिणी भवभाविनी ॥ १७८ ॥
कृष्णार्थरहिता भक्ता भक्तभक्तिशुभप्रदा ।
श्रीकृष्णरहिता दीना तथा विरहिणी हरेः ॥ १७९ ॥
मथुरा मथुराराजगेहभावनभावना ।
श्रीकृष्णभावनामोदा तथोन्मादविधायिनी ॥ १८० ॥
कृष्णार्थव्याकुला कृष्णसारचर्मधरा शुभा ।
अलकेश्वरपूज्या च कुबेरेश्वरवल्लभा ॥ १८१ ॥
धनधान्यविधात्री च जाया काया हया हयी ।
प्रणवा प्रणवेशी च प्रणवार्थस्वरूपिणी ॥ १८२ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाधाङ्गहारिणी शैवशिंसपा ।
राक्षसीनाशिनी भूतप्रेतप्राणविनाशिनी १८३ ॥
सकलेप्सितदात्री च शची साध्वी अरुन्धती ।
पतिव्रता पतिप्राणा पतिवाक्यविनोदिनी ॥
अशेषसाधनी कल्पवासिनी कल्परूपिणी ॥ १८४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
श्रीराधिकानामसहस्रं पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पञ्चमरात्रे षष्ठोऽध्यायः

श्री महादेव उवाच ।

इत्येतत् कथितं देवि राधानामसहस्रकम् ।
यः पठेत् पाठयेद्वापि तस्य तुष्यति माधवः ॥ १ ॥
किं तस्य यमुनाभिर्वा नदीभिः सर्वतः प्रिये ।
कुरुक्षेत्रादितीर्थैश्च यस्य तुष्टो जनार्दनः ॥ २ ॥
स्तोत्रस्यास्य प्रसादेन किं न सिद्ध्यति भूतले ।
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो जगतीपतिः ॥ ३ ॥
वैश्यो निधिपतिर्भूयात् शूद्रो मुच्येत जन्मतः ।
ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयादेरतिपातकात् ॥ ४ ॥
सद्यो मुच्येत देवेशि सत्यं न संशयः ।
राधानामसहस्रस्य समानं नास्ति भूतले ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव बोले : इस प्रकार मैंने तुम्हें राधा का सहस्रनाम बता दिया। जो इसे पढ़ता या पढ़ाता है उससे माधव सन्तुष्ट होते हैं। हे प्रिये ! जिसने जनार्दन की सन्तुष्टि प्राप्त कर ली है उसके लिये यमुना आदि नदियाँ और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों का क्या महत्त्व है। इस स्तोत्र के प्रसाद से इस भूतल पर क्या नहीं मिलता ! इसी के प्रसाद से ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी और क्षत्रिय जगत्पति हुये हैं। इससे ही वैश्य धनवान होते हैं शूद्र और जन्म मात्र से मुक्त होते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान तथा चोरी आदि के पाप इसके प्रभाव से भाग जाते हैं। हे देवेशि ! इस सहस्रनाम के प्रभाव से सद्यः मुक्ति प्राप्त होती है—इसमें कोई संशय नहीं है; क्योंकि राधा के इस सहस्रनाम की इस संसार में कोई समता नहीं कर सकता ॥ १-५ ॥

स्वर्गे वाप्यथ पाताले गिरौ वा जलतोऽपि वा ।
नातःपरं शुभं स्तोत्रं तीर्थं नातःपरं परम् ॥ ६ ॥

स्वर्ग में, पाताल में, पर्वत पर, अथवा जल में न तो इससे अधिक शुभ स्त्रोत है और न इससे श्रेष्ठ कोई तीर्थ है ॥ ६ ॥

एकादश्यां शुचिर्भूत्वा यः पठेत् सुसमाहितः ।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याच्छृणुयाद्वा सुशोभने ॥ ७ ॥
द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा तुलसीसन्निधौ शिवे ।
यः पठेत् शृणुयाद्वापि तस्य तत्तत् फलं शृणु ॥ ८ ॥
अश्वमेधं राजसूयं वार्हस्पत्यं तथा त्रिकम् ।
अतिरात्रं वाजपेयमग्निष्टोमं तथा शुभम् ॥ ९ ॥
कृत्वा यत् फलमाप्नोति श्रुत्वा तत्फलमाप्नुयात् ।
कार्त्तिके चाष्टमीं प्राप्य पठेद्वा शृणुयादपि ॥ १० ॥
सहस्रयुगकल्पान्तं वैकुण्ठवसतिं लभेत् ।
ततश्च ब्रह्मभवने शिवस्य भवने पुनः ॥ ११ ॥
सुराधिनाथभवने पुनर्याति सलोकताम् ।
गङ्गातीरं समासाद्य यः पठेत् शृणुयादपि ॥ १२ ॥
विष्णोः सारूप्यमायाति सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ।
मम बक्त्रगिरेर्जाता पार्वतीवदनाश्रिता ॥ १३ ॥

हे सुशोभने। जो एकादशी को स्वच्छ होकर समाहित चित्त से इसे पढ़ता या सुनता है उसका सर्वार्थ सिद्ध हो जाता है। हे शिवे! जो द्वादशी या पूर्णमासी को तुलसी वृक्ष के सामने इसे पढ़ता या सुनता है उसको जो जो फल मिलता है उसे सुनो: वह अश्वमेध, राजसूय, वार्हस्पत्य, अतिरात्र अथवा अग्निष्टोम तथा अन्य यज्ञों का फल प्राप्त करता है। कार्तिक की अष्टमी को इसे पढ़ने या सुनने से साधक सहस्रयुग कल्पान्त वैकुण्ठ में निवास करता है। यह साधक को ब्रह्मा, शिव अथवा विष्णु के लोक में सालोक्य मुक्ति भी प्रदान करता है। गङ्गा के तट पर इसे पढ़ने या सुनने से, हे सुरेश्वरी! साधक निश्चित रूप से विष्णु-सारूप्य प्राप्त करता है। मेरे मुख से निकले इन शब्दों को गिरिजा सदा सुनती हैं ॥ ७-१३ ॥

राधानामसहस्राख्या नदी त्रैलोक्यपावनी ।
पठ्यते हि मया नित्यं भक्त्या शक्त्या यथोचितम् ॥ १४ ॥
मम प्राणसमं ह्येतत् तव प्रीत्या प्रकाशितम् ।
नाभक्ताय प्रदातव्यं पाखण्डाय कदाचन ॥
नास्तिकायाविरागाय रागयुक्ताय सुन्दरि ॥ १५ ॥
तथा देयं महास्तोत्रं हरिभक्ताय शंकरि ।
वैष्णवेषु यथाशक्ति दात्रे पुण्यार्थशालिने ॥ १६ ॥

राधा-सहस्रनामरूपी नदी त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली है और मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति तथा भक्ति से इसका यथोचित्त पाठ करता हूँ। यह मेरे प्राण के समान है और तुम्हारी प्रीति के कारण मैंने इसे प्रकाशित किया है। भक्तिरहित और पाखण्डी को इसे कभी भी नहीं देना चाहिये। हे सुन्दरि! अतः इसे नास्तिक, अवैरागी और रागयुक्त व्यक्ति को कभी नहीं देना चाहिये। किन्तु हे शंकरि! इस स्तोत्र को हरिभक्ति में रत वैष्णवों तथा पुण्यार्थियों को ही देना चाहिये ॥१४-१६॥

राधानाम सुधावारि मम वक्त्रसुधाम्बुधेः ।
उद्धृताऽसौ त्वया यत्नात् यतः स्त्वं वैष्णवाग्रणीः ॥ १७ ॥
विशुद्धसत्त्वाय यथार्थवादिने द्विजस्य सेवानिरताय मन्त्रिणे ।
दात्रे यथाशक्ति सुभक्तमानसे राधापदध्यानपराय शोभने ॥१८॥

तुमने यत्नपूर्वक मुझे राधा के इन अमृतवत नामों को कहने लिये प्रेरित किया है अतः तुम वैष्णवों में अग्रणी हो गई हो। इसे सत्त्वगुणी विशुद्ध सत्त्व व्यक्तियों को, यथार्थवादियों को, मन्त्रविदों को, यथाशक्ति भक्तियुक्त चित्तवालों को, द्विजों की सेवा करने वालों को, और राधा के चरणों का ध्यान करने वालों को ही देना चाहिये ॥ १७-१८॥

हरिपादाब्जमधुपमनोभूताय मानसे ।
राधापादसुधास्वादशालिने वैष्णवाय च ॥ १९ ॥
दद्यात् स्तोत्रं महापुण्यं हरिभक्तिप्रसाधनम् ।
जन्मान्तरं न तस्यास्ति राधाकृष्णपदार्थिनः ॥ २० ॥

श्रीहरि के चरण कमल की सेवा में रत, हरिभक्तों, वैष्णवों और राधा के चरणामृत का पान करने वालों को इसे देना चाहिये। राधा और कृष्ण के पदार्थियों का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १९-२० ॥

मम प्राणा वैष्णवा हि तेषां रक्षार्थमेव हि।
शूलं मया धार्यते हि नान्यथा मैत्रकारणम् ॥ २१ ॥
हरिभक्तिद्विषामर्थे शूलं संधार्यते मया।
शृणु देवि यथार्थं मे गदितं त्वयि सुव्रते ॥ २२ ॥

वैष्णव मेरे प्राण के समान हैं अतः मैं उनको रक्षा के लिये त्रिशूल धारण करता हूँ—इसमें कुछ अन्यथा कारण नहीं है। जो हरिभक्तों से द्वेष रखते हैं उन्हीं को दण्ड देने के लिये मैं शूल धारण करता हूँ। हे सुव्रते! सुनो, मैं तुम्हारे स्नेह के कारण यह सर्वथा सत्य कह रहा हूँ ॥ २१-२२ ॥

भक्तासि मे प्रियासि त्वमदः स्नेहात् प्रकाशितम्।
कदापि नोच्यते देवि मया नामसहस्रकम् ॥ २३ ॥

तुम मेरी भक्त और प्रिया हो अतः मैंने तुम्हारे स्नेहवश इसे तुम्हें बताया है! अन्यथा, हे देवि! मैंने तुम्हें इस सहस्रनाम को कभी नहीं बताया होता ॥ २३ ॥

किं परं त्वां प्रवक्ष्यामि प्राणतुल्यं मम प्रिये।
स्तोत्रं मन्त्रं राधिकाया यन्त्रं कवचमेव हि ॥ २४ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हे प्रिये! अब मैं तुम्हें अपने प्राणों के समान राधा के स्त्रोत, मन्त्र, यन्त्र और कवच को बताऊँगा जिसे तुम अवश्य सुनना चाहोगी ॥२४॥

इति श्रीनारद पञ्चरात्र में ज्ञानामृतसार के
पञ्चम रात्र का छठवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चमरात्रे सप्तमोऽध्यायः

श्रीपार्वत्युवाच ।

कैलासवासिन् भगवन् भक्तानुग्रहकारक ।
राधिकाकवचं पुण्यं कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥

यद्यस्ति करुणा नाथ त्राहि मां दुःखतो भयात् ।
त्वमेव शरणं नाथ शूलपाणे पिनाकधृक् ॥ २ ॥

श्रीपार्वती बोलीं : हे कैलासवासिन्, भगवन्, भक्तानुग्रहकारक ! हे प्रभो ! आप मुझे राधिका का पुण्य कवच बतायें। यदि आपके हृदय में करुणा है तो, हे नाथ ! आप मेरे दुःख और भय को दूर करें। हे शूलपाणे ! हे पिनाकधृक ! मैं आपकी शरण में हूँ॥ १-२ ॥

श्री महादेव उवाच ।

शृणुष्व गिरिजे तुभ्यं कवचं पूर्वसूचितम् ।
सर्वरक्षाकरं पुण्यं सर्वहत्याहरं परम् ॥ ३ ॥
हरिभक्तिप्रदं साक्षात् भक्तिमुक्तिप्रसाधनम् ।
त्रैलोक्याकर्षणं देवि हरिसान्निध्यकारकम् ॥ ४ ॥
सर्वत्र जयदं देवि सर्वशत्रुभयावहम् ।
सर्वेषांचैव भूतानां मनोवृत्तिकरं परम् ॥ ५ ॥
चतुर्धामुक्तिजनकं सदानन्दकरं परम् ।
राजसूयाश्वमेधानां यज्ञानां फलदायकम् ॥ ६ ॥

श्रीमहादेव जी बोले : हे गिरिजे ! पूर्वसूचित कवच को तुम सुनो। यह सबकी रक्षा करनेवाला, पुण्य और हर प्रकारकी हत्याओं के पाप का हरण करनेवाला है। हे देवि ! यह कवच हरिभक्ति प्रदान करनेवाला

और साक्षात् भक्ति-मुक्ति का श्रेष्ठ साधन है। यह तीनों लोकों का आकर्षण करता है और श्रीहरि का सान्निध्य प्रदान करता है। हे देवि! यह सर्वत्र जय दिलानेवाला, शत्रुओं को भय देनेवाला और सभी मनुष्यों की मनोवृत्तियों को प्रेरित करनेवाला है। यह चतुर्वा मुक्ति प्रदान करता है, सदा आनन्द देता है, और राजसूय तथा अश्वमेधादि यज्ञों का फल दायक है ॥ ३-६ ॥

इदं कवचमज्ञात्वा राधामन्त्रं च यो जपेत् ।
स नाप्नोति फलंतस्य विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ ७ ॥

जो इस कवच को जाने बिना ही राधामन्त्र का जप करता है उसे कभी सफलता नहीं मिलती और उसे पग-पग पर विघ्नों का सामना करना पड़ता है ॥ ७ ॥

ऋषिरस्य महादेवोऽनुष्टुप्छन्दश्च कीर्तितः ।
राधाऽस्य देवता प्रोक्ता रां-वीजं कीलकं स्मृतम ॥ ८ ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।

इसके ऋषि महादेव हैं, छन्द अनुष्टप है, देवता श्रीराधिका हैं, तथा 'रां' इसका बीज और कीलक जानना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में इसका विनियोग कहा गया है ॥ ८-८½ ॥

श्रीराधा मे शिरः पातु ललाटं राधिका तथा ॥ ९ ॥
श्रीमती नेत्रयुगलं कर्णौ गोपेन्द्रनन्दिनी ।
हरिप्रिया नासिकां च भ्रूयुगं शशिशोभना ॥ १० ॥
ओष्ठं पातु कृपा देवी अधरं गोपिका तथा ।
वृषभानुसुता दन्तान् चिबुकं गोपनन्दिनी ॥ ११ ॥
चन्द्रावली पातु गण्डं जिह्वां कृष्णप्रिया तथा ।
कण्ठं पातु हरिप्राणा हृदयं विजया तथा ॥ १२ ॥
बाहू द्वौ चन्द्रवदना उदरं सुबलस्वसा ।
कोटियोगान्विता पातु पादौ सौभद्रिका तथा ॥ १३ ॥
नखान् चन्द्रमुखी पातु गुल्फौ गोपालवल्लभा ।

नखान् विधुमुखी देवी गोपी पादतलं तथा ॥ १४ ॥
शुभप्रदा पातु पृष्ठं कक्षा श्रीकान्तवल्लभा ।
जानुदेशं जया पातु हरिणी पातु सर्वतः ॥ १५ ॥
वाक्यं वाणी सदा पातु धनागारं धनेश्वरी ।
पूर्वादिशं कृष्णरता कृष्णप्राणा च पश्चिमाम् ॥ १६ ॥
उत्तरां हरिता पातु दक्षिणां वृषभानुजा ।
चन्द्रावली नैशमेव दिवा क्ष्वेडितमेखला ॥ १७ ॥
सौभाग्यदा मध्यदिने सायाह्ने कामरूपिणी ।
रौद्री प्रातः पातु मां हि गोपिनी रजनीक्षये ॥ १८ ॥
हेतुदा सङ्गवे पातु केतुमाला दिवार्धके ।
शेषाऽपराह्णसमये शमिता सर्वसंधिषु ॥ १९ ॥
योगिनी भोगसमये रतौ रतिप्रदा सदा ।
कामेशी कौतुके नित्यं योगे रत्नावली मम ॥ २० ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु राधिका कृष्णमानसा ।
इत्येतत् कथितं देवि कवचं परमाद्भुतम् ॥ २१ ॥
सर्वरक्षाकरं नाम महारक्षाकरं परम् ।
प्रातर्मध्याह्नसमये सायाह्ने प्रपठेद्यदि ॥ २२ ॥
सर्वार्थसिद्धिस्तस्य स्यात् यद्यन्मनसि वर्तते ।
राजद्वारे सभायां च संग्रामे शत्रुसंकटे ॥ २३ ॥
प्राणार्थनाशसमये यः पठेत् प्रयतो नरः ।
तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि न भयं विद्यते क्वचित् ॥ २४ ॥
आराधिता राधिका च तेन सत्यं न संशयः ।
गङ्गास्नानात् हरेर्नामग्रहणाद्यत् फलं लभेत् ॥ २५ ॥

हे देवि ! इस प्रकार मैंने परम अद्भुत कवच बताया । यह सबकी रक्षा करनेवाला और महारक्षाकर है। प्रातःकाल मध्याह्न और

सांयकाल इसका पाठ करने और धारण करने से साधक अपने सभी कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त करता है। राजद्वार में, सभा में, संग्राम में और शत्रु से संकट के समय, अथवा प्राणनाश के समय, यदि समाहित होकर मनुष्य इसका पाठ करे तो उसे सिद्धि प्राप्त होती है और कोई भय नहीं रह जाता। इसके पाठ से राधा की आराधना हो जाती है तथा वह देवी प्रसन्न होती हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। शुद्ध होकर एकाग्रचित्त से इसका पाठ करने से साधक गङ्गा स्नान और हरिनाम ग्रहण का फल पाता है ॥ २१-२५ ॥

तत् फलं तस्य भवति यः पठेत् प्रयतः शुचिः।
हरिद्रारोचनाचन्द्रमण्डितं हरिचन्दनम् ॥ २६ ॥
कृत्वा लिखित्वा भूर्जे च धारयेत् मस्तके भुजे।
कण्ठे वा देवदेवेशि स हरिर्नात्र संशयः ॥ २७ ॥
कवचस्य प्रसादेन ब्रह्मा सृष्टिं स्थितिं हरिः।
संहारं चाहं नियतं करोमि कुरुते तथा ॥ २८ ॥
वैष्णवाय विशुद्धाय विरागगुणशालिने।
दद्यात् कवचमव्यग्रमन्यथा नाशमाप्नुयात् ॥ २९ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
सर्वरक्षाकरं राधाकवचं समाप्तं
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हल्दी, रोचना और हरिचन्दन को मिलाकर भोजपत्र पर इस कवच को लिख कर मस्तक, भुजा, अथवा कण्ठ में धारण करने से, हे देवदेवेशि! साधक निश्चित रूपसे श्रीहरि को प्राप्त करता है। इस कवच के प्रसाद से ही ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन और मैं संहार करता हूं। वैराग्य युक्त विशुद्ध वैष्णव को ही इसे देना चाहिये। व्यग्रचित्त व्यक्ति को देने से नाश प्राप्त होता है ॥ २६-२९ ॥

इति श्रीनारद पञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में
पञ्चरात्र का सर्वरक्षाकर राधाकवच
विषयक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

पञ्चमरात्रे अष्टमोऽध्यायः

श्रीनारद उवाच ।

महादेव महादेव देवदेव जगत्पते ।
मन्त्रार्थं कृष्णमन्त्रानां गूढं राधामनुं प्रभो ॥
वक्तुमर्हसि देवेश भक्तं मां शशिखण्डधृक् ॥ १ ॥

श्रीनारद जी बोले : हे जगत्पते, हे महादेव, हे देवदेव, हे देवों में महान ! श्रीकृष्ण के मन्त्रों और गूढ़ राधा के मन्त्रों के अर्थ को बताकर अपने मुझ भक्त पर अनुग्रह कीजिये । हे शशिखण्ड धारण करने वाले ! हे देवेश ! मैं इसे सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्री महादेव उवाच ।

कृष्णमन्त्रार्थमेषाशु वक्ष्यामि शृणु नारद ।
ककारात्सृष्टिरूपोऽसौलकारात्स्थितिरेव च ॥ २ ॥
संहारात् ई भवेन्नित्यं निर्वाणाद्बिन्दुरेव च ।
ककाराद्भीतिमापन्ना यमदूता भवन्ति हि ॥ ३ ॥
ऋकारात् पातकानि स्युः पलायनपराणि च ।
षकारोच्चारणात् सर्वे भूता राक्षसपन्नगाः ॥ ४ ॥
विद्रवन्ति भयार्ता वै णकाराद्रोगराशयः ।
अकारात् सर्वतः शान्तिरेष कल्पद्रुमो मनुः ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव जी बोले : हे नारद ! श्रीकृष्ण के मन्त्रार्थ को, जिसे मैं अब बताऊंगा, तुम सुनो । 'ककार' सृष्टिरूप है; लकार (ऋ) स्थिति का द्योतक है । 'ई' संहारार्थी है और बिन्दु (ं) का अर्थ निर्वाण है । ककार से यमदूत भयभीत होते हैं । ऋकार से सभी पाप पलायन कर जाते हैं । षकार के उच्चारण से सभी भूत, राक्षस और पन्नग भयभीत होकर भाग जाते हैं । णकार सभी रोगों का नाश करता

है। अकार से सर्वत्र शान्ति होती है। इस प्रकार यह मन्त्र कल्पद्रुम के समान है ॥ २-५ ॥

ककारो मुखचन्द्रोऽस्य ऋकारो नेत्रमण्डलम् ।
षकारो बाहुयुगलं णकारः पादमेव च ॥ ६ ॥
अकारः सर्वगात्राणि शृणुष्व द्विजसत्तम ।
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि शृणुष्व द्विजसत्तम ॥ ७ ॥

ककार मुखचन्द्र है; ऋकार उसका नेत्रमण्डल है; षकार बाहुयुगल हैं और णकार पैरों का द्योतक है। हे द्विजश्रेष्ठ! अकार सर्वशरीर है। मैं तुम्हें इसका दूसरा अर्थ बताऊँगा, सुनो ॥ ६-७ ॥

ककाराद्ब्रह्मरूपत्वात् सृष्टिकर्ता जनार्दनः ।
ऋकारात् सृष्टिकर्ताऽसौ वेदवेद्यो हरिः स्वयम् ॥ ८ ॥
षकारात् शिवरूपत्वात् सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
णकारात् श्वेतरूपत्वात् निर्वाणफलदायकः ॥ ९ ॥

ककार ब्रह्मरूप होने से सृष्टिकर्ता जनार्दन हैं; ऋकार वेदवेद्यवाची है। श्रीहरि ही स्वयं सृष्टिकर्ता हैं। षकार शिवरूप होने से सृष्टि, स्थिति और अन्तकारक है। णकार श्वेतरूप होने से निर्वाण फलदायक है ॥ ८-९ ॥

जगद्बीजसर्वमायाविसर्गः परिकीर्तितः ।
कृष्णनामर्थं एवोक्तः परं शृणु महामते ॥ १० ॥

विसर्ग (:) जगत का बीज और सर्वमाया का द्योतक है। हे महामते! इस प्रकार तुमने 'कृष्ण' का अर्थ सुना। अब अन्य नामों का अर्थ सुनो ॥ १० ॥

मा लक्ष्मीः प्रोच्यते वेदे धवस्तस्याः पतिर्हरिः ।
अतो माधवनामाऽसौ प्रोच्यते पुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥
मा शोभा तेजसो मूर्तिर्निराकारस्य तेजसः ।
धवस्तस्य हरिः साक्षान्माधवोऽसौ प्रकीर्त्तितः ॥ १२ ॥

वेदों में 'मा' का अर्थ लक्ष्मी कहा गया है; 'धव' उनके (लक्ष्मी के)

पति श्रीहरि का द्योतक है। अतः माधव का अर्थ पुरुषोत्तम है। 'मा' का अर्थ शोभा तथा तेज की निराकार मूर्ति की मूर्ति है। 'धव' का अर्थ 'हरि' है। अतः माधव का अर्थ 'श्री विष्णु' है ॥ ११-१२ ॥

विष्णुर्विभवनत्वाच्च व्यापकत्वाच्च नारद ।
भावनत्वाच्च वर्णानां विष्णुरेव ततः स्मृतः ॥ १३ ॥

हे नारद ! विष्णु विभव, व्यापकत्व का द्योतक है, वर्णों की भावना को व्यक्त करता है। इसीलिये उनका 'विष्णु' नाम है ॥ १३ ॥

काशो दीप्तिमतो यस्मात् प्रकाशः सर्वजन्मनाम् ।
प्रभुः प्रभवनत्वाच्च ततः काशः प्रभुः स्मृतः ॥ १४ ॥

'काश' का अर्थ दीप्तिमान है जिससे सभी प्राणी प्रकाशित होते हैं। अतः उन्हें प्रकाश और प्रभु कहते हैं क्योंकि सभी प्राणी उन्हीं के द्वारा उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥

चैतन्यभूतो जीवानां यतश्चैतन्यवर्जिताः ।
जडीभूता भवन्तीह चैतन्यस्तु ततः स्मृतः ॥ १५ ॥

उन्हें चैतन्य कहते हैं क्योंकि उन्हीं के द्वारा जड और अचैतन्य जीव चैतन्यता प्राप्त करते हैं ॥ १५ ॥

सेवते एव वा भूत्वा यस्मिन् कृष्णशरीरतः ।
अतः केशवनामाऽसौ सेव्यते पुरुषः परः ॥ १६ ॥
हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशः सम्प्रोच्यते यतः ।
अतो नारद लोऽकेस्मिन् हृषीकेश इति स्मृतः ॥ १७ ॥

उन्हें केशव कहते हैं क्योंकि कृष्ण के अवतार लेने पर सभी जीव उनकी सेवा करते हैं। अतः उन्हें केशव पुरुष कहा गया है। वे इन्द्रियों के ईश हैं अतः हे नारद ! उन्हें हृषीकेश कहा गया है ॥ १६-१७ ॥

जनानर्दयते यस्मात् प्रलये महति द्विज ।
अतः स प्रोच्यते वेदे जनार्दन इति प्रभुः ॥ १८ ॥

हे द्विज ! महाप्रलय के समय वे जनों का 'अर्दन' (नाश) करते हैं इसलिये उन प्रभु को वेदों में 'जनार्दन' कहा गया है ॥ १८ ॥

नारा जलमिति प्रोक्ता अयनं तस्य ता यतः ।
अतो नारायणो नाम गीयते पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥
नारं नरसमूहे च अयनं ते यतः प्रभो ।
अयनं स साक्षिभूतो यतो नारायणः परः ॥ २० ॥

'नारा' का अर्थ जल है; 'अयन' का अर्थ उनके साथ अनुरूपता है। अतः पुरुषोत्तम को 'नारायण' कहते हैं। 'नार' का अर्थ 'नरसमूह' है और 'अयन' का अर्थ है जहाँ से वे (नरसमूह) उत्पन्न हुये हैं। अथवा वह सबके साक्षिभूत हैं अतः उन्हें 'नारायण' कहते हैं॥ १९-२०॥

गां पृथ्वीं स्वर्गमेवाथ वाचं वा पशवोऽपिवा ।
तेजसो वा पालकोऽसौ गोपालस्तु ततः स्मृतः ॥ २१ ॥

'गो' का अर्थ पृथिवी, स्वर्ग, वाच और पशु है। वे इन सबके तेज और पालक हैं अथवा उन्हें 'गोपाल' कहते हैं॥ २१॥

बालकत्वाच्च बालोऽसौ कृष्णवर्णगतो यतः ।
बालकृष्ण इति प्रोक्ता यतोऽसौ पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥
वाशब्दबोधे वायुश्च लादान-ग्रहणेन च ।
ककारो ब्रह्मणो रूपमतो बालक उच्यते ॥ २३ ॥

उन पुरुषोत्तम के बालकत्व के कारण और उनके कृष्ण वर्ण के कारण उन्हें बालकृष्ण कहते हैं। 'वा' का अर्थ बोध, भावना, चेतना, अथवा वायु है। 'ल' का अर्थ लेना है। 'क' ब्रह्मरूप का द्योतक है। अतः उन्हें 'बालक' कहते हैं॥ २२-२३॥

कर्ता हर्ता पालयिता दाता भोक्ता कृपामयः ।
नाथोऽयं जगतां यस्मात् जगन्नाथस्ततः स्मृतः ॥ २४ ॥

अतः वे कर्ता, हर्ता, पालक, दाता, भोक्ता, कृपामय और जगत के नाथ हैं, अतः उन्हें जगन्नाथ कहते है॥ २४॥

हरिर्हरणशीलत्वात् पापानां दुःखयोनिनाम् ।
नरसिंहवपुर्यस्मादतो ब्रह्मन् हरिः स्मृतः ॥ २५ ॥

वे दुःख के जनक समस्त पापों का हरण करते हैं और उन्होंने नरसिंह का शरीर धारण किया था अतः उन्हें हरि कहते हैं॥२५॥

न च्यवन्ति यतो भक्ता महति प्रलये सति ।
अतोऽच्युतः स विश्वात्मा गीयते पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥
च्युतिहीनोऽव्ययो यस्मादथवाच्युत इष्यते ।
जगतामादिभूतश्च मध्यश्चान्तश्च यः स्मृतः ॥ २७ ॥
अतो वेदे पुराणे च अनादिः परिकीर्तितः ।
गवामिन्द्रः स्मृतो यस्माद्वाचामिन्द्रस्ततः परम् ॥ २८ ॥
अतो गोविन्द इति च कीर्त्यते वेदवादिभिः ।

यतः महाप्रलय के समय भी उनके भक्तगण अपने स्थान से च्युत नहीं होते अतः उन पुरुषोत्तम को अच्युत कहते हैं। अथवा वह अपने स्थान से कभी च्युत नहीं होते अतः उन अव्यय को अच्युत कहते हैं। जगत के आदिभूत, मध्य और अन्त होने के कारण वेद तथा पुराण उन्हें अनादि कहते हैं। 'गो' (गाय) और वाक्य 'के' इन्द्र होने के कारण वेदवादी उन्हें गोविन्द कहते हैं ॥ २६-२८½ ॥

इति नामरहस्यं ते गदितं परमाद्भुतम् ॥ २९ ॥
नास्त्यन्तं नामतस्तस्य याथार्थ्यं मुनिपुङ्गव ।
यदि पृथिव्या धूल्यादेर्गणनाकरणक्षमः ॥ ३० ॥
भविष्यति तथापीशो नाम्नां नैव तु शक्यते ।
जन्मान्तरसहस्रेषु नैव नैव द्विजोत्तम ॥ ३१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
मन्त्रनामरहस्यं अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हे मुनिपुङ्गव ! इस प्रकार परम अद्भुत नामरहस्य को तुम्हें बताया। वास्तव में उनके नामों का कोई अन्त नहीं है। हे द्विजोत्तम ! यदि कोई पृथिवी के धूलकणों को गिनने में समर्थ हो तो भी उनके नामों का सहस्र जन्मों में भी अन्त नहीं पा सकता। यह तो केवल भक्ति से ही सम्भव है ॥ २९-३१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में पञ्चमरात्र
मन्त्रनामरहस्य नामक अष्टम अध्याय समाप्त।

पञ्चमरात्रे नवमोऽध्यायः

योगकथनम्

श्रीनारद उवाच ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
ये ये मन्त्राश्च श्रीमत्या राधिकायाः सुगोपिताः ॥
तन्मे ब्रूहि महादेव यद्यनुग्राह्यता मयि ॥ १ ॥

श्रीनारद जी बोले : अब मैं उस परम अद्भुत रहस्य को सुनना चाहता हूं। हे महादेव ! मुझे श्रीमती राधा के अत्यन्त गोपनीय सभी मन्त्रों को बताने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि पार्वत्यै यत् प्रकाशितम् ।
नैव तत्त्वां प्रवक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥ २ ॥

श्री महादेव जी बोले : हे नारद ! अब मैं तुम्हें उस तत्त्व को बताऊँगा जिसे मैंने पार्वती के अतिरिक्त अभी तक अन्य किसी को नहीं बताया है ॥ २ ॥

वह्निबीजं क्रोशयुक्तं तथा बिन्दुविभूषितम् ।
एतद्बीजं मुनिश्रेष्ठ बीजं त्रैलोक्यपूजितम् ॥ ३ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ 'रां' राधा का बीजमन्त्र है जो त्रैलोक्यपूजित है। ॥ ३ ॥

णकाक्षरोऽयं विप्रेन्द्र मनुः सर्वफलप्रदः ।
पुरश्चरणकृन्मन्त्री जपेल्लक्षद्वयं सुधीः ॥ ४ ॥

हे विप्रेन्द्र ! एकाक्षर मन्त्र सर्वफलप्रद है अतः सुधीसाधक को इसके दो लाख जप का पुरश्चरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

अथान्यं मन्त्रराजं तु शृणु कल्पद्रुमं महत् ।
निजबीजं ततो माया कामबीजमतःपरम् ॥ ५ ॥
राधायै वह्निजायान्तो मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ।
प्रातःकृत्यादिकं सर्वं पूर्ववत् परिकल्पयेत् ॥ ६ ॥

यागस्थानं ततो गत्वा स्थानासनपरिग्रहम् ।
भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा प्राणायामन्तु मूलतः ॥ ७ ॥
ऋषिरस्य महादेवो गायत्री छन्द एव च ।
देवता राधिका प्रोक्ता सर्वशास्त्रेषु गोपिता ॥ ८ ॥

एवं ऋष्यादिकं कृत्वा रां-बीजेनाङ्गकल्पना ।
ततो ध्यायेत् परां देवीं काञ्चनाभां वरप्रदाम् ॥ ९ ॥

अब महान कल्पवृक्ष के समान एक अन्य मन्त्रराज को सुनो जो इस प्रकार है : रां ह्रीं क्लीं राधायै स्वाहा । अब पूर्वोक्त रूप से प्रातः कृत्यादि करके योगस्थान पर जाकर आसन ग्रहण करे । फिर भूतशुद्धि करने के बाद मूलमन्त्र से प्राणायाम करे । इस मन्त्र के ऋषि महादेव हैं; छन्द गायत्री है और श्रीमती राधिका देवता कही गई हैं—इसे सब शास्त्रों में अत्यन्त गुप्त कहा गया है । इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करके 'रां' बीज से अङ्गपूजा करे । फिर काञ्चनाभा और वरप्रदा देवी का इस प्रकार ध्यान करे ॥ ५-९ ॥

किशोरीं कृष्णसहितां नीलाम्बरधरां शुभाम् ।
दक्षिणे धृतताम्बूलां पाणौ वामे समुद्गकम् ॥ १० ॥
धारयन्तीं स्वर्णभूषां सदा कृष्णानुरागिणीम् ।
कृष्णास्यनयनासक्तां हारनूपुरभूषिताम् ॥ ११ ॥

कृष्णसहित किशोरी, नीलाम्बरधारी और शुभा हैं । उनके दाहिने और बायें हाथों में क्रमशः ताम्बूल और मुद्ग है । वे सदा स्वर्णाभूषण धारण करती हैं; सदैव श्रीकृष्ण की अनुरागिणी हैं; उनके नेत्र सदा श्रीकृष्ण के मुख के प्रति आसक्त रहते हैं; और वे हार तथा नूपुर धारण करती हैं ॥ १०-११ ॥

एवं ध्यात्वा मानसैस्तामुपचारैः समर्चयेत् ।
ततो ध्यात्वा पुनर्देवीं संस्थाप्य स्वपुरःस्थले ॥ १२ ॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणान् प्राणेषु योजयेत् ।
ततः पाद्यादिकं दत्त्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ १३ ॥
यथाविधि धूपदीपनैवेद्यैः परिपूजयेत् ।
पुष्पाञ्जलिं पञ्चधा च दत्त्वा मन्त्रेण वैष्णवः ॥ १४ ॥
शुक्लपुष्पैः सदा पूज्या तुलसीपत्रसंयुता ।
करवीरं तथा पद्मं वकं काञ्चनमेव च ॥ १५ ॥
शुक्लैरक्तैस्तथा पूज्या अन्यथा न समाचरेत् ।
वैष्णवे संगतिः कार्या वैष्णवे च सदा रतिः ॥ १६ ॥

इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचार से उनकी पूजा करे। इसके बाद देवी को अपने सामने पीठ पर स्थापित करके उपयुक्त मन्त्रों से प्राणप्रतिष्ठा करके मन्त्रवित् साधक उन्हें मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुये पाद्यादि समर्पित करे। देवी को धूप, दीप और नैवेद्य समर्पित करके मन्त्र का जप करे। फिर तुलसी पत्र के साथ शुक्लपुष्पों से वैष्णव मन्त्र के जपपूर्वक देवी को पांच पुष्पाञ्जलि देवे। करवीर, श्वेत कमल, वक और काञ्चन पुष्पों से ही पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। पूजा में श्वेत और लाल पुष्पों का ही प्रयोग करना चाहिये—इस नियम से अन्यथा आचरण नहीं करना चाहिये। सदा ही वैष्णवों का संग करना और वैष्णवों में ही रत रहना चाहिये ॥ १२-१६ ॥

जन्माष्टमीं समासाद्य रोहिणीसंयुता यदि ।
लभ्यते चोपवासो हि कर्तव्यः सर्वथा सदा ॥ १७ ॥
नालाभे रोहिणीभे च सप्तमीं परिवर्जयेत् ।
एवंप्रकारतो ब्रह्मन् तथा गोष्ठाष्टमीं तिथिम् ॥ १८ ॥
उपवासः सदा कार्यो नान्यथा सिद्धिहानिकृत् ।
वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्यां प्रमादतः ॥ १९ ॥
विष्णवर्चनं वृथा तस्य नरकं घोरमाप्नुयात् ।

वरं पितृवधं ब्रह्मन् मातृणां गमनं वरम् ॥ २० ॥
एकादश्यां वैष्णवस्तु न भुञ्जीत कदाचन ।
इत्येतत् कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह द्विज ॥
हरेराश्चर्यभूतस्य किमन्यत् श्रोतुमिच्छसिः ॥ २१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
राधामन्त्रकथनं नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यदि रोहिणी नक्षत्र में जन्माष्टमी पड़े तो उस दिन सर्वथा उपवास करना चाहिये। यदि यह तिथि रोहिणी नक्षत्र में न पड़े तो सप्तमी को भी वर्जित रखना चाहिये। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार गोष्ठाष्टमी तिथि का मान करना चाहिये। इस दिन उपवास न करने पर सिद्धि के मार्ग में अनेक बाधायें आती हैं। यदि कोई वैष्णव प्रमादवश एकादशी तिथि को भोजन कर लेता है तो उसकी विष्णुपूजा वृथा हो जाती है और वह घोर नरक प्राप्त करता है तथा पितृहत्या, ब्रह्महत्या और मातृगमन के भारी पापों का भागी होता है। अत: एकादशी को वैष्णव को कभी भोजन नहीं करना चाहिये। हे विप्र! जो तुमने मुझसे पूछा था उसे मैंने बता दिया। अब हरि के आश्चर्यभूत चरित्र के सम्बन्ध में और क्या सुनना चाहते हो? ॥ १७-२१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार में पञ्चम
रात्र का राधामन्त्र कथन नामक
नवम अध्याय समाप्त।

पञ्चमरात्रे दशमोऽध्यायः

नारद उवाच ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि शरीरस्य यथाक्रमम् ।
का नाड्यः कतिधास्तत्र गतयो वायुसम्भ्रमा ॥ १ ॥
विशेषेण महादेव वक्तुमर्हसि सांप्रति ।
त्वदन्यः संशयस्यास्योच्छेत्ता नैवोपलभ्यते ॥ २ ॥

श्री नारद जी बोले : अब मैं यथाक्रम यह सुनना चाहता हूँ कि शरीर में कितनी नाडियाँ हैं और उनमें कितने प्रकार का वायु भ्रमण करता है। हे महादेव ! उक्त विषय को बताने के लिये आप ही सर्वोपयुक्त हैं। आपके अतिरिक्त मेरे इन सन्देहों को अन्य कोई दूर नहीं कर सकता ॥ १-२ ॥

महादेव उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि योगधारणमुत्तमम् ।
तिस्रकोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः ॥ ३ ॥
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्त्रोऽभ्यवस्थिताः ।
प्रधानो मेरुदण्डोऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ॥ ४ ॥

श्रीमहादेव जी बोले : हे नारद ! सुनो, अब मैं श्रेष्ठ योगधारण को बता रहा हूँ। शरीर में साढ़े तीन करोड नाडियाँ होती हैं। इनमें से दश प्रधान हैं और इन दश में भी तीन ही सर्वप्रधान हैं। ये तीनों मेरुदण्ड में स्थित हैं और चन्द्र, सूर्य तथा अग्निरूपिणी हैं। ॥ ३-४ ॥

शक्तिरूपा च सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ।
दक्षिणे पिङ्गलाख्या तु पुंरूपा सूर्यविग्रहा ॥ ५ ॥
दाडिमीकुसुमप्रख्या विषाख्या मुनिभिः स्मृता ।

मेरुमध्ये स्थिता या तु मूलदा ब्रह्मविग्रहा ॥ ६ ॥
सर्वतेजोमयी सा तु सुषम्ण बहुरूपिणी ।
तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतप्लाविनी शुभा ॥ ७ ॥
सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयंगमा ।
विसर्गाद्बिन्दुपर्यन्तं व्याप्य तिष्ठति तत्त्वतः ॥ ८ ॥

शक्तिरूपा वामनाडी साक्षात् अमृतविग्रहा कही गई है। दक्षिण (दाहिनी) पिङ्गला नाडी पुंरूपा है और इसे सूर्य नाडी कहते हैं। मेरु के मध्य में जो सुषुम्णा नाडी है वह ब्रह्मस्वरूपिणी है। इसकी मुनियों ने अत्यधिक प्रशंसा की है। इसे विषतन्तु भी कहते हैं और यह दाडिम के पुष्प के समान होती है। यह मूलाधार तक जाती है। इस सर्वतेजोमयी और बहुरूपिणी सुषुम्ना नाडी में एक अन्य अमृतप्लाविनी शुभ नाडी स्थित है जिसे चित्रा या विचित्रा कहते हैं। यह सर्वदेवमयी और योगियों के लिये हृदयंगम करने योग्य है। यह विसर्ग से विन्दुपर्यन्त व्याप्त करते हुये तत्वतः स्थित है ॥ ५-८ ॥

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाजालक्रियात्मके।
मध्ये स्वयम्भुलिङ्ग तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ ९ ॥
तदूर्ध्वे कामबीजं तु फलशान्तीन्दुनादकम् ।
तदूर्ध्वे तु शिखाकारा कुण्डली ब्रह्मविग्रहा ॥ १० ॥
यद्वाह्ये हेमवर्णाभं रसवर्णं चतुर्दलम् ।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत् ॥ ११ ॥

इच्छा, ज्ञान और क्रियास्वरूप मूलाधार के त्रिकोण में करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाला स्वयम्भू लिङ्ग स्थित है। इसके ऊपर चन्द्रविन्दुसहित कामबीज है और उसके ऊपर ब्रह्मस्वरूपिणी शिखाकार कुण्डली शक्ति स्थित है। इसके बाहर पिघले हुये स्वर्ण के समान वर्णवाला चतुर्दल कमल स्थित है। इसी से इसे द्रुतहेमसमप्रख्य पद्म (गले हुये स्वर्ण के वर्णवाला पद्म) कहते हैं ॥ ९-११ ॥

तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।
कादिचान्तषडवर्णेन युक्ताधिष्ठानसंज्ञकम ॥ १२ ॥

मूलमाधाय षट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः ।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ १३ ॥

मूलाधार के ऊपर अग्नि के समान और हीरे के समान प्रभावाला षड्दल पद्म से युक्त स्वाधिष्ठान नामक चक्र है जिसके पद्मदलों पर क से च तक वर्ण अंकित हैं। मूल में स्थित होने से उक्त पद्म को मूलाधार जानना चाहिये और षट्कोण पद्म और स्वलिङ्ग से युक्त होने से इसे स्वाधिष्ठान जानना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महत्प्रभम् ।
मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः ॥ १४ ॥
मणिवद्भिन्नतत्पद्मं मणिपूरं तथोच्यते ।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ॥ १५ ॥
शिखेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वलोकैककारणम् ।
तदूर्ध्वेन हितं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ १६ ॥
कादिठान्ताक्षरैरर्कपत्रैश्चाज्यमधिष्ठितम् ।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ १७ ॥
शब्दब्रह्ममयं शब्देनाहतं तत्र दृश्यते ।
तेनाहताख्यं पद्मं तु मुनिभिः परिकीर्त्यते ॥ १८ ॥
आनन्दसदनं तत्तु पुरुषावेष्टितं परम् ।

इसके ऊपर नाभि देश में महान् प्रभा से युक्त मेघवर्ण, विद्युत् की प्रभा के समान तथा अत्यन्त तेजोमय मणिपूर चक्र है। इसके पद्मों के मणिवत् होने के कारण इसे मणिपूर कहते हैं। इसके पद्म के दशदल क्रमशः 'द' से 'फ' वर्णों से युक्त हैं। इसमें अधिष्ठित शिखा को विश्व की उत्पत्ति का कारण कहा गया है। इसके ऊपर अनाहत चक्र स्थित है जो अर्कपत्र के समान और उदित होते सूर्य के समान प्रतीत होता है। इसके पद्मदलों पर 'क' से 'ठ' तक अक्षर अंकित हैं। इसके बीच में सहस्रों सूर्य की प्रभा से युक्त बाणलिङ्ग स्थित है। इसमें से शब्दब्रह्म अनाहत शब्द निकलता है इसी से मुनि इसे अनाहत कहते हैं। यह आनन्दसदन और परमपुरुष से आवेष्टित है ॥ १४-१८½ ॥

तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलषोडशपङ्कजम् ॥ १९ ॥

रवेः षोडशकैर्युक्तं धूम्रवर्णं महत्प्रभम् ।
विशुद्धं तनुते तस्माज्जीवस्याहं सलोकनात् ॥ २० ॥

विशुद्धं पद्ममाख्यातम् आकाशाख्यं महत् परम् ।
आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाधिष्ठितं परम् ॥ २१ ॥

आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम् ।
कैलासाख्ये तदूर्ध्वे तु बोधनी तु तदूर्ध्वतः ॥ २२ ॥

एवं च सर्वचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ।
सहस्राराम्बुजं बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ॥ २३ ॥

इसके ऊपर षोडशदल पद्म से युक्त विशुद्ध चक्र स्थित है जो धूम्रवर्ण और महान प्रभा वाला है। यहाँ मैं (महादेव) लोकों के अधिष्ठाता के रूप में स्थित रहता हूँ और सोलह सूर्य मेरी सेवा करते हैं। इसे परम महान् आकाशाख्य विशुद्ध पद्म कहा गया है। इसके ऊपर आज्ञाचक्र स्थित है। यह आत्मा का परम अधिष्ठान है। यहाँ से ही आज्ञा का संक्रमण होता है इसलिये इसे वह स्थान कहते हैं जहाँ से गुरु आज्ञा देते हैं। इसके ऊपर कैलास है। हे सुव्रत ! बताये गये इन सब चक्रों के ऊपर सहस्रदलों से युक्त पद्म है जिसे विन्दुस्थान कहते हैं॥ १९-२३ ॥

इत्येतत् कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ।
आदौ पूरकयोगेन आधारे योजयेन्मनः ॥ २४ ॥

गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामूर्ध्वं च प्रबोधयेत् ।
लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुचक्रं तु प्रापयेत् ॥ २५ ॥

शम्भुना तां परां शक्तिमेकोभावं विचिन्तयेत् ।
तत्रोत्थितामृतरसं द्रुतलाक्षारसोपमम् ॥ २६ ॥

पाययित्वा च तां शक्तिं कृष्णाख्यां योगसिद्धिदाम् ।
षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्यामृतधारया ॥ २७ ॥

इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रेष्ठतम योगमार्ग बताया। सर्वप्रथम पूरक योग करते हुये मन को मूलाधार में केन्द्रित करना चाहिये। इसके बाद गुदा और मेढ़ के बीच स्थित शक्ति को जाग्रत करके उसे क्रमशः विभिन्न चक्रों से होते हुये विन्दुचक्र में ले जाना चाहिये। यहाँ शिव और उनकी पराशक्ति शिवा के ऐक्य की भावना करनी चाहिये। यहाँ पिघले हुये लाख (लासा) के समान अमृत रस उत्पन्न होता है। योगसिद्धिप्रद कृष्णाख्य उस शक्ति को उस अमृत रस का पान कराये। फिर षट्चक्रों के देवताओं को भी उस अमृत से तृप्त करे ॥२४-२७॥

अनेन ज्ञानमार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः ।
एवमभ्यस्य चायम्य अहन्यहनि मारुतम् ॥ २८ ॥
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ।
पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा ॥ २९ ॥

बुद्धिमान् साधक इस प्रकार इस ज्ञानमार्ग का अभ्यास करते हुये मूलाधार चक्र में प्रतिदिन वायु का नियन्त्रण करे। ऐसा करने से वह जरा-मृत्यु और संसार के बन्धन से मुक्त हो जायेगा। इतना ही नहीं पूर्वोक्त दूषित मन्त्र भी साधक के लिये सिद्धिप्रद हो जायेंगे—इसमें अन्यथा हो ही नहीं सकता ॥ २८-२९ ॥

ये गुणाः सन्ति देवस्य पञ्चकृत्यविधायिनः ।
ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा ॥ ३० ॥

पञ्चकृत्यविधान के अनुसार देव का पूजन करने वाले साधक में जो-जो गुण होते हैं वे सभी उक्त साधना करने वाले साधक को भी प्राप्त हो जाते हैं—इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥

इत्येतत् कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ।
इदं तु धारणाध्यानं शृणुष्वावहितो मम ॥ ३१ ॥

इस प्रकार मैंने तुम्हें सब श्रेष्ठतम योगमार्ग बता दिया। अब समाहित होकर धारणा और ध्यान के सम्बन्ध में सुनो ॥ ३१ ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्ने कृष्णे चेतो विधाय च ।
तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवो ब्रह्माणि योजनात् ॥ ३२ ॥
अथवा समलं चित्तं यदा क्षिप्रं न सिद्ध्यति ।
तदावयवसंयोगाद्योगी योगान् समभ्यसेत् ॥ ३३ ॥

दिक्काल के बन्धन से मुक्त होकर अपने हृदय में श्रीकृष्ण का ध्यान करो और उन्हें ब्रह्मस्वरूप जानते हुये यथाशीघ्र अपने जीव को उनके साथ योजित करो। यदि हृदय शीघ्र शुद्ध न हो और शीघ्र सफलता भी न प्राप्त हो तब उनके स्वरूप और अवयवों के ध्यान का अभ्यास करे ॥ ३२-३३ ॥

पदाम्भोजे मनो दद्यात् नखकिञ्जल्कचित्रिते ।
जङ्घायुग्मे तथा रामकदलीकाण्डशोभिते ॥ ३४ ॥

ऊरुद्वये मत्तहस्तिकरदण्डसमप्रभे ।
गङ्गावर्तगभीरे तु नाभौ सिद्धबिले ततः ॥ ३५ ॥

उदरे वक्षसि तथा हरेः श्रीवत्सकौस्तुभे ।
पूर्णचन्द्रायुतप्रख्ये ललाटे चारुमण्डले ॥ ३६ ॥

शङ्खचक्रगदाम्भोजदोर्दण्डपरिमण्डिते ।
सहस्रादित्यसंकाशे किरीटकुण्डलद्वये ॥ ३७ ॥

सर्वप्रथम नखरूपी पुष्पों से अलंकृत उनके चरण-कमल का ध्यान करे और फिर कदलीकाण्ड के समान सुन्दर उनकी दोनों जाघों का ध्यान करे। फिर मत्त हाथी के सूँढ के समान उनके ऊरुद्वय का ध्यान करे। इसके बाद सिद्धबलिस्वरूप गङ्गा की भवरों के समान उनकी नाभि का ध्यान करे। फिर क्रमशः हरि के उदर पर, श्रीवत्स और कौस्तुभ से शोभित उनके वक्षःस्थल पर, सहस्रों पूर्णचन्द्रमाओं के समान सुन्दर ललाट पर; उनके करस्थ शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म पर, तथा सहस्रों आदित्यों के समान प्रकाशमान उनके किरीट और कुण्डल-द्वय पर ध्यान केन्द्रित करे ॥ ३४-३७ ॥

स्थाने स्थाने यजेन्मन्त्री विशुद्धशुद्धचेतसा ।

मनो निवेश्य कृष्णे वै तन्मयो भवति ध्रुवम् ॥
यावन्मनो लयं याति कृष्णे स्वात्मनि चिन्तयेत् ॥ ३८ ॥

ताराद्दिष्टमनुं मन्त्री जपहोमं समभ्यसेत् ।
अतःपरं न किंचिच्च कृत्यमास्ते मनोहरे ॥ ३९ ॥

मन को एकाग्र करके कृष्ण का तन्मय होकर निश्चित रूप से उनका चिन्तन करे और जब तक मन परमात्मा श्रीकृष्ण में लीन न हो जाय तब तक उनका ध्यान करता रहे। साथ ही साथ 'तार' आदि और इष्ट मन्त्र का जप और होम भी करना चाहिये। इससे श्रेष्ठ और मनोहर अन्य कृत्य नहीं है॥ ३८-३९ ॥

विदिते परतत्त्वे तु समस्तैर्नियमैरलम् ।
तालवृन्तेन किं कार्यं लब्धे मलयमारुते ॥ ४० ॥

जब साधक को परतत्त्व का ज्ञान हो जाता है तब उसे किसी नियम के पालन की आवश्यकता नहीं रहती। जब मलय पवन बह रहा हो तब पंखे की क्या आवश्यकता है ? ॥ ४० ॥

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते ।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हरिः ॥ ४१ ॥

द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ।
तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ॥ ४२ ॥

एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ।

मन्त्र जप और योगाभ्यास दोनों से ही अन्ततः एक ही ज्ञान प्राप्त होता है। योग के बिना कोई मन्त्र नहीं है और मन्त्र के बिना हरि नहीं प्राप्त होते। अतः दोनों के अभ्यास से ही ब्रह्मसिद्धि प्राप्त होती है। जैसे किसी अँधेरे घर में दीपक के प्रकाश में ही घटादि दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार माया से आच्छादित आत्मा मन्त्र से ही अधिगत होता है॥ ४१-४२½ ॥

एवं ते कथितं ब्रह्मन्मन्त्रयोगमनुत्तमम् ॥

दुर्लभं विषयासक्तैः सुलभं तादृशामपि ॥ ४३ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
योगकथने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रेष्ठतम मन्त्रयोग बता दिया। विषयासक्तों के लिये दुर्लभ होते हुये भी इस प्रकार अब यह सुलभ हो जाता है ॥ ४३ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के पञ्चमरात्र
का योगकथन विषयक दशम
अध्याय समाप्त।

पञ्चमरात्रे एकादशोऽध्यायः

योगप्रकरणम्

श्री महादेव उवाच।

अथ प्रकारान्तरं, तत्र शारदायाम्।

षणवत्यंगुलायामं शरीरमुभयात्मकम्।
गजध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधादद्व्यंगुलं विदुः ॥ १ ॥
तस्य द्विगुणविस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम्।
नाड्यस्तत्र समुद्भूताः मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्त्तिताः ॥ २ ॥
इडा वामे स्थिता नाडी पिङ्गला दक्षिणे मता।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्णा तत्समाश्रिता ॥ ३ ॥

श्रीमहादेव जी बोले : यह शरीर उभयात्मक है। इसकी लम्बाई ९० अंगुल है। गुदा और लिङ्ग के मध्य स्थान में गुदा से अथवा लिङ्ग से दो अंगुल की दूरी पर मूलाधार चक्र सुशोभित है। इसी स्थान पर स्थित कन्द से सभी नाडियाँ आरम्भ होती हैं जिनमें से तीन नाडियाँ सर्वप्रमुख हैं। बायें ओर इडा नाडी, दाहिनी ओर पिङ्गला नाडी और इन दोनों के बीच में सुषुम्णा नाडी स्थित है ॥ १-३ ॥

पादांगुष्ठद्वयं याता शिवाख्या शिरसा पुनः।
ब्रह्मस्थानं समापन्ना सोमसूर्याग्निरूपिणी ॥ ४ ॥
तस्य मध्यगता नाडी विचित्रा योगिदुर्ल्लभा।
ब्रह्मरन्ध्रं विदुस्तस्याः पद्मसूत्रनिभं परम् ॥ ५ ॥
आधारस्तु गतास्तत्र मतभेदादनेकधा।
दिव्यमार्गमिमं प्राहुरमृतानन्दकारकम् ॥ ६ ॥

दोनों पादांगुष्ठों से निकल कर शिवा नाडी शिर में जाकर वहाँ सोम, सूर्य और अग्नि (इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा) नाडियों से

मिलती है। इस सुषुम्णा नाडी के भीतर, योगियों के लिये भी दुर्लभ पद्मसूत्र के समान विचित्रा नाडी स्थित है जो ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। इस सम्बन्ध में विभिन्न सम्प्रदायों में यद्यपि मतभेद है तथापि अमृतानन्दकारक इस दिव्य मार्ग को यहाँ बताया जा रहा है ॥ ४-६ ॥

इडायां संचलेच्चेन्द्रः पिङ्गलायां दिवाकरः ।
जातौ तु योगनिद्रायां सुषुम्णयां च तावुभौ ॥ ७ ॥

इडा नाडी में चन्द्रमा संचरण करता है और पिङ्गला में सूर्य संचरण करता है, किन्तु ये तभी दिखाई पड़ते हैं जब सुषुम्णा योगनिद्रा में होती है ॥ ७ ॥

आधारकन्दमध्यस्थं त्रिकोणमतिसुन्दरम् ।
ज्योतिषां निलयं दिव्यं प्राहुरागमवेदिनः ॥ ८ ॥
तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता ।
परिस्फुरति सर्वात्मा सुप्ताहिसदृशाकृतिः ॥ ९ ॥

आधार चक्र में अतिसुन्दर त्रिकोण है जो दिव्य ज्योति का स्थान है—ऐसा आगमविदों ने कहा है। वहाँ कुण्डलीबद्ध सर्प के रूप में विद्युल्लता के आकार वाली परदेवता कुण्डली प्रसुप्त रहती है। वही सर्वात्मा के रूप में परिस्फुटित होती है ॥ ८-९ ॥

विभर्ति कुण्डली शक्तिरात्मानं हंसमाश्रिता ।
हंसःप्राणाश्रयो नित्यं प्राणा नाडीपथाश्रयाः ॥ १० ॥

आधारादूर्ध्वतो वायुर्यः(?)वत्सर्वदेहिनाम् ।
देहं प्राप्य स्वनाडीभिः प्रयाणं कुरुते बहिः ॥ ११ ॥

द्वादशांगुलमानेन तस्मात् प्राण इति स्मृतः ।
रम्ये मृद्वासने शुद्धे पटाजिनकुशोत्तरे ॥ १२ ॥

यद्वैकमासनं योगी योगमार्गपरो भवेत् ।
ज्ञात्वा भूतो यत्र देहे यथावत् प्राणवायुना ॥
तत्र भूतो यजेद्देहे दृढत्वावाप्तये सुधीः ॥ १३ ॥

कुण्डलीशक्ति हंसाश्रित होकर आत्मा का पोषण करती है। हंस प्राणाश्रित है और प्राणादि वायु अपने संचरण के लिये नाडीपथ के आश्रित हैं। सभी देहधारियों में आधार चक्र के ऊपर के स्थानों में नाडियों के द्वारा ही वायु प्रयाण करता है। प्राण के प्रयाण का मान बारह अंगुल जानना चाहिये। क्रमशः पट्ट, चर्म, और कुश से निर्मित रम्य और मृदु आसन पर एक आसन में बैठ कर योगी योगमार्ग का अभ्यास करे। सुधी साधक देह की दृढता प्राप्त करने के लिये देह में भूतों के स्थान का ज्ञान प्राप्त करके प्राणवायु द्वारा उन भूतों का देह में यजन करे॥ १०-१३॥

आसनभूतोदये प्रागुक्ते।

अंगुलीभिर्दृढं बद्ध्वा करणानि समाहितः।
अंगुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां विलोचने॥ १४॥
नासारन्ध्रे च मध्याभ्यामन्याभिर्वदनं दृढम्।
बद्ध्वाऽऽत्मप्राणमनसामेकत्वं समनुस्मरन्॥ १५॥
धारयेन्मारुतं सम्यग्योऽयं योगिदुर्लभः।
नादः संजायते तस्य क्रमादभ्यस्यतः शनैः॥ १६॥
स तु भृङ्गाङ्गनागीतसदृशःप्रथमो ध्वनिः।
वंशिकांस्यानिलापूर्ण वंशभावानिलोपमम्॥ १७॥
घण्टारवसमं पश्चात् घनमेघस्वनोऽपरः।
एवमभ्यस्यतः पुंसः संसारध्वान्तनाशनः॥ १८॥

आन्तरिक अंगों को समाहित करते हुये दोनों तर्जनियों को दोनों आंखों पर और दोनों अँगूठों को दोनों कानों पर दृढ़तापूर्वक रख कर उन्हें बन्द करे। दोनों नासारन्ध्रों को दोनों मध्यमाओं से बन्द करके शेष अँगुलियों को यथास्थान दृढ़ रक्खे। फिर आत्मा, प्राण और मन के ऐक्य का ध्यान करे। इस प्रकार वायु को सम्यक् रूप से धारण करे। इससे योगियों के लिये भी दुर्लभ नाद उत्पन्न होगा जिसको शनैः शनैः सुनने का अभ्यास करे। सबसे पहले भ्रमर के गुञ्जन के समान ध्वनि सुनाई पड़ेगी। फिर वायु की सहायता से वंशी के समान ध्वनि सुनाई

पड़ेगी। तदुपरान्त क्रमशः घण्टा और फिर मेघ के गर्जन की ध्वनियाँ सुन पड़ेगी। इस प्रकार अभ्यास करने से संसार के कष्टों का नाश हो जाता है ॥ १४-१८ ॥

ज्ञानमुत्पद्यते सर्वं हंसक्षेपणमव्ययम् ।
पुंप्रकृत्यात्मकौ प्रोक्तौ बिन्दुसर्गौ मनीषिभिः ॥ १९ ॥
ताभ्यां क्रमात् समुद्भूतौ विन्दुसर्गावसानकौ ।
हंसौ हंसप्रकृत्याख्यौ हंसवान् प्रकृतिस्तु सः ॥ २० ॥
अजपा कथिता ताभ्यां जीवो यामुपतिष्ठते ।
पुरुषत्वाश्रयं मत्वा प्रकृतिर्नित्यमात्मनः ॥
यदा तद्भावमाप्नोति सदा सोऽहमिदं भवेत् ॥ २१ ॥
साकारार्णं लोपयित्वा प्रयत्नश्च ततः परम् ।
सन्ध्यां कुर्यात् पूर्वरूपां तदासौ प्रणवो भवेत् ॥ २२ ॥
परानन्दमयं नित्यं चैतन्यैकगुणात्मकम् ।
आत्माभेदस्थितं योगी प्रणवं भावयेत् सदा ॥ २३ ॥

जब हंसक्षेपण का अव्यय ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब पुरुष और प्रकृतिरूपी विन्दु और विसर्ग का ज्ञान प्राप्त होता है—ऐसा मनीषियों ने कहा है। इससे क्रमशः सर्गावसानात्मक विन्दु और प्रकृत्याख्य हंस का ज्ञान उत्पन्न होता है क्योंकि प्रकृति हंसवान् है। इस प्रकार अजपा को कहा गया। अजपा को पुरुषत्वाश्रित जान कर जीव को सतत अभ्यास करना चाहिये। इससे जब निहितार्थ का ज्ञानोदय होता है तब 'सोऽहम्' अधिगत हो जाता है। अब, साकार वर्णों का लोप करके सन्ध्या का अभ्यास करने पर इसका पूर्वरूप प्रणव हो जाता है। योगी को परानन्दमय, नित्य, चैतन्यगुणात्मक और आत्मा से अभिन्न इस प्रणव का सदा ध्यान करना चाहिये ॥ १९-२३ ॥

आस्थाय वाचामतिदूरमाद्यं वेद्यं स्वसंवेद्यगुणेन सन्तः ।
आत्मानमानन्दरसैकसिन्धुं पश्यन्ति ते तारकमात्मनिष्ठाः ॥२४॥
सत्यं हेतुविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं
व्याप्तं स्थावरजङ्गमं निरूपमं चैतन्यमन्तर्गतम् ।

आत्मानं रविचन्द्रवह्निवपुषं तारात्मकं संततं

नित्यानन्दगुणालयं सुकृतिनः पश्यन्तिः रुद्धेन्द्रिया ॥२५॥

सन्तों को चाहिये कि वे स्वयं अपने गुणों के द्वारा उक्त मूलबीज 'ॐ' का उच्चारण करते हुये उसको आत्मानन्द के रस का एकमात्र सिन्धु जाने। उन्हें आत्मनिष्ठ होकर इस तारक बीज पर नेत्रों को केन्द्रित करना चाहिये। अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके अत्यन्त पुण्यात्माओं को सत्य, हेतुविवर्जित्त, श्रुति के आदि, जगत् के कारण, स्थावर और जङ्गम को व्याप्त करने वाले, चैतन्य, निरुपमा, आत्मा में स्थित, सूर्य, चन्द्र और अग्निस्वरूपी, तारक और नित्यानन्द गुणालय इस परम सत्य का ध्यान करना चाहिये ॥ २४-२५ ॥

अंगुष्ठमात्रं पुरुषं भजन्ते चैतन्यमात्रं रविमण्डलस्थम् ।
ध्यायन्ति दुग्धाब्दिभुजंगभोगे शयानमाद्यं कमलासहायम् ॥
प्रफुल्लनेत्रोत्पलमञ्जनाभं चतुर्मुखेनाश्रितपादपद्मम् ॥ २६ ॥

क्षीर सागर में सहस्र फणों वाले अनन्तनाग की शय्या पर शयन करने वाले, कमला (लक्ष्मी) के पति, चैतन्यमात्र रविमण्डलस्थ, नील कमल के समान प्रफुल्ल नेत्रों वाले उन अंगुष्ठमात्र आद्यपुरुष का भजन करना चाहिये जिनके पादपद्मों पर चतुरानन ब्रह्मा भी आश्रित हैं ॥ २६ ॥

आम्नायगन्तृचरणं धननीलमुद्यत्-
श्रीवत्सकौस्तुभगदाम्बुजशङ्खचक्रम् ॥
हृत्पुण्डरीकनिलयं जगदेकमूल-
मालोकयन्ति कृतिनः पुरुषं पुराणम् ॥ २७ ॥

घननील मेघ के समान शरीरवाले, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म से अलंकृत, आम्नायों द्वारा पूजित चरण वाले, जगत् के एकमात्र मूल उन पुराण पुरुष का श्रेष्ठ कर्मों वाले भक्तों को अपने हृदयकमल में सदा ध्यान करना चाहिये ॥ २७ ॥

श्रीनारद उवाच ।

इति मे योगशास्त्रस्य ज्ञातं माहात्म्यमुत्तमम् ।
प्रकाशितं च यत्नेन ज्ञानामृतमिदं भुवि ॥ २८ ॥

बुधाः पिवत यत्नेन परं ब्रह्मरसायनम् ।
पीत्वेदममृतं भूयो मृतं जन्म न विद्यते ॥ २९ ॥
येऽभ्यस्यन्ति त्विदं शास्त्रं पठन्ति पाठयन्ति वा ।
सिद्धयोऽष्टौ करे तेषां धनधान्यादिसम्पदः ॥ ३० ॥
आदृताः सर्वशास्त्रेषु भोगिनः क्षोभकारकाः ।
आप्नुवन्ति परं ब्रह्म सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ३१ ॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे पञ्चमरात्रे
योगप्रकरणंनाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

समाप्तश्चेदं पञ्चमरात्रम् ।

समाप्तोयं ग्रन्थः

श्रीनारद जी बोले : योगशास्त्र के उत्तम माहात्म्य को इस प्रकार जान कर मैंने इस ज्ञानामृत को यत्नपूर्वक इस संसार में प्रकाशित किया है। बुद्धिमानों को यत्नपूर्वक इस ब्रह्मरसायन का नित्य पान करना चाहिये क्योंकि जो इसका पान करेगा वह मृत्यु के बाद पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेगा। जो इस शास्त्र को पढ़ता, पढ़ाता या इसका अभ्यास करता है उसे अष्ट सिद्धियाँ और धन, धान्य तथा सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह सर्वशास्त्रों द्वारा आदृत, भोगियों को क्षोभकारक, और सर्वशास्त्रविशारदों को परं ब्रह्म से मिलाने वाला है ॥२८-३१॥

इति श्रीनारद पञ्चरात्र के ज्ञानामृतसार के
पञ्चम रात्र में योगप्रकरण नामक
ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चरात्र समाप्त हुआ।